

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला—ग्यारहवाँ पुष्प

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

सुन्दरकाण्ड

(मूल संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित)

टीकाकार

अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता

शिक्षा, शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक

साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री



प्रकाशक

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला कार्यालय

बनारस सिटी

प्रथमावृत्ति] शारद् पूर्णिमा, सं० १९८६ वि० [मूल्य ।।।=)

सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी साइज़के लगभग २७०० पृष्ठोंका होगा।

मूल्य इसी हिसाबसे रहेगा; किन्तु अभीसे ग्राहक बनजानेसे लगभग ७) के देना होगा।

प्रकाशक—
पन्नालाल गुप्त, व्यवस्थापक,
स० सा० पुस्तकमाला कार्यालय
बनारस सिटी।

मुद्रक—
बी. एल्. पावगी,
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट,
बनारस सिटी।

सोल एजेन्ट—
मुकुन्ददास गुप्त, ऐंड कंपनी
पुस्तक-भवन,
चौक, बनारस सिटी।

निम्न पते पर भी मिलेगी—
मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स
संस्कृत बुकडिपो,
कचौड़ीगली, बनारस सिटी।

॥ श्रीरामचन्द्राय नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणे

सुन्दरकाण्डम्

प्रथमः सर्गः १

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः। इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि ॥ १ ॥
दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन्कर्म वानरः। समुदग्रशिरोग्रीवो गवां पतिरिवाबभौ ॥ २ ॥
अथ वैदूर्यवर्णेषु शाद्वलेषु महाबलः। धीरः सलिलकल्पेषु विचचार यथासुखम् ॥ ३ ॥
द्विजान्वित्रासयन्धीमानुरसा पादपान्हरन्। मृगांश्च सुबहून्निघ्नन्प्रवृद्ध इव केसरी ॥ ४ ॥
नीललोहितमाञ्जिष्ठपद्मवर्णैः सितासितैः। स्वभावसिद्धैर्विमलैर्धातुभिः समलंकृतम् ॥ ५ ॥
कामरूपिभिराविष्टमभीक्ष्णं सपरिच्छदैः। यक्षकिंनरगन्धर्वैर्देवकल्पैः सपन्नगैः ॥ ६ ॥
स तस्य गिरिवर्यस्य तले नागवरायुते। तिष्ठन्कपिवरस्तत्र ह्रदे नाग इवाबभौ ॥ ७ ॥
स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयंभुवे। भूतेभ्यश्चाञ्जलिं कृत्वा चकार गमने मतिम् ॥ ८ ॥
अञ्जलिं प्राङ्मुखं कुर्वन्पवनायात्मयोनये। ततो हि ववृधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणां दिशम् ॥ ९ ॥

जाम्बवान्‌के उत्साहित करनेके अनन्तर, शत्रुको दण्ड देनेकी शक्ति रखनेवाले हनुमान्‌ने आकाशमार्गमें जाकर रावण द्वारा हरी गयी सीताको ढूंढ़नेकी इच्छा की ॥ १ ॥ औरोंके द्वारा न होनेवाला, और दुष्कर कर्म करनेकी इच्छा रखनेवाले हनुमान्‌का सिर और गला ऊंचा हो गया है, जिस से वे साँड़के समान मालूम होनेलगे ॥२॥ अनन्तर वैदूर्यके समान और समुद्रजलके समान हरी पर्वतकी घासपर धीर हनुमान् सुखपूर्वक विचरण करने लगे ॥३॥ जिससे पक्षी डर गए। उनकी छाती की रगड़से अनेक वृक्ष टूट गये। बहुतसे प्राणी मर गये। हनुमान उस समय मस्त सिंहके समान मालूम होते थे ॥४॥ नीले, लाल, मांजिष्ठ कमलवर्ण तथा श्वेत, और काले स्वाभाविक वर्णवाले धातुओंसे अलंकृत, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, नागोंके साथ देवयोनि, परिवार सहितयक्ष, किन्नर, गन्धर्वोंसे सेवित उस पर्वतके तलमें ठहरे हुए हनुमान झीलमें रहनेवाले नागके समान मालूम होते थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ सूर्य, इन्द्र, स्वयम्भू, वायु तथा अन्य सब प्राणियोंको हाथ जोड़-कर हनुमानने जानेकी इच्छा की ॥ ८ ॥ पूर्व मुँह होकर अपने पिता पवनको प्रणाम किया। अनन्तर, वे सब कार्योंको करनेकी शक्ति रखनेवाले हनुमान दक्षिण दिशामें जानेको उद्यत हुए

प्लवगप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः । ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु ॥१०॥
निष्प्रमाणशरीरः संलिलङ्घयिषुरर्णवम् । बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम् ॥११॥
स चचालाचलश्चाशु मुहूर्तं कपिपीडितः । तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्वं पुष्पमशातयत् ॥१२॥
तेन पादपमुक्तेन पुष्पौघेण सुगन्धिना । सर्वतः स वृतः शैलो बभौ पुष्पमयो यथा ॥१३॥
तेन चोत्तमवीर्येण पीड्यमानः स पर्वतः । सलिलं संप्रसुस्राव मदमत्त इव द्विपः ॥१४॥
पीड्यमानस्तु बलिना महेन्द्रस्तेन पर्वतः । रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः ॥१५॥
मुमोच च शिलाः शैलो विशालाः समनःशिलाः। मध्यमेनार्चिषा जुष्टो धूमराजिरिवानलः ॥१६॥
हरिणा पीड्यमानेन पीड्यमानानि सर्वतः । गुहाविष्टानि सत्त्वानि विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ॥१७॥
स महान्सत्त्वसंनादः शैलपीडानिमित्तजः । पृथिवीं पूरयामास दिशश्चोपवनानि च ॥१८॥
शिरोभिः पृथुभिर्नागा व्यक्तस्वस्तिकलक्षणैः । वमन्तः पावकं घोरं ददंशुर्दशनैः शिलाः ॥१९॥
तास्तदा सविषैर्दष्टाः कुपितैस्तैर्महाशिलाः । जज्वलुः पावकोद्दीप्ता बिभिदुश्च सहस्रधा ॥२०॥
यानि त्वौषधजालानि तस्मिञ्जातानि पर्वते । विषघ्नान्यपि नागानां न शेकुः शमितुं विषम् ॥२१॥
भिद्यतेऽयं गिरिर्भूतैरिति मत्वा तपस्विनः । त्रस्ता विद्याधरास्तस्मादुत्पेतुः स्त्रीगणैः सह ॥२२॥

॥ ६ ॥ वानरोंके द्वारा दृष्ट और जानेके लिए उद्यत हनुमान रामचन्द्रकी कार्यसिद्धिके लिए बढ़े, जैसे अमावास्याको समुद्र बढ़ता है ॥ १० ॥ समुद्रके पार जानेकी इच्छा रखनेवाले, हनुमानका शरीर बहुत विशाल हो गया । उन्होंने अपनी भुजाओं और चरणोंसे पर्वतको दबाया ॥ ११ ॥ हनुमानके द्वारा दबाए जानेपर वह पर्वत शीघ्र ही कांपने लगा और फूले हुए वृक्षोंके सब फूल गिर पड़े ॥ १२ ॥ उन गिरे हुए फूलोंकी गन्धसे वह समूचा पर्वत भर गया । वह पुष्पमयके समान मालूम होने लगा ॥ १३ ॥ महाबली हनुमानके द्वारा दबाया गया वह पर्वत फूल बरसाने लगा, जैसे मतवाला हाथी मद बरसाता है ॥ १४ ॥ बलवान् हनुमानके द्वारा दबाए गए उस पर्वतने सोने, चांदी और काले रंगों की रेखाओंको हटा दिया । अर्थात् फूलोंसे ढक जानेके कारण उसके सब रंग छिप गए ॥ १५ ॥ वह पर्वत मनसिलके साथ बड़े-बड़े पत्थरोंको गिराने लगा । वह पर्वत मझोली ज्वालासे युक्त अग्निकी धूमराशिके समान मालूम हुआ ॥ १६ ॥ हनुमानके द्वारा पीड़ित होनेपर, उस पर्वतकी गुहाओंमें रहनेवाले सब प्राणी पीड़ित हुए और विकृत स्वरसे चीत्कार करने लगे ॥ १७ ॥ शैलकी पीड़ाके कारण उत्पन्न प्राणियोंका वह बड़ा भारी कोलाहल पृथिवी, दिशाओं और उपवनोंमें भर गया ॥ १८ ॥ विशाल मस्तकोंसे, जिन परका स्वस्तिक चिन्ह प्रगट हो गया था, नागगण भयानक आग उगलते हुए पत्थरोंको दाँतोंसे काटने लगे ॥ १९ ॥ उस समय वे बड़ी-बड़ी शिलाएँ कुपित विषैले सांपोंके काटनेसे, आग लगनेके समान जल उठीं और उनके हजारों टुकड़े होगये ॥ २० ॥ उस पर्वतपर विषनाशक जो अनेक औषध थे, उनसे भी नागोंका विष शमन न हो सका ॥ २१ ॥ यह पर्वत भूतोंके (देवयोनि विशेष) द्वारा तोड़ा जा रहा है, यह समझकर विद्याधर और तपस्विगण डर गए तथा वे स्त्रियोंके साथ वहां-

पानभूमिगतं हित्वा हैममासनभाजनम् । पात्राणि च महार्हाणि करकांश्च हिरण्मयान् ॥२३॥
लेह्यानुच्चावचान्भक्ष्यान्मांसानि विविधानि च । आर्षभाणि च चर्माणि खड्गांश्च कनकत्सरून् ॥२४॥
कृतकण्ठगुणाः क्षीबा रक्तमाल्यानुलेपनाः । रक्ताक्षाः पुष्कराक्षाश्च गगनं प्रतिपेदिरे ॥२५॥
हारनूपुरकेयूरपारिहार्यधराः स्त्रियः । विस्मिताः सस्मितास्तस्थुराकाशे रमणैः सह ॥२६॥
एष पर्वतसंकाशो हनुमान्मारुतात्मजः । तितीर्षति महादेहः समुद्रं वरुणालयम् ॥२७॥
रामार्थं वानरार्थं च चिकीर्षन्कर्म दुष्करम् । समुद्रस्य परं पारं दुष्प्रापं प्राप्तुमिच्छति ॥२८॥
इति विद्याधरा वाचः श्रुत्वा तेषां तपस्विनाम् । तमप्रमेयं ददृशुः पर्वते वानरर्षभम् ॥२९॥
दुधुवे च स रोमाणि चकम्पे चानलोपमः । ननाद च महानादं सुमहानिव तोयदः ॥३०॥
आनुपूर्व्या च वृत्तं तल्लाङ्गूलं लोमभिश्चितम् । उत्पतिष्यन्विचिक्षेप पक्षिराज इवोरगम् ॥३१॥
तस्य लाङ्गूलमाविद्धमतिवेगस्य पृष्ठतः । ददृशे गरुडेनेव ह्रियमाणो महोरगः ॥३२॥
बाहू संस्तम्भयामास महापरिघसंनिभौ । आससाद कपिः कट्यां चरणौ संचुकोच च ॥३३॥
संहृत्य च भुजौ श्रीमांस्तथैव च शिरोधराम् । तेजः सत्त्वं तथा वीर्यमाविवेश स वीर्यवान् ॥३४॥

से चले गए ॥ २२ ॥ पानभूमिमें रक्खे हुए सोनेके भाजन (शराब पीनेका प्याला) आसन, अन्य बहुमूल्य पात्र तथा सोनेके कटोरे मृगचर्म छोड़कर, अनेक प्रकारकी चटनियाँ, विविध भोजन, तरह तरहके मांस छोड़कर, ढाल सोनेकी मूठवाली तलवार छोड़कर, उत्तम गानेवाले, रक्त माल्य धारण करनेवाले, सुगन्धित अनुलेपनका उपयोग करनेवाले, कमलके पत्रके समान नेत्रवाले, मदमत्त और लाल-लाल आँखोंवाले विद्याधर आकाशमें चले गये ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ हार, पायजेब, बाजूबन्द, धारण करनेवाली विद्याधरकी स्त्रियाँ अपने-अपने पतिके साथ आकाशमें जाकर चकित हुई और मुस्कुराने लगीं ॥ २६ ॥ (विद्याधर और महर्षि अपनी विद्याकी शक्ति प्रदर्शन करते हुए आकाशमें ठहरे रहे और पर्वतको देखते रहे । उस समय विशुद्धचेता ऋषियों, चारणों और सिद्धोंके शब्द लोगोंने सुने जो विमल आकाशमें ठहरे हुए थे ।) यह पर्वतके समान विशाल वायुपुत्र हनुमान बड़े वेगसे समुद्रको पार कर रहे हैं ॥ २७ ॥ रामचन्द्रकी कार्य सिद्धिके लिए, वानरोंकी रक्षाके लिए, यह दुष्कर काम कर रहे हैं, जो समुद्रके दूसरे पार को पाना चाहते हैं । जिसका पाना दूसरोंके लिए कठिन है ॥२८॥ उन तपस्वियोंके ये वचन सुनकर विद्याधरोंने पर्वत पर वानर श्रेष्ठ और अनुपमेय हनुमानको देखा ॥ २९ ॥ उस समय हनुमानने अपने रोम झाड़े, जिससे पर्वत कांपने लगा । उन्होंने महान् मेघके समान घोर गर्जन किया ॥ ३० ॥ हनुमानने अपनी पूंछ जो रोएँसे भरी थी, तथा क्रमसे गोली हो गयी थी अकाशमें उड़ते हुए ऐसे फेंकी जिस प्रकार गरुड़ सर्पको फेंकता है ॥ ३१ ॥ अतिवेगवान् हनुमानके पीछे फैली वह पूंछ गरुड़के द्वारा खींचे गए बड़े भारी सर्पके समान मालूम होती थी ॥ ३२ ॥ हनुमानने अपनी बाहु पर्वत पर जोरसे जमाई । वे स्वयं शरीरके आगेके भागको पीछे खींचकर अपनी कमरमें आगये अर्थात् बहुत ही छोटे होगए और पैरोंको भी उन्होंने समेट लिया ॥ ३३ ॥ भुजाओं को संकुचित करके, तथा गले को संकुचित करके वीर्यवान् हनुमानने तेज (शत्रुविजय करनेकी

मार्गमालोकयन्दूरादूर्ध्वप्रणिहितेक्षणः । रुरोध हृदये प्राणानाकाशमवलोकयन् ॥३५॥
पद्भ्यां दृढमवस्थानं कृत्वा स कपिकुञ्जरः । निकुंच्य कर्णौ हनुमानुत्पतिष्यन्महाबलः ॥३६॥
वानरान्वानरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् । यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः ॥३७॥
गच्छेत्तद्वद्गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम् । नहि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम् ॥३८॥
अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम् । यदि वा त्रिदिवे सीतां न द्रक्ष्यामि कृतश्रमः ॥३९॥
बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम् । सर्वथा कृतकार्योऽहमेष्यामि सह सीतया ॥४०॥
आनयिष्यामि वा लङ्कां समुत्पाट्य सरावणाम्। एवमुक्त्वा तु हनुमानन्वानरो वानरोत्तमः ॥४१॥
उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन् । सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः ॥४२॥
समुत्पति वेगात्तु वेगात्ते नगरोहिणः । संहृत्य विटपान्सर्वान्समुत्पेतुः समन्ततः ॥४३॥
स मत्तकोयष्टिभकान्पादपान्पुष्पशालिनः । उद्वहन्नुरुवेगेन जगाम विमलेऽम्बरे ॥४४॥
ऊरुवेगोत्थिता वृक्षा मुहूर्तं कपिमन्वयुः । प्रस्थितं दीर्घमध्वानं स्वबन्धुमिव बान्धवाः ॥४५॥
तमूरुवेगोन्मथिताः सालाश्चान्ये नगोत्तमाः । अनुजग्मुर्हनूमन्तं सैन्या इव महीपतिम् ॥४६॥
सुपुष्पिताग्रैर्बहुभिः पादपैरन्वितः कपिः । हनूमान्पर्वताकारो बभूवाद्भुतदर्शनः ॥४७॥
सारवन्तोऽथ ये वृक्षा न्यमज्जँल्लवणाम्भसि । भयादिव महेन्द्रस्य पर्वता वरुणालये ॥४८॥

शक्ति) सत्व (शारीरिक बल) वीर्य (मानसिक बल) बढ़ाये ॥ ३४ ॥ हनुमानने लम्बे मार्गको देखनेके लिए ऊपर आँखें उठाईं और आकाशको देखते हुए उन्होंने प्राणोंको हृदय में रोका ॥ ३५ ॥ इस प्रकार कपि (श्रेष्ठ हनुमान) नेकूदनेकी तयारी करते हुए पैरोंको खूब जमाया और अपने कान खूब संकुचित कर लिए ॥३६॥ वानर श्रेष्ठ हनूमान अन्य वानरोंसे बोले "जिस प्रकार रामचन्द्रका छोड़ा हुआ बाण वायु वेगसे जाता है; उसी प्रकार रावण पालित लंका में मैं जाऊँगा । यदि लंकामें सीताको मैं न देख सकूँगा तो इसी वेगसे देवताओंके लोक में जाऊँगा । यदि वहां भी, परिश्रम करने पर भी, सीता न मिलेंगी तो राक्षसराज रावण को बांधकर लाऊंगा । जिस तरह होगा उस तरह कार्य सिद्ध करके सीताके साथ लौटूँगा ॥ ३७, ३८, ३९, ४० ॥ अथवा रावणके साथ लंकाको ही उखाड़ कर लाऊँगा । ऐसा कहकर वानर श्रेष्ठ हनुमान, अपने कष्टोंकी ओर ध्यान न देकर कुदे । उस समय उन्होंने अपनेको गरुड़के समान समझा ॥४१, ४२॥ वेगपूर्वक हनुमानके कूदनेसे उस पर्वतके वृक्ष अपनी शाखाओंके साथ उखड़कर गिर पड़े ॥४३॥ पुष्पित अनेक वृक्षोंको जिन पर-आनन्दोत्फुल्ल अनेक पक्षी बैठे थे-अपने वेगके साथ खींचते हुए हनुमान विमल आकाश में चले ॥ ४४ ॥ हनुमानके वेगसे उखड़ेहुए वृक्ष थोड़ी दूरतक उनके पीछे पीछे जाते थे, जिस प्रकार दूर जानेवाले बान्धवोंके साथ साथ बान्धव जाते हैं ॥ ४५ ॥ हनुमानके वेगसे उखड़े हुए शाल वृक्ष तथा दूसरे बड़े बड़े वृक्ष उनके पीछे पीछे चले, जिस प्रकार राजाके पीछे पीछे उनकी सेना चलती है ॥४६॥ पुष्पित अनेक वृक्षोंके होनेके कारण हनुमान पर्वतके समान अद्भुत दिखाई पड़ने लगे ॥४७॥ जो कुछ वजनी थे, वे वृक्ष वहीं समुद्रमें इन्द्रके भयसे पर्वतोंके

स नानाकुसुमैः कीर्णः कपिः साङ्कुरकोरकैः । शुशुभे मेघसंकाशः खद्योतैरिव पर्वतः ॥४९॥
विमुक्तास्तस्य वेगेन मुक्त्वा पुष्पाणि ते द्रुमाः । व्यवशीर्यन्त सलिले निवृत्ताः सुहृदो यथा ॥५०॥
लघुत्वेनोपपन्नं तद्विचित्रं सागरेऽपतत् । द्रुमाणां विविधं पुष्पं कपिवायुसमीरितम् ॥५१॥
पुष्पौघेण सुगन्धेन नानावर्णेन वानरः । बभौ मेघ इवोद्यन्वै विद्युद्गणविभूषितः ॥५२॥
तस्य वेगसमुद्भूतैः पुष्पैस्तोयमदृश्यत । ताराभिरिव रामाभिरुदिताभिरिवाम्बरम् ॥५३॥
तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ । पर्वताग्राद्विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्याविव पन्नगौ ॥५४॥
पिबन्निव बभौ चापि सोर्मिजालं महार्णवम् । पिपासुरिव चाकाशं ददृशे स महाकपिः ॥५५॥
तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमार्गानुसारिणः । नयने विप्रकाशेते पर्वतस्थाविवानलौ ॥५६॥
पिङ्गे पिङ्गाक्षमुख्यस्य बृहती परिमण्डले । चक्षुषी संप्रकाशेते चन्द्रसूर्याविव स्थितौ ॥५७॥
मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ । संध्यया समभिस्पृष्टं यथा स्यात्सूर्यमण्डलम् ॥५८॥
लाङ्गूलं च समाविद्धं प्लवमानस्य शोभते । अम्बरे वायुपुत्रस्य शक्रध्वज इवोच्छ्रितम् ॥५९॥
लाङ्गूलचक्रो हनुमाञ्छुक्लदंष्ट्रोऽनिलात्मजः । व्यरोचत महाप्राज्ञः परिवेषीव भास्करः ॥६०॥
स्फिग्देशेनातिताम्रेण रराज स महाकपिः । महता दारितेनेव गिरिर्गैरिकधातुना ॥६१॥
तस्य वानरसिंहस्य प्लवमानस्य सागरम् । कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव गर्जति ॥६२॥

समान वहाँ गये ॥४८॥ अनेक प्रकार के अंकुरों, कोढ़ियों और फूलोंसे भर जानेके कारण, मेघ के समान बिशाल हनुमान, जुगुनओंसे भरे पर्वतके समान मालूम पड़ने लगे ॥ ४६ ॥ हनुमानके वेगसे छूटे हुए वृक्ष अपने फूल गिराकर पानीमें डूब गये, कि मानों मित्र अपने बन्धुको भेज कर लौट रहे हों ॥ ५० ॥ हनुमान की वेग वायुसे उड़ाये हुए वृक्षोंके वे अनेक प्रकारके पुष्प हलके होनेके कारण अलग समुद्रमें गिरे ॥ ५१ ॥ (उस समय वह समुद्र ताराओंके समान मालूम पड़ता था) सुगन्धित अनेक रंगके पुष्पोंसे युक्त, हनुमान बिजुलियोंसे युक्त उठते हुए मेघके समान मालूम पड़े ॥ ५२ ॥ हनुमानके वेगसे फैले हुए पुष्पोंसे समुद्रका जल रमणीय ताराओंसे युक्त आकाशके समान मालूम पड़ा ॥ ५३ ॥ आकाश में फैली हुई दो भुजाएं पर्वतसे निकले, बड़े मुंहवाले दो सांपोंके समान मालूम पड़ती थीं ॥ ५४ ॥ उस समय महाकपि हनुमान ऐसे मालूम पड़े, मानों प्याससे होनेके कारण, लहरियोंके साथ समुद्र को पी रहे हों ॥५५॥ वायु मार्ग में चलनेवाले हनुमान की बिल्लीके समान चमकने वाली आखें, पर्वतपर जलनेवालीं दो आगोंके समान मालूम पड़ीं ॥ ५६ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमानकी गोली और भूरी आंखें, चन्द्र और सूर्यके समान मालूम होती थीं ॥ ५७ ॥ लाल नाकके कारण उनका मुँह लाल मालूम पड़ता था, जैसे संध्या होनेके कारण लाल सूर्य मण्डल ॥ ५८ ॥ ऊपर उठी हुई उनकी पूंछ, आकाशमें उठी हुई इन्द्र ध्वजाके समान मालूम पड़ती थी ॥ ५६ ॥ गोलाकार पुच्छ और सफेद दांतोंके कारण महाबुद्धिमान् वायु पुत्र हनुमान मण्डल युक्त सूर्यके समान मालूम पड़े ॥ ६० ॥ कमरके नीचे के भागके बहुत अधिक लाल होनेके कारण गैरिक धातुसे युक्त पर्वतके समान हनुमान मालूम पड़े ॥६१॥ वानरसिंह हनुमान जब समुद्र पार कर रहे थे तो उस समय उनके बगल से निकली हुई वायु

खे यथा निपतत्युल्का उत्तरान्ताद्विनिःसृता । दृश्यते सानुबन्धा च तथा स कपिकुञ्जरः ॥६३॥
पतत्पतङ्गसंकाशो व्यायतः शुशुभे कपिः । प्रवृद्ध इव मातङ्गः कक्ष्यया बध्यमानया ॥६४॥
उपरिष्टाच्छरीरेण च्छायया चावगाढया । सागरे मारुताविष्टा नौरिवासीत्तदा कपिः ॥६५॥
यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः । स तु तस्याङ्गवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते ॥६६॥
सागरस्योर्मिजालानामुरसा शैलवर्ष्मणा । अभिघ्नंस्तु महावेगः पुप्लुवे स महाकपिः ॥६७॥
कपिवातश्च बलवान्मेघवातश्च निर्गतः । सागरं भीमनिर्ह्रादं कम्पयामासतुर्भृशम् ॥६८॥
विकर्षन्नूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसि । पुप्लुवे कपिशार्दूलो विकिरन्निव रोदसी ॥६९॥
मेरुमन्दरसंकाशानुद्गतान्सुमहार्णवे । अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान्गणयन्निव ॥७०॥
तस्य वेगसमुद्घुष्टं जलं सजलदं तदा । अम्बरस्थं विबभ्राज शरदभ्रमिवाततम् ॥७१॥
तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा । वस्त्रापकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम् ॥७२॥
क्रममाणं समीक्ष्याथ भुजगाः सागरंगमाः । व्योम्नि तं कपिशार्दूलं सुपर्णमिव मेनिरे ॥७३॥
दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता । छाया वानरसिंहस्य जवे चारुतराभवत् ॥७४॥
श्वेताभ्रघनराजीव वायुपुत्रानुगामिनी । तस्य सा शुशुभे छाया पतिता लवणाम्भसि ॥७५॥

गर्जन करने लगी ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार आकाशमें ऊपरकी ओरसे निकली हुई पूछवाली उल्का दिखाई पड़ती है उसी प्रकार वानरश्रेष्ठ हनुमान दिखाई पड़े ॥ ६३ ॥ चलते हुए सूर्यके समान तेजस्वी और विशाल हनुमान रस्सीसे बंधे हुए बड़े हाथीके समान मालूम पड़े ॥ ६४ ॥ हनुमान का शरीर ऊपर था । उनकी छाया समुद्रजलमें पड़ती थी । अतएव वे उस समय वायु से भरी हुई नौका के समान मालूम हुए ॥ ६५ ॥ महाकपि हनुमान समुद्रमें जिस जिस ओर गये वहां उनके वेगके कारण लहरियाँ और फेन उठने लगे । जिससे मालूम होने लगा मानों समुद्रको अपस्मार रोग हो गया है ॥ ६६ ॥ पर्वतके समान ऊंची समुद्र लहरियों को अपने वेगसे आहत करते हुए हनुमान आगे चले ॥ ६७ ॥ कपिके वेगसे निकली हुई और मेघसे निकली हुई हवाओं ने भीमगर्जना करनेवाले समुद्रको कंपा दिया ॥ ६८ ॥ हनुमान अपने वेगसे समुद्र की बड़ी बड़ी लहरियोंको खींचते हुए चले । उस समय पृथिवी और आकाश कोसमुद्रमें डुबो रहे हैं, ऐसा मालूम पड़ा ॥ ६९ ॥ महावेगवान् हनुमान मेरु या मन्दरके समान विशाल, महासागरकी तरंगों को मानों गिनते हुए चले ॥ ७० ॥ हनुमानके वेगसे ऊपर मेघ मण्डल पर्य्यन्त उठा हुआ जल फैले हुए शरत्‌के मेघके समान मालूम पड़ा ॥ ७१ ॥ जलके उपर फैंके जानेके कारण, तिमि (एक प्रकार की मछली) मगर, मछलियाँ, कछुवे साफ दीख पड़ने लगे जिस प्रकार वस्त्र खींच लेने से शरीरधारियोंके अंग दिखाई देने लगते हैं ॥ ७२ ॥ आकाशमें हनुमानको जाते देखकर सर्पों ने उन्हें गरुड़ समझा ॥ ७३ ॥ दश योजन लम्बी और तीस योजन चौड़ी, वानर श्रेष्ठ हनुमान की छाया वेगके कारण बड़ी सुन्दर मालूम हुई ॥ ७४ ॥ लवण समुद्रमें पड़ी हुई छाया हनुमानके पीछे पीछे चली । वह श्वेतमेघके समान मालूम पड़ी । महा तेजस्वी, विशाल शरीर वे हनुमान अव-

शुशुभे स महातेजा महाकायो महाकपिः । वायुमार्गे निरालम्बे पक्षवानिव पर्वतः ॥७६॥
येनासौ याति बलवान्वेगेन कपिकुञ्जरः । तेन मार्गेण सहसा द्रोणीकृत इवार्णवः ॥७७॥
आपाते पक्षिसङ्घानां पक्षिराज इव व्रजन् । हनुमान्मेघजालानि प्रकर्षन्मारुतो यथा ॥७८॥
पाण्डुरारुणवर्णानि नीलमञ्जिष्ठकानि च । कपिनाकृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥७९॥
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः । प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च चन्द्रमा इव दृश्यते ॥८०॥
प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा प्लवगं त्वरितं तदा । ववृषुस्तत्र पुष्पाणि देवगन्धर्वदानवाः ॥८१॥
तताप नहि तं सूर्यः प्लवन्तं वानरेश्वरम् । सिषेवे च तदा वायू रामकार्यार्थसिद्धये ॥८२॥
ऋषयस्तुष्टुवुश्चैनं प्लवमानं विहायसा । जगुश्च देवगन्धर्वाः प्रशंसन्तो वनौकसम् ॥८३॥
नागाश्च तुष्टुवुर्यक्षा रक्षांसि विविधानि च । प्रेक्ष्य सर्वे कपिवरं सहसा विगतक्लमम् ॥८४॥
तस्मिन्प्लवगशार्दूले प्लवमाने हनूमति । इक्ष्वाकुकुलमानार्थी चिन्तयामास सागरः ॥८५॥
साहाय्यं वानरेन्द्रस्य यदि नाहं हनूमतः । करिष्यामि भविष्यामि सर्ववाच्यो विवक्षताम् ॥८६॥
अहमिक्ष्वाकुनाथेन सगरेण विवर्धितः । इक्ष्वाकुसचिवश्चायं तन्नार्हत्यवसादितुम् ॥८७॥
तथा मया विधातव्यं विश्रमेत यथा कपिः । शेषं च मयि विश्रान्तः सुखी सोऽतितरिष्यति ॥८८॥

लम्ब हीन वायु मार्ग में पक्षधारी पर्वतके समान मालूम पड़े ॥ ७६ ॥ बली हनुमान वेगपूर्वक जिसमार्ग से जाते थे वहां का समुद्र शीघ्र ही द्रोणी के समान हो जाता था । (छतोंसे जल निकलनेके लिए काष्ठके बने हुए नल को द्रोणी कहते हैं, अथवा नलके गिरे हुए जल को इकट्ठा रखने का चौबच्चा द्रोणी कहा जाता है) ॥ ७७ ॥ पक्षियोंके उड़नेके मार्गमें चलते हुए हनुमान गरुड़के समान मालूम होते थे। वे वायुके समान मेघोंको अपने साथ खींचे लिए जाते थे ॥ ७८ ॥ पीले, लाल नीले गहरे लाल आदि अनेक प्रकारके मेघ हनुमानके साथ जाते हुए बड़े सुन्दर मालूम हुए ॥ ७९ ॥ हनुमान कभी मेघोंमें छिप जाते और कभी बाहर निकलते । इस प्रकार वे उस चन्द्रमाके समान मालूम होते थे, जो मेघोंमें छिपजाता है और पुनः निकल आता है ॥ ८० ॥ हनुमान शीघ्रतापूर्वक जा रहे हैं यह देखकर देवता, गन्धर्व और दानवोंने पुष्प वृष्टि की ॥ ८१ ॥ रामके कार्य की सिद्धिके लिए आकाशमार्गसे जाते हुए हनुमान को सूर्यने नहीं तपाया, और वायुने उनकी सेवा की ॥ ८२ ॥ आकाशमार्गसे जाते हुए हनुमानकी स्तुति ऋषियोंने की और देवता तथा गन्धर्वोंने प्रशंसा करके इनका गुणगान किया ॥ ८३ ॥ हनुमान को इतने कठिन काम करने पर भी श्रमरहित देखकर नाग, यक्ष, राक्षस आदि इनकी स्तुति करनेलगे ॥ ८४ ॥ वानर श्रेष्ठ हनुमानको आकाशमार्गसे जाते देख इक्ष्वाकु कुलके प्रति सम्मान रखनेवाले समुद्रने इस प्रकार विचार किया ॥ ८५ ॥ वानरेन्द्र हनुमान की यदि मैं इस समय सहायता न करूं तो सब लोग मुझे भला बुरा कहेंगे ॥ ८६ ॥ इक्ष्वाकु-नाथ सगरने मुझे बढ़ाया है और यह इक्ष्वाकुवंशी रामचन्द्रका दूत है अतएव इसको कष्ट नहीं होना चाहिए ॥ ८७ ॥ मुझे ऐसा करना चाहिए जिससे यह वानर विश्राम कर ले। विश्राम करनेके अनन्तर यह अपना बाकी मार्ग सुखसे तै कर

इति कृत्वा मतिं साध्वीं समुद्रश्छन्नमम्भसि । हिरण्यनाभं मैनाकमुवाच गिरिसत्तमम् ॥८९॥
त्वमिहासुरसङ्घानां देवराज्ञा महात्मना । पातालनिलयानां हि परिघः संनिवेशितः ॥९०॥
त्वमेषां ज्ञातवीर्याणां पुनरेवोत्पतिष्यताम् । पातालस्याप्रमेयस्य द्वारमावृत्य तिष्ठसि ॥९१॥
तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव शक्तिस्ते शैल वर्धितुम् । तस्मात्संचोदयामि त्वामुत्तिष्ठ गिरिसत्तम ॥९२॥
स एष कपिशार्दूलस्त्वामुपर्येति वीर्यवान् । हनूमान्रामकार्यार्थी भीमकर्मा खमाप्लुतः ॥
श्रमं च प्लवगेन्द्रस्य समीक्ष्योत्थातुमर्हसि ॥९३॥
हिरण्यगर्भो मैनाको निशम्य लवणाम्भसः । उत्पपात जलात्तूर्णं महाद्रुमलतावृतः ॥९४॥
स सागरजलं भित्त्वा बभूवात्युच्छ्रितस्तदा । यथा जलधरं भित्त्वा दीप्तरश्मिर्दिवाकरः ॥९५॥
स महात्मा मुहूर्तेन पर्वतः सलिलावृतः । दर्शयामास शृङ्गाणि सागरेण नियोजितः ॥९६॥
शातकुम्भमयैः शृङ्गैः सकिंनरमहोरगैः । आदित्योदयसंकाशैरालिखद्भिरिवाम्बरम् ॥९७॥
तस्य जाम्बूनदैः शृङ्गैः पर्वतस्य समुत्थितः । आकाशं शस्त्रसंकाशमभवत्काञ्चनप्रभम् ॥९८॥
जातरूपमयैः शृङ्गैर्भ्राजमानैर्महाप्रभैः । आदित्यशतसंकाशः सोऽभवद्गिरिसत्तमः ॥९९॥

सकेगा ॥ ८८ ॥ ऐसा सुन्दर विचार करके जलमें डूबे हुए सुवर्णमय पर्वतश्रेष्ठ मैनाकसे समुद्र बोला-महात्मा देवराजने पातालवासी असुरों को न निकलने देनेके लिए तुमको यहां स्थापित किया है ॥ ९० ॥ बड़े पराक्रमी और पातालसे पुनः निकलनेकी इच्छा रखनेवाले इन राक्षसों-के न निकलने देनेके लिए तुम पातालके विशाल द्वारको रोक कर खड़े हो ॥ ९१ ॥ हे पर्वतश्रेष्ठ, तुम अगल बगल नीचे और ऊँचे बढ़नेमें समर्थ हो । अतएव मैं तुमसे कहता हूँ उठो ॥ ९२ ॥ ये पराक्रमी हनुमान तुम्हारे ऊपर आ रहे हैं । ये रामचन्द्रका कार्य सिद्ध करनेके लिए बहुत ही कठोर साहस करके आकाशमें उड़ रहे हैं । (इक्ष्वाकुकुलके दूत इनकी सहायता करो, क्योंकि इक्ष्वाकुवंशी मेरे पूज्य हैं और तुम्हारे तो अत्यन्त पूज्य हैं । तुम इस कार्यमें मेरी सहायता करो जिससे काम बिगड़ने न पावे । कर्तव्य काम न करनेसे सज्जनगण क्रोध करते हैं, इसलिए जल से ऊपर उठो और तुमपर ये वानर विश्राम करें; क्योंकि ये वानरश्रेष्ठ हमारे अतिथि हैं । तुम्हारे बड़े शृंग सोनेके हैं, वहां देवता और गन्धर्व रहते हैं) तुमपर विश्राम करके हनुमान अपना बाकी मार्ग तय करेंगे । (रामचन्द्रका दुख, सीताका निर्वासन और हनुमानकी थकावट देखकर तुम उठो) ॥ ९३ ॥ लवण समुद्र की बातें सुनकर सुवर्णमय मैनाक जलसे शीघ्र ही निकला । बड़े-बड़े वृक्ष और लताओंसे वह ढका हुआ था, वह समुद्रके जलसे बहुत ऊँचा उठ गया मानों मेघको भेदकर सूर्य निकला हो ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ जलमें छिपे हुए उस पर्वत-ने सागरके कहनेसे शीघ्र ही अपने शृंग प्रगट किये ॥ ९६ ॥ उसके सुवर्णमय शृंगोंपर किन्नर और बड़े सर्प निवास करते थे । उदयकालीन सूर्यके समान वे शृंग सुशोभित होते थे और अपनी ऊँचाईसे आकाशको छूते थे ॥ ९७ ॥ उस पर्वतके जलसे निकले हुए सुवर्णशृंगोंके कारण नीला आकाश सोनेके रंगका हो गया ॥ ९८ ॥ चमकीले और द्युति-मान् सोनेके शिखरोंके कारण वह पर्वत सैकड़ों सूर्यके समान शोभित होने लगा ॥ ९९ ॥

समुत्थितमसङ्गेन हनूमानग्रतः स्थितम् । मध्ये लवणतोयस्य विघ्नोऽयमिति निश्चितः ॥१००॥
स तमुच्छ्रितमत्यर्थं महावेगो महाकपिः । उरसा पातयामास जीमूतमिव मारुतः ॥१०१॥
स तदासादितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः । बुद्ध्वा तस्य हरेर्वेगं जहर्ष च ननाद च ॥१०२॥
तमाकाशगतं वीरमाकाशे समुपस्थितः । प्रीतो हृष्टमना वाक्यमब्रवीत्पर्वतः कपिम् ॥१०३॥
मानुषं धारयन्रूपमात्मनः शिखरे स्थितः । दुष्करं कृतवान्कर्म त्वमिदं वानरोत्तम ॥१०४॥
निपत्य मम शृङ्गेषु सुखं विश्रम्य गम्यताम् । राघवस्य कुले जातैरुदधिः परिवर्धितः ॥१०५॥
स त्वां रामहिते युक्तं प्रत्यर्चयति सागरः । कृते च प्रतिकर्तव्यमेष धर्मः सनातनः ॥१०६॥
सोऽयं तत्प्रतिकारार्थी त्वत्तः संमानमर्हति । त्वन्निमित्तमनेनाहं बहुमानात्प्रचोदितः ॥१०७॥
योजनानां शतं चापि कपिरेष खमाप्लुत । तव सानुषु विश्रान्तः शेषं प्रक्रमतामिति ॥१०८॥
तिष्ठ त्वं हरिशार्दूल मयि विश्रम्य गम्यताम् । तदिदं गन्धवत्स्वादु कन्दमूलफलं बहु ॥१०९॥
तदास्वाद्य हरिश्रेष्ठ विश्रान्तोऽथ गमिष्यसि । अस्माकमपि संबन्धः कपिमुख्य त्वयास्ति वै ॥
प्रख्यातस्त्रिषु लोकेषु महागुणपरिग्रहः ॥११०॥
वेगवन्तः प्लवन्तो ये प्लवगा मारुतात्मज । तेषां मुख्यतमं मन्ये त्वामहं कपिकुञ्जर ॥१११॥
अतिथिः किल पूजार्हः प्राकृतोऽपि विजानता । धर्मं जिज्ञासमानेन किं पुनर्यादृशो भवान् ॥११२॥

शीघ्रही जलसे निकल कर अपने आगे खड़े हुए उस पर्वतको देखकर हनुमानने समझा कि यह विघ्न उपस्थित हुआ ॥ १०० ॥ महावेगवान् हनुमानने बहुत ऊपर उठे हुए उस पर्वतको छातीसे दबाया, जिस प्रकार मेघोंको वायु ॥ १०१ ॥ कपिके प्राप्त होनेसे उस पर्वतश्रेष्ठने हनुमानका बल जानकर हर्ष प्रकट किया और गर्जन किया ॥ १०२ ॥ आकाशमें चलनेवाले हनुमानसे आकाशमें उठा हुआ वह श्रेष्ठ पर्वत प्रसन्नतापूर्वक तथा हर्षयुक्त होकर बोला ॥ १०३ ॥ वह पर्वत मनुष्यका रूप धरकर अपने शिखरपर बैठा और हनुमानसे बोला—हे वानरश्रेष्ठ ! तुमने यह बड़ा कठिन काम किया है ॥१०४॥ मेरे शिखरोंपर आकर थोड़ी देर विश्राम करके जाओ। रामचन्द्रके पूर्वपुरुषोंने समुद्रको उत्पन्न किया है ॥१०५॥ वही समुद्र रामकार्य में लगे हुए तुम्हारी पूजा कर रहा है, क्योंकि उपकारके बदले प्रत्युपकार करना यह सनातनधर्म है ॥१०६॥ वह उसी उपकारका बदला देना चाहता है, अतएव तुम्हें उसकी प्रार्थना स्वीकार करनी चाहिए । तुम्हारे ही लिए बड़े आदरसे उसने हमारे जिम्मे यह काम सौंपा है ॥ १०७ ॥ यह वानर सौ योजन तक आकाशमें कूद आया । तुम्हारे शिखरोंपर विश्रामकर अपना बाकी मार्ग तय करे ॥ १०८ ॥ हे वानरश्रेष्ठ आप ठहरें । मुझ पर विश्राम करके जाँय । सुगन्धित और सुस्वादु ये बहुतसे कन्द मूल फल आदि हैं ॥ १०९ ॥ इन्हें खाकर और विश्राम करके आप जाँय । हे कपिश्रेष्ठ, आपके साथ मेरा भी संबन्ध है; क्योंकि उत्तम गुणोंको ग्रहण करनेवाले आप त्रिलोकमें प्रसिद्ध हैं ॥ ११० ॥ हे मारुतात्मज, वेगपूर्वक कूदनेवाले जो वानर हैं, उन सबमें मैं तुम्हींको प्रधान समझता हूँ ॥ १११ ॥ धर्मात्मा और ज्ञानी मनुष्यके लिए साधारण अतिथि भी पूजने-योग्य है। फिर आपके समान अतिथिकी

त्वं हि देववरिष्ठस्य मारुतस्य महात्मनः । पुत्रस्तस्यैव वेगेन सदृशः कपिकुञ्जर ॥११३॥
पूजिते त्वयि धर्मज्ञे पूजां प्राप्नोति मारुतः । तस्मात्त्वं पूजनीयो मे शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥११४॥
पूर्वं कृतयुगे तात पर्वताः पक्षिणोऽभवन् । तेऽपि जग्मुर्दिशः सर्वा गरुडा इव वेगिनः ॥११५॥
ततस्तेषु प्रयातेषु देवसङ्घाः सहर्षिभिः । भूतानि च भयं जग्मुस्तेषां पतनशङ्कया ॥११६॥
ततः क्रुद्धः सहस्राक्षः पर्वतानां शतक्रतुः । पक्षांश्चिच्छेद वज्रेण ततः शतसहस्रशः ॥११७॥
स मामुपगतः क्रुद्धो वज्रमुद्यम्य देवराट् । ततोऽहं सहसा क्षिप्तः श्वसनेन महात्मना ॥११८॥
अस्मिँल्लवणतोये च प्रक्षिप्तः प्लवगोत्तम । गुप्तपक्षः समग्रश्च तव पित्राभिरक्षितः ॥११९॥
ततोऽहं मानयामि त्वां मान्योऽसि मम मारुते । त्वया ममैष संबन्धः कपिमुख्य महागुणः ॥१२०॥
अस्मिन्नेवंगते कार्ये सागरस्य ममैव च । प्रीतिं प्रीतमनाः कर्तुं त्वमर्हसि महामते ॥१२१॥
श्रमं मोक्षय पूजां च गृहाण हरिसत्तम । प्रीतिं च मम मान्यस्य प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात् ॥१२२॥
एवमुक्तः कपिश्रेष्ठस्तं नगोत्तममब्रवीत् । प्रीतोऽस्मि कृतमातिथ्यं मन्युरेषोऽपनीयताम् ॥१२३॥
त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते । प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा ॥१२४॥
इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालभ्य हरिपुंगवः । जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान्प्रहसन्निव ॥१२५॥
स पर्वतसमुद्राभ्यां बहुमानादवेक्षितः । पूजितश्चोपपन्नाभिराशीर्भिरभिनन्दितः ॥१२६॥

तो बात ही क्या ॥११२॥ हे वानरोत्तम, देवश्रेष्ठ महात्मा वायुके आप पुत्र हैं और उन्हींके समान आप वेगवान् भी हैं ॥११३॥ आपकी पूजा करनेसे वायुकी पूजा हो जाती है, इसलिए आप मेरे पूजनीय हैं, इसका कारण सुनिए ॥ ११४ ॥ भाई, पहले सत्ययुगमें पर्वत पक्षधारी होते थे। वे भी गरुड़के समान चारों दिशाओंमें भ्रमण करते थे ॥११५॥ पर्वतोंके उड़नेसे देवता, ऋषि, मनुष्य आदि उनके गिर आनेके भयसे भयभीत हो जाते थे ॥११६॥ अनन्तर क्रोध करके देवराज इन्द्रने सैकड़ों हजारों पर्वतोंके पंख अपने वज्रसे काट डाले ॥११७॥ क्रोध करके वज्र लिए हुए इन्द्र मेरे पास भी आए। उस समय महात्मा वायुने शीघ्र ही मुझको उठा फेंका ॥ ११८ ॥ हे वानरश्रेष्ठ, इसी लवण समुद्रमें तुम्हारे पिताने हमें फेंका, जिससे मेरे पंख बच गए। इस प्रकार तुम्हारे पिताने हमारी रक्षा की ॥ ११९ ॥ इसी लिए मैं तुम्हारा सन्मान कर रहा हूँ, क्योंकि वायुपुत्र, तुम मेरे सम्माननीय हो। हे गुणवान् कपिश्रेष्ठ, आपके साथ मेरा यही सम्बन्ध है ॥ १२० ॥ आज इस संयोगके जुटनेपर प्रसन्नतापूर्वक आप मुझे और समुद्रको प्रसन्न करनेके लिये कृपा कीजिए ॥ १२१ ॥ थकावट दूर कीजिए और पूजा भी ग्रहण कीजिए, मेरा प्रेम स्वीकार कीजिए। क्योंकि आपको देखनेसे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ ॥ १२२ ॥ पर्वतके ऐसा कहनेपर हनुमान उससे बोले— मैं बहुत प्रसन्न हूँ। आपने अतिथि-सत्कार किया। मेरे न ठहरनेके कारण आप कुछ दुख न करें ॥ १२३ ॥ मुझे कामकी बड़ी जल्दी है, दिन बीत रहा है। मैंने रास्तेमें न ठहरनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ १२४ ॥ ऐसा कहके और हाथसे पर्वतको छूकर बली हनुमान हँसते हुए आकाशमें घुसके चले ॥ १२५ ॥ पर्वत और समुद्र द्वारा सम्मानपूर्वक देखेगए, पूजित और उचित आशीर्वादोंसे

अथोर्ध्वं दूरमाप्लुत्य हित्वा शैलमहार्णवौ । पितुः पन्थानमासाद्य जगाम विमलेऽम्बरे ॥१२७॥
भूयश्चोर्ध्वं गतिं प्राप्य गिरिं तमवलोकयन् । वायुसूनुर्निरालम्बो जगाम कपिकुञ्जरः ॥१२८॥
तद्द्वितीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् । प्रशशंसुः सुराः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥१२९॥
देवताश्चाभवन्हृष्टास्तत्रस्थास्तस्य कर्मणा । काञ्चनस्य सुनाभस्य सहस्राक्षश्च वासवः ॥१३०॥
उवाच वचनं धीमान्परितोषात्सगद्गदम् । सुनाभं पर्वतश्रेष्ठं स्वयमेव शचीपतिः ॥१३१॥
हिरण्यनाभ शैलेन्द्र परितुष्टोऽस्मि ते भृशम् । अभयं ते प्रयच्छामि गच्छ सौम्य यथासुखम् ॥१३२॥
साह्यं कृतं ते सुमहद्विक्रान्तस्य हनूमतः । क्रमतो योजनशतं निर्भयस्य भये सति ॥१३३॥
रामस्यैष हितायैव याति दाशरथेः कपिः । सत्क्रियां कुर्वता शक्त्या तोषितोऽस्मि दृढं त्वया॥१३४॥
स तत्प्रहर्षमलभद्विपुलं पर्वतोत्तमः । देवतानां पतिं दृष्ट्वा परितुष्टं शतक्रतुम् ॥१३५॥
स वै दत्तवरः शैलो बभूवावस्थितस्तदा । हनूमांश्च मुहूर्तेन व्यतिचक्राम सागरम् ॥१३६॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । अब्रुवन्सूर्यसंकाशां सुरसां नागमातरम् ॥१३७॥
अयं वातात्मजः श्रीमान्प्लवते सागरोपरि । हनूमान्नाम तस्य त्वं मुहूर्तं विघ्नमाचर ॥१३८॥
राक्षसं रूपमास्थाय सुघोरं पर्वतोपमम् । दंष्ट्राकरालं पिङ्गाक्षं वक्त्रं कृत्वा नभःस्पृशम् ॥१३९॥
बलमिच्छामहे ज्ञातुं भूयश्चास्य पराक्रमम् । त्वां विजेष्यत्युपायेन विषादं वा गमिष्यति ॥१४०॥

अभिनन्दित होकर बहुत दूर ऊँचे वायु मार्गमें हनुमान चलने लगे । पर्वत और समुद्रको उन्होंने दूर छोड़ दिया ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ और भी ऊँचे जाकर उस पर्वतको देखते हुए वायुपुत्र कपिश्रेष्ठ हनुमान बिना अवलम्बके चलने लगे ॥ १२८ ॥ हनुमानका यह दूसरा दुष्कर काम देखकर देवता, सिद्ध और ऋषि सभी उनकी प्रशंसा करने लगे ॥१२९॥ सुवर्णमय उस मैनाक पर्वतका यह कार्य देखकर देवराज इन्द्र तथा अन्य देवता बहुत प्रसन्न हुए। प्रसन्नतासे गद्गद होकर बुद्धिमान् इन्द्र मैनाक पर्वतसे बोले, ॥ १३०, १३१ ॥ हे सुवर्णमय मैनाक, मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । मैं तुम्हें अभय देता हूँ । तुम जहां चाहो जाओ ॥ १३२ ॥ निर्भय वानर समूहको सुग्रीवसे भय उत्पन्न होनेके कारण हनुमानने यह सौ योजनकी यात्रा की है । तुमने उनके विश्राममें सहायता पहुँचाकर बहुत अच्छा काम किया है इसलिए मैं तुमपर प्रसन्न हूँ ॥ १३३ ॥ यह वानर दशरथपुत्र रामचन्द्रके कल्याणके लिए ही जा रहा है । अपनी शक्तिके अनुसार इसका सत्कार करके तुमने मुझे खूब प्रसन्न किया है ॥ १३४ ॥ देवराज इन्द्रको अत्यन्त प्रसन्न देखकर वह पर्वतश्रेष्ठ बहुत ही प्रसन्न हुआ ॥ १३५ ॥ इस प्रकार वर पाकर वह पर्वत जलके भीतर चला गया और हनुमान भी शीघ्रही समुद्रको लांघने लगे ॥१३६॥ अनन्तर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और ऋषियोंने सूर्यके समान तेजस्विनी नागमाता सुरसासे इस प्रकार कहा ॥ १३७ ॥ ये वायुपुत्र बुद्धिमान् हनुमान समुद्रको पार कर रहे हैं, तुम थोड़ी देर इनके मार्गमें विघ्न उपस्थित करो ॥१३८॥ राक्षसका भयानक और पर्वतके समान विशाल रूप बनाओ। बड़े बड़े दांत, पीली पीली आँखें, आकाश छूनेवाला मुँह बनाओ, ॥१३९॥ हम लोग हनुमानका बल और पराक्रम पुनः जानना चाहते हैं । हम लोग यह जानना चाहते हैं कि वह किसी उपायके द्वारा तुमको जीतता है या किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है ॥१४०॥

एवमुक्ता तु सा देवी दैवतैरभिसत्कृता । समुद्रमध्ये सुरसा बिभ्रती राक्षसं वपुः ॥१४१॥
विकृतं च विरूपं च सर्वस्य च भयावहम् । प्लवमानं हनूमन्तमावृत्येदमुवाच ह ॥१४२॥
मम भक्ष्यः प्रदिष्टस्त्वमीश्वरैर्वानरर्षभ । अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम् ॥१४३॥
वर एष पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्वरा । व्यादाय वक्त्रं विपुलं स्थिता सा मारुतेः पुरः ॥१४४॥
एवमुक्तः सुरसया प्रहृष्टवदनोऽब्रवीत् । रामो दाशरथिर्नाम प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया ॥१४५॥
अस्य कार्यविषक्तस्य बद्धवैरस्य राक्षसैः । तस्य सीता हृता भार्या रावणेन यशस्विनी ॥१४६॥
तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् । कर्तुमर्हसि रामस्य साह्यं विषयवासिनी ॥१४७॥
अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम् । आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिशृणोमि ते ॥१४८॥
एवमुक्ता हनुमता सुरसा कामरूपिणी । अब्रवीन्नातिवर्तेन्मां कश्चिदेष वरो मम ॥१४९॥
तं प्रयान्तं समुद्वीक्ष्य सुरसा वाक्यमब्रवीत् । बलं जिज्ञासमाना सा नागमाता हनूमतः ॥१५०॥
निविश्य वदनं मेऽद्य गन्तव्यं वानरोत्तम । वर एष पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्वरा ॥१५१॥
व्यादाय विपुलं वक्त्रं स्थिता सा मारुतेः पुरः । एवमुक्तः सुरसया क्रुद्धो वानरपुंगवः ॥१५२॥
अब्रवीत्कुरु वै वक्त्रं येन मां विषहिष्यसि । इत्युक्त्वा सुरसां क्रुद्धो दशयोजनमायताम् ॥१५३॥

देवताओंके द्वारा सत्कारपूर्वक ऐसे कही गई सुरसा राक्षस-रूप धारण करके समुद्रके बीच खड़ी हुई ॥ १४१ ॥ उसका रूप बड़ा ही विकृत था, जिसे देख सबको भय होता था । वह पार जाते हुए हनुमानको रोक कर बोली, ॥ १४२ ॥ देवताओंने तुम्हें मेरा भक्ष्य नियुक्त किया है । मैं तुमको खाऊँगी । तुम मेरे इस मुँहमें घुसो ॥ १४३ ॥ ब्रह्माने मुझे पहले ही यह वर दे रखा है । ऐसा कहकर शीघ्रही अपना बड़ा मुँह फैलाकर हनुमानके सम्मुख खड़ी होगई ॥ १४४ ॥ सुरसाके ऐसा कहनेपर हनुमान प्रसन्न होकर बोले-दसरथके पुत्र रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण और स्त्री सीताके साथ दण्डक वनमें आए हैं ॥१४५॥ रामचन्द्र दूसरे कार्यमें लगे थे । उनसे वैर रखनेवाले राक्षसोंने उनकी यशस्विनी स्त्री सीता हरली ॥१४६॥ मैं रामकी आज्ञासे उन्हीं सीताके पास दूत होकर जा रहा हूँ । तुम रामचन्द्रके राज्यमें रहनेवाली हो, अतएव इस काममें मेरी सहायता करो ॥ १४७ ॥ अथवा सीता और पुण्यात्मा रामको देखकर मैं तुम्हारे मुखमें आ जाऊँगा । मैं तुमसे यह सच्ची प्रतिज्ञा करता हूं ॥ १४८ ॥ हनुमानके ऐसा कहनेपर स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाली सुरसा बोली-मुझे डांककर कोई नहीं जा सकता, ऐसा मुझे वर है ॥१४९॥ हनुमानको जाते देखकर उनके बलका थाह लगानेकी इच्छा रखनेवाली नागमाता सुरसा बोली, ॥ १५० ॥ वानरश्रेष्ठ मेरे मुँहमें घुसकर तुम जाना चाहो तो जाओ; क्योंकि ब्रह्माने पहले मुझे ऐसा ही वर दिया है । ऐसा कहकर और अपना विशाल मुँह फैलाकर हनुमानके आगे वह खड़ी होगई । सुरसाके ऐसा कहनेपर क्रोध करके हनुमान बोले, ॥ १५१, १५२ ॥ अपना मुँह फैलाओ, जिससे तुम मुझे निगलोगी । ऐसा कहकर क्रोधकरके हनुमानने दस योजनका अपना शरीर बनाया, (क्योंकि सुरसाने दस योजन लम्बा मुँह फैलाया था) ।

दशयोजनविस्तारो हनूमानभवत्तदा । चकार सुरसाप्यास्यं विंशद्योजनमायतम् ॥१५४॥
तद्दृष्ट्वा व्यादितं त्वास्यं वायुपुत्रः स बुद्धिमान्। दीर्घजिह्वं सुरसया सुभीमं नरकोपमम् ॥१५५॥
स संक्षिप्यात्मनः कायं जीमूत इव मारुतिः । तस्मिन्मुहूर्ते हनुमान्बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः ॥१५६॥
सोऽभिपद्याथ तद्वक्त्रं निष्पत्य च महाबलः । अन्तरिक्षे स्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥१५७॥
प्रविष्टोऽस्मि हि ते वक्त्रं दाक्षायणि नमोऽस्तु ते । गमिष्ये यत्र वैदेही सत्यश्चासीद्वरस्तव ॥१५८॥
तं दृष्ट्वा वदनान्मुक्तं चन्द्रं राहुमुखादिव । अब्रवीत्सुरसा देवी स्वेन रूपेण वानरम् ॥१५९॥
अर्थसिद्ध्यै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम् । समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ॥१६०॥
तत्तृतीयं हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम् । साधु साध्विति भूतानि प्रशशंसुस्तदा हरिम् ॥१६१॥
स सागरमनाधृष्यमभ्येत्य वरुणालयम् । जगामाकाशमाविश्य वेगेन गरुडोपमः ॥१६२॥
सेविते वारिधाराभिः पतगैश्च निषेविते । चरिते कैशिकाचार्यैरैरावतनिषेविते ॥१६३॥
सिंहकुञ्जरशार्दूलपतगोरगवाहनैः । विमानैः संपतद्भिश्च विमलैः समलंकृते ॥१६४॥
वज्राशनिसमस्पर्शैः पावकैरिवशोभिते । कृतपुण्यैर्महाभागैः स्वर्गजिद्भिरधिष्ठिते ॥१६५॥
वहता हव्यमत्यन्तं सेविते चित्रभानुना । ग्रहनक्षत्रचन्द्रार्कतारागणविभूषिते ॥१६६॥
महर्षिगणगन्धर्वनागयक्षसमाकुले । विविक्ते विमले विश्वे विश्वावसुनिषेविते ॥१६७॥

हनुमानको देखकर सुरसाने बीस योजन अपना मुँह फैलाया ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ बुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमानने भयानक, लम्बी जीभवाला, फैला हुआ, नरकके समान सुरसाका मुंह देखकर अपने शरीरको छोटा बना लिया। मेघके समान उसीक्षण हनुमान अंगूठेके बराबर हो गए॥ १५५ ॥ १५६ ॥ सुरसाके मुंहमें जाकर और बाहर निकलकर महाबली हनुमान आकाशमें ठहरकर सुरसासे इस प्रकार बोले ॥ १५७ ॥ हे दाक्षायिणि, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। मैंने तुम्हारे मुंहमें प्रवेश किया। मैं सीताके पास जाता हूँ। तुम्हारा वर भी सत्य हुआ ॥ १५८ ॥ राहुके मुखसे निकले चन्द्रमाके समान, अपने मुँहसे उस वानरको निकले देखकर देवी सुरसा अपना असली रूप धरकर बोली ॥ १५९ ॥ हे वानरश्रेष्ठ सौम्य! कार्यसिद्धिके लिए सुखपूर्वक जाओ और सीताको रामचन्द्रसे मिलाओ ॥ १६० ॥ हनुमानका यह तीसरा दुष्कर काम देखकर सब प्राणी साधु-साधु कहके उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १६१ ॥ अलंघ्य समुद्रके पास आकर गरुड़के समान वेगवान् हनुमान पुनः आकाशमें घुसकर चलने लगे॥१६२॥ उस मार्गमें जलधारा बहती है। पक्षिगणका वहां निवास है। विद्याधर वहां रहते हैं और इन्द्रका हाथी ऐरावत भी रहता है॥१६३॥ सिंह, हाथी, बाघ, पक्षी, सर्प आदि वाहनवाले सुन्दर विमानोंसे वह स्थान अलंकृत है॥१६४॥ बज्र-के समान अग्नि वहां प्रज्वलित होती रहती है। अपने बलसे स्वर्ग जीतनेवाले पुण्यात्मा महाभाग वहां निवास करते रहते हैं ॥ १६५ ॥ हविष्य पहुंचानेवाले अग्निका वहां निवास है। ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और ताराओंसे वह स्थान विभूषित है ॥ १६६ ॥ महर्षि, गन्धर्व, नाग, यक्ष आदि-की वहां भीड़ रहती है। उस पवित्र और विमल स्थानमें विस्वावसु नामक गन्धर्वराज निवास

देवराजगजाक्रान्ते चन्द्रसूर्यपथे शिवे । विताने जीवलोकस्य विमले ब्रह्मनिर्मिते ॥१६८॥
बहुशः सेविते वीरैर्विद्याधरगणैर्वृते । जगाम वायुमार्गे च गरुत्मानिव मारुतिः ॥१६९॥
हनुमान्मेघजालानि प्राकर्षन्मारुतो यथा । कालागुरुसवर्णानि रक्तपीतसितानि च ॥१७०॥
कपिना कृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे । प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ॥१७१॥
प्रावृषीन्दुरिवाभाति निष्पतन्प्रविशंस्तथा । प्रदृश्यमानः सर्वत्र हनूमान्मारुतात्मजः ॥१७२॥
भेजेऽम्बरं निरालम्बं पक्षयुक्त इवाद्रिराट् । प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा सिंहिका नाम राक्षसी ॥१७३॥
मनसा चिन्तयामास प्रवृद्धा कामरूपिणी । अद्य दीर्घस्य कालस्य भविष्याम्यहमाशिता ॥१७४॥
इदं मम महासत्त्वं चिरस्य वशमागतम् । इति संचिन्त्य मनसा छायामस्य समाक्षिपत् ॥१७५॥
छायायां गृह्यमाणायां चिन्तयामास वानरः । समाक्षिप्तोऽस्मि सहसा पङ्गूकृतपराक्रमः ॥१७६॥
प्रतिलोमेन वातेन महानौरिव सागरे । तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव वीक्षमाणस्तदा कपिः ॥१७७॥
ददर्श स महासत्त्वमुत्थितं लवणाम्भसि । तद्दृष्ट्वा चिन्तयामास मारुतिर्विकृताननाम् ॥१७८॥
कपिराज्ञा यथाख्यातं सत्त्वमद्भुतदर्शनम् । छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः ॥१७९॥
स तां बुद्ध्वार्थतत्त्वेन सिंहिकां मतिमान्कपिः । व्यवर्धत महाकायः प्रावृषीव बलाहकः ॥१८०॥
तस्य सा कायमुद्वीक्ष्य वर्धमानं महाकपेः । वक्त्रं प्रसारयामास पातालाम्बरसंनिभम् ॥१८१॥

करते हैं ॥ १६७ ॥ इन्द्रका हाथी वहीं घूमा करता है, चन्द्रमा और सूर्यका वही मार्ग है । ब्रह्माने संसारका उसे चंदोवा बनाया है ॥ १६८ ॥ वहां अनेक वीर तथा विद्याधर रहते हैं । उस वायुमार्गमें हनुमान गरुड़के समान चले ॥ १६९ ॥ काले, लाल, पीले और सफेद मेघोंको वायुके समान खींचते हुए हनुमान चले ॥ १७० ॥ हनुमान द्वारा खींचे गए वे मेघ बड़े सुन्दर मालूम होते थे । हनुमान कभी मेघोंमें छिप जाते थे और कभी उनसे बाहर निकल आते थे ॥ १७१ ॥ निकलते और प्रविष्ट होते हनुमान वर्षाकालीन चन्द्रमाके समान मालूम होते थे ॥ १७२ ॥ सबको दीख पड़नेवाले हनुमान आलम्बहीन आकाशमें पक्षधारी पर्वतके समान गए । उनको जाते देखकर सिंहिका नामकी राक्षसीने अपने मनमें विचार किया । वह बड़ी बलवती और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली थी । उसने सोचा कि आज मेरा बहुत दिनों केलिए पेट भरजायगा ॥१७३॥ ॥ १७४ ॥ यह बहुत बड़ा प्राणी बहुत दिनोंपर आज मेरे हाथ आया है । ऐसा मनमें सोचकर उसने हनुमानकी छाया पकड़ी ॥ १७५ ॥ छायाके पकड़े जानेपर हनुमानने सोचा सहसा मुझे किसीने पकड़ लिया । मेरा पराक्रम किसी काम नहीं आता । प्रतिकूल वायुसे समुद्रमें नौकाकी जो दशा होती है, वही दशा मेरी हो रही है । हनुमान चारों ओर तथा ऊपर नीचे देखने लगे ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ हनुमानने समुद्रमें एक बहुत बड़े प्राणीको जलके ऊपर देखा । उस विकृत मुखवाली स्त्रीको देखकर वे विचार करने लगे ॥१७८॥ कपिराज सुग्रीवने जैसा कहा था, अवश्य ही वह अद्भुत प्राणी छायाग्राही है । यह बड़ा बली है, इसमें सन्देह नहीं ॥१७९॥ बुद्धिमान् हनुमानने उसके कार्योंसे ठीक ठीक उसे जानकर अपने शरीरको बढ़ाया, जिस प्रकार मेघ वर्षाकालमें बढ़ता है ॥ १८० ॥ हनुमानका बढ़ा हुआ वह शरीर देखकर उस राक्षसीने पातालसे आकाशतक अपना मुँह

घनराजीव गर्जन्ती वानरं समभिद्रवत् । स ददर्श ततस्तस्या विकृतं सुमहन्मुखम् ॥१८२॥
कायमात्रं च मेधावी मर्माणि च महाकपिः । स तस्या विकृते वक्त्रे वज्रसंहननः कपिः ॥१८३॥
संक्षिप्य मुहुरात्मानं निपपात महाकपिः । आस्ये तस्या निमज्जन्तं ददृशुः सिद्धचारणाः ॥१८४॥
ग्रस्यमानं यथा चन्द्रं पूर्णं पर्वणि राहुणा । ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः ॥१८५॥
उत्पपाताथ वेगेन मनःसंपातविक्रमः । तां तु दिष्ट्या च धृत्या च दाक्षिण्येन निपात्य सः ॥१८६॥
कपिप्रवीरो वेगेन ववृधे पुनरात्मवान् । हृतहृत्सा हनुमता पपात विधुराम्भसि ॥
स्वयंभुवैव हनुमान्सृष्टस्तस्या निपातने ॥१८७॥
तां हतां वानरेणाशु पतितां वीक्ष्य सिंहिकाम् । भूतान्याकाशचारीणि तमूचुः प्लवगोत्तमम् ॥१८८॥
भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्त्वं त्वया हतम् । साधयार्थमभिप्रेतमरिष्टं प्लवतां वर ॥१८९॥
यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव । धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ॥१९०॥
स तैः संपूजितः पूज्यः प्रतिपन्नप्रयोजनः । जगामाकाशमाविश्य पन्नगाशनवत्कपिः ॥१९१॥
प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः परिलोकयन् । योजनानां शतस्यान्ते वनराजीं ददर्श सः ॥१९२॥
ददर्श च पतन्नेव विविधद्रुमभूषितम् । द्वीपं शाखामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च ॥१९३॥
सागरं सागरानूपान्सागरानूपजान्द्रुमान् । सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयन् ॥१९४॥

फैलाया ॥ १८१ ॥ मेघोंके समान गरजती हुई वह वानरकी ओर दौड़ी । हनुमानने उसका बहुत बड़ा और भद्दा मुख देखा ॥१८२॥ बुद्धिमान् हनुमानने उसके सब शरीरको तथा उसके मर्मस्थानोंको खूब सावधानीसे देखा । अनन्तर उसके बीभत्स मुखमें वज्रके समान गठीले हनुमान अपनेको पुनः छोटा बनाकर गिरे । उसके मुंहमें गिरते हनुमानको सिद्ध और चारणोंने देखा, जिसप्रकार पूर्ण चन्द्रको अमावास्याके दिन राहु ग्रसता है । हनुमानने अपने तीखे नखोंसे उसके मर्मस्थान फाड़डाले । पुनः वे मनके समान वेगसे ऊपर उठे । देवताओंके भाग्यसे, अपनी चतुराई और धैर्यसे उसको गिराकर संयमी हनुमान पुनः वेगसे चले । वह राक्षसी हनुमानके द्वारा ताड़ित होनेसे दुखी होकर जलमें गिर पड़ी । ब्रह्माने हनुमानके द्वारा उसका वध होना निश्चित किया था ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ हनुमानके द्वारा उस सिंहिका नाम राक्षसीका गिराया जाना देखकर आकाशमें रहनेवाले प्राणी हनुमानसे बोले ॥ १८८ ॥ तुमने बड़ा भयंकर कर्म किया । बहुत बड़े प्राणीका तुमने वध किया । जाओ, अपना मनोरथ सिद्ध करो । हे वानरश्रेष्ठ, तुम्हारा कल्याण हो ॥ १८९ ॥ हे वानरेन्द्र, धैर्य, दृष्टि (सूझ), बुद्धि और कुशलता ये चार जिसके पास होते हैं वह किसी काममें असफल नहीं होता ॥ १९० ॥ उन प्राणियोंके द्वारा पूजित होकर तथा उनसे अपने कार्यसिद्धिका आशीर्वाद पाकर हनुमान आकाशमार्गसे गरुड़के समान चले ॥ १९१ ॥ समुद्रके उसपारके करीब-करीब पहुंचकर हनुमानने देखा तो उन्हें सौ योजनके आगे वन दिखाई पड़ा ॥ १९२ ॥ चलते-चलते हनुमानने अनेक वृक्षोंसे युक्त द्वीप देखा । मलयचन्दन-युक्त बाग, समुद्रका तीर, समुद्रतीरके स्थान, समुद्रतीरपर

स महामेघसंकाशं समीक्ष्यात्मानमात्मवान् । निरुन्धन्तमिवाकाशं चकार मतिमान्मतिम् ॥१९५॥
कायवृद्धिं प्रवेगं च मम दृष्ट्वैव राक्षसाः । मयि कौतूहलं कुर्युरिति मेने महामतिः ॥१९६॥
ततः शरीरं संक्षिप्य तन्महीधरसंनिभम् । पुनः प्रकृतिमापेदे वीतमोह इवात्मवान् ॥१९७॥
तद्रूपमतिसंक्षिप्य हनूमान्प्रकृतौ स्थितः । त्रीन्क्रमानिव विक्रम्य बलिवीर्यहरो हरिः ॥१९८॥

स चारुनानाविधरूपधारी परं समासाद्य समुद्रतीरम् ।
परैरशक्यं प्रतिपन्नरूपः समीक्षितात्मा समवेक्षितार्थः ॥१९९॥
ततः स लम्बस्य गिरेः समृद्धे विचित्रकूटे निपपात कूटे ।
सकेतकोद्दालकनारिकेले महाभ्रकूटप्रतिमो महात्मा ॥२००॥
ततस्तु संप्राप्य समुद्रतीरं समीक्ष्य लङ्कां गिरिवर्यमूर्ध्नि ।
कपिस्तु तस्मिन्निपपात पर्वते विधूय रूपं व्यथयन्मृगद्विजान् ॥२०१॥
ससागरं दानवपन्नगायुतं बलेन विक्रम्य महोर्मिमालिनम् ।
निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा ददर्श लङ्काममरावतीमिव ॥२०२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

उत्पन्न होनेवाले वृक्ष, समुद्रमें मिलनेवाली नदियोंका मुंहाना देखा । संयमी हनुमानने अपना विशाल शरीर देखा, जो आकाश तक फैला था । उसे देखकर उन्होंने सोचा ॥१९३॥१९४॥१९५॥ उन्होंने निश्चय किया कि मेरा यह विशाल शरीर और वेग देखकर राक्षस विस्मित होंगे ॥१९६॥ अनन्तर उन्होंने पर्वतके समान अपने शरीरको छोटा बनाया । मोहके नष्ट होनेपर ज्ञानीके समान हनुमान पुनः अपने स्वरूपमें आए ॥ १९७ ॥ अपना रूप छोटा करके हनुमान पुनः उसी प्रकार अपने स्वरूपमें आए जिस प्रकार बलिको पराजित करनेवाले विष्णुने तीन पैर चलकर अपना स्वरूप धारण किया था ॥ १९८ ॥ सुन्दर तथा अनेक प्रकारके रूप धारण करनेवाले, सीताको ढूंढनेका उपाय जाननेवाले तथा अपनी कार्यसिद्धिमें पूरा विश्वास रखनेवाले हनुमान, समुद्रके उस पार पहुंचकर, जहाँ दूसरे नहीं जा सकते वहां पहुंचकर, फल-पुष्प-युक्त लम्बनामक पर्वतके शिखरपर उतरे । उस पर्वतपर केतक, उद्दालक, नारिकेल आदि वृक्ष थे । उसपर बड़े मेघके समान महात्मा हनुमान उतरे ॥ १९९ ॥ २०० ॥ समुद्र तीरपर पहुंचकर तथा पर्वतशिखरपर बसी हुई लंकाको देखकर हनुमान पशु पक्षियोंको भयभीत करतेहुए, अपना असली रूप धारण करके उतरे ॥ २०१ ॥ दानवों और सर्पोंसे युक्त बड़ी लहरियोंवाले समुद्रको बलपूर्वक पार करके हनुमानने समुद्रके तीरपर बसी हुई लंका नगरी देखी, जो अमरावतीके समान थी ॥ २०२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका पहला सर्ग समाप्त ॥ १ ॥

द्वितीय सर्गः २

स सागरमनाधृष्यमतिक्रम्य महाबलः । त्रिकूटस्य तटे लङ्कां स्थितः स्वस्थो ददर्श ह ॥ १ ॥
ततः पादपमुक्तेन पुष्पवर्षेण वीर्यवान् । अभिवृष्टस्ततस्तत्र बभौ पुष्पमयो हरिः ॥ २ ॥
योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमः । अनिःश्वसन्कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ॥ ३ ॥
शतान्यहं योजनानां क्रमेयं सुबहून्यपि । किं पुनः सागरस्यान्तं संख्यातं शतयोजनम् ॥ ४ ॥
स तु वीर्यवतां श्रेष्ठः प्लवतामपि चोत्तमः । जगाम वेगवाँल्लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥ ५ ॥
शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानि च । मधुमन्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च ॥ ६ ॥
शैलांश्च तरुसंछन्नान्वनराजीश्च पुष्पिताः । अभिचक्राम तेजस्वी हनूमान्प्लवगर्षभः ॥ ७ ॥
स तस्मिन्नचले तिष्ठन्वनान्युपवनानि च । स नगाग्रे स्थितां लङ्कां ददर्श पवनात्मजः ॥ ८ ॥
सरलान्कर्णिकारांश्च खर्जूरांश्च सुपुष्पितान् । प्रियालान्मुचुलिन्दांश्च कुटजान्केतकानपि ॥ ९ ॥
प्रियङ्गून्गन्धपूर्णांश्च नीपान्सप्तच्छदांस्तथा । असनान्कोविदारांश्च करवीरांश्च पुष्पितान् ॥१०॥
पुष्पभारानिबद्धांश्च तथा मुकुलितानपि । पादपान्विहगाकीर्णान्पवनाधूतमस्तकान् ॥११॥
हंसकारण्डवाकीर्णा वापीः पद्मोत्पलावृताः ।आक्रीडान्विविधान्रम्यान्विविधांश्च जलाशयान् ॥१२॥
संततान्विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुफलपुष्पितैः । उद्यानानि च रम्याणि ददर्श कपिकुञ्जरः ॥१३॥

महाबली हनुमानने औरोंके द्वारा पार करनेके अयोग्य समुद्रको पार करके त्रिकूट पर्वतपर बैठकर और सावधान होकर लंका नगरी देखी ॥ १ ॥ वहां वृक्षोंसे बरसे पुष्पोंसे बली हनुमान भर गए, जिससे वे पुष्पमयके समान मालूम होनेलगे ॥ २ ॥ श्रेष्ठ पराक्रमी हनुमान सौ योजन लांघकर भी नहीं थके । उन्होंने थकावटकी सांस भी न ली ॥ ३ ॥ हनुमानने अपने मनमें सोचा कि कई सौ योजन मैं कूदकर आ सकता हूँ फिर गिने हुए सौ योजनोंके इस समुद्र का पार आना मेरेलिए कौनसी बात है ॥ ४ ॥ बलियोंमें श्रेष्ठ और कूदकर चलनेवालोंमें श्रेष्ठ हनुमान वेगपूर्वक लंकाकी ओर चले ॥ ५ ॥ वे रास्तेमें कोमल घासोंसे भरे हुए अतएव नीले वनको देखते हुए चले । सुगन्धित और मधुपूर्ण उस वनके बीचसे वे चले जिसमें जगह-जगह छोटे-छोटे पर्वत थे ॥ ६ ॥ वृक्षोंसे ढके पर्वतों और फूली वनलताओंको पीछे छोड़ते हुए वानरश्रेष्ठ तेजस्वी हनुमान आगे चले ॥ ७ ॥ उस पर्वत पर बैठकर हनुमानने लंकाके बागबगीचोंको देखा और पर्वतपर बसी हुई लंका भी उन्होंने देखी ॥ ८ ॥ सरल, कर्णिकार, खजूर, चिरौंजी, जम्बीर, कुटक, केतक, प्रियंगु, कदम्ब, सप्तच्छद, असन, कोविदार, करवीर ये सब वृक्ष पुष्पोंसे लदे हुए थे । अनेक वृक्षोंमें कोंढ़िया लगी हुई थीं । इनपर पक्षी बसे हुए थे और हवासे इनकी शिखाएं हिलरही थीं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ वहांकी वापीमें हंस और कारण्डव नामक पक्षी थे। तरह तरहके कमल खिले थे । वहां क्रीड़ा करनेके छोटे-छोटे अनेक पर्वत तथा जलाशय बने हुए थे ॥ १२ ॥ सदा फूलने और फलनेवाले बहुतसे वृक्ष वहांके रमणीय बागोंमें हनुमानने देखे ॥१३॥

समासाद्य च लक्ष्मीवाँल्लङ्कां रावणपालिताम् । परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलंकृताम् ॥१४॥
सीतापहरणात्तेन रावणेन सुरक्षिताम् । समन्ताद्विचरद्भिश्च राक्षसैरुग्रधन्वभिः ॥१५॥
काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम् । गृहैश्च गिरिसंकाशैः शारदाम्बुदसंनिभैः ॥१६॥
पाण्डुराभिः प्रतोलीभिरुच्चाभिरभिसंवृताम् । अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजशोभिताम् ॥१७॥
तोरणैः काञ्चनैर्दिव्यैर्लतापङ्क्तिविराजितैः । ददर्श हनुमाँल्लङ्कां देवो देवपुरीमिव ॥१८॥
गिरिमूर्ध्नि स्थितां लङ्कां पाण्डुरैर्भवनैः शुभैः । ददर्श स कपिः श्रीमान्पुरीमाकाशगामिव ॥१९॥
पालितां राक्षसेन्द्रेण निर्मितां विश्वकर्मणा । प्लवमानामिवाकाशे ददर्श हनुमान्कपिः ॥२०॥
वप्रप्राकारजघनां विपुलाम्बुवनाम्बराम् । शतघ्नीशूलकेशान्तामट्टालकावतंसकाम् ॥२१॥
मनसेव कृतां लङ्कां निर्मितां विश्वकर्मणा । द्वारमुत्तरमासाद्य चिन्तयामास वानरः ॥२२॥
कैलासनिलयप्रख्यमालिखन्तीमिवाम्बरम् । ध्रियमाणमिवाकाशमुच्छ्रितैर्भवनोत्तमैः ॥२३॥
संपूर्णां राक्षसैर्घोरैर्गुहामाशीविषैरिव । तस्याश्च महतीं गुप्तिं सागरं च निरीक्ष्य सः ।
रावणं च रिपुं घोरं चिन्तयामास वानरः ॥२४॥
आगत्यापीह हरयो भविष्यन्ति निरर्थकाः । नहि युद्धेन वै लङ्का शक्या जेतुं सुरैरपि ॥२५॥

रावणके द्वारा पलित लंकाके पास जाकर कान्तिमान् हनुमानने उसे देखा। उसके चारों ओर खाई बनी थी। जिसके जलमें सब तरहके कमल खिले हुए थे ॥१४॥ सीताको हर ले जानेके कारण रावणने लंकाकी रक्षाका दृढ़ प्रबन्ध किया था। उसके चारों ओर वीर धनुर्धारी राक्षस घूम रहे थे ॥१५॥ वह महानगरी सोनेकी चारदिवारीसे घिरी थी। पर्वतोंके समान ऊंचे और शरत्के मेघोंके समान स्वच्छ घर लंकामें बने हुए थे ॥ १६ ॥ वहांकी सड़कें पीली और ऊंची बनी हुई थीं। सैकड़ों अटारियाँ वहां थीं जो ध्वजा और पताकाओंसे शोभित थीं ॥१७॥ उन अटारियोंके बारजों पर सुवर्णमय बेल बूटे बने हुए थे । इन्द्र जिसप्रकार अपनी अमरावतीको देखते हैं उसीप्रकार विनाकिसी क्षोभके हनुमानने सुशोभित लंका देखी ॥१८॥ पीले और सुन्दर गृहोंसे युक्त पर्वतशिखरपर बसी हुई लंका नगरीको हनुमानने देखा जो आकाशके उपर उठ रही थी ॥१९॥ उस नगरीका पालन राक्षसराज रावण कर रहा था और विश्वकर्माने उसे बनाया था। हनुमानने उस नगरीको आकाशमें उड़ती हुईके समान देखा ॥ २० ॥ चारदिवारियाँ और बारजे उस लंका सुन्दरीके जघनके समान थे । समुद्र और वन वस्त्रके समान, शतघ्नी और शूल नामके अस्त्र केशके समान और अटारियाँ कर्णभूषणके समान थीं । विश्वकर्माने केवल मानसिक इच्छासेही इसका निर्माण किया था। उस लंकापुरीके उत्तर द्वारपर जाकर हनुमान विचार करने लगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ वह उत्तरद्वार कैलासपर बसी हुई अलकाके द्वारके समान था। वह आकाशको छू रहा था। ऐसा मालूम पड़ता था कि उसके ऊंचे ऊंचे सुन्दर घर मानों आकाशको रोके खड़े हैं ॥ २३ ॥ जिसप्रकार जहरीले सर्पोंसे कोई गुहा भरी रहती है उसी प्रकार भयानक राक्षसोंसे लंकापुरी भरी हुई थी। इस प्रकार उस नगरी की रक्षा का प्रबन्ध, समुद्र और भयानक शत्रु रावणको देखकर हनुमान मनही मन विचार करनेलगे ॥२४॥ यहां आकर भी वानर असफल ही रहेंगे क्योंकि युद्धके द्वारा देवता भी लंका नहीं जीत सकते

इमां त्वविषमां लङ्कां दुर्गां रावणपालिताम् । प्राप्यापि सुमहाबाहुः किं करिष्यति राघवः ॥२६॥
अवकाशो न साम्नस्तु राक्षसेष्वभिगम्यते । न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृश्यते ॥२७॥
चतुर्णामेव हि गतिर्वानराणां तरस्विनाम् । वालिपुत्रस्य नीलस्य मम राज्ञश्च धीमतः ॥२८॥
यावज्जानामि वैदेहीं यदि जीवति वा न वा । तत्रैव चिन्तयिष्यामि दृष्ट्वा तां जनकात्मजाम् ॥२९॥
ततः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः । गिरेः शृङ्गे स्थितस्तस्मिन्रामस्याभ्युदयं ततः ॥३०॥
अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी । प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमन्वितैः ॥३१॥
महौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः । वञ्चनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता ॥३२॥
लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लङ्कापुरी मया । प्राप्तकालं प्रवेष्टुं मे कृत्यं साधयितुं महत् ॥३३॥
तां पुरीं तादृशीं दृष्ट्वा दुराधर्षां सुरासुरैः । हनूमांश्चिन्तयामास विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ॥३४॥
केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम् । अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ॥३५॥
न विनश्येत्कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः । एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम् ॥३६॥
भूताश्चार्था विनश्यन्ति देशकालविरोधिताः । विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥३७॥
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते । घातयन्तीह कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥३८॥
न विनश्येत्कथं कार्यं वैकल्यं न कथं भवेत् । लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न भवेद्वृथा ॥३९॥

॥ २५ ॥ रावण-पालित परम दुर्गम इस लंका नगरीमें आकर भी महाबाहु रामचन्द्र क्या करेंगे ॥ २६ ॥ सामके द्वारा राक्षसोंसे कुछ काम निकलनेकी आशा नहीं है। दान, भेद और युद्धके द्वारा भी कुछ काम न हो सकेगा ॥ २७ ॥ वेगवान् अंगद, नील, मैं और सुग्रीव ये ही चार वानर लंकामें प्रवेश कर सकते हैं ॥ २८ ॥ जब तक जानकीका पता लगाता हूँ कि वे जीती हैं या नहीं। सीताको देखनेके बादही मैं इसका निश्चय करूंगा ॥ २९ ॥ अनन्तर उसी पर्वत शिखरपर बैठे हुए हनुमानने थोड़ी देरतक सीताके पता लगानेके उपायपर विचार किया ॥३०॥ इस रूपसे मैं राक्षसोंकी नगरीमें प्रवेश नहीं कर सकता, क्योंकि क्रूर और बलवान् राक्षस इसकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ जानकीको ढूँढ़नेके लिए इन पराक्रमी, बलवान् और योद्धा राक्षसोंको मुझे धोखा देना पड़ेगा ॥ ३२ ॥ इस बड़े कार्यकी सिद्धिके लिए लंकामें प्रवेश करना रातमें अच्छा होगा और मेरा रूप ऐसा होना चाहिए, जिसमें कभी मैं दिखाई पड़ूँ और कभी छिप सकूँ ॥ ३३ ॥ देवता और असुरके द्वारा प्रवेश करनेके अयोग्य वैसी लंकापुरीको देखकर हनुमान लम्बी साँस लेकर बार-बार विचार करने लगे ॥ ३४ ॥ किस उपायसे मैं जनक-पुत्री सीताको देखूँगा, जिसमें राक्षसराज दुरात्मा रावण मुझे न देख सके ॥ ३५ ॥ यदि मैं एकान्तमें अकेली जानकीसे अकेला मिल सका तो प्रसिद्ध राजचन्द्रजीका कार्य नष्ट नहीं होगा ॥ ३६ ॥ निश्चित कार्य भी, अविवेकी दूतके द्वारा देशकालके विरुद्ध होनेके कारण विनष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार सूर्योदयसे अन्धकार ॥ ३७ ॥ कर्तव्य और अकर्तव्यका, स्वामी तथा उनके सचिवके द्वारा निश्चय भी व्यर्थ हो जाता है, यदि दूत अविवेकी हुआ तो उसके द्वारा कार्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ मेरा कार्य भी नष्ट हो सकता है, मैं भी अविवेकी हो सकता हूँ। मेरा

मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः । भवेद्व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ॥४०॥
नहि शक्यं क्वचित्स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः । अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित् ॥४१॥
वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम । नह्यत्राविदितं किंचिद्रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥४२॥
इहाहं यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण संवृतः । विनाशमुपयास्यामि भर्तुरर्थश्च हास्यति ॥४३॥
तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः । लङ्कामभिपतिष्यामि राघवस्यार्थसिद्धये ॥४४॥
रावणस्य पुरीं रात्रौ प्रविश्य सुदुरासदाम् । प्रविश्य भवनं सर्वं द्रक्ष्यामि जनकात्मजाम् ॥४५॥
इति निश्चित्य हनुमान्सूर्यस्यास्तमयं कपिः । आचकाङ्क्षे तदा वीरो वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥४६॥
सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः । पृषदंशकमात्रोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः ॥४७॥
प्रदोषकाले हनुमांस्तूर्णमुत्पत्य वीर्यवान् । प्रविवेश पुरीं रम्यां प्रविभक्तमहापथाम् ॥४८॥
प्रासादमालावितताां स्तम्भैः काञ्चनसंनिभैः । शातकुम्भनिभैर्जालैर्गन्धर्वनगरोपमाम् ॥४९॥
सप्तभौमाष्टभौमैश्च स ददर्श महापुरीम् । स्थलैः स्फटिकसंकीर्णैः कार्तस्वरविभूषितैः ।
तैस्तैः शुशुभिरे तानि भवनान्यत्र रक्षसाम् ॥५०॥
काञ्चनानि विचित्राणि तोरणानि च रक्षसाम् । लङ्कामुद्योतयामासुः सर्वतः समलंकृताम् ॥५१॥
अचिन्त्यामद्भुताकारां दृष्ट्वा लङ्कां महाकपिः । आसीद्विषण्णो हृष्टश्च वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ॥५२॥

समुद्रलंघन भी व्यर्थ हो सकता है, रावणवध चाहनेवाले रामचन्द्रका कार्य भी व्यर्थ हो सकता है, यदि राक्षस मुझे देख लें ॥ ३९, ४० ॥ यहाँ राक्षसरूप में, चाहे और किसीरूपमें, कोई मनुष्य नहीं रह सकता, जिसे राक्षस जान न लें ॥ ४१ ॥ छिपकर वायु भी यहाँ नहीं घूम सकता, ऐसा मैं समझता हूँ । इस लंकामें ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जिसे ये भयानक राक्षस न जानते हों ॥४२॥ यहाँ यदि मैं अपने रूपमें छिपकर भी रहूँ तो भी मैं मार दिया जाऊंगा और स्वामीका कार्य नष्ट हो जायगा ॥ ४३ ॥ इस कारण मैं अपना छोटा रूप बनाकर रामचन्द्रके मनोरथसिद्धिके लिए रात्रिमें लंकामें प्रवेश करूंगा ॥ ४४ ॥ रातको रावणकी नगरीमें मैं प्रवेश करूँगा यद्यपि वहाँ प्रवेश करना कठिन है । मैं समस्त घर ढूँढ़कर सीताका पता लगाऊंगा ॥४५॥ सीताको देखनेके लिए उत्कण्ठित वीर हनुमान ऐसा निश्चय करके संध्याकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ४६ ॥ सूर्यके अस्त होनेपर रातमें हनुमानने अपना छोटा रूप बनाया । वे बिल्लीके बराबर हो गए और देखनेमें अद्भुत मालूम होने लगे ॥ ४७ ॥ संध्या समय बलवान् हनुमान कूदकर लंकापुरीमें गए । उस रमणीय नगरीमें चौड़ी-चौड़ी सड़कें बनी हुई थीं ॥ ४८ ॥ वहाँ अटारियोंकी कतारें थीं । सोनेके समान खम्भे थे, और सोनेके समान जालियां बनी हुई थीं । वह नगरी गन्धर्व नगरीके समान मालूम होती थी ॥ ४९ ॥ उस महानगरीमें सतमहले और और अठमहले मकान हनुमानने देखे । स्फटिकके बने हुए और सोनेके कामसे भूषित मैदान हनुमानने वहाँ देखे । वैसे मैदानोंसे राक्षसोंके घर सुशोभित हो रहे थे ॥ ५० ॥ राक्षसोंके घरके फाटकके बारजे सोनेके तरह-तरहकी कारीगरीके बने हुए थे, जो चारो ओरसे सुशोभित लंकाको और अधिक शोभित करते थे ॥५१॥ सीताको देखनेके लिए उत्सुक हनुमान ऐसी अद्भुत और अचिन्तनीय लंकापुरी देखकर चिन्तित

स पाण्डुराविद्धविमानमालिनीं महार्हजाम्बूनदजालतोरणाम् ।
यशस्विनीं रावणबाहुपालितां क्षपाचरैर्भीमबलैः सुपालिताम् ॥ ५३ ॥
चन्द्रोऽपि साचिव्यमिवास्य कुर्वस्तारागणैर्मध्यगतो विराजन् ।
ज्योत्स्नावितानेन वितत्य लोकानुत्तिष्ठतेऽनेकसहस्ररश्मिः ॥ ५४ ॥
शङ्खप्रभं क्षीरमृणालवर्णमुद्गच्छमानं व्यवभासमानम् ।
ददर्श चन्द्रं स कपिप्रवीरः पोप्लूयमानं सरसीव हंसम् ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३

स लम्बशिखरे लम्बे लम्बतोयदसंनिभे । सत्त्वमास्थाय मेधावी हनुमान्मारुतात्मजः ॥ १ ॥
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः । रम्यकाननतोयाढ्यां पुरीं रावणपालिताम् ॥ २ ॥
शारदाम्बुधरप्रख्यैर्भवनैरुपशोभिताम् । सागरोपमनिर्घोषां सागरानिलसेविताम् ॥ ३ ॥
सुपुष्टबलसंपुष्टां यथैव विटपावतीम् । चारुतोरणनिर्यूहां पाण्डुरद्वारतोरणाम् ॥ ४ ॥
भुजगाचरितां गुप्तां शुभां भोगवतीमिव । तां सविद्युद्घनाकीर्णां ज्योतिर्गणनिषेविताम् ॥ ५ ॥

भी हुए और प्रसन्न भी ॥ ५२ ॥ पीले और सतमहले मकान ऐसे सटे हुए थे जो मालाके समान मालूम होते थे। उनमें बहुमूल्य सोनेकी खिड़कियां लगी हुई थीं। बड़े बली राक्षसोंके द्वारा उसकी रक्षा हो रही थी और रावणके द्वारा शासन ॥ ५३ ॥ चन्द्रमा भी हनुमानकी मानों सहायता करनेके लिए ताराओंके साथ आकाशके मध्यमें आकर शोभित हुआ। कई हजार किरणोंसे संसारको प्रकाशित कर वह उदित हुआ ॥ ५४ ॥ शंख, दूध और मृणालके समान श्वेत उदय होते हुए सुशोभित चन्द्रमाको हनुमानने देखा। मानों तालाबमें हंस तैर रहा हो ॥ ५५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका दूसरा सर्ग समाप्त ॥

त्रिकूट नामक पर्वतके महामेघके समान ऊँची शिखरपर स्थित महाबली कपिश्रेष्ठ हनुमानने धैर्य धारणकर रात्रिमें रमणीय वन और जलसे सुशोभित रावणपालित लंकामें प्रवेश किया ॥१॥२॥ वह नगरी शरद्के मेघोंके समान श्वेत भवनोंसे सुशोभित थी। समुद्रके समान शब्द उसमें उत्पन्न हो रहा था। समुद्रकी हवा उस नगरीकी सेवा करती थी ॥३॥ बली सेनाओंसे वह नगरी ऐसी सुशोभित थी जिस प्रकार अलकापुरी। मकानोंके निकसारपर सुन्दर चौतरे बने हुए थे। द्वारोंपर श्वेत तोरण लगे हुए थे ॥ ४ ॥ सर्पनगरी भोगवतीके समान, लंकामें भी सर्पोंका आना जाना बना रहता था। वह नगरी बजली मेघ और नक्षत्रोंसे युक्त रहती थी ॥५॥ अमरावती-

चण्डमारुतनिर्ह्रादां यथा चाप्यमरावतीम् । शातकुम्भेन महता प्रकारेणाभिसंवृताम् ॥ ६ ॥
किङ्किणीजालघोषाभिः पताकाभिरलंकृताम् । आसाद्य सहसा हृष्टः प्राकारमभिपेदिवान् ॥ ७ ॥
विस्मयाविष्टहृदयः पुरीमालोक्य सर्वतः । जाम्बूनदमयैर्द्वारैर्वैदूर्यकृतवेदिकैः ॥ ८ ॥
मणिस्फटिकमुक्ताभिर्मणिकुट्टिमभूषितैः । तप्तहाटकनिर्यूहै राजतामलपाण्डुरैः ॥ ९ ॥
वैदूर्यकृतसोपानैः स्फाटिकान्तरपांसुभिः । चारुसंजवनोपेतैः खमिवोत्पतितैः शुभैः ॥१०॥
क्रौञ्चबर्हिणसंघुष्टै राजहंसनिषेवितैः । तूर्याभरणनिर्घोषैः सर्वतः परिनादिताम् ॥११॥
वस्वोकसारप्रतिमां समीक्ष्य नगरीं ततः । खमिवोत्पतितां लङ्कां जहर्ष हनुमान्कपिः ॥१२॥
तां समीक्ष्य पुरीं लङ्कां राक्षसाधिपतेःशुभाम् । अनुत्तमामृद्धिमतीं चिन्तयामास वीर्यवान् ॥१३॥
नेयमन्येन नगरी शक्या धर्षयितुं बलात् । रक्षिता रावणबलैरुद्यतायुधपाणिभिः ॥१४॥
कुमुदाङ्गदयोर्वापि सुषेणस्य महाकपेः । प्रसिद्धेयं भवेद्भूमिर्मैन्दद्विविदयोरपि ॥१५॥
विवस्वतस्तनूजस्य हरेश्च कुशपर्वणः । ऋक्षस्य कपिमुख्यस्य मम चैव गतिर्भवेत् ॥१६॥
समीक्ष्य च महाबाहो राघवस्य पराक्रमम् । लक्ष्मणस्य च विक्रान्तमभवत्प्रीतिमान्कपिः ॥१७॥
तां रत्नवसनोपेतां गोष्ठागारावतंसिकाम् । यन्त्रागारस्तनीमृद्धां प्रमदामिव भूषिताम् ॥१८॥

के समान प्रचण्ड वायुका यहाँ गर्जन होता रहता था। सोनेकी चारदिवारीसे यह नगरी घिरी हुई थी ॥ ६ ॥ घरोंमें जहाँ तहाँ लगी हुई पताकाओंकी घंटियोंका शब्द होरहा था। उस नगरीके समीप जाकर हनुमान बहुत प्रसन्न हुए और कूदकर चारदिवारीपर चढ़ गए ॥७॥ उस समस्त नगरीको देखकर हनुमान बहुत विस्मित हुए। सोनेके उसके द्वार बने हुए थे और वैदूर्य मणिकी वेदियां ॥ ८ ॥ मणि स्फटिक और मोतियोंकी वेदिकायें बनी हुई थीं। मणियोंके चौतरे बने हुए थे। सोनेके चौतरे निकसार पर बने हुए थे जो चांदीके योगसे श्वेत मालूम पड़ते थे ॥ ९ ॥ वैदूर्य मणिकी सीढ़ियाँ थीं। भीतरका भाग स्फटिकका था, जो धूलिरहित था। छतके ऊपर सुन्दर कोठरियाँ बनी हुई थीं जो आकाशमें उड़ती सी मालूम होती थीं ॥१०॥ क्रौंच और मयूर वहाँ बोल रहे थे। राजहंस भी थे। बाजों और गहनोंके शब्दसे वह नगरी मुखरित हो रही थी ॥ ११ ॥ अमरावतीके समान आकाशमें उठी हुई उस नगरीको देखकर हनुमान बहुत प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥ राक्षसराजकी उस सर्वश्रेष्ठ धनवती और सुन्दर नगरी लंकाको देखकर बली हनुमान विचार करने लगे ॥ १३ ॥ अस्त्र धारण करनेवाली रावण-की सेना द्वारा रक्षित इस नगरीको बलपूर्वक दूसरा कोई जीत नहीं सकता ॥ १४ ॥ कुमुद, अंगद, वानरश्रेष्ठ सुषेण, मैन्द और द्विविद इस प्रसिद्ध नगरीमें आ सकते हैं ॥ १५ ॥ सुग्रीव, केतुमाल, ऋक्ष और मेरी भी गति इस नगरीमें हो सकती है ॥ १६ ॥ महाबाहु रामचन्द्र और लक्ष्मणके पराक्रमका विचार कर महाकपि हनुमान बड़े प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ वह नगरी स्त्रीके समान सुशोभित थी। रत्नोंके वस्त्र उसने धारण किये थे। गोष्ठ (गायोंके रहनेकी जगह) और भवन इस नगरीके कर्ण-भूषणके समान थे। चारदिवारियोंपर बने हुए यन्त्रमय अस्त्र-शस्त्रोंके

तां नष्टतिमिरां दीपैर्भास्वरैश्च महागृहैः । नगरीं राक्षसेन्द्रस्य स ददर्श महाकपिः ॥१९॥
अथ सा हरिशार्दूलं प्रविशन्तं महाकपिम् । नगरी स्वेन रूपेण ददर्श पवनात्मजम् ॥२०॥
सा तं हरिवरं दृष्ट्वा लंका रावणपालिता । स्वयमेवोत्थिता तत्र विकृताननदर्शना ॥२१॥
पुरस्तात्तस्य वीरस्य वायुसूनोरतिष्ठत । मुञ्चमाना महानादमब्रवीत्पवनात्मजम् ॥२२॥
कस्त्वं केन च कार्येण इह प्राप्तो वनालयं । कथयस्वेह यत्तत्त्वं यावत्प्राणा धरन्ति ते ॥२३॥
न शक्यं खल्वियं लंका प्रवेष्टुं वानर त्वया । रक्षिता रावणबलैराभिगुप्ता समन्ततः ॥२४॥
अथ तामब्रवीद्वीरो हनुमानाग्रतः स्थिताम् । कथयिष्यामि तत्तत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥२५॥
का त्वं विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठसे । किमर्थं चापि मां क्रोधान्निर्भर्त्सयसि दारुणे ॥२६॥
हनुमद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी । उवाच वचनं क्रुद्धा परुषं पवनात्मजम् ॥२७॥
अहं राक्षसराजस्य रावणस्य महात्मनः । आज्ञाप्रतीक्षा दुर्धर्षा रक्षामि नगरीमिमाम् ॥२८॥
न शक्यं मामवज्ञाय प्रवेष्टुं नगरीमिमाम् । अद्य प्राणैःपरित्यक्तः स्वप्स्यसे निहतो मया ॥२९॥
अहं हि नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवंगम । सर्वतः परिरक्षामि अतस्ते कथितं मया ॥३०॥
लङ्कायाः वचनं श्रुत्वा हनुमान्मारुतात्मजः । यत्नवान्स हरिश्रेष्ठः स्थितः शैल इवापरः ॥३१॥
स तां स्त्रीरूपविकृतां दृष्ट्वा वानरपुंगवः । आबभाषेऽथ मेधावी सत्त्ववान्प्लवगर्षभः ॥३२॥

घर स्तनके समान थे । वह नगरी बड़ी धनवती थी ॥ १८ ॥ चमकीले गृहों और दीपकोंसे उस नगरीका अन्धकार नष्ट हो गया था । हनुमानने रावणकी वह नगरी देखी ॥ १९ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमानको नगरमें प्रवेश करते हुए स्वयं लंका नगरीने अपने रूपसे देखा । (लंकाका अर्थ है उस नगरीकी अधिष्ठात्री देवी) ॥२०॥ रावण द्वारा पालित लंका नगरी हनुमानको देखकर स्वयं उठी । देखनेमें वह भयानक थी ॥ २१ ॥ वह वायुपुत्र वीर हनुमानके सामने आकर खड़ी हो गई और घोर गर्जन करती हुई हनुमानसे बोली ॥ २२ ॥ तू कौन है ? जंगली ! तू किस कामसे यहां आया है ? जब तक तेरे प्राण बचे हैं तब तक मुझे तू यह बता ॥ २३ ॥ वानर, रावणकी सेनासे चारों ओरसे सुरक्षित इस नगरीमें तू प्रवेश नहीं कर सकता ॥२४॥ आगे खड़ी हुई लङ्कासे वीर हनुमान बोले-जो तुम मुझसे पूछ रही हो वह सब मैं ठीक ठीक बतलाऊंगा ॥२५॥ वीभत्स आँखोंवाली तुम कौन, इस नगर-द्वारपर रहती हो ? अरे कठोर क्रोध करके मुझे क्यों डांट रही हो ? ॥ २६ ॥ कामरूपिणी लंका हनुमानके वचन सुनकर क्रोध करके उनसे बोली ॥ २७ ॥ मैं राक्षसराज महात्मा रावणकी आज्ञासे इस नगरीकी रक्षा करती हूँ । मैं अजेय हूँ ॥ २८ ॥ मेरा तिरस्कार करके इस नगरीमें कोई नहीं जा सकता है । आज तुम्हारे प्राण निकल जायंगे । मेरे द्वारा निहत होकर तुम यहां सोओगे ॥ २९ ॥ हे वानर, मैं स्वयं लंका नगरी हूँ । चारों ओरसे इसकी रक्षा करती हूँ । अतएव तुमसे ऐसा कहती हूँ ॥ ३० ॥ लंकाके वचन सुनकर हनुमान उस समयका कर्तव्य निश्चित करते हुए पर्वतके समान वहां निश्चल खड़े रहे ॥ ३१ ॥ वह वीभत्स स्त्रीरूप देखकर बुद्धिमान् और बली वानरश्रेष्ठ हनुमान बोले ३२

द्रक्ष्यामि नगरीं लङ्कां साट्टप्राकारतोरणाम् । इत्यर्थमिह संप्राप्तः परं कौतूहलं हि मे ॥३३॥
वनान्युपवनानीह लङ्कायाः काननानि च । सर्वतो गृहमुख्यानि द्रष्टुमागमनं हि मे ॥३४॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लङ्का सा कामरूपिणी । भूय एव पुनर्वाक्यं बभाषे परुषाक्षरम् ॥३५॥
मामनिर्जित्य दुर्बुद्धे राक्षसेश्वरपालिताम् । न शक्यं ह्यद्य ते द्रष्टुं पुरीयं वानराधम ॥३६॥
ततः स हरिशार्दूलस्तामुवाच निशाचरीम् । दृष्ट्वा पुरीमिमां भद्रे पुनर्यास्ये यथागतम् ॥३७॥
ततः कृत्वा महानादं सा वै लङ्का भयंकरम् । तलेन वानरश्रेष्ठं ताडयामास वेगिता ॥३८॥
ततः स हरिशार्दूलो लङ्कया ताडितो भृशम् । ननाद सुमहानादं वीर्यवान्मारुतात्मजः ॥३९॥
ततः संवर्तयामास वामहस्तस्य सोऽङ्गुलीः । मुष्टिनाभिजघानैनां हनुमान्क्रोधमूर्च्छितः ॥४०॥
स्त्री चेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयं कृतः । सा तु तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी ।
पपात सहसा भूमौ विकृताननदर्शना ॥४१॥
ततस्तु हनुमान्वीरस्तां दृष्ट्वा विनिपातिताम् । कृपां चकार तेजस्वी मन्यमानः स्त्रियं च ताम् ॥४२॥
ततो वै भृशमुद्विग्ना लङ्का सा गद्गदाक्षरम् । उवाचागर्वितं वाक्यं हनुमन्तं प्लवंगमम् ॥४३॥
प्रसीद सुमहाबाहो त्रायस्व हरिसत्तम । समये सौम्य तिष्ठन्ति सत्त्ववन्तो महाबलाः ॥४४॥
अहं तु नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवंगम । निर्जिताहं त्वया वीर विक्रमेण महाबल ॥४५॥
इदं च तथ्यं शृणु मे ब्रुवन्त्या वै हरीश्वर । स्वयं स्वयंभुवा दत्तं वरदानं यथा मम ॥४६॥
यदा त्वां वानरः कश्चिद्विक्रमाद्वशमानयेत् । तदा त्वया हि विज्ञेयं रक्षसां भयमागतम् ॥४७॥

मैं लंकाको अच्छी तरह देखनेके लिये यहां आया हूँ । मुझे इसे देखनेका बड़ा कुतूहल है ॥३३॥ लंकाके बाग बगीचे वन तथा बड़े-बड़े घरोंको देखनेके लिए यहां आया हूँ ॥ ३४ ॥ हनुमानके ये वचन सुनकर कामरूपिणी लंका पुनः उनसे कठोर वचन बोली ॥ ३५ ॥ मूर्ख वानराधम मुझको बिना जीते इस राक्षसराजपालित लंकाको तुम नहीं देख सकते ॥ ३६ ॥ हनुमान पुनः उस राक्षसीसे बोले—भद्रे, इस नगरीको देखकर पुनः मैं अपने स्थानको चला जाऊंगा ॥३७॥ अनंतर उस लंका नगरीने भयंकर नाद किया और वेगपूर्वक हनुमानको एक थप्पड़ मारा ॥ ३८ ॥ लंका-के द्वारा मारे जानेपर बलवान् वायुपुत्र हनुमानने घोर गर्जन किया ॥३९॥ अनन्तर बांयें हाथकी अंगुलियाँ मोड़कर मुट्ठी बांध ली और क्रोध करके एक घूसा मारा ॥ ४० ॥ उसे स्त्री समझकर हनुमानने बहुत क्रोध नहीं किया । पर उसी प्रहारसे उसके अंग शिथिल हो गए और विकृत मुह-के कारण बुरी दीखनेवाली वह राक्षसी भूमिमें गिर पड़ी ॥ ४१ ॥ उसको गिरी देखकर तथा उसे स्त्री समझकर वीर और तेजस्वी हनुमानने उसपर कृपा की ॥ ४२ ॥ लंका बहुत उद्विग्न थी, वह गद्गद् वाणीमें हनुमानसे दीनतापूर्वक बोली ॥ ४३ ॥ हे महाबाहो, वानरश्रेष्ठ, प्रसन्न होओ और मेरी रक्षा करो । हे सौम्य ! पराक्रमी वीर अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते हैं ॥४४॥ हे वानर, मैं स्वयं लंका नगरी हूँ । तुमने अपने पराक्रमसे मुझे जीता है ॥ ४५ ॥ पर मैं एक सत्य बात तुमसे कहती हूँ सुनो, पहले स्वयं ब्रह्माने मुझे जिस प्रकार वरदान दिया था ॥ ४६ ॥ उन्होंने कहा था-

स हि मे समयः सौम्य प्राप्तोऽद्य तव दर्शनात् । स्वयंभूविहितःसत्यो न तस्यास्ति व्यतिक्रमः ॥४८॥
सीतानिमित्तं राज्ञस्तु रावणस्य दुरात्मनः । रक्षसां चैव सर्वेषां विनाशः समुपागतः ॥४९॥
तत्प्रविश्य हरिश्रेष्ठ पुरीं रावणपालिताम् । विधत्स्व सर्वकार्याणि यानि यानीह वाञ्छसि ॥५०॥

प्रविश्य शापोपहतां हरीश्वरः पुरीं शुभां राक्षसमुख्यपालिताम् ।
यदृच्छया त्वं जनकात्मजां सतीं विमार्ग सर्वत्र गतो यथासुखम् ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

स निर्जित्य पुरीं लङ्कां श्रेष्ठां तां कामरूपिणीम् । विक्रमेण महातेजा हनूमान्कपिसत्तमः ॥ १ ॥
अद्वारेण महावीर्यः प्राकारमवपुप्लुवे । निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ॥ २ ॥
प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितंकरः । चक्रेऽथ पादं सव्यं च शत्रूणां स तु मूर्धनि ॥ ३ ॥
प्रविष्टः सत्त्वसंपन्नो निशायां मारुतात्मजः । स महापथमास्थाय मुक्तपुष्पविराजितम् ॥ ४ ॥
ततस्तु तां पुरीं लङ्कां रम्यामभिययौ कपिः । हसितोत्कृष्टनिनदैस्तूर्यघोषपुरस्कृतैः ॥ ५ ॥
वज्राङ्कुशनिकाशैश्च वज्रजालविभूषितैः । गृहमेघैः पुरी रम्या बभासे द्यौरिवाम्बुदैः ॥ ६ ॥

कोई वानर अपने पराक्रमसे तुम्हें जीत ले, उस समय तुम समझना कि राक्षसोंके लिए विपत्ति आ गई ॥ ४७ ॥ सौम्य, तुम्हारे दर्शनसे आज वही समय मेरे सामने उपस्थित हुआ है । ब्रह्माका यह सत्य निश्चय है इसमें उलटफेर नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥ सीताके कारण दुरात्मा रावणकी तथा समस्त राक्षसोंका विनाश-समय उपस्थित हुआ है ॥ ४९ ॥ वानरश्रेष्ठ, रावणपालित इस नगरीमें तुम जाओ, और जो जो काम तुम करना चाहो करो ॥ ५० ॥ रावणके द्वारा पालित तथा सुन्दर इस नगरीमें तुम प्रवेश करो जिसको शाप मिली हुई है । तुम इच्छापूर्वक सब जगह जाकर सती सीताको ढूंढो ॥ ५१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त ।

कपिश्रेष्ठ महातेजस्वी हनुमान्ने पराक्रमसे कामरूपिणी लंकाको जीतकर प्रवेशद्वारको छोड़कर चारदिवारी कूदकर लंका नगरीमें प्रवेश किया ॥ १, २ ॥ सुग्रीवके हित करनेवाले हनुमान्ने रातको लंका नगरीमें प्रवेश कर शत्रुओंके माथेपर बांया पैर रक्खा ॥ ३ ॥ रात्रिमें बली हनुमान्ने उस नगरीमें प्रवेश किया और चौड़ी सड़कसे वे चले जिसपर फूल बखेरे गए थे ॥४॥ हनुमान् लंकापुरीमें गए । उस नगरीमें कहीं अट्टहास होरहा था और कहीं बाजे बज रहे थे ॥ ५ ॥ ऐरावतके समान स्वच्छ हीरेकी बनी खिड़कियों तथा उत्तम गृहोंके कारण वह नगरी

३९६९

प्रजज्वाल तदा लंका रक्षोगणगृहैः शुभैः । सिताभ्रसदृशैश्चित्रैः पद्मस्वस्तिकसंस्थितैः ॥ ७ ॥
वर्धमानगृहैश्चापि सर्वतः सुविभूषितैः । तां चित्रमाल्याभरणां कपिराजहितंकरः ॥ ८ ॥
राघवार्थे चरञ्श्रीमान्ददर्श च ननन्द च । भवनाद्भवनं गच्छन्ददर्श कपिकुञ्जरः ॥ ९ ॥
विविधाकृतिरूपाणि भवनानि ततस्ततः । शुश्राव रुचिरं गीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम् ॥१०॥
स्त्रीणां मदनविद्धानां दिवि चाप्सरसामिव । शुश्राव काञ्चीनिनदं नूपुराणां च निःस्वनम्॥११॥
सोपाननिनदांश्चापि भवनेषु महात्मनाम् । आस्फोटितनिनादांश्च क्ष्वेडितांश्च ततस्ततः ॥१२॥
शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान्रक्षोगृहेषु वै । स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श सः ॥१३॥
रावणस्तवसंयुक्तान्गर्जतो राक्षसानपि । राजमार्गं समावृत्य स्थितं रक्षोगणं महत् ॥१४॥
ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षस्य चरान्बहून् । दीक्षिताञ्जटिलान्मुन्डान्गोजिनाम्बरवाससः॥१५॥
दर्भमुष्टिप्रहरणानग्निकुण्डायुधांस्तथा । कूटमुद्गरपाणींश्च दण्डायुधधरानपि ॥१६॥
एकाक्षानेकवर्णांश्च चलदेकपयोधरान् । करालान्भुग्नवस्त्रांश्च विकटान्वामनांस्तथा॥१७॥
धन्विनः खड्गिनश्चैव शतघ्नीमुसलायुधान् । परिघोत्तमहस्तांश्च विचित्रकवचोज्ज्वलान्॥१८॥
नातिस्थूलान्नातिकृशान्नातिदीर्घातिहस्वकान् । नातिगौरान्नातिकृष्णान्नातिकुब्जान्नवामनान् ॥१९॥

मेघोंसे आकाशके समान सुशोभित होती थी ॥ ६ ॥ उस समय राक्षसोंके सुन्दर गृहोंसे लंका जगमगा उठी । कई घर श्वेत मेघके समान थे और कई रंग विरंगे थे । कई घर पद्म स्वस्तिक और वर्धमान गृहोंके लक्षणोंसे सुशोभित थे ॥ (कमलाकार घरको पद्म कहते हैं, जिस घरमें दक्षिणकी ओर द्वार न हो उसे वर्धमान कहते हैं और जिस घरमें पूर्वकी ओर द्वार न हो उसे स्वस्तिक कहते हैं) । सुग्रीवका हित चाहनेवाले रामचन्द्रके कार्यके लिए घूमते हुए श्रीहनुमान्ने लंका देखी और वे प्रसन्न हुए । एक घरसे दूसरे घरमें जाकर हनुमान्ने अनेक प्रकारके घर देखे, और सुन्दर हृदय, कण्ठ और सिरसे निकले हुए सुन्दर गान उन्होंने सुने ॥७,८,९,१०॥ काम-विह्वल स्त्रियोंकी करधनी और नूपुरके शब्द देवलोकमें अप्सराओंके शब्दके समान सुने ॥११॥ राक्षसोंके घरोंमें सीढ़ियोंपर चढ़नेके शब्द, ताली बजनेके शब्द, और सिंहके समान गर्जन उन्होंने वहां सुने॥१२॥ राक्षसोंके घरोंमें वेदमंत्रोंके जप उन्होंने सुने और कई राक्षसोंको वेदपाठ करते देखा ॥ १३ ॥ रावणकी जयध्वनिके साथ गर्जन करनेवाले, सड़क रोककर खड़े हुए अनेक राक्षसोंको हनुमान्ने देखा ॥ १४ ॥ हनुमान्ने बीचवाले चौकमें नगरके पता लगानेवाले अनेक गुप्तचर राक्षसोंको देखा । कोई गृहस्थके रूपमें था, कोई जटाधारण किये हुए वनवासीके रूपमें था, कोई मुण्डित मस्तक संन्यासीके रूपमें था, कोई गोचर्म, कोई मृगचर्म धारण किए हुए था और कोई बिलकुल नंगा था ॥१५॥ मुट्ठीभर कुशोंको अस्त्र बनाकर धारण करनेवाले, विजयके लिए अग्निकुण्डके पास बैठनेवाले, कूट और मुद्गर नामक अस्त्रोंके धारण करनेवाले, डण्डा तथा अन्य अस्त्र धारण करनेवाले, एक आंखवाले, अनेक वर्णवाले, छातीके एक भागको कंपानेवाले, भयंकर, टेढ़े मुँहवाले, विषम अंगवाले, वामन, धनुष धारण करनेवाले, तलवार धारण करनेवाले, शतघ्नी और मुसल धारण करनेवाले, उत्तम परिघ धारण करनेवाले, विचित्र कवचसे सुशोभित, न बहुत मोटे और न बहुत दुबले, न बहुत बड़े और न बहुत छोटे, न बहुत गोरे और न बहुत काले, न

विरूपान्बहुरूपांश्च सुरूपांश्च सुवचसः । ध्वजिनः पताकिनश्चैव ददर्श विविधायुधान् ॥२०॥
शक्तिवृक्षायुधांश्चैव पट्टिशाशनिधारिणः । क्षेपणीपाशहस्तांश्च ददर्श स महाकपिः ॥२१॥
स्रग्विणः स्वनुलिप्तांश्च वराभरणभूषितान् । नानावेषसमायुक्तान्यथास्वैरचरान्बहून् ॥२२॥
तीक्ष्णशूलधरांश्चैव वज्रिणश्च महाबलान् । शतसाहस्रमव्यग्रमारक्षं मध्यमं कपिः ॥२३॥
रक्षोधिपतिनिर्दिष्टं ददर्शान्तः पुराग्रतः । स तदा तद्गृहं दृष्ट्वा महाहाटकतोरणम् ॥२४॥
राक्षसेन्द्रस्य विख्यातमद्रिमूर्ध्नि प्रतिष्ठितम् । पुण्डरीकावतंसाभिः परिखाभिः समावृतम् ॥२५॥
प्राकारावृतमत्यन्तं ददर्श स महाकपिः । त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादविनादितम् ॥२६॥
वाजिहेषितसंघुष्टमद्भुतैश्च हयैस्तथा । रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा हयगजैः शुभैः ॥२७॥
वारणैश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः । भूषितं रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः ॥२८॥
रक्षितं सुमहावीर्यैर्यातुधानैः सहस्रशः । राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविवेश गृहं कपिः ॥२९॥

स हेमजाम्बूनदचक्रवालं महार्हमुक्तामणिभूषितान्तम् ।
परार्ध्यकालागुरुचन्दनार्हं स रावणान्तः पुरमाविवेश ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

कूबड़े न बवने, विकृत रूपवाले, अनेक रूपवाले और सुन्दर रूपवाले तेजस्वी, ध्वजा पाताका धारण करनेवाले, तथा और अनेक अस्त्र धारण करनेवाले राक्षसोंको हनुमान्ने देखा ॥ १६, १७, १८, १६, २० ॥ शक्ति और वृक्ष धारण करनेवाले, पट्टिश, व्रज, क्षेपणी, और पाशधारण करनेवाले राक्षसोंको हनुमानने देखा ॥ २१ ॥ माला धारण करनेवाले, अनेक प्रकारके सुगन्धित लेपोंसे सुशोभित, मूल्यवान् भूषणोंसे भूषित, अनेक प्रकारके वेष धारण करनेवाले, और स्वेच्छानुसार विहार करनेवाले एकलाख महाबली राक्षसोंको हनुमानने बीचवाले चौककी रक्षामें सावधान देखा ॥२२॥२३॥ अन्तःपुरके आगे राक्षसराज रावणके लिए निश्चित घरको हनुमानने देखा । सोनेके तोरणवाले उस घरको देखकर पर्वतशिखरपर बना हुआ रावणका प्रसिद्ध भवन हनुमानने देखा । वह श्वेत कमलोंसे भूषित था तथा उसके चारो ओर खाई बनी हुई थी । खाईसे घिरा हुआ वह भवन स्वर्गीय भवनके समान मालूम होता था, तथा अलौकिक ध्वनिसे वह गूंज रहा था । घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे, अनेक प्रकारके घोड़ों रथों सवारियों और विमानोंसे, श्वेत मेघके समान चार दांत वाले हाथियोंसे, तथा आनन्दित पशु पक्षियोंसे उस भवनका द्वार शोभित हो रहा था ॥ २४, २५, २६, २७, २८ ॥ महाबली हजारों राक्षस उस घरकी रक्षा कर रहे थे । रावणके उस सुरक्षित भवनमें हनुमानने प्रवेश किया ॥२६॥ हनुमानने रावणके गृहमें प्रवेश किया, उसकी चारदिवारी सोनेकी बनी हुई थी । मूल्यवान् मोती और मणियोंसे सुशोभित था । उत्तम काले अगुरु और चन्दनसे सुशोभित था ॥ ३० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त ।



पंचमः सर्गः ५

ततः स मध्यंगतमंशुमन्तं ज्योत्स्नावितानं मुहुरुद्वमन्तम् ।
ददर्श धीमान्भुवि भानुमन्तं गोष्ठे वृषं मत्तमिव भ्रमन्तम् ॥ १ ॥

लोकस्य पापानि विनाशयन्तं महोदधिं चापि समेधयन्तम् ।
भूतानि सर्वाणि विराजयन्तं ददर्श शीतांशुमथाभियान्तम् ॥ २ ॥

या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था यथा प्रदोषेषु च सागरस्था ।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था रराज सा चारुनिशाकरस्था ॥ ३ ॥

हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थश्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः ॥ ४ ॥

स्थितः ककुद्मानिव तीक्ष्णशृङ्गो महाचलः श्वेत इवोर्ध्वशृङ्गः ।
हस्तीव जाम्बूनदबद्धशृङ्गो विभाति चन्द्रः परिपूर्णशृङ्गः ॥ ५ ॥

विनष्टशीताम्बुतुषारपङ्को महाग्रहग्राहविनष्टपङ्कः ।
प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलाङ्को रराज चन्द्रो भगवाञ्शशाङ्कः ॥ ६ ॥

शिलातलं प्राप्य यथा मृगेन्द्रो महारणं प्राप्य यथा गजेन्द्रः ।
राज्यं समासाद्य यथा नरेन्द्रस्तथा प्रकाशो विरराज चन्द्रः ॥ ७ ॥

हनुमानने रावणके अन्तःपुरमें प्रवेश करके ताराओंके मध्यमें आए हुए, अपनी किरणोंका पृथिवीपर विकास करते हुए, गोष्ठमें मत्त होकर घूमनेवाले बैलके समान चन्द्रमाको देखा ॥ १ ॥ चन्द्रमा लोकके पापोंको नष्ट कर रहे हैं, समुद्रको बढ़ा रहे हैं । सब प्राणियोंको प्रकाशित कर रहे हैं । ऐसे चन्द्रमाको आकाशके मध्यमें हनुमानने देखा ॥ २ ॥ जो शोभा पृथिवीमें मन्दर पर्वतपर होती है, जो संध्याके समय समुद्रकी शोभा होती है, जलमें कमलोंकी जो शोभा होती है, वही शोभा सुन्दर चन्द्रमाकी हुई ॥ ३ ॥ जिस प्रकार चांदीके पिंजड़ेमें हंस शोभता है, मन्दराचलकी कन्दरामें सिंह शोभता है, मस्त हाथीकी पीठपर वीर शोभता है, उसी प्रकार आकाशमें चन्द्रमा सुशोभित हुए ॥ ४ ॥ तीखे सींगवाले बैलके समान ऊंचे शिखरवाले श्वेत पर्वतके समान और उस हाथीके समान जिसके दांत सोनेसे मढ़ दिए गए हों, कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमा प्रकाशित हुए ॥ ५ ॥ शीतल जल और हिम रूपी पंक जिसका नष्ट हो चुका है, सूर्यकी किरणोंके सम्पर्कसे जिसने अंधकारको दूर कर दिया है, अधिक प्रकाश होनेके कारण जिसका कलंक छिप गया है, और जिसका मध्य भाग निर्मल हो गया है, वे भगवान् चन्द्रमा सुशोभित हुए ॥ ६ ॥ गुहाके बाहर पत्थरकी समतल भूमि पाकर जिस प्रकार मृगेन्द्र शोभित होता है । महारणमें आकर जिस प्रकार गजेन्द्र शोभित होता है, राज्य पाकर जिस प्रकार

प्रकाशचन्द्रोदयनष्टदोषः प्रवृद्धरक्षःपिशिताशदोषः ।
रामाभिरामेरितचित्तदोषः स्वर्गप्रकाशो भगवान्प्रदोषः ॥ ८ ॥

तन्त्रीस्वराः कर्णसुखाः प्रवृत्ताः स्वपन्ति नार्यः पतिभिः सुवृत्ताः ।
नक्तंचराश्चापि तथा प्रवृत्ता विहर्तुमत्यद्भुतरौद्रवृत्ताः ॥ ९ ॥

मत्तप्रमत्तानि समाकुलानि रथाश्वभद्रासनसंकुलानि ।
वीरश्रिया चापि समाकुलानि ददर्श धीमान्स कपिः कुलानि ॥ १० ॥

परस्परं चाधिकमाक्षिपन्ति भुजांश्च पीनानधिविक्षिपन्ति ।
मत्तप्रलापानधिविक्षिपन्ति मत्तानि चान्योन्यमधिक्षिपन्ति ॥ ११ ॥

रक्षांसि वक्षांसि च विक्षिपन्ति गात्राणि कान्तासु च विक्षिपन्ति ।
रूपाणि चित्राणि च विक्षिपन्ति दृढानि चापानि च विक्षिपन्ति ॥ १२ ॥

ददर्श कान्ताश्च समालभन्त्यस्तथापरास्तत्र पुनः स्वपन्त्यः ।
सुरूपवक्त्राश्च तथा हसन्त्यः क्रुद्धाः पराश्चापि विनिःश्वसन्त्यः ॥ १३ ॥

महागजैश्चापि तथा नदद्भिः सुपूजितैश्चापि तथा सुसद्भिः ।
रराज वीरैश्च विनिःश्वसद्भिर्ह्रदा भुजंगैरिव निःश्वसद्भिः ॥ १४ ॥

नरेन्द्र शोभित होता है, उसी प्रकार चन्द्रमा सुशोभित हुए ॥ ७ ॥ प्रकाशमान चन्द्रोदयके होनेसे रात्रिका अंधकार-रूप दोष नष्ट हो गया, राक्षसोंके मांस खानेका दोष बढ़ गया । स्त्रियोंके चित्त-में अपने प्रियके प्रति प्रणय कलहका दोष उत्पन्न हुआ । ऐसा सुखको प्रकाशित करनेवाला, समर्थ प्रदोषकाल सुशोभित हुआ ॥ ८ ॥ कामको सुख देनेवाला सितारका शब्द सुन पड़ा । राक्षस-स्त्रियां अपने-अपने पतिके साथ सो गईं । भयंकर आचार विचार रखनेवाले राक्षस भी विहार करने लगे ॥ ९ ॥ हनुमानने परस्पर मिले हुए मकानोंके अनेक समूह देखे, जिनमें धन, बल आदिका अहंकार रखनेवाले तथा शराबसे मतवाले राक्षस थे । रथ, घोड़े तथा सिंहासन उन घरोंमें भरे थे । और वहां वीरताके भी अनेक चिन्ह थे ॥ १० ॥ वहां राक्षस कथोपकथनमें एक दूसरेको दुर्वचन कह रहे थे और अपनी मोटी भुजा हिला रहे थे । मतवालोंके समान प्रलाप कर रहे थे । वे मतवाले होकर एक दूसरेको निन्दा कर रहे थे । राक्षस-गण अपनी छाती कूटते थे । अपनी स्त्रीके शरीरपर अपना शरीर रख देते थे । सुन्दर चित्र बनाते थे । और दृढ़ धनुष चढ़ाते थे । कई स्त्रियाँ अपने शरीरमें अंगराग लगा रही थीं । कई स्त्रियाँ सो रही थीं । कई सुन्दर मुंह वाली स्त्रियाँ हंस रही थीं और कई क्रोध करके लम्बी साँस भर रही थीं । हनुमानने इन सबको देखा ॥ ११, १२, १३ ॥ गर्जन करनेवाले बड़े हाथियोंसे, पूज-नीय सज्जनोंसे और ठंडी सांस लेते हुए वीरोंसे युक्त वह नगरी फुंफकार छोड़नेवाले सर्पोंसे युक्त तालाबके समान मालूम हुई ॥ १४ ॥ हनुमानने उस नगरमें ऐसे राक्षस देखे जो बुद्धिमान् थे,

बुद्धिप्रधानान्रुचिराभिधानान्संश्रद्दधानाञ्जगतः प्रधानान् ।
नानाविधानान्रुचिराभिधानान्ददर्श तस्यां पुरि यातुधानान् ॥ १५ ॥
ननन्द दृष्ट्वा स च तान्सुरूपान्नानागुणानात्मगुणानुरूपान् ।
विद्योतमानान्स च तान्सुरूपान्ददर्श कांश्चिच्च पुनर्विरूपान् ॥ १६ ॥
ततो वरार्हाः सविशुद्धभावास्तेषां स्त्रियस्तत्र महानुभावाः ।
प्रियेषु पानेषु च सक्तभावाः ददर्श तारा इव सुस्वभावाः ॥ १७ ॥
स्त्रियो ज्वलन्तीस्त्रपयोपगूढा निशीथकाले रमणोपगूढाः ।
ददर्श काश्चित्प्रमदोपगूढा यथा विहंगा विहगोपगूढाः ॥ १८ ॥
अन्याः पुनर्हर्म्यतलोपविष्टास्तत्र प्रियाङ्के सुसुखोपविष्टाः ।
भर्तुः परा धर्मपरा निविष्टा ददर्श धीमान्मदनोपविष्टाः ॥ १९ ॥
अप्रावृताः काञ्चनराजिवर्णाः काश्चित्परार्ध्यास्तपनीयवर्णाः ।
पुनश्च काश्चिच्छशलक्ष्मवर्णाः कान्तप्रहीणा रुचिराङ्गवर्णाः ॥ २० ॥
ततः प्रियान्प्राप्य मनोभिरामान्सुप्रीतियुक्ताः सुमनोभिरामाः ।
गृहेषु हृष्टाः परमाभिरामा हरिप्रवीरः स ददर्श रामाः ॥ २१ ॥
चन्द्रप्रकाशाश्च हि वक्त्रमाला वक्राः सुपक्ष्माश्च सुनेत्रमालाः ।
विभूषणानां च ददर्श मालाः शतह्रदानामिव चारुमालाः ॥ २२ ॥

जो सुन्दर वचन बोलनेवाले थे, जो अपने बड़ोंकी बातोंपर श्रद्धा रखनेवाले थे, जिनकी संसारमें प्रसिद्धि थी, जिनके रूप अनेक प्रकारके थे और जिनके मनोहर नाम थे ॥ १५ ॥ सुन्दर रूपवाले, अनेक प्रकारके गुण रखनेवाले तथा अपने गुणोंके अनुसार व्यवहार करनेवाले, कई सुन्दर राक्षसोंको और कई कुरूप राक्षसोंको देखकर हनुमान बहुत प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ हनुमानने वहां राक्षस-स्त्रियाँ देखीं जो उत्तम वस्त्र और आभूषण धारण करनेके योग्य थीं। उनका अन्तःकरण विशुद्ध था, उनका स्वभाव सुन्दर था। वे अधिक प्रभाव रखनेवाली थीं और अपने प्रिय और मद्यपानमें अनुराग रखनेवाली थीं और वे ताराओंके समान मालूम पड़ती थीं ॥ १७ ॥ अपने सौंदर्यके कारण जगमगाती हुई स्त्रियाँ जो स्वभावसे लजीली थीं, मध्यरात्रिमें अपने प्रियके द्वारा आलिंगित हुईं, जिस प्रकार कोई पक्षिणी अपने पक्षीके द्वारा आलिंगित होती है, हनुमानने वैसी स्त्रियाँ देखीं ॥ १८ ॥ इनके अतिरिक्त दूसरी स्त्रियां छतपर बैठी हुई थीं। वे कामयुक्त थीं। अतएव वहां अपने अपने प्रियतमके गोदमें सुखपूर्वक बैठी थीं। वे अपने पतिको प्रसन्न करनेवाली थीं, क्योंकि पति-सेवारूप धर्म-पालनमें दक्ष थीं। हनुमानने इन स्त्रियोंको देखा ॥१९॥ कई स्त्रियां खुले मैदानमें बैठी थीं, वे विरहिणी थीं, इस कारण सोनेकी रेखाके समान कृश हो गयी थीं। वे श्रेष्ठ स्त्रियोंमें थीं। चन्द्रमाके समान पीली हो गई थीं फिर भी देखनेमें सुन्दर मालूम होती थीं ॥ २० ॥ तदनन्तर मनके अनुकूल प्रियको पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं, मनोहारिणी और अत्यन्त सुन्दरी स्त्रियां हनुमानने देखीं ॥ २१ ॥ हनुमानने चन्द्रमाके समान चमकीले मुख-समूह

नत्वेव सीतां परमाभिजातां पथि स्थिते राजकुले प्रजाताम् ।
लतां प्रफुल्लामिव साधुजातां ददर्श तन्वीं मनसाभिजाताम् ॥ २३ ॥
सनातने वर्त्मनि संनिविष्टां रामेक्षणीं तां मदनाभिविष्टाम् ।
भर्तुर्मनः श्रीमदनुप्रविष्टां स्त्रीभ्यः पराभ्यश्च सदा विशिष्टाम् ॥ २४ ॥
उष्णार्दितां सानुसृतास्रकण्ठीं पुरा वरार्होत्तमनिष्ककण्ठीम् ।
सुजातपक्ष्मामभिरक्तकण्ठीं वने प्रनृत्तामिव नीलकण्ठीम् ॥ २५ ॥
अव्यक्तरेखामिव चन्द्रलेखां पांसुप्रदिग्धामिव हेमरेखाम् ।
क्षतप्ररूढामिव वर्णरेखां वायुप्रभुग्नामिव हेमरेखाम् ॥ २६ ॥
सीतामपश्यन्मनुजेश्वरस्य रामस्य पत्नीं वदतां वरस्य ।
बभूव दुःखोपहतश्चिरस्य प्लवंगमो मन्द इवाचिरस्य ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६

स निकामं विमानेषु विचरन्कामरूपधृक् । विचचार कपिर्लङ्कां लाघवेन समन्वितः ॥१॥
आससाद च लक्ष्मीवान्राक्षसेन्द्रनिवेशनम् । प्राकारेणार्कवर्णेन भास्वरेणाभिसंवृतम् ॥२॥

देखे । सुन्दर पपनियोंवाली और टेढ़ी चितवनवाली आंखोंका समूह भी उन्होंने देखा । भूषणोंके समूह भी उन्होंने देखे जो बिजली की मालाके समान मालूम होते थे ॥ २२ ॥ परन्तु श्रेष्ठ कुलमें जन्म धारण करनेवाली, धार्मिक राजकुलमें पाली-पोसी गई तथा संकल्पमात्रसे उत्पन्न कोमलांगी सीताको, जो ठीक बढ़ी हुई प्रफुल्ल लताके समान थीं, हनुमानने नहीं देखा ॥२३॥ सनातन मार्गमें स्थित, रामचन्द्रके प्रति अनुराग रखनेवाली और उनका ध्यान करनेवाली, पतिके श्रेष्ठ मनमें सदा निवास करनेवाली, अन्य स्त्रियोंसे श्रेष्ठ सीताको हनुमानने नहीं देखा ॥ २४ ॥ विरहतापसे पीड़ित सदा आंसु गिरानेवाली पहले रामचन्द्रके साथके समय गलेमें उत्तम आभूषण धारण करनेवाली, सुन्दर पपनियोंवाली, कोमल स्वरवाली, वनमें नाचती हुई मयूरीके सदृश सीताको हनुमानने नहीं देखा ॥ २५ ॥ मेघ आदिसे ढंकी हुई चन्द्रकलाके समान, धूल आदि लिपटी हुई सुवर्णरेखाके समान, आहत स्थानके पूरनेके चिन्हके समान, वायुके द्वारा बिखेरी गई मेघपंक्तिके समान, उदार मनुष्यश्रेष्ठ रामचन्द्रकी स्त्री सीताको न देखनेसे हनुमान दुखी हुए और वे शिथिल हो गए ॥ २६, २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका पाँचवाँ सर्ग समाप्त ।

इच्छानुसार रूप धारण करके सतमहले मकानोंमें शीघ्रतापूर्वक घूमते हुए हनुमान, लंकामें विचरण करने लगे ॥ १ ॥ वीर हनुमान राक्षसराज रावणके घरमें पहुंचे, जो सूर्यके

रक्षितं राक्षसैर्भीमैः सिंहैरिव महद्वनम् । समीक्षमाणो भवनं चकाशे कपिकुञ्जरः ॥३॥
रूप्यकोपहितैश्चित्रैस्तोरणैर्हेमभूषणैः । विचित्राभिश्च कक्ष्याभिर्द्वारैश्च रुचिरावृतम् ॥४॥
गजास्थितैर्महामात्रैः शूरैश्च विगतश्रमैः । उपस्थितमसंहार्यैर्हयैः स्यन्दनयायिभिः ॥५॥
सिंहव्याघ्रतनुत्राणैर्दान्तकाञ्चनराजतैः । घोषवद्भिर्विचित्रैश्च सदा विचरितं रथैः ॥६॥
बहुरत्नसमाकीर्णं परार्ध्यासनभूषितम् । महारथसमावापं महारथमहासनम् ॥७॥
दृश्यैश्च परमोदारैस्तैस्तैश्च मृगपक्षिभिः । विविधैर्बहुसाहस्रैः परिपूर्णं समन्ततः ॥८॥
विनीतैरन्तपालैश्च रक्षोभिश्च सुरक्षितम् । मुख्याभिश्च वरस्त्रीभिः परिपूर्णं समन्ततः ॥९॥
मुदितप्रमदारत्नं राक्षसेन्द्रनिवेशनम् । वराभरणसंह्रादैः समुद्रस्वननिःस्वनम् ॥१०॥
तद्राजगुणसंपन्नं मुख्यैश्च वरचन्दनैः । महाजनसमाकीर्णं सिंहैरिव महद्वनम् ॥११॥
भेरीमृदङ्गाभिरुतं शङ्खघोषविनादितम् । नित्यार्चितं पर्वसुतं पूजितं राक्षसैः सदा ॥१२॥
समुद्रमिव गम्भीरं समुद्रसमनिःस्वनम् । महात्मनो महद्वेश्म महारत्नपरिच्छदम् ॥१३॥
महारत्नसमाकीर्णं ददर्श स महाकपिः । विराजमानं वपुषा गजाश्वरथसंकुलम् ॥१४॥
लङ्काभरणमित्येव सोऽमन्यत महाकपिः । चचार हनुमांस्तत्र रावणस्य समीपतः ॥१५॥

समान चमकीली चहारदीवारीसे घिरा हुआ था ॥ २ ॥ जिस प्रकार सिंह बड़े वनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार भयंकर राक्षस उस घरकी रक्षा कर रहे थे । उस घरको देखकर हनुमान बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ चाँदीसे बने हुए चित्रों, सुवर्ण-भूषित तोरणों, सुन्दर भीतरके द्वारों और प्रकोष्ठों (खण्ड) से वह भवन सुशोभित था ॥ ४ ॥ हाथियोंपर हाथीवान बैठे थे, फुर्तीले वीर वहाँ उपस्थित थे । वेगसे चलनेवाले घोड़े वहाँ उपस्थित थे ॥ ५ ॥ सिंह, बाघके चमड़ोंसे मढ़े हुए, हाथीदाँत, सोना और चाँदीके काम किये हुए रथ वहाँ घुमाये जा रहे थे, जिनमें लगी हुई घण्टियोंके शब्द हो रहे थे ॥ ६ ॥ उन रथोंमें अनेक तरहके रत्न जड़े हुए थे । उत्तम बिछौना बिछा हुआ था । महारथियोंके सदा बैठने-योग्य बड़े-बड़े रथोंके रखनेकी जगह वहाँ बनी हुई थी ॥ ७ ॥ अत्यन्त सुन्दर अतएव दर्शनीय हजारों प्रकारके पशु और पक्षी वहाँ इधर-उधर रक्खे हुए थे ॥ ८ ॥ विनयी किलेदार राक्षस उसकी रक्षा कर रहे थे । प्रधान सुन्दरी स्त्रियोंसे वह महल भरा हुआ था ॥ ९ ॥ रावणराजका वह घर स्त्रियोंसे परिपूर्ण था और वे स्त्रियाँ खूब प्रसन्न थीं । उनके बहुमूल्य गहनोंसे समुद्रके शब्दके समान शब्द हो रहा था ॥ १० ॥ उस घरमें राजोचित समस्त सामग्रियाँ थीं और उत्तम चन्दन भी था । अनेक श्रेष्ठ मनुष्योंसे वह घर भरा हुआ था, जैसे सिंहोंसे बड़ा वन ॥ ११ ॥ भेरी और मृदंगके शब्द हो रहे थे । शंख बज रहा था । सदा पूजित होनेवाले अमावस्याके दिन यज्ञके उपयुक्त घर राक्षसोंके द्वारा साफ किए गए थे ॥ १२ ॥ समुद्रके समान गंभीर वह घर था । समुद्रके समान ही वहाँसे शब्द हो रहा था । हीरोंके गहने जिसमें रक्खे हुए थे, महात्मा रावणका वह विशाल भवन हनुमानने देखा ॥१३॥ रावण स्वयं वहाँ विराजमान् था । उस घरमें हीरोंकी अधिकता थी । हाथी घोड़े रथ आदि भरे हुए थे । हनुमानने उस घरको देखा ॥ १४ ॥ हनुमानने उस घरको

गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च सर्वशः । वीक्षमाणोऽप्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥१६॥
अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम् । ततोऽन्यत्पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान् ॥१७॥
अथ मेघप्रतीकाशं कुम्भकर्णनिवेशनम् । विभीषणस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ॥१८॥
महोदरस्य च तथा विरूपाक्षस्य चैव हि । विद्युज्जिह्वस्य भवनं विद्युन्मालेस्तथैव च ॥१९॥
बहुदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः । शुकस्य च महावेगः सारणस्य च धीमतः ॥२०॥
तथा चेन्द्रजितो वेश्म जगाम हरियूथपः । जम्बुमालेः सुमालेश्च जगाम हरिसत्तमः ॥२१॥
रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च । वज्रकायस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः ॥२२॥
धूम्राक्षस्याथ संपातेर्भवनं मारुतात्मजः । विद्युद्रूपस्य भीमस्य घनस्य विघनस्य च ॥२३॥
शुकनाभस्य चक्रस्य शठस्य कपटस्य च । ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य लोमशस्य च रक्षसः ॥२४॥
युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य सादिनः । विद्युज्जिह्वद्विजिह्वानां तथा हस्तिमुखस्य च ॥२५॥
करालस्य विशालस्य शोणिताक्षस्य चैव हि । प्लवमानः क्रमेणैव हनुमान्मारुतात्मजः ॥२६॥
तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः । तेषामृद्धिमतामृद्धिं ददर्श स महाकपिः ॥२७॥
सर्वेषां समतिक्रम्य भवनानि समन्ततः । आससादाथ लक्ष्मीवान्राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥२८॥
रावणस्योपशायिन्यो ददर्श हरिसत्तमः । विचरन्हरिशार्दूलो राक्षसीर्विकृतेक्षणाः ॥२९॥
शूलमुद्गरहस्ताश्च शक्तितोमरधारिणः । ददर्श विविधान्गुल्मांस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥३०॥
राक्षसांश्च महाकायान्नानाप्रहरणोद्यतान् । रक्ताञ्श्वेतान्सितांश्चापि हरींश्चापि महाजवान् ॥३१॥

लंकाका भूषण समझा और वे रावणके घरके आसपास घूमने लगे ॥ १५ ॥ एक घरसे दूसरे घर तथा राक्षसोंके बगीचे देखते हुए हनुमान निर्भय होकर अटारियोंपर घूमने लगे ॥ १६ ॥ महावेगवान् हनुमान् प्रहस्त नामक राक्षसके घरसे उतरकर महापार्श्व नामक राक्षसके घरपर चढ़े ॥ १७ ॥ मेघके समान ऊंचे कुम्भकर्णके तथा विभीषणके घरपर भी वे महाकपि चढ़े ॥१८॥ महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व, विद्युन्माली, बहुदंष्ट्र, शुक, बुद्धिमान् सारणके घरोंपर बली और वेगवान् हनुमान् चढ़े ॥ १९-२० ॥ इन्द्रजित्, जम्बुमाली और सुमालीके घरोंमें भी वानरश्रेष्ठ वानरसेनापति हनुमान् गये ॥ २१ ॥ रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु तथा वज्रकायके घरोंपर भी हनुमान चढ़े ॥ २२ ॥ धूम्राक्ष, सम्पाती, विद्युद्रूप, भयानक घन और विघन, शुकनाभ, चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, ह्रस्वदंष्ट्र, लोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व, हस्तिमुख, कराल, विशाल, शोणिताक्ष आदि राक्षसोंके घरोंपर हनुमान् क्रमसे गये ॥ २३-२६ ॥ उन उत्तम उत्तम घरोंमें महायशस्वी हनुमान्ने धनी राक्षसोंकी सम्पत्ति देखी ॥ २७ ॥ उन सब घरोंको डाँककर पराक्रमी हनुमान् रावणके घरपर पहुँचे ॥ २८ ॥ वानरश्रेष्ठ हनुमान्ने घूमते हुए रावणके पलँगकी रक्षा करनेवाली राक्षसियोंको देखा, जिनकी आँखें विकृत थीं ॥ २९ ॥ शूल, मुद्गर, शक्ति और तोमर धारण करनेवाली अनेक राक्षसियोंका समूह राक्षसराजके घरमें हनुमानने देखा ॥ ३० ॥ अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्जित विशालकाय राक्षसों, तथा लाल सफेद बँधे हुए वेगवान्

कुलीनान्रूपसंपन्नान्गजान्परगजारुजान् । शिक्षितान्गजशिक्षायामैरावतसमान्युधि ॥३२॥
निहन्तॄन्परसैन्यानां गृहे तस्मिन्ददर्श सः । क्षरतश्च यथा मेघान्स्रवतश्च यथा गिरीन् ॥३३॥
मेघस्तनितनिर्घोषान्दुर्धर्षान्समरे परैः । सहस्रं वाहिनीस्तत्र जाम्बूनदपरिष्कृताः ॥३४॥
हेमजालैरविच्छिन्नास्तरुणादित्यसंनिभाः । ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने ॥३५॥
शिबिका विविधाकाराः स कपिर्मारुतात्मजः । लतागृहाणि चित्राणि चित्रशालागृहाणि च ॥३६॥
क्रीडागृहाणि चान्यानि दारुपर्वतकानि च । कामस्य गृहकं रम्यं दिवागृहकमेव च ॥३७॥
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने । स मन्दरसमप्रख्यं मयूरस्थानसंकुलम् ॥३८॥
ध्वजयष्टिभिराकीर्णं ददर्श भवनोत्तमम् । अनन्तरत्ननिचयं निधिजालं समन्ततः ॥
धीरनिष्ठितकर्माङ्गं गृहं भूतपतेरिव ॥ ३९ ॥
अर्चिर्भिश्चापि रत्नानां तेजसा रावणस्य च । विरराज च तद्वेश्म रश्मिवानिव रश्मिभिः ॥४०॥
जाम्बूनदमयान्येव शयनान्यासनानि च । भाजनानि च शुभ्राणि ददर्श हरियूथपः ॥४१॥
मध्वासवकृतक्लेदं मणिभाजनसंकुलम् । मनोरममसंबाधं कुबेरभवनं यथा ॥४२॥
नूपुराणां च घोषेण काञ्चीनां निःस्वनेन च । मृदङ्गतलनिर्घोषैर्घोषवद्भिर्विनादितम् ॥४३॥

घोड़ोंको उन्होंने देखा ॥ ३१ ॥ अच्छी जातिवाले सुन्दर हाथियोंको हनुमान्ने देखा । वे शत्रुके हाथियोंको परास्त करनेवाले थे । शिक्षित थे । ऐरावतके समान युद्धमें उपयोगी थे । शत्रुसेना-को मारनेवाले हाथियोंको हनुमान्ने उस घरमें देखा । उनसे मदधारा चू रही थी, जिस तरह मेघोंसे वारिधारा निकलती है और पर्वतोंसे झरने ॥ ३२-३३ ॥ वे हाथी मेघके समान गर्जन करनेवाले थे और युद्धमें शत्रुओंके द्वारा पराजित होनेवाले न थे । सोनेसे अलंकृत परिष्कृत तरुण सूर्यके समान उज्ज्वल हजारों सेनाएँ (सैनिक) रावणके घरमें हनुमान्ने देखीं ॥ ३४-३५ ॥ वायुपुत्र हनुमान्ने अनेक प्रकारकी शिविकाएँ (पालकी) देखीं । चित्र-युक्त लतागृह और बड़े बड़े हाल वहाँ उन्होंने देखे ॥ ३६ ॥ क्रीड़ागृह, क्रीड़ा-पर्वत, रमणीय विलासगृह, दिन-विहारगृह हनुमान्ने रावणके घरमें देखे । मन्दरके समान ऊँचा और चम-कीला, ध्वजायुक्त, अनन्त रत्नोंका भाण्डार, खजानोंसे भरा हुआ, उत्तम शिल्पियोंके द्वारा निर्मित, ब्रह्माके घरके समान, रावणका वह श्रेष्ठ घर हनुमान्ने देखा, जिसमें जगह-जगह पालतू मयूरोंके रहनेके स्थान बने हुए थे ॥ ३७-३९ ॥ रत्नोंकी किरणों तथा रावणके तेजसे वह घर सुशोभित हो रहा था, जिस प्रकार सूर्य किरणोंसे शोभित होते हैं ॥ ४० ॥ हनुमान्ने वहाँ पलंग, चौकी तथा बर्तन, सब, सुवर्णके देखे ॥ ४१ ॥ अनेक तरहकी शराबोंसे भरे हुए मणि-भाजनोंसे युक्त, सुन्दर, विशाल, कुबेरके भवनके समान, रावणके भवनको हनुमान्ने देखा ॥४२॥ नूपुरोंके घोष, करधनीके स्वन, मृदंगके शब्द तथा अन्य बाजोंके शब्दोंसे वह भवन गूँज रहा

प्रासादसंघातयुतं स्त्रीरत्नशतसंकुलम् । सुव्यूढकक्ष्यं हनुमान्प्रविवेश महागृहम् ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७

स वेश्मजालं बलवान्ददर्श व्यासक्तवैदूर्यसुवर्णजालम् ।
यथा महत्प्रावृषि मेघजालं विद्युत्पिनद्धं सविहंगजालम् ॥ १ ॥
निवेशनानां विविधाश्च शालाः प्रधानशङ्खायुधचापशालाः ।
मनोहराश्चापि पुनर्विशाला ददर्श वेश्माद्रिषु चन्द्रशालाः ॥ २ ॥
गृहाणि नानावसुराजितानि देवासुरैश्चापि सुपूजितानि ।
सर्वैश्च दोषैः परिवर्जितानि कपिर्ददर्श स्वबलार्जितानि ॥ ३ ॥
तानि प्रयत्नाभिसमाहितानि मयेन साक्षादिव निर्मितानि ।
महीतले सर्वगुणोत्तराणि ददर्श लङ्काधिपतेर्गृहाणि ॥ ४ ॥
ततो ददर्शोच्छ्रितमेघरूपं मनोहरं काञ्चनचारुरूपम् ।
रक्षोधिपस्यात्मबलानुरूपं गृहोत्तमं ह्यप्रतिरूपरूपम् ॥ ५ ॥
महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्णं श्रिया ज्वलन्तं बहुरत्नकीर्णम् ।
नानातरूणां कुसुमावकीर्णं गिरेरिवाग्रं रजसावकीर्णम् ॥ ६ ॥

था ॥ ४३ ॥ उसमें अनेक अटारियाँ थीं और सैकड़ों स्त्रियाँ । उसमें बड़े बड़े कमरे थे । हनुमान्‌ने उस विशाल घरमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका छठवाँ सर्ग समाप्त ॥६॥

बलवान् हनुमान्‌ने रावणका भवन देखा। जिसकी सोनेकी खिड़कियोंमें वैदूर्यमणियाँ लगी हुई थीं और जहाँ पक्षियोंका समूह था । वह गृह वर्षाऋतुमें बिजलीवाले मेघोंके समान मालूम होता था ॥ १ ॥ अनन्तर उत्तम शंख, आयुध और धनुषसे शोभित होनेवाले उस घरमें अनेक शालाएँ (कमरे) हनुमान्‌ने देखे । पर्वतके समान ऊँचे उस मकानके ऊपर मनोहर और विशाल चन्द्रशालाएँ (सबसे ऊपरकी छतवाला कमरा) हनुमान्‌ने देखीं ॥ २ ॥ वह गृह अनेक प्रकारके धनसे सुशोभित हो रहा था । देवता और असुर भी उसकी प्रशंसा करते थे। उन घरोंमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं थी । स्वयं रावणने अपने बलसे वे घर जीते थे । हनुमान्‌ने उस घरको देखा ॥ ३ ॥ वे घर बड़े प्रयत्नसे बनाए गए थे, मानों पृथ्वीतलमें स्वयं विश्वकर्माने ही वे घर बनाए थे । सब गुणोंसे श्रेष्ठ लंकाधिपतिके घर हनुमान्‌ने देखे ॥ ४ ॥ अनन्तर मेघके समान ऊँचा सुन्दर, सुवर्णके समान चमकनेवाला, रावणके बलके अनुरूप उस श्रेष्ठ गृहको हनुमान्‌ने देखा, जिसके समान दूसरा गृह कहीं नहीं है ॥ ५ ॥ अनेक रत्नोंसे युक्त होनेके कारण अति शोभायमान वह घर पृथिवीपर आये हुए स्वर्गके समान मालूम होता था । अनेक वृक्षोंके पुष्पोंसे व्याप्त

नारीप्रवेकैरिव दीप्यमानं तडिद्भिरम्भोधरमर्च्यमानम् ।
हंसप्रवेकैरिव वाह्यमानं श्रिया युतं खे सुकृतं विमानम् ॥ ७ ॥
यथा नगाग्रं बहुधातुचित्रं यथा नभश्च ग्रहचन्द्रचित्रम् ।
ददर्श युक्तीकृतचारुमेघचित्रं विमानं बहुरत्नचित्रम् ॥ ८ ॥
मही कृता पर्वतराजिपूर्णा शैलाः कृता वृक्षवितानपूर्णाः ।
वृक्षाः कृता पुष्पवितानपूर्णाः पुष्पं कृतं केसरपत्रपूर्णम् ॥ ९ ॥
कृतानि वेश्मानि च पाण्डुराणि तथा सुपुष्पा अपि पुष्करिण्यः ।
पुनश्च पद्मानि सकेसराणि वनानि चित्राणि सरोवराणि ॥१०॥
पुष्पाह्वयं नाम विराजमानं रत्नप्रभाभिश्च विघूर्णमानम् ।
वेश्मोत्तमानामपि चोच्चमानं महाकपिस्तत्र महाविमानम् ॥११॥
कृताश्च वैदूर्यमया विहंगा रूप्यप्रवालैश्च तथा विहंगाः ।
चित्राश्च नानावसुभिर्भुजंगा जात्यानुरूपास्तुरगाः शुभाङ्गाः ॥१२॥
प्रवालजाम्बूनदपुष्पपक्षाः सलीलमावर्जितजिह्मपक्षाः ।
कामस्य साक्षादिव भान्ति पक्षाः कृता विहंगाः सुमुखाः सुपक्षाः ॥१३॥
नियुज्यमानाश्च गजाः सुहस्ताः सकेसराश्चोत्पलपत्रहस्ताः ।
बभूव देवी च कृता सु हस्ता लक्ष्मीस्तथा पद्मिनि पद्महस्ता ॥१४॥

होनेके कारण पर्वतके उस शिखरके समान वह गृह मालूम होता था, जो पुष्परजसे भरा जाता है ॥ ६ ॥ श्रेष्ठ स्त्रियोंसे वह घर दीप्तिमान् हो रहा था, अतएव विद्युत्-युक्त मेघके समान मालूम होता था। हनुमान्ने सुन्दर रचित विमान आकाशमें देखा, जिसे श्रेष्ठ हंस खींच रहे थे ॥ ७ ॥ जिस प्रकार पर्वतका शिखर अनेक धातुओंसे चित्र विचित्र होता है, जिस प्रकार आकाश, ग्रह चन्द्रमा आदिके कारण चित्रित होता है उसी प्रकार अनेक रत्नोंसे चित्रित और जिसमें युक्तिसे मेघका सुन्दर चित्र बना हुआ था, उस विमानको हनुमान्ने देखा ॥८॥ जिस विमानकी भूमिपर पर्वत बने हुए थे, उन पर्वतोंपर वृक्षराजि लगी हुई थी। वृक्षोंमें फूल लगे हुए थे और फूल केशर तथा पत्तोंसे भरे हुए थे ॥ ९ ॥ उस विमानमें पीले घर बने हुए थे। पुष्पयुक्त छोटे छोटे तालाब थे। उन तालाबोंमेंके कमलोंमें केशर बना हुआ था। सुन्दर वन बने हुए थे जिनमें तालाब थे ॥ १० ॥ रत्नोंकी प्रभासे सुशोभित, इधर उधर घूमते हुए, देवताओंके रहनेके विमानोंमें सबसे श्रेष्ठ पुष्पक नामके महाविमानको, महाकपि हनुमान्ने देखा ॥ ११ ॥ उस विमानमें वैदूर्यमणि, चाँदी और मूँगेके पक्षी बने हुए थे। अनेक मणियोंसे सुन्दर सर्प बने हुए थे, विमानके योग्य सुन्दर अंगवाले घोड़े भी बने हुए थे ॥ १२ ॥ उन पक्षियोंके पंख मूँगे और सोनेके पुष्पसे युक्त थे। अदाके साथ मक्खी आदिके हटानेके उपयोगमें आनेवाले, टेढ़े पंखवाले और सुन्दर मुँहवाले पक्षी उसमें बने हुए थे जो कामदेवके सहायकके समान थे ॥ १३ ॥ वहाँ विमानमें पद्मयुक्त तालाबमें हाथी बनाए गए थे, जिनकी सूँड़में केसरयुक्त कमल शोभित हो रहे

इतीव तद्गृहमभिगम्य शोभनं सविस्मयो नगमिव चारुकंदरम्।
पुनश्च तत्परमसुगन्धि सुन्दरं हिमात्यये नगमिव चारुकन्दरम्॥१५॥
ततः स तां कपिरभिपत्य पूजितां चरन्पुरीं दशमुखबाहुपालिताम्।
अदृश्य तां जनकसुतां सुपूजितां सुदुःखितां पतिगुणवेगनिर्जिताम्॥१६॥
ततस्तदा बहुविधभावितात्मनः कृतात्मनो जनकसुतां सुवर्त्मनः।
अपश्यतोऽभवदतिदुःखितं मनः सचक्षुषः प्रविचरतो महात्मनः॥१७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तमः सर्गः॥ ७॥

अष्टमः सर्गः ८

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो महद्विमानं मणिरत्नचित्रितम्।
प्रतप्तजाम्बूनदजालकृत्रिमं ददर्श धीमान्पवनात्मजः कपिः॥ १॥
तदप्रमेयप्रतिकारकृत्रिमं कृतं स्वयं साध्विति विश्वकर्मणा।
दिवं गते वायुपथे प्रतिष्ठितं व्यराजतादित्यपथस्य लक्ष्म तत्॥ २॥
न तत्र किंचिन्न कृतं प्रयत्नतो न तत्र किंचिन्न महार्घरत्नवत्।
न ते विशेषा नियताःसुरेष्वपि न तत्र किंचिन्न महाविशेषवत्॥ ३॥

थे। हाथमें कमल लिये हुई और सुन्दर हाथोंवाली लक्ष्मी भी वहाँ बनायी गयी थी॥१४॥ सुन्दर कन्दरावाले पर्वतके समान दर्शनीय उस घरमें जाकर हनुमान् बहुत विस्मित हुए। पुनः वसन्तके आगमनके समय परम सुगन्धित और सुन्दर कोटरवाले वृक्षके समान दर्शनीय उस घरमें जाकर हनुमान् विस्मित हुए॥ १५॥ तदनन्तर रावणके द्वारा पालित अति प्रशंसनीय उस लंकापुरीमें जाकर और घूमकर महात्माओंके द्वारा प्रशंसित, पतिके गुणोंके स्मरणसे चंचल अतएव दुःखिनी सीताको न देखकर सुन्दर नीति-मार्गपर चलनेवाले, शिक्षित अन्तःकरणवाले अनेक प्रकारकी भावनाओंका ज्ञान रखनेवाले और निर्णय करनेमें समर्थ हनुमान्का मन बहुत दुःखी हुआ॥१६॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका सातवां सर्ग समाप्त॥ ७॥

हनुमान्ने मणिरत्नोंसे चित्रित सोनेकी खिड़कियोंसे युक्त रावणके उस घरमें रक्खा हुआ बहुत बड़ा विमान देखा, अनुपम चित्रकारियोंसे युक्त उस विमानकी स्वयं विश्वकर्माने भी प्रशंसा की थी। आकाशके वायुमार्गमें जब वह विमान जाता था तब सूर्यमार्गके समान मालूम पड़ता था॥ १, २॥ उस विमानमें ऐसा कुछ भी नहीं था जो बड़े प्रयत्नोंसे न बनाया गया हो। उसमें ऐसी कोई भी रचना नहीं थी जिसके लिए दामी रत्न काममें न लाये गये हों। उस विमानकी कोई भी रचना ऐसी नहीं थी जो विशेषता-युक्त न हो। उसके समान रचना देवविमानोंमें भी नहीं

तपः समाधानपराक्रमार्जितं मनः समाधानविचारचारिणम् ।
अनेकसंस्थानविशेषनिर्मितं ततस्ततस्तुल्यविशेषनिर्मितम् ॥ ४ ॥
मनः समाधाय तु शीघ्रगामिनं दुरासदं मारुततुल्यगामिनम् ।
महात्मनां पुण्यकृतां महर्द्धिनां यशस्विनामग्र्यमुदामिवालयम् ॥ ५ ॥
विशेषमालम्ब्य विशेषसंस्थितं विचित्रकूटं बहुकूटमण्डितम् ।
मनोभिरामं शरदिन्दुनिर्मलं विचित्रकूटं शिखरं गिरेर्यथा ॥ ६ ॥
वहन्ति यत्कुण्डलशोभितानना महाशना व्योमचरा निशाचराः ।
विवृत्तविध्वस्तविशाललोचना महाजवा भूतगणाः सहस्रशः ॥ ७ ॥
वसन्तपुष्पोत्करचारुदर्शनं वसन्तमासादपि चारुदर्शनम् ।
स पुष्पकं तत्र विमानमुत्तमं ददर्श तद्वानरवीरसत्तमः ॥ ८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९

तस्यालयवरिष्ठस्य मध्ये विमलमायतम् । ददर्श भवनश्रेष्ठं हनुमान्मारुतात्मजः ॥ १ ॥
अर्धयोजनविस्तीर्णमायतं योजनं महत् । भवनं राक्षसेन्द्रस्य बहुप्रासादसंकुलम् ॥ २ ॥

होती ॥ ३ ॥ रावणने तपस्या और भगवद्भक्तिके द्वारा पराक्रम प्राप्त करके इस विमानको प्राप्त किया था। मानसिक इच्छाके अनुसार यह विमान चलता है, जिसमें अनेक प्रकारकी उत्तम रचना वर्तमान है। इसीसे विमानमें कुछ रचनाएं समान और कुछ रचनाएँ विशेष बनी हुई हैं ॥ ४ ॥ स्वामीकी इच्छाके अनुसार यह विमान शीघ्र चलनेवाला है दूसरोंके लिए यह अप्राप्य है। वायुके समान इसका वेग है। बहुत यशस्वी, बड़े सम्पत्तिमान, इन्द्र आदि महात्माओंके घरके समान यह घर है ॥ ५ ॥ विशेष जाति प्राप्त करके वायुमें स्थित, चित्रित अनेक शिखरोंवाला मनोहर शरद् चन्द्रमाके समान निर्मल पर्वतकी शिखरके समान वह पर्वत मालूम हो रहा था ॥६॥ हजारों भूतोंका समूह उस विमानको ले चलता है। कुण्डल धारण करनेके कारण उन भूतोंका मुख मण्डल शोभित होता है। रातमें चलनेवाले भूत बहुत खाते हैं; वे बड़े वेगवान् हैं। उनकी बड़ी-बड़ी आँखें गोली और कुछ टेढ़ी सी हैं ॥ ७ ॥ वसन्तके पुष्पसमूहसे वह विमान वसन्तऋतुसे भी और अधिक सुन्दर हो गया है। वानरश्रेष्ठ हनुमानने पुष्पक नामके उस उत्तम विमानको देखा ॥ ८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुंदरकाण्डका आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

उस उत्तम घरके बीचमें बना हुआ बहुत ही निर्मल और विशाल एक उत्तम भवन हनुमानने देखा ॥ १ ॥ आधा योजन चौड़ा और एक योजन वह लम्बा था। राक्षसेन्द्र रावणके उस

मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम् । सर्वतः परिचक्राम हनूमानरिसूदनः ॥ ३ ॥
उत्तमं राक्षसावासं हनूमानवलोकयन् । आससादाथ लक्ष्मीवान्राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ ४ ॥
चतुर्विषाणैर्द्विरदैस्त्रिविषाणैस्तथैव च । परिक्षिप्तमसंबाधं रक्ष्यमाणमुदायुधैः ॥ ५ ॥
राक्षसीभिश्च पत्नीभी रावणस्य निवेशनम् । आहृताभिश्च विक्रम्य राजकन्याभिरावृतम् ॥ ६ ॥
तन्नक्रमकराकीर्णं तिमिंगिलझषाकुलम् । वायुवेगसमाधूतं पन्नगैरिव सागरम् ॥ ७ ॥
या हि वैश्रवणे लक्ष्मीर्या चन्द्रे हरिवाहने । सा रावणगृहे रम्या नित्यमेवानपायिनी ॥ ८ ॥
या च राज्ञः कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च । तादृशी तद्विशिष्टा वा ऋद्धी रक्षोगृहेष्विह ॥ ९ ॥
तस्य हर्म्यस्य मध्यस्थवेश्म चान्यत्सुनिर्मितम् । बहुनिर्यूहसंयुक्तं ददर्श पवनात्मजः ॥१०॥
ब्रह्मणोऽर्थे कृतं दिव्यं दिवि यद्विश्वकर्मणा । विमानं पुष्पकं नाम सर्वरत्नविभूषितम् ॥११॥
परेण तपसा लेभे यत्कुबेरः पितामहात् । कुबेरमोजसा जित्वा लेभे तद्राक्षसेश्वरः ॥१२॥
ईहामृगसमायुक्तैः कार्तस्वरहिरण्मयैः । सुकृतैराजितं स्तम्भैः प्रदीप्तमिव च श्रिया ॥१३॥
मेरुमन्दरसंकाशैरुल्लिखद्भिरिवाम्बरम् । कूटागारैः शुभागारैः सर्वतः समलंकृतम् ॥१४॥
ज्वलनार्कप्रतीकाशैः सुकृतं विश्वकर्मणा । हेमसोपानयुक्तं च चारुप्रवरवेदिकम् ॥१५॥
जालवातायनैर्युक्तं काञ्चनैः स्फाटिकैरपि । इन्द्रनीलमहानीलमणिप्रवरवेदिकम् ॥१६॥
विद्रुमेण विचित्रेण मणिभिश्च महाधनैः । निस्तुलाभिश्च मुक्ताभिस्तलेनाभिविराजितम्॥१७॥

विशाल भवनमें अनेक अटारियाँ बनी हुई थीं ॥ २ ॥ शत्रुसूदन हनुमान, विशाललोचना सीताको ढूंढते हुए सब जगह घूम आये ॥ ३ ॥ राक्षसोंके घर देखते हुए हनुमानने रावणका घर पाया ॥ ४ ॥ चार दांतवाले और तीन दांतवाले हाथी तथा नंगी तलवार लिए राक्षस उस घरकी रक्षा कर रहे थे ॥ ५ ॥ राक्षसियों, स्त्रियों तथा हरकर लाई हुई राजकन्याओंसे रावणका वह घर भरा हुआ था ॥ ६ ॥ नक्र, मकर, तिमिंगिल मछलियों और साँपोंसे युक्त, वायुके द्वारा कँपाये समुद्रके समान वह घर मालूम होता था ॥ ७ ॥ जो शोभा कुबेरके यहां है, जो शोभा चन्द्रमामें है, जो शोभा इन्द्रमें है वही कभी नष्ट न होनेवाली रमणीय शोभा रावणके घरमें वर्तमान है ॥ ८ ॥ राजा कुबेर, यमराज और वरुणके घरमें जो सम्पत्ति है वैसी या उससे अधिक सम्पत्ति यहां राक्षसोंके घरमें है ॥ ९ ॥ उस घरके बीचमें बहुत सुन्दर बना हुआ घर वायुपुत्र हनुमानने देखा, जिसमें अनेक चौतरे बने हुए थे ॥ १० ॥ ब्रह्माके लिए विश्वकर्माने स्वर्गमें जो अलौकिक विमान बनाया था, जो सब रत्नोंसे भूषित है और जिसका नाम पुष्पक है ॥ ११ ॥ वही विमान कुबेरने बड़ी तपस्या करके पितामहसे पाया और कुबेरको जीतकर रावणने वह विमान पाया ॥ १२ ॥ सोनेके भेड़ियोंके चित्र जिसपर बने हुए हों, ऐसे सुन्दर बने हुए खम्भोंसे उसकी शोभा बढ़ रही थी ॥ १३ ॥ मेरु और मन्दरके समान ऊंचे गुप्त गृह और विहारगृह वहां बने हुए थे जो अपनी ऊँचाईसे आकाश छू रहे थे । वे सूर्य और अग्निके समान प्रकाशमान थे ॥ १४ ॥ विश्वकर्माने सोनेकी बड़ी उत्तम सीढ़ियाँ बनायी थीं और सुन्दर वेदियाँ रची थीं ॥ १५ ॥ सोने और स्फटिककी जालियाँ, खिड़कियोंमें लगी हुई थीं । नीलम तथा अच्छी जातिके नीलमकी वेदियाँ बनी हुई थीं ॥ १६ ॥ विद्रुम तथा बहुमूल्य मणियोंसे वह सुशोभित था । गोले मोतीके दाने मणि

चन्दनेन च रक्तेन तपनीयनिभेन च । सुपुण्यगन्धिना युक्तमादित्यतरुणोपमम् ॥१८॥
विमानं पुष्पकं दिव्यमारुरोह महाकपिः । तत्रस्थः सर्वतो गन्धं पानभक्ष्यान्नसंभवम् ॥१९॥
दिव्यं संमूर्च्छितं जिघ्रन्रूपवन्तमिवानलम् । स गन्धस्तं महासत्त्वं बन्धुर्बन्धुमिवोत्तमम् ॥२०॥
इत एहीत्युवाचेव तत्र यत्र स रावणः । ततस्तां प्रस्थितः शालां ददर्श महतीं शिवाम् ॥२१॥
रावणस्य महाकान्तां कान्तामिव परस्त्रियम् । मणिसोपानविकृतां हेमजालविराजिताम् ॥२२॥
स्फाटिकैरावृततलां दन्तान्तरितरूपिकाम् । मुक्तावज्रप्रवालैश्च रूप्यचामीकरैरपि ॥२३॥
विभूषितां मणिस्तम्भैः सुबहुस्तम्भभूषिताम् । समैर्ऋजुभिरत्युच्चैः समन्तात्सुविभूषितैः ॥२४॥
स्तम्भैः पक्षैरिवात्युच्चैर्दिवं संप्रस्थितामिव । महत्या कुथयास्तीर्णां पृथिवीलक्षणाङ्कया ॥२५॥
पृथिवीमिव विस्तीर्णां स राष्ट्रगृहशालिनीम् । नादितां मत्तविहगैर्दिव्यगन्धाधिवासिताम् ॥२६॥
परार्ध्यास्तरणोपेतां रक्षोधिपनिषेविताम् । धूम्रामगुरुधूपेन विमलां हंसपाण्डुराम् ॥२७॥
पत्रपुष्पोपहारेण कल्माषीमिव सुप्रभाम् । मनसो मोदजननीं वर्णस्यापि प्रसाधिनीम् ॥२८॥
तां शोकनाशिनीं दिव्यां श्रियःसंजननीमिव । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थैस्तु पञ्च पञ्चभिरुत्तमैः ॥२९॥

वेदियोंपर रक्खे हुए थे ॥ १७ ॥ सुवर्णके समान प्रकाशमान, सुन्दर गन्धवाले, रक्तचन्दनसे युक्त वह विमान तरुण सूर्यके समान मालूम होता था ॥ १८ ॥ महाकपि हनुमान उस दिव्य पुष्पक विमानपर चढ़ गये। वहां रहकर चारो ओर से पान, भक्ष्य, अन्न आदिकी गन्ध जो चारों ओर फैल रही थी, वायुमें मिलकर हनुमानके पास तक आयी। वह गन्ध महाबली हनुमानको, जैसे कोई मित्र अपने श्रेष्ठ मित्रको बुलाता है, उसी प्रकार, 'यहां आओ' ऐसा कहकर रावणके पास बुलाने लगी। पुष्पक विमानसे उतरकर हनुमानने बड़ा सुन्दर और विशाल एक कमरा देखा ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ रावणकी अतिप्रिय बहुतही रमणीय, मनोहर स्त्रीके समान शाला देखी, जिसकी सीढ़ियाँ मणियोंसे बनी हुई थीं, जिसकी खिड़कियोंमें सोनेकी जाली लगी हुई थी ॥२२॥ वहांकी जमीनपर स्फटिक बिछा हुआ था बीच-बीचमें हाथीदांत लगे हुए थे। मुक्ता, हीरा प्रवाल, चांदी, सोना तथा अन्य मणियोंसे विभूषित अनेक खम्भे उस घरमें थे। सीधे चिकने तथा ऊँचे खम्भोंसे वे विभूषित थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ मानो ऊँचे ऊँचे स्तम्भ रूपी पक्षोंसे मानों वह घर आकाशमें उड़नेके लिए प्रस्तुत हो। पृथिवीके समस्त चित्र (तालाब, समुद्र, पर्वत आदिके) जिसमें बने थे ऐसा कालीन उसमें बिछा हुआ था ॥ २५ ॥ देश गृह आदिसे युक्त वह शाला पृथिवीके समान विस्तृत थी। वहां पक्षी बोल रहे थे और दिव्य गन्धसे वह सुवासित थी ॥२६॥ दामी बिछौने वहां बिछे हुए थे और राक्षसाधिप रावण वहां निवास करता था। अगुरुधूमसे वह शाला धूम्रायमान थी और हंसके समान स्वच्छ थी ॥ २७ ॥ पत्र पुष्प आदि उपहारकी वस्तुओंके द्वारा वह अनेक वर्णोंसे चित्रितसी हो गयी थी। वह वसिष्ठकी धेनुके समान सब कामोंको देनेवाली थी। रावणकी वह शाला मनको प्रसन्न करनेवाली तथा शरीरशोभाको बढ़ानेवाली थी ॥ २८ ॥ उस शोकको नष्ट करनेवाली शोभा उत्पन्न करनेवाली, रावणकी दिव्य शालामें हनमानकी पांचों इन्द्रियोंको रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन पांच विषयों-

तर्पयामास मातेव तदा रावणपालिता। स्वर्गोऽयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्यापि पुरीभवेत् ॥
सिद्धिर्वेयं परा हि स्यादित्यमन्यत मारुतिः ॥ ३० ॥
प्रध्यायत इवापश्यत्प्रदीपांस्तत्र काञ्चनान्। धूर्तानिव महाधूर्तैर्देवनेन पराजितान् ॥३१॥
दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च। अर्चिर्भिर्भूषणानां च प्रदीप्तेत्यभ्यमन्यत ॥३२॥
ततोऽपश्यत्कुथासीनं नानावर्णाम्बरस्रजम्। सहस्रं वरनारीणां नानावेषविभूषितम् ॥३३॥
परिवृत्तेऽर्धरात्रे तु पाननिद्रावशंगतम्। क्रीडित्वोपरतं रात्रौ प्रसुप्तं बलवत्तदा ॥३४॥
तत्प्रसुप्तं विरुरुचे निःशब्दान्तरभूषितम्। निःशब्दहंसभ्रमरं यथा पद्मवनं महत् ॥३५॥
तासां संवृतदान्तानि मीलिताक्षीणि मारुतिः। अपश्यत्पद्मगन्धीनि वदनानि सुयोषिताम् ॥३६॥
प्रबुद्धानीव पद्मानि तासां भूत्वा क्षपाक्षये। पुनः संवृतपत्राणि रात्राविव बभुस्तदा ॥३७॥
इमानि मुखपद्मानि नियतं मत्तषट्पदाः। अम्बुजानीव फुल्लानि प्रार्थयन्ति पुनः पुनः ॥३८॥
इति वामन्यत श्रीमानुपपत्त्या महाकपिः। मेने हि गुणतस्तानि समानि सलिलोद्भवैः ॥३९॥
सा तस्य शुशुभे शाला ताभिःस्त्रीभिर्विराजिता। शरदीव प्रसन्ना द्यौस्ताराभिरभिशोभिता ॥४०॥
स च ताभिः परिवृतः शुशुभे राक्षसाधिपः। यथा ह्युडुपतिः श्रीमांस्ताराभिरिव संवृतः ॥४१॥
याश्च्यवन्तेऽम्बरात्ताराः पुण्यशेषसमावृताः। इमास्ताः संगताः कृत्स्ना इति मेने हरिस्तदा ॥४२॥

के द्वारा तृप्त किया, जिस प्रकार माता तृप्त करती है ॥ २९ ॥ हनुमानने समझा कि यह स्वर्ग है, देवलोक है अथवा इन्द्रकी नगरी है, अथवा ब्रह्मलोक है ॥ ३० ॥ हनुमानने वहां सुवर्णदीपकोंको ध्यान करते हुएके समान देखा जिस प्रकार छोटा जुआड़ी बड़े जुआड़ीके द्वारा परास्त होकर निश्चेष्ट हो जाता है ॥ ३१ ॥ दीपकोंके प्रकाश, रावणके तेज और गहनोंकी चमकसे लङ्कापुरी अग्निज्वालाके समान मालूम पड़ती थी ॥ ३२ ॥ अनन्तर हनुमानने कालीनपर सोई हुई अनेकों प्रकारके वस्त्र और मालाएँ धारण किए हुईं तथा अनेक प्रकारके वेषसे विभूषित हजारों स्त्रियोंको देखा ॥ ३३ ॥ आधीरात आनेपर क्रीडा समाप्त होनेपर वे स्त्रियां शराबके नशेसे खूब सो गयी थीं ॥ ३४ ॥ वह स्त्री-समूहका शयन सुन्दर मालूम होता था तथा वहां किसी प्रकारका शब्द न था, और वे विभूषित थीं। वह शयन उस बड़े कमलवनके समान मालूम होता था, जिसमें भ्रमर और हंस शब्दहीन हों ॥ ३५ ॥ हनुमानने उन स्त्रियोंके कमलगन्धी मुंह देखे, उनके दांत मिल गये थे, आंखें बन्द हो गई थीं ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार रात्रिके अन्तमें कमल विकसित होकर रात आनेपर पुनः मुकुलित हो जाते हैं उसी प्रकार उन स्त्रियोंके मुखकमल रातको मुकुलित हो गये थे ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार विकसित कमलको भ्रमर चाहते हैं उसी प्रकार इन मुखकमलोंको भी मतवाले भ्रमर अवश्य ही चाहते होंगे ॥ ३८ ॥ महाकपि हनुमानने युक्तियोंसे यही निश्चित किया। उन्होंने उन मुखोंको गन्ध आदि गुणोंके कारण कमलके समान समझा ॥ ३९ ॥ रावणकी वह शाला उन स्त्रियोंसे सुशोभित हुई, जिस प्रकार शरद्का आकाश ताराओंसे सुशोभित होता है ॥ ४० ॥ उन स्त्रियोंसे घिरा हुआ राक्षसराज शोभित ऐसे हुआ, जिस प्रकार ताराओंसे घिरा चन्द्रमा शोभित होता है ॥४१॥ हनुमानने समझा कि पुण्य समाप्त होनेपर आकाशसे जो ताराएँ गिरती हैं, वेही आकर यहाँ इकट्ठी हुई हैं ॥ ४२ ॥

ताराणामिव सुव्यक्तं महतीनां शुभार्चिषाम् । प्रभावर्णप्रसादाश्च विरेजुस्तत्र योषिताम् ॥४३॥
व्यावृत्तकचपीनस्रक्प्रकीर्णवरभूषणाः । पानव्यायामकालेषु निद्रोपहतचेतसः ॥४४॥
व्यावृत्ततिलकाःकाश्चित्काश्चिदुद्भ्रान्तनूपुराः । पार्श्वे गलितहाराश्च काश्चित्परमयोषितः ॥४५॥
मुक्ताहारावृताश्चान्याःकाश्चित्प्रस्रस्तवाससः । व्याविद्धरशनादामाः किशोर्य इव वाहिताः ॥४६॥
अकुण्डलधराश्चान्या विच्छिन्नमृदितस्रजः । गजेन्द्रमृदिताः फुल्ला लता इव महावने ॥४७॥
चन्द्रांशुकिरणाभाश्च हाराः कासांचिदुद्गताः । हंसा इव बभुः सुप्ताः स्तनमध्येषु योषिताम् ॥४८॥
अपरासां च वैदूर्याः कादम्बा इव पक्षिणः । हेमसूत्राणि चान्यासां चक्रवाका इवाभवन् ॥४९॥
हंसकारण्डवोपेताश्चक्रवाकोपशोभिताः । आपगा इव ता रेजुर्जघनैः पुलिनैरिव ॥५०॥
किङ्किणीजालसंकाशास्ता हेमविपुलाम्बुजाः । भावग्राहा यशस्तीराः सुप्ता नद्य इवाबभुः ॥५१॥
मृदुष्वङ्गेषु कासांचित्कुचाग्रेषु च संस्थिताः । बभूवुर्भूषणानीव शुभा भूषणराजयः ॥५२॥
अंशुकान्ताश्च कासांचिन्मुखमारुतकम्पिताः । उपर्युपरि वक्त्राणां व्याधूयन्ते पुनः पुनः ॥५३॥
ताः पताका इवोद्धूताः पत्नीनां रुचिरप्रभाः । नानावर्णसुवर्णानां वक्त्रमूलेषु रेजिरे ॥५४॥
ववल्गुश्चात्र कासांचित्कुण्डलानि शुभार्चिषाम्। मुखमारुतसंकम्पैर्मन्दं मन्दं च योषिताम् ॥५५॥

क्योंकि सुंदर प्रकाशवाली बड़ी-बड़ी ताराओंकी कान्ति, रूप और प्रसन्नता इन स्त्रियोंमें विराजमान था ॥ ४३ ॥ कई स्त्रियोंके बाल, मोटी मालाएँ तथा सुन्दर भूषण शिथिल हो गये थे । पानके बाद नृत्य गीत आदिके समय थकावटसे वे निद्राविवश हो रही थीं ॥ ४४ ॥ कई स्त्रियोंके कस्तूरी आदिके तिलक पुँछ गये थे । कईके नूपुर अपने स्थानसे हट गये थे और कई अति सुन्दरी स्त्रियोंके हार गिर गये थे ॥ ४५ ॥ कई स्त्रियोंके मोतियोंके हार टूट गये थे, वस्त्र खिसक गये थे, करधनी अलग हो गई थीं, अतएव बोझ ढोकर थकी घोड़ीके समान वे मालूम होती थीं ॥ ४६ ॥ कई स्त्रियाँ कुण्डलहीन टूटी और मसली मालाएँ धारण किए हुए मालूम होती थीं कि महावनमें फूलित लता हाथीके द्वारा मसली गयी है ॥ ४७ ॥ चन्द्रकी किरणोंके समान प्रकाशमान हार कई स्त्रियोंके स्तनोंके मध्यमें पड़े हुए थे, जो स्त्रियोंके स्तनोंके मध्यमें सोए हुए हंसके समान मालूम पड़ते थे ॥ ४८ ॥ दूसरी स्त्रियोंके वैदूर्य मणिके हार जलकाकके समान मालूम होते थे । कुछ स्त्रियोंकी सोनेकी सिकड़ी चक्रवाकके समान मालूम पड़ती थी ॥ ४९ ॥ इस प्रकार हंस, जलकाक और चक्रवाकसे युक्त तथा जघन रूपी तीरभूमिसे युक्त वे स्त्रियाँ नदीके समान मालूम पड़ीं ॥ ५० ॥ वे सोई हुई स्त्रियाँ नदीके समान मालूम पड़ती थीं । उनकी करधनी कौड़ियोंके समान थीं । उनके सोनेके आभूषण कमलके समान थे । उनकी शृङ्गार चेष्टाएँ मगरके समान थीं । पतिकी प्रसन्नताकी कीर्ति तीरके समान थी ॥ ५१ ॥ किसी स्त्रीके कोमल अंगों पर तथा स्तनों-पर नखक्षत भूषणके समान मालूम पड़ता था ॥ ५२ ॥ कई स्त्रियोंके श्वाससे कँपाया हुआ वस्त्रका कोर बार-बार उनके मुँहपर गिरता और वे उसे हटाती थीं ॥ ५३ ॥ रावणकी स्त्रियोंके द्वारा उड़ाया हुआ वह चमकीला वस्त्र अनेक रंगवाले सुवर्णके तारोंसे बनी हुई पताकाके समान मालूम पड़ता था ॥ ५४ ॥ अत्यन्त दीप्तिमती कई स्त्रियोंके कुण्डल उनके श्वाससे कम्पित होकर धीरे-धीरे

शर्करासवगन्धः स प्रकृत्या सुरभिः सुखः । तासां वदननिःश्वासः सिषेवे रावणं तदा ॥५६॥
रावणाननशङ्काश्च काश्चिद्रावणयोषितः । मुखानि च सपत्नीनामुपाजिघ्रन्पुनः पुनः ॥५७॥
अत्यर्थं सक्तमनसो रावणे ता वरस्त्रियः । अस्वतंत्राः सपत्नीनां प्रियमेवाचरंस्तदा ॥५८॥
बाहू उपनिधायान्याः पारिहार्यविभूषिताः । अंशुकानि च रम्याणि प्रमदास्तत्र शिश्यिरे ॥५९॥
अन्या वक्षसि चान्यस्यास्तस्याःकाचित्पुनर्भुजम्। अपरा त्वङ्कमन्यस्यास्तस्याश्चाप्यपरा कुचौ॥६०॥
ऊरुपार्श्वकटीपृष्ठमन्योन्यस्य समाश्रिताः । परस्परनिविष्टाङ्ग्यो मदस्नेहवशानुगाः ॥६१॥
अन्योन्यस्याङ्गसंस्पर्शात्प्रीयमाणाःसुमध्यमाः। एकीकृतभुजाः सर्वाः सुषुपुस्तत्र योषितः ॥६२॥
अन्योन्यभुजसूत्रेण स्त्रीमालाग्रथिता हि सा । मालेव ग्रथिता सूत्रे शुशुभे मत्तषट्पदा ॥६३॥
लतानां माधवे मासि फुल्लानां वायुसेवनात् । अन्योन्यमालाग्रथितं संसक्तकुसुमोच्चयम् ॥६४॥
प्रतिवेष्टितसुस्कन्धमन्योन्यभ्रमराकुलम् । आसीद्वनमिवोद्धूतं स्त्रीवनं रावणस्य तत् ॥६५॥
उचितेष्वपि सुव्यक्तं न तासां योषितां तदा । विवेकं शक्यमाधातुं भूषणाङ्गाम्बरस्रजाम् ॥६६॥
रावणे सुखसंविष्टे ताः स्त्रियो विविधप्रभाः । ज्वलन्तः काञ्चना दीपाः प्रेक्षन्तो निमिषा इव ॥६७॥
राजर्षिविप्रदैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः । रक्षसां चाभवन्कन्यास्तस्य कामवशंगताः ॥६८॥

हिल रहे थे ॥ ५५ ॥ स्वभावसे सुगन्धित तथा सुखकर गुड़की शराबकी गन्धसे युक्त उन स्त्रियोंके मुखकी वायु रावणकी सेवा करती थी ॥ ५६ ॥ कई रावणकी स्त्रियाँ रावणके मुंहके भ्रमसे अपनी सौतोंके मुँह चूमने लगीं ॥ ५७ ॥ वे सुन्दरियाँ रावणमें अत्यन्त अनुराग रखती थीं । शराबके नशेसे पराधीन थीं, अतएव अपनी सौतोंका उनलोगोंने विरोधाचरण नहीं किया ॥ ५८ ॥ कई स्त्रियाँ वलय-विभूषित अपनी बाहु सिरके नीचे रखकर, और कई सुन्दर वस्त्र सिरके नीचे रखकर सो रही थीं ॥ ५९ ॥ कई स्त्रियाँ दूसरेकी छातीपर और दूसरी उसकी बाहु पर, कोई किसीकी गोदमें तथा कोई किसीके स्तनोंपर, सो रही थीं ॥ ६० ॥ कई स्त्रियाँ आपसमें जंघा, बगल, कमर और पीठ पकड़कर सोई हुई थीं । मद और स्नेहके अधीन उन स्त्रियोंके अंग आपसमें मिल गए थे ॥ ६१ ॥ वे परस्पर अंगोंके संस्पर्शसे बहुत प्रसन्न होती थीं और अपनी भुजाएँ आपसमें मिलाकर वे सो रहीं थीं ॥ ६२ ॥ परस्पर भुजसूत्र के द्वारा उन स्त्रियोंकी एक मालासी बन गयी थी । सूतसे गूँथी हुई और मतवाले भौरोंसे युक्त मालाके समान वह स्त्री-माला शोभित हो रही थी ॥ ६३ ॥ रावणका वह स्त्रीवन लतावनके समान था । वसन्तऋतुमें लताएँ और स्त्रियाँ दोनों प्रफुल्लित होती हैं । वायुके कारण आपसमें मिलकर मालाके समान हो जाती हैं । लताएँ पुष्पोंसे लद जाती हैं, स्त्रियोंकी नीवि आपसमें सटी हुई है । आपसमें कन्धोंको वेष्टित कर रक्खा है । भ्रमरोंसे अथवा केशोंसे दोनों युक्त हैं ॥ ६४-६५ ॥ स्त्रियाँ यद्यपि ठीक स्थानोंपर गहने वस्त्र और पुष्प मालाएँ पहने हुई हैं, फिर भी कौन गहना किसका है, इसका निश्चय करना कठिन है ॥ ६६ ॥ रावणके सुखपूर्वक सो जानेपर उन स्त्रियोंको सोनेकी दीवारपर रक्खे हुए दीपक अनिमिष-नेत्रोंसे देखने लगे ॥ ६७ ॥ राजर्षि, ब्राह्मण, दैत्य, गन्धर्व तथा राक्षसोंकी कन्याएँ कामवश होकर रावणकी स्त्रियाँ बनी थीं ॥ ६८ ॥

युद्धकामेन ताः सर्वा रावणेनहृताः स्त्रियः । समदा मदनेनैव मोहिताः काश्चिदागताः ॥६९॥
न तत्र काश्चित्प्रमदाः प्रसह्य वीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धाः ।
न चान्यकामापि न चान्यपूर्वा विना वरार्हां जनकात्मजां तु ॥७०॥
न चाकुलीना न च हीनरूपा नादक्षिणा नानुपचारयुक्ता ।
भार्याभवत्तस्य न हीनसत्त्वा न चापि कान्तस्य न कामनीया ॥७१॥
बभूव बुद्धिस्तु हरीश्वरस्य यदीदृशी राघवधर्मपत्नी ।
इमा महाराक्षसराजभार्याः सुजातमस्येति हि साधुबुद्धेः ॥७२॥
पुनश्च सोऽचिन्तयदात्तरूपो ध्रुवं विशिष्टा गुणतो हि सीता ।
अथायमस्यां कृतवान्महात्मा लङ्केश्वरः कष्टमनार्यकर्म ॥७३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०

तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम् । अवेक्षमाणो हनुमान्ददर्श शयनासनम् ॥ १ ॥
दान्तकाञ्चनचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः । महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥ २ ॥

बहुतसी स्त्रियोंको युद्धमें हरकर रावण ले आया था । कोई मतवाली कामसे मोहित होकर रावणके पास स्वयं आई थी ॥ ६९॥ बलवान् होनेपर भी रावण बलपूर्वक किसी स्त्रीको वहाँ नहीं लाया था; किन्तु वे स्त्रियाँ गुणके कारण उसे मिली थीं । ऐसी कोई स्त्री वहाँ नहीं थी जो दूसरेको चाहती हो, जानकीको छोड़कर ऐसी भी कोई स्त्री नहीं थी जो पहले किसी दूसरेकी स्त्री रह चुकी हो ॥ ७० ॥ कोई अकुलीन, हीनरूपा, अदक्ष तथा उत्तम भूषण रहित रावणकी स्त्री नहीं थी । ऐसी भी कोई न थी जो अपने पतिको प्रिय न हो ॥ ७१ ॥ साधुबुद्धि हनुमानके मनमें ऐसा विचार हुआ कि जिस राक्षसराजकी ये स्त्रियाँ जिस प्रकार हैं, उसी प्रकार रामचंद्रजीकी धर्मपत्नी सीताभी होगई हो तो अवश्यही रावणके लिए यह कल्याणकी बात होगी । तात्पर्य यह है कि सीताने रामप्रेम भुलाकर रावणका ही आश्रय लिया हो तो रामचन्द्र काहे लंकापर चढ़ाई करेंगे और काहेको रावणका विनाश होगा ॥ पुनः हनुमानने विचार किया कि सीतामें पातिव्रत आदि गुण अधिक हैं । अतएव मायारूप धारण करके महात्मा लंकेश्वरने सीताके सम्बन्धमें ऐसा निन्दित कर्म किया । अर्थात्, उनका हरण किया । यदि वे रावणपर अनुराग रखतीं तो हरण करनेकी नौबत न आती । अतएव सीताके सम्बन्धमें मेरा पूर्वविचार गलत है ॥७३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका नवां सर्ग समाप्त ।

उस शालामें इधर-उधर देखते हुए हनुमानने स्फटिककी बनी हुई और रत्नोंसे भूषित पलंग रखनेकी वेदी देखी, वह स्वर्गीय पदार्थोंसे बनी हुई सी थी ॥ १ ॥ उस पलंगके पाये, पाटी आदि हाथीदांत तथा सोनेके बने हुए थे, इस कारण वह पलंग चित्रित सा हो गया था ।

तस्य चैकतमे देशे दिव्यमालोपशोभितम् । ददर्श पाण्डुरं छत्रं ताराधिपतिसंनिभम् ॥ ३ ॥
जातरूपपरिक्षिप्तं चित्रभानोः समप्रभम् । अशोकमालाविततं ददर्श परमासनम् ॥ ४ ॥
वालव्यजनहस्ताभिर्वीज्यमानं समन्ततः । गन्धैश्च विविधैर्जुष्टं वरधूपेन धूपितम् ॥ ५ ॥
परमास्तरणास्तीर्णमाविकाजिनसंवृतम् । दामभिर्वरमाल्यानां समन्तादुपशोभितम् ॥ ६ ॥
तस्मिञ्जीमूतसंकाशं प्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलम् । लोहिताक्षं महाबाहुं महारजतवाससम् ॥ ७ ॥
लोहितेनानुलिप्ताङ्गं चन्दनेन सुगन्धिना । संध्यारक्तमिवाकाशे तोयदं सतडिद्गुणम् ॥ ८ ॥
वृतमाभरणैर्दिव्यैः सुरूपं कामरूपिणम् । सवृक्षवनगुल्माढ्यं प्रसुप्तमिव मन्दरम् ॥ ९ ॥
क्रीडित्वोपरतं रात्रौ वराभरणभूषितम् । प्रियं राक्षसकन्यानां राक्षसानां सुखावहम् ॥१०॥
पीत्वाप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः । भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम् ॥११॥
निःश्वसन्तं यथा नागं रावणं वानरोत्तमः । आसाद्य परमोद्विग्नः सोपासर्पत्सुभीतवत् ॥१२॥
अथारोहणमासाद्य वेदिकान्तरमाश्रितः । क्षीबं राक्षसशार्दूलं प्रेक्षते स्म महाकपिः ॥१३॥
शुशुभे राक्षसेन्द्रस्य स्वपतः शयनं शुभम् । गन्धहस्तिनि संविष्टे यथा प्रस्रवणं महत् ॥१४॥
काञ्चनाङ्गदसंनद्धौ ददर्श स महात्मनः । विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ ॥१५॥

उस पलंगपर बहुत ही दामी, बहुत ही सुन्दर और वैदूर्य मणियुक्त बिछौने और चादर बिछीं हुई थीं ॥ २ ॥ उस पलंगके एक ओर स्वर्गीय मालाओंसे युक्त श्वेत छत्र हनुमानने देखा जो चन्द्रमाके समान था ॥ ३ ॥ सोनेके कामवाले, अग्निके समान चमकीले और हुए थीं। मालाओंसे युक्त पलंग हनुमानने देखा ॥ ४ ॥ वहाँ छोटी-छोटी चंवरी हाथमें लेकर स्त्रियाँ रावण-पर हवा कर रही थीं, अनेक सुगन्धित पदार्थ वह लगाये हुए था और सुन्दर धूप वहाँ जल रही थी ॥ ५ ॥ वह पलंग भेड़के चमड़ेसे मढ़ा हुआ था, और उसके चारो ओर श्रेष्ठ मालाएँ लगी हुई थीं ॥ ६ ॥ हनुमानने उस पलंगपर रावणको सोते देखा, रावण नीले मेघके समान था, उसके चमकीले कुण्डल शोभा दे रहे थे, उसकी बाहु विशाल थीं, आँखें लाल थीं, सुनहला वस्त्र पहने हुए था ॥ ७ ॥ सुगन्धित लाल चन्दन उसके शरीरमें लगा हुआ था, अतएव सायंकालके रक्त आकाशमें बिजलीवाले मेघके समान वह मालूम होता था ॥ ८ ॥ दिव्य गहने वह पहने हुए था, बड़ा सुन्दर था और इच्छानुसार रूप धारण कर सकता था, मालूम होता था कि वृक्ष वन गुल्मोंसे युक्त मन्दरपर्वत सो रहा हो ॥ ९ ॥ रात्रिकी क्रीड़ा वह कर चुका था, सुन्दर गहने पहने हुए था, राक्षस-कन्याओंको प्रिय और राक्षसोंको सुख देनेवाला था ॥ १० ॥ वह शराब भी पी चुका था, हनुमानने ऐसे वीर राक्षसाधिप रावणको चमकीले पलंगपर सोते देखा ॥ ११ ॥ हाथीके समान सांस लेते हुए रावणके समीप जाकर हनुमान बहुत उद्विग्न हुए, और डरे हुएके समान वहाँसे लौटे ॥ १२ ॥ सीढ़ीपर चढ़कर हनुमान एक वेदीपर जाकर खड़े हो गए और वहाँसे मत्त राक्षसश्रेष्ठ रावणको देखने लगे ॥ १३ ॥ रावणके सोनेसे वह पलँग ऐसा शोभायमान हो रहा था, जैसे गन्धहस्तीके (जिसकी गन्ध पाकर दूसरे हाथी भाग जाते हैं) रहनेसे विशाल प्रस्रवण पर्वत शोभता है ॥ १४ ॥ इन्द्रध्वजके समान उसके विशाल बाहु फैले

ऐरावतविषाणाग्रैरापीडनकृतव्रणौ । वज्रोल्लिखितपीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षतौ ॥१६॥
पीनौ समसुजातांसौ संगतौ बलसंयुतौ । सुलक्षणनखाङ्गुष्ठौ स्वङ्गुलीयकलक्षितौ ॥१७॥
संहतौ परिघाकारौ वृत्तौ करिकरोपमौ । विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पञ्चशीर्षाविवोरगौ ॥१८॥
शशक्षतजकल्पेन सुशीतेन सुगन्धिना । चन्दनेन परार्ध्येन स्वनुलिप्तौ स्वलंकृतौ ॥१९॥
उत्तमस्त्रीविमृदितौ गन्धोत्तमनिषेवितौ । यक्षपन्नगगन्धर्वदेवदानवराविणौ ॥२०॥
ददर्श स कपिस्तस्य बाहू शयनसंस्थितौ । मन्दरस्यान्तरे सुप्तौ महाही रुषिताविव ॥२१॥
ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यामुभाभ्यां राक्षसेश्वरः । शुशुभेऽचलसंकाशः शृङ्गाभ्यामिवमन्दरः ॥२२॥
चूतपुंनागसुरभिर्बकुलोत्तमसंयुतः । मृष्टान्नरससंयुक्तः पानगन्धपुरःसरः ॥२३॥
तस्य राक्षसराजस्य निश्चक्राम महामुखात् । शयानस्य विनिःश्वासः पूरयन्निव तद्गृहम् ॥२४॥
मुक्तामणिविचित्रेण काञ्चनेन विराजिता । मुकुटेनापवृत्तेन कुण्डलोज्ज्वलिताननम् ॥२५॥
रक्तचन्दनदिग्धेन तथा हारेण शोभिना । पीनायतविशालेन वक्षसाभिविराजता ॥२६॥
पाण्डुरेणापविद्धेन क्षौमेण क्षतजेक्षणम् । महार्हेण सुसंवीतं पीतेनोत्तरवाससा ॥२७॥
माषराशिप्रतीकाशं निःश्वसन्तं भुजङ्गवत् । गाङ्गे महति तोयान्ते प्रसुप्तमिव कुञ्जरम् ॥२८॥
चतुर्भिः काञ्चनैर्दीपैर्दीप्यमानं चतुर्दिशम् । प्रकाशीकृतसर्वाङ्गं मेघं विद्युद्गणैरिव ॥२९॥

थे और उनमें सोनेके अंगद (बिजायट) पड़े हुए थे ॥ १५ ॥ ऐरावतके दाँतोंके आघातसे राव हो गए थे । वज्रसे जिनके मोटे कन्धे छिद गये थे और जो विष्णुके चक्रसे घायल नहीं लाया ॥ १६ ॥ उसके बाहु मोटे थे, कन्धेसे खूब सटे हुए थे, बड़े बलवान् थे । अँगूठेके नख सुन्दर थे और सुन्दर उँगलियोंसे युक्त थे ॥ १७ ॥ खूब पुष्ट परिघके समान विशाल गोले और हाथीकी सूँड़के समान लम्बे थे । वे बाहु पाँच सिरवाले दो साँपोंके समान पलँगपर फैले हुए थे ॥ १८ ॥ खरहेके रक्तके समान अधिक लाल, शीतल, सुगन्धित और उत्तम चन्दनसे उसके बाहु लिप्त थे ॥१९॥ श्रेष्ठ स्त्रियोंने उनका आलिंगन किया था । उत्तम गन्धोंसे वे सेवित हुए थे और उन दोनोंने यक्ष, पन्नग, गन्धर्व और देवताओंको रुलाया था ॥ २० ॥ हनुमानने पलँगपर पड़े उसके दोनों बाहुको देखा, मानो, मन्दराचलके बीचमें क्रोधित दो बड़े साँप पड़े हों ॥ २१ ॥ उन दो बाहुओंसे युक्त राक्षसेश्वर दो शिखरोंसे युक्त मन्दरपर्वतके समान मालूम पड़ता था ॥ २२ ॥ सोते हुए राक्षसराजके मुखसे निकली हुई साँस उस समूचे घरमें भर रही थी । आम, सुपारी, बकुल, उत्तम अन्न और रस तथा शराबकी गन्ध उस साँससे आती थी ॥ २३ ॥ २४ ॥ सोनेके कारण उसका मुकुट हट गया था, जो मोतियों, मणियों तथा सोनेका बना हुआ था और कुण्डलसे उसका मुख प्रकाशित हो रहा था ॥ २५ ॥ मोटी और चौड़ी छातीपर रक्त चन्दन लगा हुआ था और हारके द्वारा वह सुशोभित हो रही थी ॥ २६ ॥ श्वेत पहननेका रेशमी वस्त्र शिथिल हो गया था । कीमती पीली चादर ओढ़े हुए था ॥ २७ ॥ उड़दकी राशिके समान वह मालूम होता था । साँपके समान लम्बी साँस ले रहा था । गंगाके बीचमें सोये हुए हाथीके समान वह मालूम होता था ॥ २८ ॥ सोनेकी चार दीवारों पर रक्खे हुए दीपोंसे उसका

पादमूलगताश्चापि ददर्श सुमहात्मनः । पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥३०॥
शशिप्रकाशवदना वरकुण्डलभूषणाः । अम्लानमाल्याभरणा ददर्श हरियूथपः ॥३१॥
नृत्यवादित्रकुशला राक्षसेन्द्रभुजाङ्कगाः । वराभरणधारिण्यो निषण्णा ददृशे कपिः ॥३२॥
वज्रवैदूर्यगर्भाणि श्रवणान्तेषु योषिताम् । ददर्श तापनीयानि कुण्डलान्यङ्गदानि च ॥३३॥
तासां चन्द्रोपमैर्वक्त्रैः शुभैर्ललितकुण्डलैः । विराजत विमानं तन्नभस्तारागणैरिव ॥३४॥
मदव्यायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः । तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः ॥३५॥
अङ्गहारैस्तथैवान्या कोमलैर्नृत्यशालिनी । विन्यस्तशुभसर्वाङ्गी प्रसुप्ता वरवर्णिनी ॥३६॥
काचिद्वीणां परिष्वज्य प्रसुप्ता संप्रकाशते । महानदीप्रकीर्णेव नलिनी पोतमाश्रिता ॥३७॥
अन्या कक्षगतेनैव मड्डुकेनासितेक्षणा । प्रसुप्ता भामिनी भाति बालपुत्रेव वत्सला ॥३८॥
पटहं चारुसर्वाङ्गी न्यस्य शेते शुभस्तनी । चिरस्य रमणं लब्ध्वा परिष्वज्येव कामिनी ॥३९॥
काचिद्वीणां परिष्वज्य सुप्ता कमललोचना । वरं प्रियतमं गृह्य सकामेव हि कामिनी ॥४०॥
विपञ्चीं परिगृह्यान्या नियता नृत्यशालिनी । निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी ॥४१॥
अन्या कनकसंकाशैर्मृदुपीनैर्मनोरमैः । मृदङ्गं परिविद्ध्याङ्गैः प्रसुप्ता मत्तलोचना ॥४२॥

समस्त अङ्ग दीख पड़ता था, जिस प्रकार, विद्युतोंसे मेघका सब भाग प्रकाशित हो जाता है ॥२९॥ राक्षसपति रावणके उस घरमें हनुमानने उसके पैरोंकी ओर पड़ी हुई उसकी स्त्रियोंको भी देखा ॥३०॥ चन्द्रमाके समान उनके मुख प्रकाशित हो रहे थे। सुन्दर कुण्डल धारण किये हुए थीं। उनकी मालाएँ कभी मुरझानेवाली न थीं। हनुमानने उन्हें देखा ॥३१॥ नाचने गानेमें कुशल, रावणको भुजाओंमें आश्रय पानेवाली, श्रेष्ठ भूषण पहननेवाली स्त्रियोंको हनुमानने सोती देखा ॥ ३२ ॥ हनुमानने स्त्रियोंके कानोंके पास हीरा और वैदूर्य जड़े हुए सोनेके कुण्डल और अँगद देखे (हाथपर माथा रखकर सोनेसे ऐसा हो सकता है, क्योंकि अँगद हाथका गहना है और कुण्डल कानका) ॥ ३३ ॥ उनके चन्द्रमाके समान मुखों और सुन्दर कुण्डलोंसे वह स्थान सुशोभित होता था, जैसे ताराओंसे आकाश सुशोभित होता है ॥ ३४ ॥ नशा और थकावटसे खिन्न राक्षसेन्द्रकी स्त्रियोंने जहाँ जहाँ स्थान पाया वहीं वे सो गईं ॥ ३५ ॥ कोमल अँगविक्षेपके द्वारा नृत्य करनेवाली सुन्दर समस्त अँगोंवाली कई सुन्दरियाँ सोई हुई थीं ॥ ३६ ॥ कोई स्त्री वीणाका आलिंगन करके सोयी हुई ऐसी मालूम पड़ती थी कि नदीमें पड़ी हुई कोई कमलिनी दैवात् जहाज पाकर उससे लिपट जाय ॥ ३७ ॥ कोई काली आँखोंवाली स्त्री बगलमें मंडुक (एक बाजा) लेकर सो गई थी। मालूम पड़ता था कि कोई वत्सला माता अपने बच्चेको लेकर पड़ी हो ॥ ३८ ॥ सर्वाङ्ग सुन्दरी शुभस्तनी कोई स्त्री पटह लेकर सोई हुई थी, मानों, बहुत दिनपर मिले पतिका आलिंगन कर कोई कामिनी सो रही हो ॥ ३९ ॥ कोई कमलनयनी वीणाका आलिंगन करके सोई हुई थी, मानो कोई अनुरागवती कामिनी अपने सुन्दर पतिको लेकर पड़ी हो ॥ ४० ॥ नाचनेवाली दूसरी स्त्री विपंची (सितार) लेकर सो गई थी; मानो वह पतिके साथ सोई हो ॥ ४१ ॥ दूसरी स्त्री सुवर्णके समान गौर, कोमल, मोटे और सुन्दर अँगोंसे मृदङ्गको दबाकर सो

भुजपाशान्तरस्थेन कक्षगेण कृशोदरी। पणवेण सहानिन्द्या सुप्ता मदकृतश्रमा ॥४३॥
डिण्डिमं परिगृह्यान्या तथैवासक्तडिण्डिमा। प्रसुप्ता तरुणं वत्समुपगुह्येव भामिनी ॥४४॥
काचिदाडम्बरं नारी भुजसंभोगपीडितम्। कृत्वा कमलपत्राक्षी प्रसुप्ता मदमोहिता ॥४५॥
कलशीमपविद्ध्यान्या प्रसुप्ता भाति भामिनी। वसन्ते पुष्पशबला मालेव परिमार्जिता ॥४६॥
पाणिभ्यां च कुचौ काचित्सुवर्णकलशोपमौ। उपगुह्याबला सुप्ता निद्राबलमुपागता ॥४७॥
अन्या कमलपत्राक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना। अन्यामालिङ्ग्य सुश्रोणीं निद्रावशमुपागता ॥४८॥
आतोद्यानि विचित्राणि परिष्वज्य वरस्त्रियः। निपीड्य च कुचैः सुप्ताः कामिन्यः कामुकानिव ॥४९॥
तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे। ददर्श रूपसंपन्नामथ तां स कपिः स्त्रियम् ॥५०॥
मुक्तामणिसमायुक्तैर्भूषणैः सुविभूषिताम्। विभूषयन्तीमिव च स्वश्रिया भवनोत्तमम् ॥५१॥
गौरीं कनकवर्णाभामिष्टामन्तःपुरेश्वरीम्। कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम् ॥५२॥
स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः। तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसंपदा ॥
हर्षेण महता युक्तो ननन्द हरियूथपः ॥५३॥

आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं ननन्द चिक्रीड जगौ जगाम।
स्तम्भानरोहन्निपपात भूमौ निदर्शयन्स्वां प्रकृतिं कपीनाम् ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

रही थी ॥४२॥ नशेसे थकी हुई कोई कृशोदरी दोनों भुजाओंके बीचमें पणव (एक बाजा) लेकर सोई हुई थी। वह अनिंद्य सुन्दरी थी ॥ ४३ ॥ डिंडिम नामक बाजेसे प्रेम रखनेवाली कोई स्त्री उसको लेकर सो गई थी, जैसे कोई स्त्री अपने जवान बच्चेको लेकर सोई हो ॥ ४४ ॥ कोई स्त्री आडम्बरको (एक बाजेका नाम) दोनों भुजाओंसे दबाकर सोई हुई थी, वह कमलपत्राक्षी शराबके नशेमें चूर थी ॥ ४५ ॥ कोई स्त्री जलभरा घड़ा लुढ़काकर सो गई थी, अतएव वह वसन्त कालमें जलसे सींची हुई मालाके समान मालूम पड़ती थी ॥ ४६ ॥ सुवर्ण कलशके समान अपने दोनों स्तनोंको पकड़कर कोई स्त्री सो गई थी ॥ ४७ ॥ कमलनयनी चन्द्रमुखी दूसरी स्त्री-का आलिंगन करके सो गई थी ॥ ४८ ॥ अन्य कई स्त्रियाँ अपने स्तनोंसे तरह-तरहके बाजोंको दबाकर सो गई थीं, जैसे कामुक कामिनियोंको दबाकर सो जाते हैं ॥४९॥ उन स्त्रियोंके पलँगसे अलग एक दूसरा सुन्दर पलंग बिछा हुआ था, हनुमानने उसपर एक सुन्दरी स्त्री देखी ॥५०॥ मोती, मणि आदि जड़े हुए भूषणोंसे वह स्त्री विभूषित थी और अपनी आभासे उस घरको भूषित कर रही थी ॥ ५१ ॥ सुवर्णके समान वह गौर वर्ण थी। रावणकी प्यारी थी और सब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थी। हनुमानने सुन्दरी मन्दोदरीको वहाँ देखा ॥ ५२ ॥ वायुपुत्र हनुमानने सजी हुई मन्दोदरीको देखकर उसका सौन्दर्य और यौवन देखकर उसे सीता समझा, और बड़े प्रसन्न होकर वे उत्साहित हुए ॥ ५३ ॥ वे पूँछ पटकने और चूमने लगे, खुशी मनाने लगे, खेलने लगे, गाने लगे, चलने लगे, खम्भों पर चढ़ने और उतरने लगे, इस प्रकार वे वानरी लीला दिखाने लगे ॥ ५४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका दसवाँ सर्ग समाप्त ॥

एकादशः सर्गः ११

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा । जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः ॥ १ ॥
न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी । न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम् ॥ २ ॥
नान्यं नरमुपस्थातुं सुराणामपि चेश्वरम् । नहि रामसमः कश्चिद्विद्यते त्रिदशेष्वपि ॥ ३ ॥
अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः । पानभूमौ हरिश्रेष्ठः सीतासंदर्शनोत्सुकः ॥ ४ ॥
क्रीडितेनापराः क्लान्ता गीतेन च तथापराः । नृत्येन चापराः क्लान्ताः पानविप्रहतास्तथा ॥ ५ ॥
मुरजेषु मृदङ्गेषु चेलिकासु च संस्थिताः । तथास्तरणमुख्येषु संविष्टाश्चापराः स्त्रियः ॥ ६ ॥
अङ्गनानां सहस्रेण भूषितेन विभूषणैः । रूपसंलापशीलेन युक्तगीतार्थभाषिणा ॥ ७ ॥
देशकालाभियुक्तेन युक्तवाक्याभिधायिना । रताधिकेन संयुक्तां ददर्श हरियूथपः ॥ ८ ॥
अन्यत्रापि वरस्त्रीणां रूपसंलापशायिनाम् । सहस्रं युवतीनां तु प्रसुप्तं स ददर्श ह ॥ ९ ॥
देशकालाभियुक्तं तु युक्तवाक्याभिधायि तत् । रताविरतसंसुप्तं ददर्श हरियूथपः ॥ १० ॥
तासां मध्ये महाबाहुः शुशुभे राक्षसेश्वरः । गोष्ठे महति मुख्यानां गवां मध्ये यथा वृषः ॥ ११ ॥
स राक्षसेन्द्रः शुशुभे ताभिः परिवृतः स्वयम् । करेणुभिर्यथारण्ये परिकीर्णो महाद्विपः ॥ १२ ॥
सर्वकामैरुपेतां च पानभूमिं महात्मनः । ददर्श कपिशार्दूलस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे ॥ १३ ॥

उस विचारको दूर कर हनुमान प्रकृतिस्थ हुए । पुनः वे सीताके विषयमें दूसरे प्रकारकी चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ रामसे अलग होकर वह सीता सो नहीं सकती, भोग नहीं कर सकती, अलंकार धारण नहीं कर सकती और शराब भी नहीं पी सकती ॥ २ ॥ वह परपुरुषके पास नहीं जा सकती चाहे वह देवताओंका राजा–इन्द्र ही क्यों न हो, क्योंकि रामके समान देवलोकमें भी कोई नहीं है ॥ ३ ॥ यह कोई दूसरी स्त्री है, ऐसा निश्चय करके सीताको देखनेके लिए उत्सुक वानरश्रेष्ठ हनुमान पुनः उस पीनेवाले भवन—शराबखाना—में घूमने लगे ॥ ४ ॥ वानर सेनापति हनुमानने वहाँ किसी स्त्रीको क्रीड़ा करनेसे, किसीको गानेसे और किसीको नाचनेसे थकी हुई देखा । कोई शराब पीकर बेहोश सोई हुई थीं और मुरज, मृदङ्ग तथा चेलिका (एक प्रकारका बाजा) पर ही पड़ गई थीं तथा कुछ स्त्रियाँ अच्छे बिछौनोंपर सोई हुई थीं ॥ ५, ६ ॥ गहनोंसे विभूषित, अपने रूप-लावण्यकी चर्चा करती हुई, गीतका ठीक अर्थ कहनेवाली, क्रीड़ा करनेवाली सहस्रों स्त्रियोंसे युक्त उस पानभूमिको हनुमानने देखा ॥ ७, ८ ॥ दूसरी जगह भी अपने रूपकी चर्चा करती हुई हजारों सुन्दर युवती स्त्रियोंको उन्होंने सोते देखा ॥ ९ ॥ देशकालकी जाननेवाली, ठीक बातें कहनेवाली और रतिके बाद सोयी हुई उन स्त्रियोंको हनुमानने देखा ॥ १० ॥ उनके मध्यमें महाबाहु राक्षसेश्वर रावण—सभाके मध्यमें प्रधान और गायोंके मध्यमें साँड़की तरह—शोभित हो रहा था ॥ ११ ॥ उनसे घिरा हुआ वह राक्षसेन्द्र—वनमें हथिनियोंसे घिरे हुए बड़े हाथीके समान—शोभित हुआ ॥ १२ ॥ वानर हनुमानने सब आवश्यक सामग्रियोंसे पूर्ण महात्मा रावणके घरमें पानभूमिको देखा ॥ १३ ॥ उन्होंने

मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च भागशः । तत्र न्यस्तानि मांसानि पानभूमौ ददर्श सः ॥१४॥
रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान् । ददर्श कपिशार्दूलो मयूरान्कुक्कुटांस्तथा ॥१५॥
वराहवार्ध्रीणसकान्दधिसौवर्चलायुतान् । शल्यान्मृगमयूरांश्च हनुमानन्ववैक्षत ॥१६॥
क्रकलान्विविधांश्छागाञ्छशकानर्धभक्षितान् । महिषानेकशल्यांश्च च्छेदांश्च कृतनिष्ठितान् ॥१७॥
लेह्यानुच्चावचान्पेयान्भोज्यान्युच्चावचानि च । तथाम्ललवणोत्तंसैर्विविधै रागखाण्डवैः ॥१८॥
महानूपुरकेयूरैरपविद्धैर्महाधनैः । पानभाजनविक्षिप्तैः फलैश्च विविधैरपि ॥१९॥
कृतपुष्पोपहारा भूरधिकां पुष्यति श्रियम् । तत्र तत्र च विन्यस्तैः सुश्लिष्टशयनासनैः ॥२०॥
पानभूमिर्विना वह्निं प्रदीप्तेवोपलक्ष्यते । बहुप्रकारैर्विविधैर्वरसंस्कारसंस्कृतैः ॥२१॥
मांसैः कुशलसंयुक्तैः पानभूमिगतैः पृथक् । दिव्याःप्रसन्ना विविधाःसुराःकृतसुरा अपि ॥२२॥
शर्करासवमाध्वीकाः पुष्पासवफलासवाः । वासचूर्णैश्च विविधैर्मृष्टास्तैस्तैः पृथक्पृथक् ॥२३॥
संतता शुशुभे भूमिर्माल्यैश्च बहुसंस्थितैः । हिरण्मयैश्च कलशैर्भाजनैः स्फाटिकैरपि ॥२४॥
जाम्बूनदमयैश्चान्यैः करकैरभिसंवृता । राजतेषु च कुम्भेषु जाम्बूनदमयेषु च ॥२५॥
पानश्रेष्ठां तथा भूमिं कपिस्तत्र ददर्श ह । सोऽपश्यच्छातकुम्भानि सीधोर्मणिमयानि च ॥२६॥
तानि तानि च पूर्णानि भाजनानि महाकपिः । क्वचिदर्धावशेषाणि क्वचित्पीतान्यशेषतः ॥२७॥
क्वचिन्नैव प्रपीतानि पानानि स ददर्श ह । क्वचिद्भक्ष्यांश्च विविधान्क्वचित्पानं विभागतः॥२८॥

उस पानभूमिमें हरिण, भैंसा और सुअरका मांस अलग अलग रक्खा हुआ देखा ॥ १४ ॥ सोनेके बड़े-बड़े थालोंमें रक्खा हुआ मोर और मुर्गेका बिना जूठा मांस उन्होंने देखा ॥ १५ ॥ नमक और दही मिलाया हुआ सुअर, वार्ध्रीण (एक प्रकारका बकरा), गोधा, हरिण और मोरका मांस उन्होंने देखा ॥ १६ ॥ क्रकल (एक प्रकारका पक्षी), तरह तरहके बकरे और आधे खाये हुए खरगोश, पकाए हुए भैंसे और एकशल्य (एक प्रकारकी मछली) के टुकड़े, तरह तरहकी चटनियाँ तथा भोजन—जिसमें नमक और खटाई पड़ी हुई थी – ऐसे पक्वान्न-उन्होंने देखे ॥ १७, १८ ॥ बिखरे हुए बहुमूल्य नूपुरों और केयूरों, लुढ़काये हुए प्यालों, तरह-तरह के फलों, जहाँ-तहां बिछाए हुए सुन्दर बिछौनों तथा पुष्पोंसे सजा हुआ वह स्थान अधिक शोभित होता था ॥ १९, २० ॥ वह पानभूमि अग्निके बिना ही चमकती हुई दीख पड़ती थी। तरह-तरहके, अनेक प्रकारके मसालों से युक्त, चतुर पकानेवालोंके द्वारा पकाये हुए मांस उस पानभूमिमें थे। दिव्य, उत्तम तथा अनेक प्रकारके सुआये और बनाये हुए, गुड़के, महुएके, फूलों और फलोंके अलग-अलग अनेक प्रकारकी सुगंधियोंसे युक्त शराबों, सोनेके कलसों, स्फटिककी प्यालियों तथा बिखरे हुए फूलोंसे वह पानभूमि शोभित हो रही थी ॥ २१-२४ ॥ उस श्रेष्ठ पानभूमिमें सुवर्णके घड़े फैले हुए थे। वे चाँदी और सोनेके थे, हनुमानने मणि और सुवर्णके घड़ोंमें भरी हुई शराब वहाँ देखी ॥ २५, २६ ॥ महाकपि हनुमानने भरी हुई प्यालियाँ वहाँ देखीं। उनमेंसे कुछ आधी बची हुई और कुछ बिलकुल खाली थीं ॥ २७ ॥ उन्होंने कहीं ऐसी प्यालियाँ देखीं जो बिलकुल नहीं पी गई थीं, तरह-तरहके भोजन और अलग-अलग

क्वचिदर्धावशेषाणि पश्यन्वै विचचार ह । शयनान्यत्र नारीणां शून्यानि बहुधा पुनः ।
परस्परं समाश्लिष्य काश्चित्सुप्ता वराङ्गनाः ॥२९॥
काचिच्च वस्त्रमन्यस्य अपहृत्योपगुह्य च । उपगम्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता ॥३०॥
तासामुच्छ्वासवातेन वस्त्रं माल्यं च गात्रजम् । नात्यर्थं स्पन्दते चित्रं प्राप्य मन्दमिवानिलम् ॥३१॥
चन्दनस्य च शीतस्य सीधोर्मधुरसस्य च । विविधस्य च माल्यस्य पुष्पस्य विविधस्य च ॥३२॥
बहुधा मारुतस्तस्य गन्धं विविधमुद्वहन् । स्नानानां चन्दनानां च धूपानां चैव मूर्च्छितः ॥३३॥
प्रववौ सुरभिर्गन्धो विमाने पुष्पके तदा । श्यामावदातास्तत्रान्याःकाश्चित्कृष्णावराङ्गनाः॥३४॥
काश्चित्काञ्चनवर्णाङ्ग्यः प्रमदा राक्षसालये । तासां निद्रावशत्वाच्च मदनेन विमूर्च्छितम् ॥३५॥
पद्मिनीनां प्रसुप्तानां रूपमासीद्यथैव हि । एवं सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः ।
ददर्श स महातेजा न ददर्श च जानकीम् ॥३६॥
निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः । जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः ॥३७॥
परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् । इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ॥३८॥
नहि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी । अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ॥३९॥
तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः । निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ॥४०॥
कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः । न तु मे मनसा किंचिद्वैकृत्यमुपपद्यते ॥४१॥

रक्खी हुई शराबें भी उन्होंने देखीं ॥ २८ ॥ कहीं आधी बची हुई शराबको देखकर हनुमानने सोचा कि यहाँ स्त्रियोंके बिछौने बहुधा सूने हैं अतएव वे एक दूसरेका आलिंगन करके सोई हुई हैं ॥ २९ ॥ किसी स्त्रीने दूसरेका वस्त्र खींचकर ओढ़ लिया था और नींदके वेगसे पराजित होकर उसके बिछौनेपर सो गई थी ॥ ३० ॥ उनकी साँसकी हवासे उनके शरीरके विचित्र वस्त्र और फूल अधिक हिलते नहीं थे, जैसे मन्द वायुसे वे नहीं हिलते ॥ ३१ ॥ शीतल चन्दनका, मधुर शराबका, तरह-तरहके फूलों और मालाओंका, स्नान करने योग्य चन्दन और धूपका अनेक प्रकारका गंध लेकर, पुष्पक विमानमें व्याप्त होती हुई सुगन्धित वायु बह रही थी। वहाँ उन्होंने गोरी और साँवली तथा श्रेष्ठ काली स्त्रियोंको देखा ॥ ३२-३४ ॥ राक्षसके उस घरमें कुछ कांचन वर्णकी स्त्रियां थीं । कामसे विह्वल और निद्रासक्त वे स्त्रियां, मुकुलित कमलिनीके समान मालूम पड़ती थीं। इस प्रकार महातेजस्वी हनुमानने रावणके अन्तःपुरका कोना-कोना देख डाला; पर जानकी उन्हें न दीख पड़ीं ॥ ३५-३६ ॥ उन स्त्रियोंको देखते हुए धर्मके भयसे शङ्कित हनुमानके मनमें एक बड़ी शंका उत्पन्न हुई ॥ ३७ ॥ अन्तःपुरमें सोई हुई स्त्रियोंका देखना मेरे धर्मका बिलकुल नाश कर देगा ॥ ३८ ॥ दूसरेकी स्त्रियोंपर मेरी विषयकी दृष्टि नहीं है। (अर्थात् परस्त्रीदर्शनसे मुझमें विकार नहीं उत्पन्न हो सकता) और यहीं परस्त्रियोंके ग्रहण करनेवाले रावणको मैंने देखा ॥ ३९ ॥ मनस्वी हनुमानके मनमें दूसरी चिन्ता उत्पन्न हुई । प्रमाणोंके द्वारा सिद्ध सिद्धान्त जाननेवाले हनुमानकी वह चिन्ता कर्तव्य अकर्तव्यका निश्चय करनेवाली थी ॥ ४० ॥ मैंने रावणकी समस्त स्त्रियोंको छिपकर देखा; पर

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने । शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥४२॥
नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम् । स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा संपरिमार्गणे ॥४३॥
यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत्परिमार्ग्यते । न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम् ॥४४॥
तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया । रावणान्तःपुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी ॥४५॥
देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च वीर्यवान् । अवेक्षमाणो हनुमान्नैवापश्यत जानकीम् ॥४६॥
तामपश्यन्कपिस्तत्र पश्यंश्चान्या वरास्त्रियः । अपक्रम्य तदा वीरः प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥४७॥
स भूयः सर्वतः श्रीमान्मारुतिर्यत्नमाश्रितः । आपानभूमिमुत्सृज्य तां विचेतुं प्रचक्रमे ॥४८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो लतागृहांश्चित्रगृहान्निशागृहान् ।
जगाम सीतां प्रति दर्शनोत्सुको न चैव तां पश्यति चारुदर्शनाम् ॥ १ ॥
स चिन्तयामास ततो महाकपिः प्रियामपश्यन्रघुनन्दनस्य ताम् ।
ध्रुवं न सीता ध्रियते यथा न मे विचिन्वतो दर्शनमेति मैथिली ॥ २ ॥

मेरे मनमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न नहीं हुआ ॥ ४१ ॥ मनही सब इन्द्रियोंको अपने विषयोंमें प्रवृत्त करानेका हेतु है । अच्छे और बुरे कार्योंमें वहीं प्रवृत्त कराता है । पर मेरा मन दृढ़ है ॥ ४२ ॥ मैं सीताको दूसरी जगह ढूंढ़ कहाँ सकता था । ढूंढ़नेवाले स्त्रियोंको सदा स्त्रियोंमें ही ढूंढ़ा करते हैं ॥ ४३ ॥ जिस प्राणीकी जो जाति है वह उसीमें ढूंढ़ा जाता है । खोई हुई स्त्री हरिणियोंके बीच नहीं ढूंढ़ी जा सकती ॥ ४४ ॥ मैंने शुद्ध मनसे रावणका यह समस्त अन्तःपुर ढूँढ़ डाला; पर जानकी दिखायी न पड़ी ॥ ४५ ॥ देवता, गन्धर्व और नागकन्याओंको वली हनुमानने वहाँ देखा; पर जानकीको नहीं ॥ ४६ ॥ हनुमान सीताको वहाँ न देखकर तथा अन्य अनेक स्त्रियोंको देखकर वहाँसे दूसरी जगह चलनेके लिए तैयार हुए ॥ ४७ ॥ श्रीमान् हनुमान सीताको सब जगह ढूंढ़नेके लिए उद्योग करनेकी इच्छासे उस स्थानको छोड़कर दूसरी जगह ढूढ़नेके लिए गए ॥ ४८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ।



उस रावणके घरमें जाकर सीताको देखनेकी इच्छा रखनेवाले हनुमानने लतागृह (लताओंसे आच्छादित घर), चित्रगृह (चित्रकारीके घर), निशागृह (रातको सोनेके घर) में जाकर देखा, पर चारुदर्शना सीताको नहीं देख सके ॥ १ ॥ रामकी प्रिया सीताको न देखकर हनुमान मनहीमन विचार करनेलगे कि अवश्यही सीता अब वर्तमान नहीं है; यदि वह होती तो

सा राक्षसानां प्रवरेण बाला स्वशीलसंरक्षणतत्परा सती ।
अनेन नूनं प्रति दुष्टकर्मणा हता भवेदार्यपथे परे स्थिता ॥ ३ ॥
विरूपरूपा विकृता विवर्चसो महानना दीर्घविरूपदर्शनाः ।
समीक्ष्य ता राक्षसराजयोषितो भयाद्विनष्टा जनकेश्वरात्मजा ॥ ४ ॥
सीतामदृष्ट्वा ह्यनवाप्य पौरुषं विहृत्य कालं सह वानरैश्चिरम् ।
न मेऽस्ति सुग्रीवसमीपगा गतिः सुतीक्ष्णदण्डो बलवांश्च वानरः ॥ ५ ॥
दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्ट्वा राक्षसयोषितः । न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः ॥ ६ ॥
किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति संगताः । गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद्वदस्व नः ॥ ७ ॥
अदृष्ट्वा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्मजाम् । ध्रुवं प्रायमुपासिष्ये कालस्य व्यतिवर्तने ॥ ८ ॥
किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जाम्बवानङ्गदश्च सः । गतं पारं समुद्रस्य वानराश्च समागताः ॥ ९ ॥
अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् । भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः ॥१०॥
अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः । करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ॥११॥
तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं चेष्टेऽहमुत्तमम् । अदृष्टांश्च विचेष्यामि देशान्रावणपालितान् ॥१२॥
आपानशाला विचितास्तथा पुष्पगृहाणि च । चित्रशालाश्च विचिता भूयः क्रीडागृहाणि च ॥१३॥
निष्कुटान्तररथ्याश्च विमानानि च सर्वशः । इति संचिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे ॥१४॥

ढूँढ़नेपर अवश्य मिलती ॥ २ ॥ अपने शीलकी रक्षामें तत्पर सती सीताको इस दुष्ट राक्षसराजने मार डाला होगा, क्योंकि वह आर्योंके मार्गपर चलनेवाली थी ॥ ३ ॥ सम्भव है कि इन नकटी कानी विरूप राक्षसियोंको देखकर सीता स्वयं यहांसे भाग गई हो, राक्षसराजकी ये स्त्रियां देखनेमें भद्दी, बड़े मुंहवाली और लंबे शरीरवाली हैं ॥ ४ ॥ सीताको न देखकर, समुद्र लांघनेका फल न पाकर, सुग्रीवके पास जानेका मार्ग नहीं है, मैंने सुग्रीवकी दी हुई अवधि भी बिता दी । वह वानर बड़ा कठोर दंड देनेवाला और बलवान् है ॥ ५ ॥ रावणका समूचा रनिवास देख लिया, रावणकी सब स्त्रियां देख लीं पर साध्वी सीता कहीं दिखायी नहीं पड़ीं, मेरा परिश्रम व्यर्थ गया ॥ ६ ॥ वहां जानेपर जो वानर मिलेंगे उनसे मैं क्या कहूंगा, साध्वी सीता नहीं दीख पड़ती, मेरा परिश्रम व्यर्थ गया, जब वे पूछेंगे कि वीर वहां जाकर तुमने क्या किया सो हमसे कहो ॥ ७ ॥ जानकी सीताको बिना देखे, मैं क्या कहूंगा, अवश्यही समय बीत जानेके कारण उपवासके द्वारा मुझे प्राण त्याग करना पड़ेगा ॥ ८ ॥ बूढ़े जाम्बवान और अंगद मुझसे क्या कहेंगे, समुद्रके पार जानेवाले मुझसे मिलनेपर दूसरे वानर क्या कहेंगे ॥ ९ ॥ हताश न होना सफलताका मूल है, वही परम सुख है, जिन स्थानोंको मैंने नहीं ढूंढ़ा है, अब उन्हें ढूँढूंगा ॥१०॥ उत्साह सब कार्योंमें प्रवृत्त करता है, और मनुष्यके द्वारा प्रारंभ किये कार्यों में सफलता देता है ॥११॥ अतएव चित्तको स्थिर कर उत्साहपूर्वक प्रयत्न करूं, अब मैं रावणपालित उन स्थानोंको देखूंगा जिन्हें मैं अभी नहीं देख सका हूँ ॥ १२ ॥ आपानशाला मैंने देखी, पुष्पगृह, चित्रशाला तथा क्रीडागृहको मैंने पुनः ढूंढ़ा, घरके बागकी गलियों और विमानोंको भी मैंने देखा, ऐसा

भूमीगृहांश्चैत्यगृहान्गृहातिगृहकानपि । उत्पतन्निपतंश्चापि तिष्ठन्गच्छन्पुनः क्वचित् ॥१५॥
अपवृण्वंश्च द्वाराणि कपाटान्यवघट्टयन् । प्रविशन्निष्पतंश्चापि प्रपतन्नुत्पतन्निव ॥१६॥
सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः । चतुरङ्गुलमात्रोऽपि नावकाशः स विद्यते ।
रावणान्तःपुरे तस्मिन्यं कपिर्न जगाम सः ॥१७॥
प्राकारान्तरवीथ्यश्च वेदिकाश्चैत्यसंश्रयाः । श्वभ्राश्च पुष्करिण्यश्च सर्वं तेनावलोकितम् ॥१८॥
राक्षस्यो विविधाकारा विरूपा विकृतास्तथा । दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा ॥१९॥
रूपेणाप्रतिमा लोके परा विद्याधरस्त्रियः । दृष्टा हनुमता तत्र न तु राघवनन्दिनी ॥२०॥
नागकन्या वरारोहाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा ॥२१॥
प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्या बलाद्धृताः । दृष्टा हनुमता तत्र न सा जनकनन्दिनी ॥२२॥
सोऽपश्यंस्तां महाबाहुःपश्यंश्चान्या वरस्त्रियः । विषसाद महाबाहुर्हनूमान्मारुतात्मजः ॥२३॥
उद्योगं वानरेन्द्राणां प्लवनं सागरस्य च । व्यर्थं वीक्ष्यानिलसुतश्चिन्तां पुनरुपागतः ॥२४॥
अवतीर्य विमानाच्च हनूमान्मारुतात्मजः । चिन्तामुपजगामाथ शोकोपहतचेतनः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥



विचार करके हनुमान पुनः सीताको ढूँढ़ने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ तहखाना, मंडप, एकांतमें बने घरोंको हनुमान ढूँढ़ने लगे, ऊपर नीचे उतरकर, कहीं ठहरकर, कहीं चलते चलते हनुमान सीताको ढूँढ़ने लगे ॥ १५ ॥ किवाड़ खोलकर, उन्हें बन्द कर, कहीं घुसकर, कहींसे निकलकर, कहीं ऊपर जाकर, कहीं नीचे उतरकर हनुमान सीताको ढूँढ़ने लगे ॥ १६ ॥ हनुमानने सब स्थानोंको ढूँढ़ा, रावणके घरमें चार अंगुल भी ऐसी जगह नहीं बची, जहाँ हनुमान न गए हों ॥ १७ ॥ चारदीवारियोंकी गलियों, मंडपकी वेदिकाएं, गढे, तालाब इन सब स्थानोंको हनुमानने देखा ॥ १८ ॥ विरूप, विकृत, अनेक प्रकारकी राक्षसियां हनुमानने वहां देखीं ? पर वहां सीता दिखायी न पड़ी ॥ १९ ॥ विद्याधरकी सुन्दरी स्त्रियां हनुमानने वहां देखीं; पर राघवनंदिनी सीता वहां दिखायी न पड़ी ॥ २० ॥ नागकी चंद्रमुखी सुन्दरी स्त्रियां हनुमानने देखीं पर वहां सीता दिखायी न पड़ी ॥ २१ ॥ बलपूर्वक बन्दी करके लायी हुई, नागकन्याएं हनुमानने देखीं, पर जानकी वहां दिखायी न पड़ी ॥ २२ ॥ सीताको न देखकर तथा दूसरी स्त्रियोंको देखकर महाबाहु वायुपुत्र हनुमान विषाद करने लगे ॥२३॥ अन्य वानरोंका उद्योग और अपना समुद्रके पार आना व्यर्थ देखकर वायुपुत्र पुनः चिन्तित हुए ॥ २४ ॥ शोकके कारण उनकी सब इन्द्रियां शिथिल हो गई थीं, विमानसे उतरकर पुनः वे चिन्ता करने लगे ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका बारहवाँ सर्ग समाप्त ।



त्रयोदशः सर्गः १३

विमानात्तु स संक्रम्य प्राकारं हरियूथपः । हनुमान्वेगवानासीद्यथा विद्युद्घनान्तरे ॥ १ ॥
संपरिक्रम्य हनुमान्रावणस्य निवेशनान् । अदृष्ट्वा जानकीं सीतामब्रवीद्वचनं कपिः ॥ २ ॥
भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम् । न हि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ ३ ॥
पल्वलानि तटाकानि सरांसि सरितस्तथा । नद्योऽनूपवनान्ताश्च दुर्गाश्च धरणीधराः ॥ ४ ॥
लोलिता वसुधा सर्वा न च पश्यामि जानकीम् । इह संपातिना सीता रावणस्य निवेशने ।
आख्याता गृध्रराजेन न च सा दृश्यते तु किम् ॥ ५ ॥
किं तु सीताथ वैदेही मैथिली जनकात्मजा । उपतिष्ठेत विवशा रावणेन हृता बलात् ॥ ६ ॥
क्षिप्रमुत्पततो मन्ये सीतामादाय रक्षसः । बिभ्यतो रामबाणानामन्तरा पतिता भवेत् ॥ ७ ॥
अथवा ह्रियमाणायाः पथि सिद्धनिषेविते । मन्ये पतितमार्याया हृदयं प्रेक्ष्य सागरम् ॥ ८ ॥
रावणस्योरुवेगेन भुजाभ्यां पीडितेन च । तथा मन्ये विशालाक्ष्या त्यक्तं जीवितमार्यया ॥ ९ ॥
उपर्युपरि सा नूनं सागरं क्रमतस्तदा । विचेष्टमाना पतिता समुद्रे जनकात्मजा ॥१०॥
आहो क्षुद्रेण चानेन रक्षन्ती शीलमात्मनः । अबन्धुर्भक्षिता सीता रावणेन तपस्विनी ॥११॥
अथवा राक्षसेन्द्रस्य पत्नीभिरसितेक्षणा । अदुष्टा दुष्टभावाभिर्भक्षिता सा भविष्यति ॥१२॥

हनुमान विमानसे उतरकर चारदीवारी पर आए, मेघोंमें बिजली जिस तरह चलती है हनुमान भी उसी तरह वेगसे चलते थे ॥१॥ रावणके सब घरोंमें घूमने पर भी जब हनुमानने सीताको नहीं देखा, तब वे आपहीआप बोले, ॥ २ ॥ रामचन्द्रके प्रिय करनेकी इच्छासे मैंने लंका बार बार देखी, पर सर्वांग सुन्दरी सीताको मैं नहीं देख सका ॥ ३ ॥ छोटे बड़े तालाब, छोटी बड़ी नदियां, जलके पासके जंगल, दुर्गम पहाड़ इस प्रकार लंकाकी समस्त भूमि मैंने ढूँढ़ डाली, पर सीता नहीं मिली, गृध्रराज सम्पातिने इसी रावणके घरकाही पता बतलाया था, पर वह दिखलाई क्यों नहीं पड़ी ॥ ४-५ ॥ रावणने बलपूर्वक सीताका हरण किया है, तो क्या यह रावणको स्वीकार करेगी, पर वह तो सीता है अर्थात् भूमिसे उत्पन्न हुई है, वह तो मिथिलाधिपति विदेह जनकराजकी पुत्री है ॥ ६ ॥ रामके बाणसे डरा हुआ रावण जब सीताको लेकर आकाशमें उड़ा होगा, तभी सीता गिरगई ऐसा मालूम पड़ता है ॥ ७ ॥ अथवा सिद्धोंके मार्गमें जब रावण सीताको लेकर चला होगा, उस समय समुद्रको देखकर सीताका हृदय फट गया होगा ॥ ८ ॥ रावणके अधिक वेगके कारण तथा उसकी भुजाओंके दृढ़ बंधनसे पीड़ित होकर विशालाक्षी आर्या सीताने प्राण त्याग कर दिया है, ऐसा मालूम पड़ता है ॥९॥ समुद्रके जलके ऊपरसे जब रावण सीताको ले जा रहा था, उस समय छटपटाती हुई सीता समुद्रमें गिर तो नहीं गई ॥ १० ॥ अथवा अपने धर्मकी रक्षामें तत्पर, बन्धुहीन बेचारी सीताको इस नीच रावणने कहीं खा तो नहीं डाला ॥ ११ ॥ अथवा दुष्ट अभिप्राय रखनेवाली रावणकी स्त्रियोंने साध्वी सीता-

अथवा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने । भृशं लालप्यते बाला पञ्जरस्थेव सारिका ॥१३॥
जनकस्य कुले जाता रामपत्नी सुमध्यमा । कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत् ॥१४॥
विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा । रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम् ॥१५॥
निवेद्यमाने दोषः स्याद्दोषः स्यादनिवेदने । कथं न खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे ॥१६॥
अस्मिन्नेवंगते कार्ये प्राप्तकालं क्षमं च किम् । भवेदिति मतिं भूयो हनुमान्प्रविचारयत् ॥१७॥
यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः । गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति ॥१८॥
ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति । प्रवेशश्चैव लङ्कायां राक्षसानां च दर्शनम् ॥१९॥
किं वा वक्ष्यति सुग्रीवो हरयो वापि संगताः । किष्किन्धामनुसंप्राप्तं तौ वा दशरथात्मजौ ॥२०॥
गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परुषं वचः । न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥२१॥
परुषं दारुणं तीक्ष्णं क्रूरमिन्द्रियतापनम् । सीतानिमित्तं दुर्वाक्यं श्रुत्वा स न भविष्यति ॥२२॥
तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा पञ्चत्वगतमानसम् । भृशानुरक्तो मेधावी न भविष्यति लक्ष्मणः ॥२३॥
विनष्टौ भ्रातरौ श्रुत्वा भरतोऽपि मरिष्यति । भरतं च मृतं दृष्ट्वा शत्रुघ्नो न भविष्यति ॥२४॥
पुत्रान्मृतान्समीक्ष्याथ न भविष्यन्ति मातरः । कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च न संशयः ॥२५॥
कृतज्ञः सत्यसंधश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः । रामं तथागतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥२६॥

को खा डाला होगा ॥ १२ ॥ अथवा रावणके घरमें ही वह कहीं रक्खी गई होगी और उसका दुलार हो रहा होगा, जिस प्रकार पिंजडेकी तोती दुलारी जाती है ॥१३॥ सुमध्यमा रामपत्नी जनकके कुलमें उत्पन्न, कमलनयनी सीता रावणके वश कैसे हो सकती है ॥ १४ ॥ सीता या तो मर गयी या नष्ट हो गयी, पर उससे प्रेम करनेवाले रामचन्द्रसे तो ये बातें नहीं कही जा सकतीं, क्योंकि इनमें कुछ प्रमाण नहीं है ॥ १५ ॥ बिना निश्चय किये रामचन्द्रसे ये बातें कहना अच्छा नहीं और न कहना भी अनुचित है ? क्या करना चाहिए मुझे तो बडी कठिनता मालूम पड़ती है ॥ १६ ॥ प्रारब्ध कार्यके ऐसी अनिश्चित दशामें समयानुसार क्या कहना उचित है, हनुमान इस बातका विचार करनेलगे ॥१७॥ यदि सीताको बिना देखे मैं यहांसे किष्किन्धा चला जाऊँ तो इसमें मेरा कौन पुरुषार्थ होगा ॥१८॥ मेरा यह समुद्र-लंघन व्यर्थ होगा, लंकामें प्रवेश करना तथा राक्षसोंको देखना व्यर्थहोगा ॥१९॥ किष्किन्धा जानेपर सुग्रीव मुझसे क्या कहेंगे, मिलनेपर दूसरे वानरही क्या कहेंगे और वे दोनों दशरथपुत्र राम लक्ष्मणही क्या कहेंगे ॥ २० ॥ सीता नहीं मिली, यह कठोर वचन जाकर यदि मैं रामचन्द्र से कहूं तो वे अवश्यही प्राणत्याग करेंगे ॥ २१ ॥ सीताके संबन्धमें रूखा हृदयविदारक सहनेके अयोग्य इन्द्रियोंको तप्त करनेवाले दुर्वचन सुनकर रामचन्द्र जीवित नहीं रह सकेंगे ॥ २२ ॥ रामचन्द्रको ऐसा दुखी देखकर, मरनेके लिए तयार देखकर, उनमें अनुराग रखनेवाले बुद्धिमान् लक्ष्मण भी जीवित नहीं रह सकेंगे ॥ २३ ॥ इन दोनों भाइयोंका मरना सुनकर भरत भी मर जांयगे, भरतके मरने पर शत्रुघ्न भी जीवित नहीं रह सकेंगे ॥ २४ ॥ पुत्रोंको मृत देखकर माताएँ भी जीवित नहीं रह सकेंगी कौसल्या सुमित्रा और कैकेयी भी नष्ट हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ २५ ॥ कृतज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, वानराधिप सुग्रीव भी

दुर्मना व्यथिता दीना निरानन्दा तपस्विनी । पीडिता भर्तृशोकेन रुमा त्यक्ष्यति जीवितम् ॥२७॥
वालिजेन तु दुःखेन पीडिता शोककर्शिता । पञ्चत्वमागता राज्ञी तारापि न भविष्यति ॥२८॥
मातापित्रोर्विनाशेन सुग्रीवव्यसनेन च । कुमारोऽप्यङ्गदस्तस्माद्विजहिष्यति जीवितम् ॥२९॥
भर्तृजेन तु दुःखेन अभिभूता वनौकसः । शिरांस्यभिहनिष्यन्ति तलैर्मुष्टिभिरेव च ॥३०॥
सान्त्वेनानुप्रदानेन मानेन च यशस्विना । लालिताः कपिनाथेन प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति वानराः ३१॥
न वनेषु न शैलेषु न निरोधेषु वा पुनः । क्रीडामनुभविष्यन्ति समेत्य कपिकुञ्जराः ॥३२॥
सपुत्रदाराः सामात्या भर्तृव्यसनपीडिताः । शैलाग्रेभ्यः पतिष्यन्ति समेषु विषमेषु च ॥३३॥
विषमुद्बन्धनं वापि प्रवेशं ज्वलनस्य वा । उपवासमथो शस्त्रं प्रचरिष्यन्ति वानराः ॥३४॥
घोरमारोदनं मन्ये गते मयि भविष्यति । इक्ष्वाकुकुलनाशश्च नाशश्चैव वनौकसाम् ॥३५॥
सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः । नहि शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना ॥३६॥
मय्यगच्छति चेहस्थे धर्मात्मानौ महारथौ । आशया तौ धरिष्येते वानराश्च तरस्विनः ॥३७॥
हस्तादानो मुखादानो नियतो वृक्षमूलिकः । वानप्रस्थो भविष्यामि अदृष्ट्वा जनकात्मजाम् ॥३८॥
सागरानूपजे देशे बहुमूलफलोदके । चितिं कृत्वा प्रवेक्ष्यामि समिद्धमरणीसुतम् ॥३९॥
उपविष्टस्य वा सम्यग्लिङ्गिनं साधयिष्यतः । शरीरं भक्षयिष्यन्ति वायसाः श्वापदानि च ॥४०॥

रामचन्द्रकी वैसी दशा देखकर प्राणत्याग करेंगे ॥ २६ ॥ सुग्रीवके मरनेपर पतिशोकसे दुःखिनी दीना बिचारी रुमा भी प्राणत्याग करेगी ॥ २७ ॥ तारा तो पहलेहीसे वालिके दुःखसे पीडित और शोकित है, राजा सुग्रीवके मरनेपर वह भी मर जायगी ॥ २८ ॥ माता पिताके दुःखसे तथा सुग्रीवके दुःखसे कुमार अंगद भी प्राणत्याग करेंगे ॥ २९ ॥ स्वामिदुःखसे दुःखित वनवासी भी शिर पीटने लगेंगे ॥ ३० ॥ यशस्वी वानरनाथके द्वारा सहानुभूति और सम्मानसे पालेगए ये वानर प्राणत्याग करेंगे ॥ ३१ ॥ अब सब वानर वनों, पर्वतों तथा गुप्तस्थानोंमें मिलकर क्रीडा-सुखका अनुभव नहीं कर सकेंगे ॥ ३२ ॥ श्रेष्ठ वानर स्वामिवियोगसे दुखी होकर, स्त्रीपुत्र तथा सचिवोंके साथ पर्वतके शिखरसे समतल भूमिमें या ऊबड खाबड भूमिमें गिरकर, प्राण त्याग करेंगे ॥ ३३ ॥ वे वानर विष खालेंगे, फांसी लगा लेंगे, आगमें कूद पड़ेंगे, उपवास करेंगे अथवा अपने शरीरपर शस्त्रप्रहार करेंगे । किसीप्रकार वे प्राणत्याग जरूर करेंगे ॥ ३४ ॥ वहां जानेपर रोनेका बड़ा विषादमय दृश्य होगा, इक्ष्वाकुकुल और वानरोंका नाश होजायगा ॥ ३५ ॥ इसकारण मैं यहांसे किष्किन्धा नगरीमें लौटकर नहीं जाऊंगा । मैथिलीका बिना पता लगाए मैं सुग्रीवको नहीं देख सकूँगा ॥ ३६ ॥ मैं नहीं लौटूंगा, यहीं रह जाऊंगा तब वे धर्मात्मा और वीर राम तथा लक्ष्मण आशासे जी सकेंगे । जल्दबाज वानर भी बच जायँगे ॥ ३७ ॥ सीताको विना देखे, खानेवालेके हाथ या मुखसे गिरे अन्नको खाकर मैं वानप्रस्थ हो जाऊंगा और वृक्षोंके नीचे निवास करूंगा ॥ ३८ ॥ सागरके तीरपर जहाँ फल मूल जलकी अधिकता होगी, वहां चिता बनाकर मैं आगमें कूद पड़ूंगा ॥ ३९ ॥ अथवा उपवासके द्वारा प्राणत्याग

इदमप्यृषिभिर्दृष्टं निर्याणमिति मे मतिः । सम्यगापः प्रवेक्ष्यामि न चेत्पश्यामि जानकीम् ॥४१॥
सुजातमूला सुभगा कीर्तिमाला यशस्विनी । प्रभग्ना चिररात्राय मम सीतामपश्यतः ॥४२॥
तापसो वा भविष्यामि नियतो वृक्षमूलिकः । नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वाऽसितेक्षणाम् ॥४३॥
यदि तु प्रतिगच्छामि सीतामनधिगम्य ताम् । अङ्गदः सहितः सर्वैर्वानरैर्न भविष्यति ॥४४॥
विनाशे बहवो दोषा जीवन्प्राप्नोति भद्रकम् । तस्मात्प्राणान्धरिष्यामि ध्रुवो जीवति संगमः ॥४५॥
एवं बहुविधं दुःखं मनसा धारयन्बहु । नाध्यगच्छत्तदा पारं शोकस्य कपिकुञ्जरः ॥४६॥
ततो विक्रममासाद्य धैर्यवान्कपिकुञ्जरः । रावणं वा वधिष्यामि दशग्रीवं महाबलम् ।
काममस्तु हृता सीता प्रत्याचीर्णं भविष्यति ॥४७॥
अथवैनं समुत्क्षिप्य उपर्युपरि सागरम् । रामायोपहरिष्यामि पशुं पशुपतेरिव ॥४८॥
इति चिन्तासमापन्नः सीतामनधिगम्य ताम् । ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः ॥४९॥
यावत्सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम् । तावदेतां पुरीं लङ्कां विचिनोमि पुनः पुनः ॥५०॥
संपातिवचनाच्चापि रामं यद्यानयाम्यहम् । अपश्यन्राघवो भार्यां निर्दहेत्सर्ववानरान् ॥५१॥
इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः । न मत्कृते विनश्येयुः सर्वे ते नरवानराः ॥५२॥
अशोकवनिका चापि महतीयं महाद्रुमा । इमामधिगमिष्यामि नहीयं विचिता मया ॥५३॥

करनेके लिए बैठे हुए, मेरे शरीरका मांस कौए तथा हिंस्रजन्तु खा जायंगे ॥४०॥ यदि मैं जानकीको न देख सकूँगा तो आनन्दसे जलमें प्रवेश करूंगा । मैं समझता हूँ कि इस प्रकार शरीर त्याग करना ऋषियोंने मेरे लिए उत्तम ठहराया है ॥ ४१ ॥ यदि मैं सीताको न देख सकूँगा तो मेरी कीर्ति जिसका प्रारम्भ उत्तम हुआ था और जो आगे बढ़नेवाली है, उसका सदाके लिए अन्त हो जायगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अथवा सदा वृक्षके मूलमें रहनेवाला तपस्वी बन जाऊंगा, पर उन काली आंखोंवाली सीताका विना पता पाये यहांसे लौटकर नहीं जाऊंगा ॥ ४३ ॥ यदि सीताको बिना पाये मैं यहांसे लौट जाऊं तो सब वानरोंके साथ अंगदका नाश हो जायगा ॥ ४४ ॥ मरनेमें अनेक दोष हैं, जीता हुआ मनुष्य कल्याण पा जाता है, इसलिए मैं अवश्य प्राणधारण करूंगा, शायद कभी सीता मिलही जांय ॥ ४५ ॥ इस तरहके अनेक दुखदायी विचार उनके मनमें उठे; पर वे इसका अन्तिम निर्णय न कर सके ॥४६॥ धीर कपिश्रेष्ठ हनुमानके मनमें उत्साह उत्पन्न हुआ, उन्होंने कहा—महाबली रावणको मैं मार डालूंगा इसप्रकार सीताहरणका बदला चुक जायगा ॥ ४७ ॥ अथवा समुद्रके ऊपरही ऊपर लेजाकर रावणको रख दूंगा, जिसप्रकार पशुपतिको पशु उपहारमें दिया जाता है ॥ ४८ ॥ सीताको न पाकर हनुमान चिन्तित हुए, चिन्ताके कारण शोकयुक्त होकर वे पुनः विचार करने लगे ॥ ४९ ॥ जबतक रामपत्नी यशस्विनी सीताको न देखूँगा तबतक इस लंकापुरीको बारबार ढूढूंगा ॥ ५० ॥ यदि सम्पातीके कहनेसे मैं रामचन्द्रको ले आऊं तो वे यहां सीताको न देखकर अवश्यही सब वानरोंको जला देंगे ॥ ५१ ॥ अतएव यहीं नियमित आहार करके और इन्द्रियोंको वशमें करके मैं निवास करूंगा जिससे मेरे कारण सब वानरोंका नाश न हो ॥ ५२ ॥ यह अशोकवाटिका है, यह बहुत

वसून्रुद्रांस्तथादित्यानश्विनौ मरुतोऽपि च । नमस्कृत्वा गमिष्यामि रक्षसां शोकवर्धनः ॥५४॥
जित्वा तु राक्षसान्देवीमिक्ष्वाकुकुलनन्दिनीम्। संप्रदास्यामि रामाय सिद्धीमिव तपस्विने ॥५५॥
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा चिन्ताविग्रथितेन्द्रियः । उदतिष्ठन्महाबाहुर्हनूमान्मारुतात्मजः ॥५६॥
नमोस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्राग्निमरुद्गणेभ्यः ॥ ५७ ॥
स तेभ्यस्तु नमस्कृत्वा सुग्रीवाय च मारुतिः । दिशः सर्वाः समालोक्य सोऽशोकवनिकां मति॥५८॥
स गत्वा मनसा पूर्वमशोकवानिकां शुभाम् । उत्तरं चिन्तयामास वानरो मारुतात्मजः ॥५९॥
ध्रुवं तु रक्षोबहुला भविष्यति वनाकुला । अशोकवनिका पुण्या सर्वसंस्कारसंस्कृता ॥६०॥
रक्षिणश्चात्र विहिता नूनं रक्षन्ति पादपान् । भगवानपि विश्वात्मा नातिक्षोभं प्रवायति ॥६१॥
संक्षिप्तोऽयं मयात्मा च रामार्थे रावणस्य च । सिद्धिं दिशन्तु मे सर्वे देवाः सर्षिगणास्त्विह ॥६२॥
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान्देवाश्चैव तपस्विनः । सिद्धिमग्निश्च वायुश्च पुरुहूतश्च वज्रभृत् ॥६३॥
वरुणः पाशहस्तश्च सोमादित्यौ तथैव च । अश्विनौ च महात्मानौ मरुतः सर्व एव च ॥६४॥
सिद्धिं सर्वाणि भूतानि भूतानां चैव यः प्रभुः । दास्यन्ति मम ये चान्येऽप्यदृष्टाःपथि गोचराः ॥६५॥
तदुन्नसं पाण्डुरदन्तमव्रणं शुचिस्मितं पद्मपलाशलोचनम् ।
द्रक्ष्ये तदार्यावदनं कदा न्वहं प्रसन्नताराधिपतुल्यवर्चसम् ॥६६॥

बड़ी है और इसके पेड़ भी बहुत बड़े हैं, इसमें जाऊंगा, क्योंकि इसे अभी मैंने नहीं ढूँढा है ॥५३॥ राक्षसोंका शोक बढ़ानेवाला मैं वसु, रुद्र, आदित्य अश्विनीकुमार और वायुको नमस्कार करके जाऊंगा ॥५४॥ राक्षसोंको जीतकर मैं इक्ष्वाकुकुलनन्दिनी सीता रामचन्द्रको दूंगा, जिस प्रकार तपस्वियोंको सिद्धि दी जाती है ॥ ५५ ॥ थोड़ीदेर सोचकर चिन्तासे शिथिलेन्द्रिय महाबाहु हनुमान उठे ॥ ५६ ॥ लक्ष्मण सहित रामचन्द्रको नमस्कार, जनकपुत्री उस देवीको नमस्कार, रुद्र, इन्द्र, यम, वायुको नमस्कार, चन्द्र, अग्नि और देवगणको नमस्कार ॥५७॥ इन सबको, और सुग्रीवको प्रणाम करके तथा सब दिशाओंको देख करके हनुमान पहले मनही मन सुन्दर अशोक वाटिकामें गए और आगेका वे काम सोचने लगे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ निश्चय इसमें बहुत राक्षस रहते होंगे, यह सुन्दर वाटिका खूब सींची गई होगी, खूब साफ सुथरी होगी ॥ ६० ॥ रक्षक यहां रक्खे गये होंगे, जो वृक्षोंकी रक्षा करते होंगे, भगवान् वायु भी यहां जोरसे नहीं बहते ॥ ६१ ॥ रामके कामके लिए मैंने अपना शरीर रावणकी वाटिकामें डाल दिया, ऋषियोंके साथ सब देवता मेरा कल्याण करें ॥ ६२ ॥ ब्रह्मा, भगवान् स्वयम्भू, देवता, तपस्वी, अग्नि, वायु, वज्रधारी इन्द्र मुझे सिद्धि दें ॥६३॥ पाशधारी वरुण, चन्द्रमा, सूर्य, दोनों अश्विनीकुमार तथा सब मरुत मुझे सिद्धि दें ॥ ६४ ॥ सब प्राणी तथा प्राणियोंके स्वामी मुझे सिद्धि देंगे, मार्गमें दृष्ट अदृष्ट जो कोई होगा, वह मुझे सिद्धि देगा ॥ ६५ ॥ प्रसन्न चन्द्रमाके समान सुन्दर आर्या सीताका मुख मैं कब देखूंगा, जिसके ऊंची नाक है, सफेद दांत हैं, जिसकी मुस्कान सुन्दर है और

क्षुद्रेण हीनेन नृशंसमूर्तिना सुदारुणालंकृतवेषधारिणा ।
बलाभिभूता ह्यबला तपस्विनी कथं नु मे दृष्टिपथेऽद्य सा भवेत् ॥६७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

चतुर्दशः सर्गः १४

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा मनसा चाधिगम्य ताम् । अवप्लुतो महातेजाः प्राकारं तस्य वेश्मनः ॥ १ ॥
स तु संहृष्टसर्वाङ्गः प्राकारस्थो महाकपिः । पुष्पिताग्रान्वसन्तादौ ददर्श विविधान्द्रुमान् ॥ २ ॥
सालानशोकान्भव्यांश्च चंपकांश्च सुपुष्पितान् । उद्दालकान्नागवृक्षांश्चूतान्कपिमुखानपि ॥ ३ ॥
तथाम्रवणसंपन्नांल्लताशतसमन्वितान् । ज्यामुक्त इव नाराचः पुप्लुवे वृक्षवाटिकाम् ॥ ४ ॥
स प्रविश्य विचित्रां तां विहगैरभिनादिताम् । राजतैः काञ्चनैश्चैव पादपैः सर्वतो वृताम् ॥ ५ ॥
विहगैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् । उदितादित्यसंकाशां ददर्श हनुमान्बली ॥ ६ ॥
वृतैर्नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः । कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम् ॥ ७ ॥
प्रहृष्टमनुजां काले मृगपक्षिमदाकुलाम् । मत्तबर्हिणसंघुष्टां नानाद्विजगणायुताम् ॥ ८ ॥
मार्गमाणो वरारोहां राजपुत्रीमनिन्दिताम् । सुखप्रसुप्तान्विहगान्बोधयामास वानरः ॥ ९ ॥

जिसकी आंखें कमलपत्रके समान हैं ॥६६॥ क्षुद्र, हीन, क्रूरमूर्ति और भयानक होनेपर भी अलंकार युक्त वेष धारण करनेवाला रावण बलपूर्वक सीताको हर ले आया है, उस सीताको मैं कैसे देख सकूंगा ॥ ६७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका तेरहवां सर्ग समाप्त ।

हनुमान थोड़ीदेर तक विचार करते रहे। वे मनही मन सीताके पास पहुँच गए और रावणके घरपरसे अशोकवाटिकाकी चहारदीवारीपर कूद पड़े ॥१॥ उस चहारदीवारीपर बैठे हनुमान प्रसन्न हुए, उन्हें रोमांच हो गया, उन्होंने वसन्त आदि ऋतुओंमें फूलनेवाले वृक्षोंको देखा ॥ २ ॥ साल, अशोक, भव्य, फूले हुए चम्पक, उद्दालक, नागवृक्ष तथा कपिमुख जातिका आम्रवृक्ष उन्होंने देखा ॥ ३ ॥ हनुमानने वहाँ आम्रवन देखा, जो सैकड़ों लताओंसे ढका हुआ था, हनुमान धनुषसे छूटे हुए बाणके समान उस वाटिकामें इस पारसे उस पार चले गए ॥ ४ ॥ बली हनुमानने उस वाटिकामें जाकर देखा कि तरह-तरहके पक्षी बोल रहे हैं। चांदी और सोनेके वृक्ष चारोंओर लगे हैं ॥ ५ ॥ पक्षी, हिरन आदि उसमें वर्तमान हैं। चित्राकार वन बना हुआ है। अग्नि सूर्यके समान वह वाटिका मालूम होती है ॥ ६ ॥ पुष्प और फल देनेवाले अनेक वृक्ष उस वाटिकामें थे। मतवाले कोकिल और भृंगराजोंका वहाँ नित्य बसेरा था ॥ ७ ॥ वहां जाने वाले मनुष्य प्रसन्न हो जाते थे। पशु और पक्षी अपनी मस्तीसे उस वनमें विचर रहे थे। मस्त-मयूर बोल रहे थे। औरभी अनेकप्रकारके पक्षी वहाँ वर्तमान थे ॥८॥ अनिन्दित सीताको ढूंढ़ते हुए

उत्पतद्भिर्द्विजगणैः पक्षैर्वातैः समाहताः । अनेकवर्णा विविधा मुमुचुः पुष्पवृष्टयः ॥१०॥
पुष्पावकीर्णः शुशुभे हनूमान्मारुतात्मजः । अशोकवनिकामध्ये यथा पुष्पमयो गिरिः ॥११॥
दिशः सर्वाभिधावन्तं वृक्षखण्डगतं कपिम् । दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि वसन्त इति मेनिरे ॥१२॥
वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवकीर्णा पृथग्विधैः । रराज वसुधा तत्र प्रमदेव विभूषिता ॥१३॥
तरस्विना ते तरवस्तरसा बहु कम्पिताः । कुसुमानि विचित्राणि ससृजुः कपिना तदा ॥१४॥
निर्धूतपत्रशिखराः शीर्णपुष्पफलद्रुमाः । निक्षिप्तवस्त्राभरणा धूर्ता इव पराजिताः ॥१५॥
हनूमता वेगवता कम्पितास्ते नगोत्तमाः । पुष्पपत्रफलान्याशु मुमुचुः फलशालिनः ॥१६॥
विहङ्गसंघैर्हीनास्ते स्कन्धमात्राश्रया द्रुमाः । बभूवुरगमाः सर्वे मारुतेन विनिर्धुताः ॥१७॥
विधूतकेशी युवतिर्यथा मृदितवर्णका । निपीतशुभदन्तोष्ठी नखैर्दन्तैश्च विक्षता ॥१८॥
तथा लाङ्गूलहस्तैस्तु चरणाभ्यां च मर्दिता । तथैवाशोकवनिका प्रभग्नवनपादपा ॥१९॥
महालतानां दामानि व्यधमत्तरसा कपिः । यथा प्रावृषि वेगेन मेघजालानि मारुतः ॥२०॥
स तत्र मणिभूमीश्च राजतीश्च मनोरमाः । तथा काञ्चनभूमीश्च विचरन्ददृशे कपिः ॥२१॥
वापीश्च विविधाकाराः पूर्णाःपरमवारिणा । महार्हैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः ॥२२॥

हनुमानने सुख-से सोए हुए पक्षियोंको जगा दिया ॥९॥ पक्षियोंके उड़नेके समय, उनके पंखोंकी हवा लगनेसे पुष्पित वृक्षोंने अनेक प्रकारके फूल बरसाये ॥ १० ॥ वायुपुत्र हनुमान, पुष्पसे भर जानेके कारण उस अशोक वाटिकामें, पुष्पमय पर्वतके समान मालूम पड़ने लगे ॥११॥ चारो दिशाओं-में घूमकर वृक्षोंके समूहमें आये हुए हनुमानको देखकर वहाँके राक्षस आदि ने समझा कि यह वसन्त ही रूप धारण करके आया है ॥ १२ ॥ भिन्न-भिन्न रंगके पुष्प वृक्षोंसे पृथिवीपर गिरे थे, जिनसे वहाँकी भूमि अलंकृता स्त्रीके समान मालूम पड़ती थी ॥१३॥ बलवान् हनुमानने वेगसे अनेक वृक्षोंको बहुत हिलाया, जिससे उन वृक्षोंने तरह-तरहके फूल गिराए ॥ १४ ॥ वृक्षोंके शिखरके पत्ते कँपा दिये गये थे, उनके पुष्प फल नीचे गिरा दिये गये थे, अतएव वे वृक्ष वस्त्रा-लंकार रहित जुआमें हारे जुआड़ियोंके समान मालूम पड़ते थे ॥ १५ ॥ वेगवान् हनुमानके द्वारा कँपाये गये उन फलशाली उत्तम वृक्षोंने शीघ्रही पुष्प-पत्र-फल आदि गिरा दिए ॥ १६ ॥ वायुके द्वारा कंपित होनेके कारण पक्षियोंने वृक्षोंका त्याग कर दिया। इस प्रकार वृक्षोंमें केवल टहनियाँ रह गयीं। अतएव, वे वृक्ष जानेके अयोग्य अर्थात् विश्रामके अयोग्य हो गये ॥ १७ ॥ जिस युवतीके बाल बिखरे हुए हैं, जिसके अंगराग उचट गये हैं, जिसके सुन्दर दाँतवाले ओष्ठोंका पान किया गया है और जो नखों और दाँतोंसे विक्षत हुई है, उसीके समान हनुमानकी पूँछ, हाथ और चरणोंसे मसली हुई, अशोक वाटिका भी हो गई थी और उसके वृक्ष गिर गये थे ॥१८, १९ ॥ हनुमानने वेग पूर्वक, बड़ी-बड़ी लताओंके तने तोड़ दिये, जिस प्रकार वर्षा ऋतुमें हवा मेघजालको तोड़ देती है ॥ २० ॥ वहाँ घूमते हुए हनुमानने मणि, चाँदी और सोनेकी सुन्दर भूमि देखी ॥२१॥ वहाँ अनेक प्रकारके बने हुए तालाब थे, जिनमें स्वच्छ

मुक्ताप्रवालसिकताः स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः । काञ्चनैस्तरुभिश्चित्रैस्तीरजैरुपशोभिताः ॥२३॥
बुद्धपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिता । नत्यूहरुतसंघुष्टा हंससारसनादिताः ॥२४॥
दीर्घाभिर्द्रुमयुक्ताभिः सरिद्भिश्च समन्ततः । अमृतोपमतोयाभिः शिवाभिरुपसंस्कृताः ॥२५॥
लताशतैरवतताः संतानकुसुमावृताः । नानागुल्मावृतवनाः करवीरकृतान्तराः ॥२६॥
ततोऽम्बुधरसंकाशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम् । विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम् ॥२७॥
शिलागृहैरवततं नानावृक्षसमावृतम् । ददर्श कपिशार्दूलो रम्यं जगति पर्वतम् ॥२८॥
ददर्श च नगात्तस्मान्नदीं निपतितां कपिः । अङ्कादिव समुत्पत्य प्रियस्य पतितां प्रियाम् ॥२९॥
जलेन पतिताग्रैश्च पादपैरुपशोभिताम् । वार्यमाणामिव क्रुद्धां प्रमदां प्रियबन्धुभिः ॥३०॥
पुनरावृत्ततोयां च ददर्श स महाकपिः । प्रसन्नामिव कान्तस्य कान्तां पुनरुपस्थिताम् ॥३१॥
तस्यादूरात्स पद्मिन्यो नानाद्विजगणायुताः । ददर्श कपिशार्दूलो हनूमान्मारुतात्मजः ॥३२॥
कृत्रिमां दीर्घिकां चापि पूर्णां शीतेन वारिणा । मणिप्रवरसोपानां मुक्तासिकतशोभिताम् ॥३३॥
विविधैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् । प्रासादैः सुमहद्भिश्च निर्मितैर्विश्वकर्मणा ॥३४॥
काननैः कृत्रिमैश्चापि सर्वतः समलंकृताम् । ये केचित्पादपास्तत्र पुष्पोपगफलोपगाः ॥३५॥

जल भरा हुआ था तथा मूल्यवान् मणिकी सीढ़ियाँ कई ओर बनी हुई थीं ॥ २२ ॥ मोती और मूँगा, बालूके समान फैले हुए थे । उन तालाबोंके नीचेकी भूमि स्फटिककी बनी हुई थी । तीरस्थ सोनेके सुन्दर वृक्षोंसे वे तालाब शोभित हो रहे थे ॥ २३ ॥ उनमें कमल खिले हुए थे, चक्रवाक विहार कर रहे थे । दात्यूह नामका पक्षी बोल रहा था । हंस और सारस बोल रहे थे ॥ २४ ॥ उस वाटिकामें बड़े-बड़े तालाब थे, जिनके तीरोंपर वृक्ष लगे हुए थे । सुन्दर और अमृतके समान जलसे वे परिपूर्ण थे ॥ २५ ॥ सैकड़ों लताएँ फैली हुई थीं । कल्पवृक्षके पुष्पोंसे वे तालाब भरे हुए थे और गुल्मोंसे उनके जल ढके हुए थे । करबीरके वृक्षोंकी क्यारियाँ बनी हुई थीं ॥ २६ ॥ अनन्तर मेघके समान ऊँचे और विचित्र शिखरवाले पर्वतको हनुमानने देखा । उसके चारो ओर शिखरें थीं । पत्थरोंकी गुहाएँ थीं । अनेक वृक्षोंसे वह पर्वत युक्त था । वह संसारके सब पर्वतोंसे अधिक रमणीय था ॥२७॥२८॥ उस पर्वतसे निकलकर गिरती हुई एक नदीको हनुमानने देखा । मानो प्रियके अङ्कसे निकलकर प्रिया गिर रही हो ॥२९॥ जलकी धारासे नीचेके वृक्षोंकी शाखाएँ नीचेकी ओर झुक गई हैं । मानों वे क्रुद्ध नदी को लौटा लानेके लिए झुकी हों । जिस प्रकार प्रिय बन्धु क्रुद्ध स्त्रीको लौटानेके लिए हाथ बढ़ाता है ॥३०॥ पुनः पर्वतकी ओर जलकी धाराको आती हनुमानने देखा । मानो पतिपर प्रसन्न होकर दयिता पुनः उपस्थित हुई हो ॥३१॥ उस पर्वतके पासही एक स्वाभाविक तालाब था, जहाँ अनेक प्रकारके पक्षी रहते थे, वायुपुत्र हनुमानने उसे देखा ॥३२॥ बनाए हुए तालाब भी हनुमानने देखे, जिनमें शीतल जल भरा हुआ था, जिनमें उत्तम मणियोंकी सीढ़ियाँ बनी हुई थीं और जिनके तीरपर मोतियोंकी बालुका थी ॥३३॥ अनेक प्रकारके पशुओंसे युक्त और विविध वनोंसे युक्त विश्वकर्माके बनाए बड़े-बड़े महलोंसे युक्त, अनेक कृत्रिम महलोंसे युक्त उस वाटिकाको हनुमानने देखा । वहाँ

सच्छत्राः सवितर्दीकाः सर्वे सौवर्णवेदिकाः । लताप्रतानैर्बहुभिः पर्णैश्च बहुभिर्वृताम् ॥३६॥
काञ्चनीं शिंशपामेकां ददर्श स महाकपिः । वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः ॥३७॥
सोऽपश्यद्भूमिभागांश्च नगप्रस्रवणानि च । सुवर्णवृक्षानपरान्ददर्श शिखिसंनिभान् ॥३८॥
तेषां द्रुमाणां प्रभया मेरोरिव महाकपिः । अमन्यत तदा वीरः काञ्चनोऽस्मीति सर्वतः ॥३९॥
तान्काञ्चनान्वृक्षगणान्मारुतेन प्रकम्पितान् । किङ्किणीशतनिर्घोषान्दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ॥४०॥
सुपुष्पिताग्रान्रुचिरांस्तरुणाङ्कुरपल्लवान् । तामारुह्य महावेगः शिंशपां पर्णसंवृताम् ॥४१॥
इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम् । इतश्चेतश्च दुःखार्तां संपतन्तीं यदृच्छया ॥४२॥
अशोकवनिका चेयं दृढं रम्या दुरात्मनः । चन्दनैश्चम्पकैश्चापि बकुलैश्च विभूषिता ॥४३॥
इयं च नलिनी रम्या द्विजसङ्घनिषेविता । इमां सा राजमहिषी नूनमेष्यति जानकी ॥४४॥
सा रामा राजमहिषी राघवस्य प्रिया सदा । वनसंचारकुशला ध्रुवमेष्यति जानकी ॥४५॥
अथवा मृगशावाक्षी वनस्यास्य विचक्षणा । वनमेष्यति साद्येह रामचिन्तासुकर्शिता ॥४६॥
रामशोकाभिसंतप्ता सा देवी वामलोचना । वनवासरता नित्यमेष्यते वनचारिणी ॥४७॥
वनेचराणां सततं नूनं स्पृहयते पुरा । रामस्य दयिता भार्या जनकस्य सुता सती ॥४८॥
संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी । नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी ॥४९॥

जितने वृक्ष थे वे सब फूलने और फलनेवाले थे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उनकी शाखाएँ छातेके समान थीं । उनके नीचे थाले बने हुए थे और सोनेकी वेदियाँ थीं । हनुमानने एक सोनेका सिंसपा वृक्ष देखा जो लताओंसे घिरा हुआ था । जिसमें बहुतसे पत्ते थे और जिसके चारों ओर सोनेकी वेदियाँ बनी हुई थीं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हनुमानने वहाँ मैदान, पर्वत, झरने तथा अग्निके समान दीप्यमान दूसरे प्रकारके सुवर्ण वृक्ष देखे ॥ ३८ ॥ मेरुके समान उन वृक्षोंकी प्रभासे वीर हनुमानने अपनेको भी सुवर्ण ही समझ लिया ॥ ३९ ॥ उन सोनेके वृक्षोंको वायुके द्वारा कंपित तथा हजारों घंटियोंसे शब्दायमान देखकर हनुमान विस्मित हुए ॥ ४० ॥ पुष्पित, सुन्दर और कोमल पत्तेवाले उन वृक्षोंको देखकर हनुमान विस्मित हुए । सघन पत्तोंवाले उस सिंसपा वृक्षपर चढ़कर हनुमान सोचने लगे ॥ ४१ ॥ इधर रामके दर्शनके लिए उत्कंठित अथवा दुःख-पीड़ित संतप्त सीताको मैं अकस्मात् देखूंगा ॥ ४२ ॥ दुरात्मा रावणकी यह अशोकवाटिका चन्दन, चम्पक और बकुल वृक्षोंसे भूषित होनेके कारण बड़ी सुन्दर जान पड़ती है ॥ ४३ ॥ रामचन्द्रकी महारानी सीता इस रमणीय तालाब पर, जहाँ पक्षियोंके समूह विचरण कर रहे हैं, अवश्य ही आती होंगी ॥ ४४ ॥ महारानी रामकी प्रिया सीता वनमें घूमना बहुत पसन्द करती हैं अतएव वे यहाँ अवश्य आती होंगी ॥ ४५ ॥ रामकी चिन्तासे कृश मृगशावाक्षी सीता इस वनसे परिचित होनेके कारण आज अवश्य ही आवेंगी ॥ ४६ ॥ रामके शोकसे संतप्त वामलोचना सीता वनवाससे प्रेम होनेके कारण इस वनमें विचरनेके लिए अवश्य आवेंगी ॥ ४७ ॥ रामचन्द्रकी भार्या जनककी पुत्री सती सीता पहले अवश्य ही वनेचरों (वनके पशुपक्षी) से प्रेम करती रही होंगी ॥ ४८ ॥ सायंकालिक कृत्य करनेकी इच्छासे सुन्दरी श्रेष्ठ श्यामा जानकी इस सुन्दर

तस्याश्चाप्यनुरूपेयमशोकवनिका शुभा । शुभायाः पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य संमता ॥५०॥
यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना । आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम् ॥५१॥
एवं तु गत्वा हनुमान्महात्मा प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपत्नीम् ।
अवेक्षमाणश्च ददर्श सर्वं सुपुष्पिते पर्णघने निलीनः ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५

स वीक्षमाणस्तत्रस्थो मार्गमाणश्च मैथिलीम् । अवेक्षमाणश्च महीं सर्वां तामन्ववैक्षत ॥ १ ॥
संतानकलताभिश्च पादपैरुपशोभिताम् । दिव्यगन्धरसोपेतां सर्वतः समलंकृताम् ॥ २ ॥
तां स नन्दनसंकाशां मृगपक्षिभिरावृताम् । हर्म्यप्रासादसंबाधां कोकिलाकुलनिःस्वनाम् ॥ ३ ॥
काञ्चनोत्पलपद्माभिर्वापीभिरुपशोभिताम् । बह्वासनकुथोपेतां बहुभूमिगृहायुताम् ॥ ४ ॥
सर्वर्तुकुसुमै रम्यैः फलवद्भिश्च पादपैः । पुष्पितानामशोकानां श्रिया सूर्योदयप्रभाम् ॥ ५ ॥

जलवाली नदीमें अवश्य आवेंगी ॥ ४९ ॥ राजेन्द्र रामचन्द्रकी प्रियपत्नी सुन्दरी सीताके लिए यह अशोकवाटिका ही अनुकूल है ॥ ५० ॥ यदि वे चन्द्रमुखी देवी जीती होंगी तो अवश्य ही इस शीतल जलवाली नदीपर आवेंगी ॥ ५१ ॥ इस प्रकार पुष्पित सिंसपा वृक्षके सघन पत्तोंमें छिपकर हनुमान रामचन्द्रकी पत्नी सीताके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे और इधर-उधर देखते हुए उस समस्त वनको देखने लगे ॥ ५२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका चौदहवां सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥

सिंसपा वृक्षपर बैठकर इधर-उधर देखते हुए सीताको देखनेकी इच्छासे हनुमान चारों ओर देखने लगे ॥ १ ॥ हनुमान सघन लताओंसे युक्त वृक्षोंसे शोभित सब ओरसे अलंकृत दिव्य गंध और रससे युक्त नंदन वनके समान मृग, पक्षियोंसे पूर्ण अटारियों और राजभवनोंसे युक्त कोकिलस्वरोंसे गुंजित सुवर्णकमलोंवाली वापियोंसे युक्त अनेक बिछौने और कालीनोंसे भरी हुई अनेक तहखानोंवाली सब ऋतुओंके फूलों और फलोंवाले वृक्षोंसे युक्त पुष्पित अशोकोंकी शोभासे सूर्योदयकी शोभा धारण करनेवाली, बारबार पक्षियोंके द्वारा पत्रहीन और शाखाहीन बनाई गई वाटिका हनुमानने देखी ॥ २ ॥ ३ ॥ सैकड़ों गिरे हुए फूलके गुच्छोंसे, जड़से लेकर शिखा तक फूले हुए शोकनाशन अशोकोंसे, पुष्पभारसे पृथिवी तक फूले हुए कर्णिकार और पलाश वृक्षोंसे, वह देश मानो चारों ओरसे प्रकाशित हो रहा था । पुन्नाग, सप्तपर्ण, चम्पक, उद्दालक आदि अनेक मोटी जड़वाले वृक्ष पुष्पित होनेके कारण सुशोभित हो रहे थे । कोई अंजनके समान काले इस तरह हजारों प्रकारके वहाँ अशोक वृक्ष थे, देवताओंका नन्दन वन

प्रदीप्तामिव तत्रस्थो मारुतिः समुदैक्षत । निष्पत्रशाखां विहगैः क्रियमाणामिवासकृत् ॥ ६ ॥
विनिष्पतद्भिः शतशश्चित्रैः पुष्पावतंसकैः । समूलपुष्परचितैरशोकैः शोकनाशनैः ॥ ७ ॥
पुष्पभारातिभारैश्च स्पृशद्भिरिव मेदिनीम् । कर्णिकारैः कुसुमितैः किंशुकैश्च सुपुष्पितैः ॥ ८ ॥
स देशः प्रभया तेषां प्रदीप्त इव सर्वतः । पुंनागाः सप्तपर्णाश्च चम्पकोद्दालकास्तथा ॥ ९ ॥
विवृद्धमूला बहवः शोभन्ते स्म सुपुष्पिताः । शातकुम्भनिभाः केचित्केचिदग्निशिखप्रभाः ॥१०॥
नीलाञ्जननिभाः केचित्तत्राशोकाः सहस्रशः । नन्दनं विबुधोद्यानं चित्रं चैत्ररथं यथा ॥११॥
अतिवृत्तमिवाचिन्त्यं दिव्यं रम्यश्रिया युतम् । द्वितीयमिव चाकाशं पुष्पज्योतिर्गणायुतम् ॥१२॥
पुष्परत्नशतैश्चित्रं पञ्चमं सागरं यथा । सर्वर्तुपुष्पैर्निचितं पादपैर्मधुगन्धिभिः ॥१३॥
नानानिनादैरुद्यानं रम्यं मृगगणैर्द्विजैः । अनेकगन्धप्रवहं पुण्यगन्धं मनोहरम् ॥१४॥
शैलेन्द्रमिव गन्धाढ्यं द्वितीयं गन्धमादनम् । अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुंगवः ॥१५॥
स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमूर्जितम् । मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डुरम् ॥१६॥
प्रवालकृतसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् । मुष्णन्तमिव चक्षूंषि द्योतमानमिव श्रिया ॥१७॥
निर्मलं प्रांशुभावत्वादुल्लिखन्तमिवाम्बरम् । ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् ॥१८॥
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः । ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ॥१९॥
मन्दप्रख्यायमानेन रूपेण रुचिरप्रभाम् । पिनद्धां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥२०॥
पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा । सपङ्कामनलंकारां विपद्मामिव पद्मिनीम् ॥२१॥

जैसा आह्लादक है, कुबेरका चित्ररथ जैसा विचित्र है उन दोनोंसे उत्तम रमणीय शोभासे युक्त अचिन्तनीय शोभावाली वह वाटिका थी । पुष्परूपी नक्षत्रोंसे युक्त दूसरे आकाशके समान वह वाटिका मालूम पड़ती थी ॥ ७-१२ ॥ पुष्परूपी सैकड़ों रत्नोंसे युक्त वह वाटिका पाँचवें समुद्रके समान मालूम पड़ती थी । सब ऋतुओंमें फूलनेवाले और मनोहर गन्धवाले वृक्षोंसे युक्त, अनेक प्रकारके शब्दवाले पशु पक्षिओंके कारण रमणीय, गन्धयुक्त पर्वतश्रेष्ठ दूसरे गन्धमादनके समान अनेक प्रकारकी गन्ध प्रवाहित करनेवाले और मनोहर उस उद्यानको हनुमानने देखा । उस अशोक वाटिकामें वानरश्रेष्ठ हनुमानने थोड़ी ही दूरपर ऊंचा और शुभ्र मन्दिरके समान गोला एक राजमहल देखा, जो हजार खंभों पर बना था और कैलास पर्वतके समान श्वेत था ॥ १३-१६ ॥ मूंगेकी सीढ़ियाँ बनी हुई थीं । उज्ज्वल सुवर्णकी वेदी जो आँखोंको आकर्षण करती थीं अपनी शोभासे प्रकाशित हो रही थीं ॥ १७ ॥ वह निर्मल प्रासाद ऊँचाईके कारण आकाशको छू रहा था । अनन्तर मलिन वस्त्र पहने हुई, राक्षसियोंसे घिरी हुई, उपवाससे कृश, दीन, बार-बार श्वास लेती हुई शुक्लपक्षके आदिमें चन्द्रमाकी रेखाके समान निर्मल स्त्रीको हनुमानने देखा ॥ १८ ॥ १९ ॥ किसी प्रकार पहचानमें आनेवाले रूपसे सुन्दर दीख पड़नेवाली, धुएँ से ढकी हुई अग्निज्वालाके समान वह मालूम पड़ती थी ॥ २० ॥ पुराने एक पीले वस्त्रसे वह ढकी हुई थी । कोई भी अलंकार शरीर पर नहीं थे, अतएव कमलहीन कीचड़वाली वापीके

पीडितां दुःखसंतप्तां परिक्षीणां तपस्विनीम् । ग्रहेणाङ्गारकेणेव पीडितामिव रोहिणीम् ॥२२॥
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च । शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम् ॥२३॥
प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् । स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव ॥२४॥
नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया । नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥२५॥
सुखार्हां दुःखसंतप्तां व्यसनानामकोविदाम् । तां विलोक्य विशालाक्षीमधिकं मलिनां कृशाम् ॥२६॥
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः । ह्रियमाणा तदा तेन रक्षसा कामरूपिणा ॥२७॥
यथारूपा हि दृष्टा सा तथारूपेयमङ्गना । पूर्णचन्द्राननां सुभ्रूं चारुवृत्तपयोधराम् ॥२८॥
कुर्वतीं प्रभया देवीं सर्वा वितिमिरा दिशः । तां नीलकण्ठीं बिम्बोष्ठीं सुमध्यां सुप्रतिष्ठिताम् ॥२९॥
सीतां पद्मपलाशाक्षीं मन्मथस्य रतिं यथा । इष्टां सर्वस्य जगतः पूर्णचन्द्रप्रभामिव ॥३०॥
भूमौ सुतनुमासीनां नियतामिव तापसीम् । निःश्वासबहुलां भीरुं भुजगेन्द्रवधूमिव ॥३१॥
शोकजालेन महता विततेन न राजतीम् । संसक्तां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥३२॥
तां स्मृतीमिव संदिग्धामृद्धिं निपतितामिव । विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव ॥३३॥
सोपसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलुषामिव । अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ॥३४॥

समान वह मालूम पड़ती थी ॥ २१ ॥ वह बेचारी बहुत ही दुर्बल, पीड़ित और दुःखसे संतप्त थी। वह मंगल ग्रहके द्वारा पीड़ित रोहिणीके समान मालूम पड़ती थी ॥ २२ ॥ उसका मुंह आंसुओंसे भरा हुआ था। न खानेके कारण वह दुर्बल हो गई थी। वह शोकके कारण सदा चिन्तित रहनेवाली, दुःखिनी और दीन थी ॥ २३ ॥ वह अपने आदमियोंको नहीं देखती थी; किन्तु राक्षसियोंको देखती थी। अपने दलवालोंसे रहित तथा कुत्तोंसे घिरी हुई मृगीके समान उसकी दशा थी ॥ २४ ॥ काले सर्पके समान उसकी एक चोटी नीचे तक लटकी हुई थी, अतएव वर्षा बीतनेपर नीली वनराजिसे पृथिवीके समान वह मालूम पड़ती थी ॥ २५ ॥ सुखके योग्य वह दुःख पा रही थी। दुःखोंका नाम तक न जाननेवाली उस अत्यन्त मलिन और कृश विशालाक्षीको देखकर उचित कारणोंसे हनुमानने उसे सीता समझा। कामरूपी राक्षसके द्वारा जिस समय सीता हरी गयी थी उस समय जैसा उनका रूप था वैसाही इस स्त्रीका भी है। पूर्णचन्द्रके समान उनका मुख था। सुन्दर भौंहे थीं सुन्दर और गोले स्तन थे। अपने प्रकाशसे वे सब दिशाओंको प्रकाशित कर रही थीं। नीलम मणिके भूषणके कारण गला नीला मालूम पड़ता था, बिम्बके समान उनके ओष्ठ थे। सुन्दर कटि और पैर थे ॥२६-२९॥ कामदेवकी स्त्री रतिके समान कमलनयनी सीता सबको प्रिय और पूर्णचन्द्रकी प्रभाके समान संसारको प्रिय थी ॥ ३० ॥ सुन्दरी सीता नियम धारण करनेवाली तपस्विनीके समान और बार-बार श्वास छोड़नेवाली नागिनके समान हो गई थी ॥ ३१ ॥ बढ़े हुए प्रचुर शोकके कारण वह आज शोभित नहीं होती थी, जिस प्रकार धूमजालसे ढकी हुई अग्निकी ज्वाला ॥ ३२ ॥ संशयित अर्थवाली स्मृति, धर्म संहिताके समान, पतितऋद्धिके समान, विहत श्रद्धाके समान, प्रतिहत आशाके समान, विघ्नयुक्त सिद्धिके समान, कलुषित बुद्धिके समान, मिथ्या कलंकसे नष्ट हुई कीर्तिके समान रामकी सेवाके अभा-

रामोपरोधव्यथितां रक्षोगणनिपीडिताम् । अबलां मृगशावाक्षीं वीक्षमाणां ततस्ततः ॥३५॥
बाष्पाम्बुपरिपूर्णेन कृष्णवक्राक्षिपक्ष्मणा । वदनेनाप्रसन्नेन निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ॥३६॥
मलपङ्कधरां दीनां मण्डनार्हाममण्डिताम् । प्रभां नक्षत्रराजस्य कालमेघैरिवावृताम् ॥३७॥
तस्य संदिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च । आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव ॥३८॥
दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलंकृताम् । संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम् ॥३९॥
तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम्। तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादयन् ॥४०॥
वैदेह्या यानि चाङ्गेषु तदा रामोऽन्वकीर्तयत् । तान्याभरणजालानि गात्रशोभीन्यलक्षयत् ॥४१॥
सुकृतौ कर्णवेष्टौ च श्वदंष्ट्रौ च सुसंस्थितौ । मणिविद्रुमचित्राणि हस्तेष्वाभरणानि च ॥४२॥
श्यामानि चिरयुक्तत्वात्तथा संस्थानवन्ति च। तान्येवैतानि मन्येऽहं यानि रामोऽन्वकीर्तयत् ॥४३॥
तत्र यान्यवहीनानि तान्यहं नोपलक्षये । यान्यस्या नावहीनानि तानीमानि न संशयः॥४४॥
पीतं कनकपट्टाभं स्रस्तं तद्वसनं शुभम् । उत्तरीयं नगासक्तं तदा दृष्टं प्लवंगमैः ॥४५॥
भूषणानि च मुख्यानि दृष्टानि धरणीतले । अनयैवापविद्धानि स्वनवन्ति महान्ति च ॥४६॥
इदं चिरगृहीतत्वाद्वसनं क्लिष्टवत्तरम् । तथाप्यनूनं तद्वर्णं तथा श्रीमद्यथेतरत् ॥४७॥

वसे व्यथित राक्षसोंके द्वारा पीड़ित, अबला, छोटी मृगीके समान, चंचल आँखोंवाली और इधर-उधर देखनेवाली अश्रुसिक्त आँखोंकी काली पपनियोंसे युक्त और म्लान मुखसे बार-बार श्वास लेने वाली, मलिनशरीरा, विभूषित होनेकी योग्यता रखनेपर भी भूषणहीना, मेघावृत चन्द्रमाकी प्रभाके समान वह दीन दिखाई पड़ती थी ॥ ३३-३७ ॥ अभ्यासके विना विस्मृत विद्याके समान सीताको देखकर हनुमान सन्देहमें पड़ गये ॥ ३८ ॥ व्याकरण-संबन्धी संस्कारोंसे हीन वचन जैसे दूसरे अर्थका बोधक हो जाता है और कष्टसे यथार्थ अर्थ मालूम पड़ता है, उसी प्रकार, शरीरसंस्कारहीन सीताको हनुमानने कष्टसे पहिचाना ॥ ३९ ॥ विशालाक्षी राजपुत्री अनिन्दित उस स्त्रीको देखकर उचित कारणोंसे हनुमानने उसे सीता समझा ॥ ४० ॥ सीताके अंगोंके जिन भूषणोंकी चर्चा रामचन्द्रने की थी, शरीरको शोभित करनेवाले वे भूषण हनुमानने देखे ॥ ४१ ॥ सुन्दर बने हुए कर्णफूल और श्वदंष्ट्र (कानोंमें पहननेका एक गहना, जो कुत्तेके दाँतके समान होता है) अपने स्थान पर स्थित हैं । मणि विद्रुम आदि जड़े हुए गहने हाथोंमें पड़े हुए हैं । बहुत दिनोंसे धारण करनेके कारण वे काले पड़ गए हैं । हनुमानने कहा मैं समझता हूँ रामचन्द्रके बतलाये वे गहने ये ही हैं ॥ ४२-४३ ॥ जो गहने ऋष्यमूक पर्वत पर गिरा दिये गये थे, उन्हें मैं इस स्त्रीके अंगमें नहीं देखता हूँ और जो नहीं गिराये गये थे वे यथास्थान हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥ सुवर्ण वस्त्रके समान पीला जो ओढ़नेका सुन्दर वस्त्र पर्वतपर गिरा था, जो बजनेवाले भारी और श्रेष्ठ भूषण पर्वत पर गिरे थे और सुग्रीव आदि वानरोंने देखे थे, वे इन्हींके गिराये थे ॥ ४५-४६ ॥ यह वस्त्र जिसे इस स्त्रीने धारण किया है, बहुत दिनोंसे पहननेके कारण मैला हो गया है तथापि निश्चयपूर्वक यह उसी रंगका है जैसा हमलोगोंने देखा था और वैसाही सुन्दर भी है

इयं कनकवर्णाङ्गी रामस्य महिषी प्रिया। प्रणष्टापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति ॥४८॥
इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते। कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ॥४९॥
स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः। पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥५०॥
तस्या देव्या यथा रूपमङ्गप्रत्यङ्गसौष्ठवम्। रामस्य च तथा रूपं तस्येयमसितेक्षणा ॥५१॥
अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम्। तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ॥५२॥
दुष्करं कृतवान्रामो हीनो यदनया प्रभुः। धारयत्यात्मनो देहं न शोकेनावसीदति ॥५३॥
एवं सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसंभवः। जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम् ॥५४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६

प्रशस्य तु प्रशस्तव्यां सीतां तां हरिपुंगवः। गुणाभिरामं रामं च पुनश्चिन्तापरोऽभवत् ॥१॥
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः। सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनूमान्विललाप ह ॥२॥
मान्या गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया। यदि सीता हि दुःखार्ता कालो हि दुरतिक्रमः ॥३॥

॥ ४७ ॥ यह सुवर्णाङ्गी अवश्य ही रामचन्द्रकी महारानी हैं, जो सती खोजाने पर भी रामचन्द्रके मनसे नहीं खोयी गयी है ॥ ४८ ॥ यह वही सीता है जिसके लिए रामचन्द्र करुणा, आश्रितवत्सलता, शोक और काम इन चारोंसे दुःखित हो रहे हैं ॥ ४९ ॥ स्त्री खोयी गयी है, यह करुणा है; वह हमारे आश्रयमें थी, यह आश्रितवत्सलता है, पत्नी भूल गयी, यह शोक है और वह प्रिय थी, यह काम है । इन्हीं चार कारणोंसे रामचन्द्र व्यथित हो रहे थे ॥ ५० ॥ इस स्त्रीका जैसा शरीर है, इसके अंग-प्रत्यंगोंकी जैसी सुन्दरता है, रामचन्द्रका शरीर भी वैसा ही सुन्दर है, उनके अंग प्रत्यङ्ग भी वैसे ही गठीले हैं, अतएव यह उनके योग्य है ॥ ५१ ॥ इस देवीका मन रामचन्द्रमें और रामचन्द्रका मन इस देवीमें लगा हुआ है, अतएव ये और धर्मात्मा वे जीवन धारण कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ रामचन्द्र इसके बिना जो शरीर धारण कर रहे हैं, शोकके कारण प्राण त्याग नहीं करते, अवश्य ही यह बहुत ही दुष्कर काम वे कर रहे हैं ॥ ५३ ॥ वायुपुत्र हनुमान् इस प्रकार सीताको देखकर प्रसन्न हुए, मनही मन रामचन्द्रके पास गये और उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥१५॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान् प्रशंसनीय सीताकी प्रशंसा करके और गुणाभिराम रामचन्द्रका स्मरण करके पुनः चिन्तित हुए ॥ १ ॥ थोड़ी देर विचार करके तेजस्वी हनुमान् सीताके लिये विलाप करने लगे। उनकी आँखें आँसूसे भीग गयीं ॥ २ ॥ गुरुओंसे शिक्षाप्राप्त लक्ष्मणके बड़े भाईकी प्रिया मान्य सीता यदि आज दुख उठा रही हैं तो समझना होगा कि कालका अतिक्रमण करना

रामस्य व्यवसायज्ञा लक्ष्मणस्य च धीमतः। नात्यर्थं क्षुभ्यते देवी गङ्गेव जलदागमे ॥४॥
तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम्। राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा ॥५॥
तां दृष्ट्वा नवहेमाभां लोककान्तामिव श्रियम्। जगाम मनसा रामं वचनं चेदमब्रवीत् ॥६॥
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्या हतो वाली महाबलः। रावणप्रतिमो वीर्ये कबन्धश्च निपातितः ॥७॥
विराधश्च हतः संख्ये राक्षसो भीमविक्रमः। वने रामेण विक्रम्य महेन्द्रेणेव शम्बरः ॥८॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्। निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥९॥
खरश्च निहतः संख्ये त्रिशिराश्च निपातितः। दूषणश्च महातेजा रामेण विदितात्मना ॥१०॥
ऐश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं वालिपालितम्। अस्या निमित्ते सुग्रीवः प्राप्तवाँल्लोकविश्रुतः ॥११॥
सागरश्च मयाक्रान्तः श्रीमान्नदनदीपतिः। अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याःपुरी चेयं निरीक्षिता ॥१२॥
यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत्। अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मतिः॥१३॥
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा। त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात्कलाम् ॥१४॥
इयं सा धर्मशीलस्य जनकस्य महात्मनः। सुता मैथिलराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता ॥१५॥
उत्थिता मेदिनीं भित्त्वा क्षेत्रे हलमुखक्षते। पद्मरेणुनिभैः कीर्णा शुभैः केदारपांसुभिः ॥१६॥
विक्रान्तस्यार्यशीलस्य संयुगेष्वनिवर्तिनः। स्नुषा दशरथस्यैषा ज्येष्ठा राज्ञो यशस्विनी ॥१७॥

किसीके लिये भी संभव नहीं है ॥ ३ ॥ रामचन्द्र और लक्ष्मणके पराक्रममें विश्वास रखनेवाली सीता बहुत दुःखित नहीं है; जिस तरह मेघागमनके कारण गङ्गा ॥ ४ ॥ शील, वय, व्यवहार और कुलसे रामचन्द्र सीताके लिए योग्य हैं और सीता रामचन्द्रके लिए ॥ ५ ॥ उज्ज्वल सुवर्णके समान दीप्तिमती और अपनी शोभासे लक्ष्मीके समान सबको शोभित करनेवाली सीताको देखकर हनुमान् मनही मन रामचन्द्रके पास पहुँचे और उनसे बोले ॥ ६ ॥ इसी विशालाक्षीके लिए आपने महाबली बालिको मारा है। रावणके समान पराक्रमी कबन्धको गिराया है ॥ ७ ॥ वनमें विक्रम प्रकाशित करके विकट पराक्रमी विराध राक्षसको आपने मारा है। जिस प्रकार शम्बर-को इन्द्रने मारा था ॥ ८ ॥ भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको अग्निशिखाके समान बाणोंसे जनस्थानमें आपने मारा है ॥ ९ ॥ युद्धमें खरको आपने मारा है, त्रिशिराको गिराया है और महातेजस्वी दूषणको मारा है ॥ १० ॥ बालिके द्वारा पालित, वानरोंका दुर्लभ ऐश्वर्य, इसीके लिए लोकप्रसिद्ध सुग्रीवने पाया है ॥ ११ ॥ नद-नदियोंके स्वामी समुद्रको इसी विशालाक्षीके लिए मैंने लाँघा है और यह नगरी देखी है ॥ १२ ॥ यदि रामचन्द्र इसके लिए समुद्र पर्यन्त पृथिवीको उलट देते, संसारको उलट देते, तो मेरी समझसे उचित होता ॥ १३ ॥ तीनों लोकोंका राज्य अथवा सीता—इन दोनोंमें सीता ही श्रेष्ठ हैं। समस्त त्रिलोकका राज्य सीताकी एक कलाके बराबर भी नहीं है ॥ १४ ॥ यह सीता मैथिलराज धर्मात्मा महात्मा जनककी पुत्री है और पतिव्रत धर्मका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाली है ॥ १५ ॥ यह सीता हलसे खेत जोतनेके समय कमल-परागके समान खेतकी धूलसे लिपटी हुई, पृथिवी फोड़कर निकली है ॥ १६ ॥ यह पराक्रमी श्रेष्ठ आचारवाले, युद्धमें पीठ न दिखानेवाले राजा दशरथकी ज्येष्ठ पुत्र-

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः । इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता ॥१८॥
सर्वान्भोगान्परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता । अचिन्तयित्वा कष्टानि प्रविष्टा निर्जनं वनम् ॥१९॥
संतुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणापरा । या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥२०॥
सेयं कनकवर्णाङ्गी नित्यं सुस्मितभाषिणी । सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी ॥२१॥
इमां तु शीलसंपन्नां द्रष्टुमिच्छति राघवः । रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः ॥२२॥
अस्या नूनं पुनर्लाभाद्राघवः प्रीतिमेष्यति । राजा राज्यपरिभ्रष्टः पुनः प्राप्येव मेदिनीम् ॥२३॥
कामभोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन च । धारयत्यात्मनो देहं तत्समागमकाङ्क्षिणी ॥२४॥
नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान्पुष्पफलद्रुमान् । एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति ॥२५॥
भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि । एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते ॥२६॥
दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः । धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति ॥२७॥
इमामसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम् । सुखार्हां दुःखितां ज्ञात्वा ममापि व्यथितं मनः ॥२८॥

क्षितिक्षमा पुष्करसंनिभेक्षणा या रक्षिता राघवलक्ष्मणाभ्याम् ।
सा राक्षसीभिर्विकृतेक्षणाभिः संरक्ष्यते संप्रति वृक्षमूले ॥ २९ ॥

वधू है ॥ १७ ॥ धर्मज्ञ, कृतज्ञ और अपने पराक्रमका ज्ञान रखनेवाले रामचन्द्रकी प्रिय पत्नी है। यह राक्षसियोंके अधीन होगयी है ॥ १८ ॥ पतिप्रेमके कारण राजमहलके सब सुखोंको छोड़कर और जंगलके कष्टोंकी परवाह न कर पतिके साथ यह जंगलमें आयी थी ॥ १९ ॥ फलमूलसे सन्तोष करके पतिकी सेवा करती हुई यह राजमहलमें जैसी प्रसन्न रहती थी, वैसी ही वनमें भी प्रसन्न थी ॥ २० ॥ सुवर्णांगी स्मितभाषिणी दुःख सहन करनेके अयोग्य सीता आज यह कष्ट भोग रही है ॥२१॥ शीलसम्पन्न सीता यद्यपि रावणके द्वारा हरी गयी है फिर भी रामचन्द्र इसको देखनेके लिए वैसे ही उत्कंठित हैं, जैसे प्यासा मनुष्य पौसालेके लिए उत्कंठित रहता है ॥२२॥ इसको पुनः पाकर रामचन्द्र अवश्यही प्रसन्न होंगे, जिस प्रकार राज्यभ्रष्ट राजा पुनः अपना राज्य पाकर प्रसन्न होता है ॥२३॥ सांसारिक सुखोंका त्याग करके बन्धुजनोंसे विरहित होकरभी रामचंद्रके दर्शनकी आशासे ही शरीर धारण कर रही है ॥२४॥ यह राक्षसियोंको नहीं देखती और न इन फूल-फलवाले वृक्षोंको। यह तन्मय होकर केवल रामचन्द्रको ही देखती है ॥२५॥ पति ही स्त्रियोंके लिए भूषणसे भी बढ़कर शोभा देनेवाला है । अतएव शोभा पानेके योग्य भी सीता पतिके न होनेके कारण शोभित नहीं होती ॥ २६ ॥ प्रभु रामचंद्र इसके बिना जीते हैं और दुःखित हो रहे हैं-इसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ २७ ॥ इस काले केशवाली, कमलके समान नेत्रवाली, सुख पानेके योग्य सीताको दुखी देखकर मेरा भी मन व्यथित हो रहा है ॥ २८ ॥ पृथिवीके समान जो क्षमाशील है, कमलके समान जिसकी आँखें हैं और राम लक्ष्मणने जिसकी रक्षा की है, वही सीता इस समय पेड़के नीचे विकृत आँखवाली राक्षसियोंके द्वारा रक्षित हो रही है ॥ २९ ॥

हिमहतनलिनीव नष्टशोभा व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना ।
सहचररहितेव चक्रवाकी जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना ॥ ३० ॥
अस्या हि पुष्पावनताग्रशाखाः शोकं दृढं वै जनयन्त्यशोकाः ।
हिमव्यपायेन च शीतरश्मिरभ्युत्थितो नैकसहस्ररश्मिः ॥ ३१ ॥
इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य सीतेयमित्येव तु जातबुद्धिः ।
संश्रित्य तस्मिन्निषसाद वृक्षे बली हरीणामृषभस्तरस्वी ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७

ततः कुमुदखण्डाभो निर्मलं निर्मलोदयः । प्रजगाम नभश्चन्द्रो हंसो नीलमिवोदकम् ॥ १ ॥
साचिव्यमिव कुर्वन्स प्रभया निर्मलप्रभः । चन्द्रमा रश्मिभिः शीतैः सिषेवे पवनात्मजम् ॥ २ ॥
स ददर्श ततः सीतां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् । शोकभारैरिव न्यस्तां भारैर्नावमिवाम्भसि ॥ ३ ॥
दिदृक्षमाणो वैदेहीं हनूमान्मारुतात्मजः । स ददर्श विदूरस्था राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥ ४ ॥
एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा । अकर्णां शङ्कुकर्णां च मस्तकोच्छ्वासनासिकाम् ॥ ५ ॥
अतिकायोत्तमाङ्गीं च तनुदीर्घशिरोधराम् । ध्वस्तकेशीं तथाकेशीं केशकम्बलधारिणीम् ॥ ६ ॥

बर्फसे मारी हुई कमलिनीके समान जिसकी शोभा नष्ट हो गयी है, दुःखपरम्परासे जो पीड़ित हो रही है, सहचर—रहित चक्रवाकीके समान जानकीने आज शोचनीय दशा पायी है ॥ ३० ॥ पुष्पभारसे नम्र शाखावाले वे अशोक वृक्ष इस सीताको अवश्य ही दुःख पहुँचा रहे हैं, और कई हजार किरणोंवाले शीत-किरण चन्द्रमा भी शिशिर ऋतु बीत जानेपर अर्थात् वसन्तके प्रारम्भमें इसे दुःख दे रहे हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार विचार करके, और यही सीता हैं, यह निश्चय करके वानरश्रेष्ठ, बली और वेगवान हनुमान् उसी वृक्षपर बैठे रहे ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका सोलहवां सर्ग समाप्त ॥१६॥

अनन्तर श्वेत कमलके समान निर्मलोदय चन्द्रमा उज्ज्वल आकाशमें ऊपर चढ़ आये, जिस प्रकार नीले जलमें हंस ॥ १ ॥ शीत किरणोंवाले निर्मलप्रभ चन्द्र अपनी प्रभासे मानो सहायता देनेके लिए उनकी सेवा करने लगे ॥ २ ॥ पूर्णचन्द्रानना सीताको हनुमान्ने शोक-भारसे पीड़ित जलमें भारसे झुकी हुई नौकाके समान देखा ॥ ३ ॥ सीताको देखनेकी इच्छा रखनेवाले हनुमान्ने पासही भयानक दीख पड़नेवाली राक्षसियोंको देखा ॥ ४ ॥ किसीकी एक आँख थी, किसीके एक कान, किसीके कान थे पर वे लम्बे थे, किसीके कानही नहीं थे, किसीके कान कीलके समान नुकीले थे, किसीका मुँह ऊपरकी ओर था और किसीकी नाक ॥५॥ किसीका शरीर लम्बा था, किसीका माथा; किसीका गला छोटा था किसीका बड़ा; किसीके बाल उखड़

लम्बकर्णललाटां च लम्बोदरपयोधराम् ।लम्बोष्ठीं चिबुकोष्ठीं च लम्बास्यां लम्बजानुकाम्॥७ ॥
ह्रस्वां दीर्घां च कुब्जां च विकटां वामनां तथा। करालां भुग्नवक्त्रां च पिङ्गाक्षीं विकृताननाम् ॥ ८ ॥
विकृताःपिंगलाःकालीः क्रोधनाःकलहप्रियाः। कालायसमहाशूलकूटमुद्गरधारिणीः ॥ ९ ॥
वराहमृगशार्दूलमहिषाजशिवामुखाः । गजोष्ट्रहयपादाश्च निखाताशिरसोऽपराः ॥१०॥
एकहस्तैकपादाश्च खरकर्ण्यश्वकर्णिकाः । गोकर्णीर्हस्तिकर्णीश्च हरिकर्णीस्तथापराः ॥११॥
अतिनासाश्च काश्चिच्च तिर्यङ्नासा अनासिकाः।गजसंनिभनासाश्च ललाटोच्छ्वासनासिकाः॥१२॥
हस्तिपादा महापादा गोपादाः पादचूलिकाः। अतिमात्रशिरोग्रीवा अतिमात्रकुचोदरीः ॥१३॥
अतिमात्रास्यनेत्राश्च दीर्घजिह्वाननास्तथा। अजामुखीर्हस्तिमुखीर्गोमुखीः सूकरीमुखीः ॥१४॥
हयोष्ट्रखरवक्त्राश्च राक्षसीर्घोरदर्शनाः । शूलमुद्गरहस्ताश्च क्रोधनाः कलहप्रियाः ॥१५॥
करालधूम्रकेशिन्यो राक्षसीर्विकृताननाः । पिबन्ति सततं पानं सुरामांससदाप्रियाः ॥१६॥
मांसशोणितदिग्धाङ्गीर्मांसशोणितभोजनाः । ता ददर्श कपिश्रेष्ठो रोमहर्षणदर्शनाः ॥१७॥
स्कन्धवन्तमुपासीनाः परिवार्य वनस्पतिम् । तस्याधस्ताच्च तां देवीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ॥१८॥
लक्षयामास लक्ष्मीवान्हनूमाञ्जनकात्मजाम् । निष्प्रभां शोकसंतप्तां मलसंकुलमूर्धजाम् ॥१९॥

गये थे, किसीके बालही नहीं थे; और कोई अधिक केश होनेके कारण मानों केशोंका कम्बल धारण किये थी ॥६॥ किसीके कान, ललाट, पेट, स्तन, ओठ, ठुड्डी परका ओठ, मुंह और जानु सभी लम्बे थे ॥ ७ ॥ कोई नाटी, कोई लम्बी, कोई कुबड़ी, कोई टेढ़ी, कोई बौनी, कोई-कोई भयानक थी, किसीका मुंह टेढ़ा, किसीकी भूरी आँखें और विकृत मुह था ॥ ८ ॥ कोई विकृत वेषवाली, कोई पीली, कोई काली, कोई क्रोधिन, कोई झगड़ालु, और लोहा शूल और छिपा हुआ मुद्गर धारण करनेवाली थी ॥ ९ ॥ सुअर, हिरन, बाघ, भैंसा, बकरा, सियारिनके समान मुँहवाली, हाथी, ऊँट और घोड़ेके समान मुँह और पैरवाली, और किसी-किसीका शिर भीतरकी ओर धँसा हुआ था ॥ १० ॥ किसीके एक हाथ था और किसीके एक पैर किसीके कान गधेके समान थे और किसीके घोड़ेके समान तथा दूसरी कइयोंके कान गाय हाथी और सिंहके समान थे॥११॥ किसीकी नाक बड़ी थी, किसीकी टेढ़ी और किसीके नाकही नहीं थी, |किसीकी नाक हाथीके समान थी और किसीकी ऊपरकी ओर उठी हुई ॥ १२ ॥ किसीके पैर हाथीके समान, किसीके बड़े, किसीके गायके समान और किसीके पैरमें अधिक बाल थे, किसीका गला पेट और स्तन लम्बे थे ॥ १३ ॥ किसीके मुँह और नेत्र बहुत बड़े थे, किसीकी जीभ लम्बी थी । उनमें कई अजा-मुखी, कई हस्तिमुखी, कई गोमुखी तथा कई सूकरीमुखी थी ॥ १४ ॥ देखनेमें भयानक घोड़ा ऊँट और गधेके मुँहवाली, शूल मुद्गर धारण करनेवाली, क्रोधिन कलही रूखे और भूरे केशवाली, मद्य माँससे प्रेम रखनेवाली, विकृतमुखी राक्षसियाँ मद्य पी रही थीं ॥१५-१६॥ उनके शरीरमें मांस और रक्त लिपटा हुआ था, मांस रक्त खानेवाली उन राक्षसियोंको हनुमानने देखा, जिनके देखनेसे रोंगटे खड़े होजाते हैं ॥१७॥ शाखावाले पेड़की चारों तरफ वे बैठी थीं । उस पेड़के नीचे अनिन्दित राजपुत्री सीताको हनुमानने देखा । वे प्रभाहीन शोकसंतप्त थीं । मैलसे शिरके बाल-

क्षीणपुण्यां च्युतां भूमौ तारां निपतितामिव । चारित्रव्यपदेशाढ्यां भर्तृदर्शनदुर्गताम् ॥२०॥
भूषणैरुत्तमैर्हीनां भर्तृवात्सल्यभूषिताम् । राक्षसाधिपसंरुद्धां बन्धुभिश्च विनाकृताम् ॥२१॥
वियूथां सिंहसंरुद्धां बद्धां गजवधूमिव । चन्द्ररेखां पयोदान्ते शारदाभ्रैरिवावृताम् ॥२२॥
क्लिष्टरूपामसंस्पर्शादयुक्तामिव वल्लकीम् । स तां भर्तृहिते युक्तामयुक्तां रक्षसां वशे ॥२३॥
अशोकवनिकामध्ये शोकसागरमाप्लुताम् । ताभिः परिवृतां तत्र सग्रहामिव रोहिणीम् ॥२४॥
ददर्श हनुमांस्तत्र लतामकुसुमामिव । सा मलेन च दिग्धाङ्गी वपुषा चाप्यलंकृता ॥
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति च न भाति च ॥२५॥
मलिनेन तु वस्त्रेण परिक्लिष्टेन भामिनीम् । संवृतां मृगशावाक्षीं ददर्श हनुमान्कपिः ॥२६॥
तां देवीं दीनवदनामदीनां भर्तृतेजसा । रक्षितां स्वेन शीलेन सीतामसितलोचनाम् ॥२७॥
तां दृष्ट्वा हनुमान्सीतां मृगशावनिभेक्षणाम् । मृगकन्यामिव त्रस्तां वीक्षमाणां समन्ततः ॥२८॥
दहन्तीमिव निःश्वासैर्वृक्षान्पल्लवधारिणः । संघातमिव शोकानां दुःखस्योर्मिमिवोत्थिताम् ॥२९॥
तां क्षामां सुविभक्ताङ्गीं विनाभरणशोभिनीम् । प्रहर्षमतुलं लेभे मारुतिः प्रेक्ष्य मैथिलीम् ॥३०॥
हर्षजानि च सोऽश्रूणि तां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम् । मुमोच हनुमांस्तत्र नमश्चक्रे च राघवम् ॥३१॥
नमस्कृत्वाथ रामाय लक्ष्मणाय च वीर्यवान् । सीतादर्शनसंहृष्टो हनुमान्संवृतोऽभवत् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुंदरकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

की जटा बन गयी थी ॥ १८ ॥ १९ ॥ सतीत्वरक्षासे कीर्तिमती, पतिके अदर्शनसे दुःखी सीता पुण्य-क्षीण होने पर भूमिपतित ताराके समान थीं ॥२०॥ उत्तम भूषणोंसे रहित पर पतिप्रेमसे भूषित रावणके द्वारा रोकी गयी, बन्धुहीना, सीता यूथभ्रष्ट सिंहके पंजेमें आयी हुई हथिनीके समान और वर्षाके अन्तमें शारद मेघोंसे ढकी हुई चन्द्रलेखाके समान मालूम पड़ती थीं ॥ २१ ॥ २२ ॥ अक्लिष्टरूपा सीता पतिके वियोगसे मलिन होगयी हैं, जिस प्रकार बिना बजानेसे वीणा होजाती है। पतिके अधीन रहनेके योग्य और राक्षसोंके अधीन रहनेके अयोग्य सीताको उन्होंने देखा ॥२३॥ अशोकवाटिकामें रहकर भी वे शोकसागरमें डूब रही थीं। राक्षसियोंसे घिरी हुई सीता ग्रहोंसे घिरी रोहिणीके समान मालूम पड़ती थीं ॥ २४ ॥ हनुमानने पुष्पहीन लताके समान सीताको देखा। उनके शरीरमें मैल बैठी हुई थी और शरीर भी साफ नहीं था, कीचड़ लिपटी कमलिनीके समान वे शोभित होती भी थीं और नहीं भी ॥ २५ ॥ वे मैला और पुराना वस्त्र पहने हुई थीं। हनुमानने उन मृगशावाक्षी सीताको देखा ॥ २६ ॥ दीन वदन, पतिके पराक्रमसे अदीन, अपने शीलसे रक्षित, असितलोचना सीताको हनुमानने देखा ॥ २७ ॥ बालहरिणके समान मृगीके नेत्रोंवाली मृगीके समान डरकर इधर-उधर देखती हुई, निःश्वाससे पत्तोंवाले वृक्षोंको हिलाती हुई, शोककी राशिके समान दुःखकी लहरोंके समान और बिना आभूषणसे शोभनेवाली कृश सीताको देखकर हनुमान् बहुत प्रसन्न हुए ॥ २८-३० ॥ सीताको देखकर हनुमानने हर्षके आँसू बहाये और रामचन्द्रको प्रणाम किया ॥ ३१ ॥ बली हनुमान रामचन्द्र और लक्ष्मणको प्रणाम करके सीताको देखनेसे प्रसन्न होकर वहीं छिप गये ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका सत्रहवां सर्ग समाप्त ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८

तथा विप्रेक्षमाणस्य वनं पुष्पितपादपम् । विचिन्वतश्च वैदेहीं किंचिच्छेषा निशाभवत् ॥ १ ॥
षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम् । शुश्राव ब्रह्मघोषान्स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् ॥ २ ॥
अथ मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः । प्राबोध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः ॥ ३ ॥
विबुध्य तु महाभागो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् । स्रस्तमाल्याम्बरधरो वैदेहीमन्वचिन्तयत् ॥ ४ ॥
भृशं नियुक्तस्तस्यां च मदनेन मदोत्कटः । न तु तं राक्षसः कामं शशाकात्मनि गूहितुम् ॥ ५ ॥
स सर्वाभरणैर्युक्तो बिभ्रच्छ्रियमनुत्तमाम् । तां नगैर्विविधैर्जुष्टां सर्वपुष्पफलोपगैः ॥ ६ ॥
वृतां पुष्करिणीभिश्च नानापुष्पोपशोभिताम् । सदा मत्तैश्च विहगैर्विचित्रां परमाद्भुतैः ॥ ७ ॥
ईहामृगैश्च विविधैर्वृतां दृष्टिमनोहरैः । वीथीः संप्रेक्षमाणश्च मणिकाञ्चनतोरणाम् ॥ ८ ॥
नानामृगगणाकीर्णां फलैः प्रपतितैर्वृताम् । अशोकवनिकामेव प्राविशत्संततद्रुमाम् ॥ ९ ॥
अङ्गनाः शतमात्रं तु तं व्रजन्तमनुव्रजन् । महेन्द्रमिव पौलस्त्यं देवगन्धर्वयोषितः ॥१०॥
दीपिकाः काञ्चनीः काश्चिज्जगृहुस्तत्र योषितः । वालव्यजनहस्ताश्च तालवृन्तानि चापराः ॥११॥
काञ्चनैश्चैव भृङ्गारैर्जह्रुः सलिलमग्रतः । मण्डलाग्रा बृसीश्चैव गृह्यान्याः पृष्ठतो ययुः ॥१२॥
काचिद्रत्नमयीं पात्रीं पूर्णां पानस्य भ्राजतीम् । दक्षिणा दक्षिणेनैव तदा जग्राह पाणिना ॥१३॥

इस प्रकार पुष्पित बनको देखने और जानकीको ढूँढ़नेमें लगे हुए हनुमानको रात थोड़ी शेष रह गयी ॥ १ ॥ षडङ्ग वेदोंके विद्वान्, यज्ञ करनेवाले, वेदज्ञ राक्षसोंके वेदघोष रात्रिकी समाप्तिमें हनुमानने सुने ॥ २ ॥ अनन्तर मंगलवाद्य ध्वनिमनोहर शब्दोंसे महाबली महाबाहु रावण जगा ॥ ३ ॥ उठकर प्रतापी राक्षसेन्द्र सीताकी चिन्ता करने लगा । सोनेके कारण माला और वस्त्र उसके शिथिल होगये थे ॥ ४ ॥ शराब आदिके कारण उत्कट मदवाले रावणका चित्त सीतामें बहुत लग गया था । अतएव वह अपनी उस इच्छाको छिपा नहीं सकता था ॥ ५ ॥ सब आभूषणों और उत्तम शोभासे युक्त रावण, अनेक वृक्षोंसे सुशोभित सब प्रकारके फल फूलोंसे युक्त, उस अशोकवाटिकामें गया ॥ ६ ॥ जिसमें तालाब हैं, अनेक प्रकारके पुष्प हैं, तरह-तरहके मतवाले पक्षी जहाँ बोला करते हैं ॥ ७ ॥ देखनेमें मनोहर, अनेक कृत्रिम पशुओंसे युक्त, मणि और सुवर्णको तोरणवाली उस वाटिकाकी गलियाँ देखता हुआ रावण चला ॥ ८ ॥ अनेक पशुओंसे युक्त, गिरे हुए फलोंसे भरी हुई, सघन वृक्षोंवाली उस अशोक वाटिकामें रावणने प्रवेश किया ॥ ९ ॥ जाते हुए रावणके पीछे-पीछे सौ स्त्रियाँ चलीं, जिस प्रकार इन्द्रके पीछे देव-गन्धर्व-स्त्रियाँ चलती हैं ॥ १० ॥ किसी स्त्रीने सोनेकी दीपिका (लालटेन) ली, किसीने चँवर और किसीने ताड़का पंखा ॥ ११ ॥ कोई सोनेकी झारीमें जल लेकर आगे चली, कोई आसन गोलाकार लपेटकर रावणके पीछे-पीछे चली ॥ १२ ॥ कोई मद्यसे भरा हुआ चमकीला पात्र लेकर चली । एक निपुण स्त्री दहिने हाथमें राजहंसके समान श्वेत, चन्द्रमाके समान प्रकाशमान छत्र लेकर तथा दूसरी स्त्रियाँ सुवर्ण दण्ड लेकर पीछे-पीछे चलीं ॥ १३ ॥

राजहंसप्रकाशं छत्रं पूर्णशशिप्रभम् । सौवर्णदण्डमपरा गृहीत्वा पृष्ठतो ययौ ॥१४॥
निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमस्त्रियः । अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव ॥१५॥
व्याविद्धहारकेयूराः समामृदितवर्णकाः । समागलितकेशान्ताः सस्वेदवदनास्तथा ॥१६॥
घूर्णन्त्यो मदशेषेण निद्रया च शुभाननाः । स्वेदक्लिष्टाङ्गकुसुमाः समाल्याकुलमूर्धजाः ॥१७॥
प्रयान्तं नैर्ऋतपतिं नार्यो मदिरलोचनाः । बहुमानाच्च कामाच्च प्रियभार्यास्तमन्वयुः ॥१८॥
स च कामपराधीनः पतिस्तासां महाबलः । सीतासक्तमना मन्दो मन्दाञ्चितगतिर्बभौ ॥१९॥
ततः काञ्चीनिनादं च नूपुराणां च निःस्वनम् । शुश्राव परमस्त्रीणां कपिर्मारुतनन्दनः ॥२०॥
तं चाप्रतिमकर्माणमचिन्त्यबलपौरुषम् । द्वारदेशमनुप्राप्तं ददर्श हनुमान्कपिः ॥२१॥
दीपिकाभिरनेकाभिः समन्तादवभासितम् । गन्धतैलावसिक्ताभिर्ध्रियमाणाभिरग्रतः ॥२२॥
कामदर्पमदैर्युक्तं जिह्मताम्रायतेक्षणम् । समक्षमिव कंदर्पमपविद्धशरासनम् ॥२३॥
मथितामृतफेनाभमरजोवस्त्रमुत्तमम् । सपुष्पमवकर्षन्तं विमुक्तं सक्तमङ्गदे ॥२४॥
तं पत्रविटपे लीनः पत्रपुष्पशतावृतः । समीपमुपसंक्रान्तं विज्ञातुमुपचक्रमे ॥२५॥
अवेक्षमाणस्तु तदा ददर्श कपिकुञ्जरः । रूपयौवनसम्पन्ना रावणस्य वरस्त्रियः ॥२६॥
ताभिः परिवृतो राजा सुरूपाभिर्महायशाः । तन्मृगद्विजसंघुष्टं प्रविष्टः प्रमदावनम् ॥२७॥

॥ १४ ॥ रावणकी प्यारी स्त्रियोंकी आँखें नींदकी खुमारीसे झप रही थीं। वे अपने वीर पतिके पीछे-पीछे चलीं, जैसे मेघके पीछे बिजली चलती है ॥ १५ ॥ गलेका हार, हाथके केयूर, अपने स्थानसे च्युत होगये थे। अंगराग सूखकर झर गये थे। चोटी खुल गयी थी। मुँहपर पसीना आगया था ॥ १६ ॥ वे सुन्दर आँखोंवाली अवशिष्ट नशे और नींदसे लड़खड़ा रही थीं। पसीनेसे उनका फूलसा कोमल शरीर क्लान्त होगया था। बिखरे बालोंमें माला उलझ गयी थी ॥१७॥ जाते हुए राक्षस-राजके पीछे-पीछे सम्मान और प्रेमके कारण उनकी प्रिय स्त्रियाँ उनके पीछे-पीछे चलीं ॥ १८ ॥ उनका वह महाबली पति कामाधीन था। सीतामें उसका मन लगा हुआ था। अतएव वह अचेतकी दशामें धीरे धीरे जा रहा था ॥ १९ ॥ अनन्तर करधनी और पायजेबके शब्द वायुपुत्र हनुमानने सुने जो रावणकी उत्तम स्त्रियोंके थे ॥ २० ॥ अप्रतिम कर्म करनेवाले, अचिन्तनीय बल-पराक्रमवाले, द्वारपर आये हुए उस रावणको हनुमान्ने देखा ॥ २१ ॥ चारो तरफकी अनेक दीपिकाओंसे वह प्रकाशित हो रहा था। उन दीपिकाओंमें सुगन्धित तेल जलता था और वे आगे आगे चलती थीं ॥ २२ ॥ काम, अहंकार और मदसे युक्त, टेढ़ी और लाल आँखोंवाला, धनुष-रहित प्रत्यक्ष कामदेवके समान वह मालूम पड़ता था ॥ २३ ॥ मट्ठा और ताजे दूधके समान स्वच्छ धोया हुआ, मोती टँका हुआ उत्तम वस्त्रको, जो मालाके साथ किसी गहनेमें अटक गया था, छुड़ाते हुए रावणको हनुमानने देखा ॥ २४ ॥ पास आये हुए उसको पत्तोंमें छिपे हुए हनुमान पहचाननेका प्रयत्न करने लगे ॥ २५ ॥ देखते हुए कपिकुंजर हनुमानने रूपयौवन-सम्पन्न रावणकी स्त्रियोंको देखा ॥ २६ ॥ उन सुन्दरी स्त्रियोंसे युक्त यशस्वी राजा पशुपक्षियोंसे शब्दा-

क्षीबो विचित्राभरणः शङ्कुकर्णो महाबलः। तेन विश्रवसः पुत्रः स दृष्टो राक्षसाधिपः ॥२८॥
वृतः परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः। तं ददर्श महातेजास्तेजोवन्तं महाकपिः ॥२९॥
रावणोऽयं महाबाहुरिति संचिन्त्य वानरः। सोयऽमेव पुरा शेते पुरमध्ये गृहोत्तमे।
अवप्लुतो महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः ॥३०॥
स तथाप्युग्रतेजाः स निर्धूतस्तस्य तेजसा। पत्रे गुह्यान्तरे सक्तो मतिमान्संवृतोऽभवत् ॥३१॥
स तामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम्। दिदृक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥१८॥

एकोनविंशः सर्गः १९

तस्मिन्नेव ततः काले राजपुत्री त्वनिन्दिता। रूपयौवनसंपन्नं भूषणोत्तमभूषितम् ॥ १ ॥
ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम्। प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा ॥ २ ॥
ऊरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ। उपविष्टा विशालाक्षी रुदती वरवर्णिनी ॥ ३ ॥
दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः। ददर्श दीनां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे ॥ ४ ॥
असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम्। छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः ॥ ५ ॥

यमान प्रमदावन (स्त्रियोंके क्रीड़ा करनेके बाग) में गया ॥ २७ ॥ जो मतवाला हो रहा था, अद्भुत आभरण धारण किये हुए, थी उस शंकुकर्ण नामक राक्षसने विश्रवाके पुत्र राक्षसाधिपतिको देखा ॥ २८ ॥ जिस प्रकार ताराओंसे चन्द्रमा घिरा रहता है, उसी प्रकार सुन्दरी स्त्रियोंसे घिरे हुए रावणको हनुमानने देखा ॥ २९ ॥ यह महाबाहु रावण है यही पहले लंकाके प्रसिद्ध राजभवनमें सो रहा था—ऐसा सोचकर हनुमान् जिस शाखापर बैठे थे उससे ऊपरकी शाखापर चले गये ॥ ३० ॥ अतितेजस्वी हनुमान् भी रावणका तेज न सह सके, अतएव सघन पत्तोंमें लिपट कर वे छिप गये ॥ ३१ ॥ वह रावण काली आँख और केशोंवाली सुश्रोणी और संहतस्तनी सीताको देखनेके लिए लौटा ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका अठारहवां सर्ग समाप्त ॥१८॥

उसी समय अनिन्दित राजपुत्री वैदेही रूप-यौवन संपन्न उत्तम भूषणोंसे भूषित राक्षसाधिप रावणको देखकर हवामें कदलीके समान काँपने लगी ॥ १ ॥ २ ॥ दोनों जंघोंसे पेट दबाकर और दोनों हाथोंसे स्तन छिपाकर श्रेष्ठ सुन्दरी विशालाक्षी सीता रोती हुई बैठीं ॥३॥ राक्षसियोंके द्वारा रक्षित, दुःखिनी सीताको रावणने देखा, मानो समुद्रमें नौका डूब रही हो ॥ ४ ॥ बिना किसी बिछौनेके पृथिवीपर बैठी हुई, उग्रव्रत धारण करनेवाली सीताको रावणने देखा, मानो

मलपङ्कनिदिग्धाङ्गीं मण्डनार्हाममण्डनाम् । मृणालीपङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ॥ ६ ॥
समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः । संकल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः ॥ ७ ॥
शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम् । दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम् ॥ ८ ॥
चेष्टमानामथाविष्टां पन्नगेन्द्रवधूमिव । धूप्यमानां ग्रहेणेव रोहिणीं धूमकेतुना ॥ ९ ॥
वृत्तशीले कुले जातामाचारवति धार्मिके । पुनः संस्कारमापन्नां जातामिव च दुष्कुले ॥१०॥
सन्नामिव महाकीर्तिं श्रद्धामिव विमानिताम् । प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव ॥११॥
आयतीमिव विध्वस्तामाज्ञां प्रतिहतामिव । दीप्तामिव दिशं काले पूजामपहृतामिव ॥१२॥
पौर्णमासीमिव निशां तमोग्रस्तेन्दुमण्डलाम् । पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव ॥१३॥
प्रभामिव तमोध्वस्तामुपक्षीणामिवापगाम् । वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव ॥१४॥
उत्कृष्टपर्णकमलां वित्रासितविहंगमाम् । हस्तिहस्तपरामृष्टामाकुलामिव पद्मिनीम् ॥१५॥
पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव । परया मृजया हीनां कृष्णपक्षे निशामिव ॥१६॥
सुकुमारीं सुजाताङ्गीं रत्नगर्भगृहोचिताम् । तप्यमानामिवोष्णेन मृणालीमचिरोद्धृताम् ॥१७॥
गृहीतां लाडितां स्तम्भे यूथपेन विनाकृताम् । निःश्वसन्तीं सुदुःखार्तां गजराजवधूमिव ॥१८॥

वनस्पतिकी शाखा कटकर पृथिवी पर गिरी हो ॥ ५ ॥ गहना धारण करनेकी जगह पर मैल जम गया था । भूषणके योग्य होनेपर भी वे भूषणहीन थीं । पंकसनी कमलिनीके समान वे शोभित हो भी रही थीं और नहीं भी ॥ ६ ॥ राजसिंह आत्मविश्वासी रामचन्द्रके पास संकल्परूपी घोड़ोंसे युक्त मनके रथसे मानो वे जा रही हों ॥ ७ ॥ सूखी हुई, रोती हुई, शोकके कारण ध्यानमग्न, रामचन्द्रमें अनुराग रखनेवाली और अपने इस दुःखका अन्त न समझनेवाली सीताको रावणने देखा ॥ ८ ॥ औषध आदिके द्वारा स्तम्भित नागिनके समान हाथ पैर पटकती हुई, धूमकेतु ग्रहके द्वारा पीड़ित रोहिणीके समान, अतिशीलवान्, आचारवान्, धार्मिक कुलमें उत्पन्न और पुनः संस्कारके द्वारा संस्कृत सीता आज दुष्कुलमें उत्पन्नके समान मलिन हुई है ॥९–१०॥ क्षीण हुई कीर्तिके समान, तिरस्कृत श्रद्धाके समान, परिक्षीण बुद्धिके समान, प्रतिहत आशाके समान, नष्ट हुए परिणामके समान, न मानी गयी आज्ञाके समान, उत्पातके समय धधकती दिशाओंके समान, विधिविरुद्ध की हुई पूजाके समान, अन्धकारसे ढँकी पूर्णिमाकी रात्रिके समान, बर्फ आदिके कारण कठोर हुई कमलिनीके समान, निहत-सैनिक सेनाके समान, अंधकारसे ढकी प्रभाके समान, सूखी नदीके समान, अशुद्ध हुई वेदीके समान, बुझी अग्निशिखाके समान, कमलहीन, डरे हुए पक्षियोंके द्वारा परित्यक्त और हाथीकी सूँड़ द्वारा आलोड़ित वापीके समान, बाँधके टूट जानेसे जल निकल जानेके कारण सूखी हुई नदीके समान, उबटन आदिके अभावसे कृष्णपक्षकी रातके समान बनी हुई, पतिशोकसे आतुर सुकुमारी, शुभाङ्गी, घरके भीतर रहनेके योग्य, गर्मीसे तपी हुई, तुरन्त तोड़ी गयी कमलिनीके समान सीताको रावणने देखा ॥ ११–१७ ॥ पकड़कर खंभेमें बाँधी गई यूथपतिसे रहित हथिनीके समान पीड़ित सीता बार बार निश्वास

एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः । नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥१९॥
उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च । परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां तपोधनाम् ॥२०॥
आयाचमानां दुःखार्तां प्राञ्जलिं देवतामिव । भावेन रघुमुख्यस्य दशग्रीवपराभवम् ॥२१॥
समीक्षमाणां रुदतीमनिन्दितां सुपक्ष्मताम्रायतशुक्ललोचनाम् ।
अनुव्रतां राममतीव मैथिलीं प्रलोभयामास वधाय रावणः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः २०

स तां परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम् । साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः ॥ १ ॥
मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम् । अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥ २ ॥
कामये त्वां विशालाक्षि बहु मन्यस्व मां प्रिये । सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने सर्वलोकमनोहरे ॥ ३ ॥
नेह केचिन्मनुष्या वा राक्षसाः कामरूपिणः । व्यपसर्पतु ते सीते भयं मत्तः समुत्थितम् ॥ ४ ॥
स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः । गमनं वा परस्त्रीणां हरणं संप्रमथ्य वा ॥ ५ ॥
एवं चैवमकामां त्वां न च स्प्रक्ष्यामि मैथिलि । कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥ ६ ॥

ले रही थी ॥ १८ ॥ बिना प्रयत्नसे बाँधी गयी एक चोटीसे सीता शोभित हो रही थी, जिस प्रकार वर्षाके अन्तमें नीली वनराजिसे पृथिवी शोभित होती है ॥ १९ ॥ उपवास, शोक, ध्यान और भयके कारण क्षीण, अल्पाहार करनेवाली, कृश और दीन तपस्विनी दुःखिनी सीता हाथ जोड़कर देवताके समान रामचंद्रके द्वारा रावणके पराजयकी प्रार्थना मनहीं मन कर रही थी ॥ २० ॥ २१ ॥ सीताकी अच्छी पपनियोंवाली बड़ी आँखें उस समय लाल और श्वेत हो गयी थीं । उस राममें प्रेम रखनेवाली रोती हुई अनिन्दित सीताको रावण ठगने लगा । वह ऐसा अपने वधके लिए कर रहा था ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुंदरकाण्डका उन्नीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १९ ॥

राक्षसियोंसे परिवृत आनन्दहीन दीना तपस्विनी सीतासे रावण मीठे, अभिप्राययुक्त वचन बोला ॥ १ ॥ हे हाथीकी सूँडके समान जंघोवाली, मुझको देखकर तुम अपने स्तन और पेट छिपा रही हो । डरकर मानो तुम अपनेको लुप्त कर देना चाहती हो ॥ २ ॥ हे सर्वाङ्गसुन्दरि, सर्वलोकमनोहर, विशालाक्षि, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ । तुम मुझे स्वीकार करो ॥३॥ यहाँ न कोई मनुष्य है और न कोई कामरूपी राक्षस । सीते ! मुझसे जो तुम्हें भय उत्पन्न हुआ है, वह अब दूर हो ॥ ४ ॥ भीरु ! परस्त्रीगमन, बलपूर्वक परस्त्रीहरण, राक्षसोंका सदाका स्वधर्म है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५ ॥ तथापि मुझमें प्रेम न रखनेवाली तुम्हारा मैं

देवि ने भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये । प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा ॥ ७ ॥
एकवेणी अधःशय्या ध्यानं मलिनमम्बरम् । अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपायिकानि ते ॥ ८ ॥
विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगुरूणि च । विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ९ ॥
महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च । गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि ॥१०॥
स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम् । मां प्राप्य हि कथं वा स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे ॥११॥
इदं ते चारु संजातं यौवनं ह्यतिवर्तते । यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः स्रोतस्विनामिव ॥१२॥
त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वकृत् । नहि रूपोपमा ह्यन्या तवास्ति शुभदर्शने ॥१३॥
त्वां समासाद्य वैदेहि रूपयौवनशालिनीम् । कः पुनर्नातिवर्तेत साक्षादपि पितामहः ॥१४॥
यद्यत्पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने । तस्मिंस्तस्मिन्पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबध्यते ॥१५॥
भव मैथिलि भार्या मे मोहमेतं विसर्जय । बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव ॥१६॥
लोकेभ्यो यानि रत्नानि संप्रमथ्याहृतानि मे । तानि ते भीरु सर्वाणि राज्यं चैव ददामि ते ॥१७॥
विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम् । जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि ॥१८॥
नेह पश्यामि लोकेऽन्यं यो मे प्रतिबलो भवेत् । पश्य मे सुमहद्वीर्यमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥१९॥
असकृत्संयुगे भग्ना मया विमृदितध्वजाः । अशक्ताः प्रत्यनीकेषु स्थातुं मम सुरासुराः ॥२०॥

स्पर्श न करूँगा । भलेही कामदेव यथेष्ट मेरे शरीरमें कामवासना बढ़ावे ॥ ६ ॥ देवि ! भय न करो । मुझपर विश्वास करो । मुझको अपना अनुचर समझकर मेरा सम्मान करो । इस प्रकार शोक न करो ॥ ७ ॥ एक चोटी धारण करना, जमीनपर सोना, सदा चिन्तित रहना, मैले वस्त्र पहनना, विना कारण उपवास करना—ये सब तुम्हारे योग्य नहीं हैं ॥ ८ ॥ विचित्र मालाएँ, चन्दन, अगुरु, अनेक प्रकारके वस्त्र, दिव्य आभरण, दामी वस्त्र, पलंग और बिछौने, गाना, नाच, बाजा आदि मेरे साथ होकर तुम प्राप्त करो ॥ ९ ॥ १० ॥ तुम श्रेष्ठ स्त्री हो, अतएव इस प्रकार न रहो । अंगोंमें भूषण धारण करो । मेरे साथ रहनेपर, हे सुन्दरि, तुम अनादृत कैसे हो सकोगी ॥११॥ यह सुन्दर उठा हुआ तुम्हारा यौवन बीत रहा है, जो नदीकी धाराके समान एकबार चले जानेपर फिर नहीं लौटता ॥१२॥ रूप बनानेवाले ब्रह्मा तुमको बनाकर रूप बनानेसे निवृत्त हो गये, ऐसा मैं समझता हूँ । हे शुभदर्शने, क्योंकि तुम्हारे समान रूपवती दूसरी स्त्री नहीं दीख पड़ती ॥ १३ ॥ वैदेहि, रूप-यौवन-सम्पन्न तुमको पाकर कौन मनुष्य—वह ब्रह्माही क्यों न हो—क्षुभित नहीं हो सकता ? ॥ १४ ॥ हे चन्द्रानने, तुम्हारे जिस जिस अंगको मैं देखता हूँ, वहीं मेरी आँख अटक जाती है ॥ १५ ॥ मैथिलि, तुम मेरी भार्या बनो । अपने उद्धारकी आशा छोड़ दो । अनेक मेरी सुन्दरी स्त्रियोंमें पटरानी बनो ॥१६॥ जिन रत्नोंको शत्रुओंको जीतकर सब लोकोंसे मैं ले आया हूँ, भीरु, वे सब रत्न और राज्य मैं तुमको देता हूं ॥ १७ ॥ यह समस्त पृथिवी जिसमें अनेक नगर हैं—जीतकर तुम्हारे लिए मैं जनकको दूंगा ॥ १८ ॥ इस संसारमें ऐसा कोई नहीं है जो मुझसे युद्ध कर सके । युद्धमें मेरा अद्वितीय पराक्रम देखो ॥ १९ ॥ युद्धमें मेरे सामने खड़े होनेमें असमर्थ होकर देवता

इच्छ मां क्रियतामद्य प्रतिकर्म तवोत्तमम् । सुप्रभाण्यवसज्जन्तां तवाङ्गे भूषणानि हि ॥२१॥
साधु पश्यामि ते रूपं सुयुक्तं प्रतिकर्मणा । प्रतिकर्माभिसंयुक्ता दाक्षिण्येन वरानने ॥२२॥
भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं पिब भीरु रमस्व च । यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च ॥२३॥
ललस्व मयि विस्रब्धा धृष्टमाज्ञापयस्व च । मत्प्रसादाल्ललन्त्याश्च ललन्तां बान्धवास्तव॥२४॥
ऋद्धिं ममानुपश्य त्वं श्रियं भद्रे यशस्विनि । किं करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवासिना ॥२५॥
निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः । व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा ॥२६॥
न हि वैदेहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलप्स्यते । पुरोबलाकैरसितैर्मेघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम् ॥२७॥
न चापि मम हस्तात्त्वां प्राप्तुमर्हति राघवः । हिरण्यकशिपुः कीर्तिमिन्द्रहस्तगतामिव ॥२८॥
चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि । मनो हरसि मे भीरु सुपर्णः पन्नगं यथा ॥२९॥
क्लिष्टकौशेयवसनां तन्वीमप्यनलंकृताम् । त्वां दृष्ट्वा स्वेषु दारेषु रतिं नोपलभाम्यहम् ॥३०॥
अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियःसर्वगुणान्विताः । यावत्यो मम सर्वासामैश्वर्यं कुरु जानकि ॥३१॥
मम ह्यसितकेशान्ते त्रैलोक्यप्रवरास्त्रियः । तास्त्वां परिचरिष्यन्ति श्रियमप्सरसो यथा ॥३२॥
यानि वैश्रवणे सुभ्रु रत्नानि च धनानि च । तानि लोकांश्च सुश्रोणि मया भुङ्क्ष्व यथासुखम्॥३३॥

और असुर मेरे द्वारा भग्नध्वज होकर कई बार भाग चुके हैं ॥ २० ॥ तुम मुझे स्वीकार करो । तुम्हारा उत्तम श्रृङ्गार किया जायगा । चमकीले गहने तुम्हारे अंगोंमें सुशोभित होंगे ॥२१॥ तुम्हारे शरीरका श्रृङ्गार किया जाता रहा है, यह मैं स्पष्ट देख रहा हूं । हे सुमुखि, श्रृङ्गार करके उदारतापूर्वक सब भोग विलासोंका उपभोग करो । दिव्य रसोंका आस्वादन करो और इच्छापूर्वक पृथिवी या धनका दान करो ॥२२॥२३ निश्चित होकर मुझसे प्रेम करो । झिझक छोड़कर आज्ञा दो । मुझसे प्रेम करनेके कारण तुम्हारे बान्धव भी प्रसन्न रहें ॥ २४ ॥ हे यशस्विनी भद्रे, पराक्रमसे अर्जित सम्पत्ति और धन देखो । चीथड़ा पहननेवाले रामको लेकर क्या करोगी ? ॥ २५ ॥ रामचन्द्रकी विजय दूर हो गयी है । उनकी शोभा नष्ट हो गयी है । वे वनवासी हैं । व्रत करते हैं । जमीन पर सोते हैं । सन्देह है कि वे जीते हैं या नहीं ॥ २६ ॥ वैदेहि, रामचन्द्र तुमको अब देख भी नहीं सकते । जिसके आगे बक-पंक्ति चलती है, ऐसे काले मेघोंसे ढकी हुई ज्योत्स्नाके समान मेरे हाथसे अब रामचंद्र तुमको नहीं पा सकते । जिस प्रकार इन्द्रके हाथमें गयी कीर्तिको हिरण्यकशिपु नहीं पा सका था ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे सुन्दर स्मित करनेवाली, सुन्दर दाँत और आँखोंवाली तुम हमारा उसी प्रकार हरण कर रही हो, जिस प्रकार साँपको गरुड़ ॥ २९ ॥ तुम मैली रेशमी साड़ी पहने हुई हो, दुबली हो गयी हो और अलंकारहीन हो, तथापि तुमको देखकर अपनी स्त्रियोंसे मुझे सन्तोष नहीं हो रहा है ॥ ३० ॥ जानकि, अन्तःपुरमें रहनेवाली सब गुणोंसे युक्त मेरी जितनी स्त्रियाँ हैं, उन सबपर तुम शासन करो ॥ ३१ ॥ हे काले केशोंवाली, त्रिलोककी श्रेष्ठ सुन्दरियाँ मेरे यहां हैं । वे सब तुम्हारी सेवा करेंगी, जिस प्रकार अप्सराएँ लक्ष्मीकी सेवा करती हैं ॥ ३२ ॥ कुबेरके यहाँ जितने

न रामस्तपसा देवि न बलेन च विक्रमैः । न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसापि वा ॥३४॥
पिब विहर रमस्व भुङ्क्ष्व भोगान्धननिचयं प्रदिशामि मेदिनीं च ।
मयि लल ललने यथासुखं त्वं त्वयि च समेत्य ललन्तु बान्धवास्ते ॥ ३५ ॥
कुसुमिततरुजालसंततानि भ्रमरयुतानि समुद्रतीरजानि ।
कनकविमलहारभूषिताङ्गी विहर मया सह भीरु काननानि ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः २१

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः । आर्ता दीनस्वरा दीनं प्रत्युवाच ततः शनैः ॥ १ ॥
दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी । चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता ॥ २ ॥
तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता । निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रियतां मनः ॥ ३ ॥
न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत । अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ॥ ४ ॥
कुलं संप्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया । एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी ॥ ५ ॥
रावणं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत् । नाहमौपयिकी भार्या परभार्या सती तव ॥ ६ ॥

रत्न हैं, जितना धन है, उन सबका भोग मेरे साथ सुखपूर्वक तुम करो ॥ ३३ ॥ रामचन्द्र तपस्या, बल, पराक्रम, धन, तेज और यशसे भी मेरे तुल्य नहीं हैं ॥ ३४ ॥ पान करो, विहार करो, रमण करो, भोग भोगो । तुमको मैं बहुत अधिक धन और पृथिवी देता हूँ । मुझसे प्रेम करो और तुम्हारे साथ रहकर तुम्हारे बान्धव प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ समुद्र-तीरके वन, जिनमें भ्रमर गूँजते हैं, वृक्षोंकी कतारें पुष्पित हो रही हैं, हे भीरु, उन वनोंमें सोनेका उज्ज्वल हार पहनकर मेरे साथ विहार करो ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २० ॥

तब उस भयंकर राक्षसकी यह बात सुनकर दीनस्वरा आर्ता सीता धीरे-धीरे दीनवाणी बोली ॥ १ ॥ दुःखसे आर्त, पतिव्रता, वह तपस्विनी सीता रो रही थी, काँप रही थी और रामचन्द्रका ध्यान कर रही थी ॥ २ ॥ शुचिस्मिता सीताने बीचमें तृणकी ओट करके उत्तर दिया कि मुझसे मन हटालो और अपनी स्त्रियोंसे प्रेम करो ॥ ३ ॥ तुम मेरी प्रार्थना करनेके योग्य नहीं हो, जिस तरह पापी सिद्धिकी प्रार्थना नहीं कर सकता । मैं पतिव्रता हूं । निन्दित काम मेरे लिए अकार्य है ॥ ४ ॥ बड़े कुलमें मेरा जन्म हुआ है और पवित्र कुलमें ब्याह । मैं दूसरे पुरुषके स्पर्श करनेका पाप कैसे कर सकती हूँ । यशस्विनी सीता रावणसे इस प्रकार कहकर और उसकी ओर पीठ करके पुनः इस प्रकार बोली—मैं सती हूँ । मैं तुम्हारी भार्या

साधुधर्ममवेक्षस्व साधु साधुव्रतं चर । यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर ॥ ७ ॥
आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम् । अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम् ॥
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ॥ ८ ॥
इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे । यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता ॥ ९ ॥
वचो मिथ्याप्रणीतात्मा पथ्यमुक्तं विचक्षणैः । राक्षसानामभावाय त्वं वा न प्रतिपद्यसे ॥ १० ॥
अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम् । समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च ॥ ११ ॥
तथैव त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघसंकुला । अपराधात्तवैकस्य न चिराद्विनशिष्यति ॥ १२ ॥
स्वकृतैर्हन्यमानस्य रावणादीर्घदर्शिनः । अभिनन्दन्ति भूतानि विनाशे पापकर्मणः ॥ १३ ॥
एवं त्वां पापकर्माणं वक्ष्यन्ति निकृता जनाः । दिष्ट्यैतद्व्यसनं प्राप्तो रौद्र इत्येव हर्षिताः ॥ १४ ॥
शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा । अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ॥ १५ ॥
उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम् । कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् ॥ १६ ॥
अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः । व्रतस्नातस्य विद्येव विप्रस्य विदितात्मनः ॥ १७ ॥
साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम् । वने वासितया सार्धं करेण्वेव गजाधिपम् ॥ १८ ॥

बसनेके योग्य नहीं ॥ ५, ६ ॥ धर्म श्रेष्ठ है यह बात समझो । सज्जनोंका आचरण ग्रहण करो । जैसे तुम अपनी स्त्रीकी रक्षा करते हो वैसेही, हे निशाचर, दूसरेकी स्त्रीकी भी रक्षा तुम्हें करनी चाहिए ॥ ७ ॥ अपनेही समान समझकर तुम्हें अन्य स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिए । अतएव तुमको अपनी स्त्रियोंसेही सन्तोष करना चाहिए ॥ जो चंचल मनुष्य अपनी स्त्रियोंसे सन्तुष्ट नहीं रहते उन निकृष्ट बुद्धिवालोंकी पराजय परस्त्रियोंके द्वारा होती है ॥ ८ ॥ क्या यहाँ सज्जन नहीं रहते ? अथवा, रहते हैं पर तुम उनका संग नहीं करते, जिससे आचार-वर्जित ऐसी निन्दित तुम्हारी बुद्धि है ॥ ९ ॥ विवेकी मनुष्योंके द्वारा हितकी कही हुई बातें असत्प्रवृत्तिवाले मनुष्य नहीं सुनते । तुम भी राक्षसोंके नाशके लिए सज्जनोंके वचन नहीं ग्रहण करते ॥१०॥ सदुपदेश ग्रहण न करनेवाले अनीतिपरायण राजाके कारण समृद्ध राष्ट्र और नगर नष्ट हो जाते हैं ॥११॥ इसी प्रकार रत्न-राशियोंसे भरी हुई यह लंका भी तुम्हारे एकके अपराधसे बहुत शीघ्रही नष्ट हो जायगी ॥ १२ ॥ हे रावण, अपने पापोंसे विनष्ट होनेवाले अदूरदर्शी पापीके विनाशसे सब प्राणी प्रसन्न होते हैं ॥ १३ ॥ इसी प्रकार तुम्हारे द्वारा पीड़ित सबलोग तुम्हें पापकर्मा कहेंगे और प्रसन्न होंगे कि अच्छा हुआ इस भयंकर राक्षस पर यह दुःख पड़ा ॥ १४ ॥ ऐश्वर्य या धनपर मैं लुब्ध नहीं हो सकती । मैं रामचन्द्रकी अनन्य स्त्री हूँ, जिस प्रकार सूर्यकी प्रभा ॥ १५ ॥ लोकनाथ रामचन्द्रकी भुजा पर सिर रखकर अब मैं किसी दूसरे पुरुषकी भुजा पर सिर कैसे रक्खूँगी ? ॥ १६ ॥ मैं उन्हीं राजा रामचन्द्रकी योग्य स्त्री हूँ, जिस प्रकार विद्याव्रत समाप्त किये आत्मज्ञानी ब्राह्मणके योग्य विद्या होती है ॥ १७ ॥ रावण, मुझ दुःखिनीको रामचन्द्रके पास पहुंचादो । यही तुम्हारे लिए उचित है । जिस प्रकार वनमें

मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता । बन्धं चानिच्छता घोरं त्वयासौ पुरुषर्षभः ॥१९॥
विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः । तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ॥२०॥
प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् । मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि ॥२१॥
एवं हि ते भवेत्स्वस्ति संप्रदाय रघूत्तमे । अन्यथा त्वं हि कुर्वाणः परां प्राप्स्यसि चापदम्॥२२॥
वर्जयेद्वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम् । त्वद्विधं न तु संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः ॥२३॥
रामस्य धनुषः शब्दं श्रोष्यसि त्वं महास्वनम् । शतक्रतुविसृष्टस्य निर्घोषमशनेरिव ॥२४॥
इह शीघ्रं सुपर्वाणो ज्वलितास्या इवोरगाः। इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षिताः ॥२५॥
रक्षांसि निहनिष्यन्तः पुर्यामस्यां न संशयः । असंपातं करिष्यन्ति पतन्तः कङ्कवाससः ॥२६॥
राक्षसेन्द्र महासर्पान्स रामगरुडो महान् । उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान् ॥२७॥
अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शीघ्रमरिंदमः । असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिभिरिव क्रमैः ॥२८॥
जनस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसां बले । अशक्तेन त्वया रक्षः कृतमेतदसाधु वै ॥२९॥
आश्रमं तत्तयोः शून्यं प्रविश्य नरसिंहयोः । गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाधम ॥३०॥
नहि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया । शक्यं संदर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ॥३१॥

कामिनी हस्तिनी गजराजके पास पहुँचाई जाती है ॥ १८ ॥ लंकाकी रक्षा करने तथा अपनेको भयानक बन्धनसे मुक्त करनेके लिए पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रसे मित्रता करनी तुम्हारे लिए उचित है ॥ १९ ॥ सर्व धर्मोंके ज्ञाता रामचन्द्र प्रसिद्ध शरणागतवत्सल हैं । यदि तुम जीना चाहो, तो उनसे मैत्री करलो ॥ २० ॥ अतएव शरणागतवत्सल रामचन्द्रको तुम प्रसन्न करो और सावधान होकर तुम मुझे रामचन्द्रको सौंप दो ॥ २१ ॥ इसी प्रकार रामचन्द्रको लौटा देनेसेही तुम्हारा कल्याण होगा । यदि इसके विपरीत तुम कुछ काम करोगे तो बहुत बड़ी विपत्तिमें फँसोगे ॥ २२ ॥ चलाया हुआ वज्र तुम्हारे जैसे आदमीको छोड़ सकता है, यमराजभी छोड़ सकता है, पर लोकनाथ रामचन्द्र क्रोध करने पर नहीं छोड़ सकते ॥ २३ ॥ रामचन्द्रके धनुषका इन्द्रके चलाये वज्रके गर्जनके समान भयंकर शब्द तुम सुनोगे ॥ २४ ॥ अंगारसे जलते मुँहवाले सर्पके समान गठीले और राम-लक्ष्मणके नामसे अंकित बाण शीघ्र यहाँ गिरेंगे ॥ २५ ॥ इस नगरीमें राक्षस मारे जायँगे, इसमें सन्देह नहीं । यहाँ बाणोंकी अविच्छिन्न धारा बहेगी ॥ २६ ॥ राक्षसेन्द्ररूपी महासर्पोंको रामरूपी गरुड़ मारेगा, जिस प्रकार गरुड़ सर्पोंको शीघ्रही मार डालता है ॥ २७ ॥ शत्रुदमन करनेवाले मेरे पति शीघ्रही मुझे तुम्हारे यहाँसे ले जायँगे, जिस प्रकार दीप्यमान लक्ष्मीको विष्णु तीन पैर रखकर राक्षसोंसे ले गये थे ॥ २८ ॥ राक्षसोंकी सेनाके मारे जाने पर जनस्थान राक्षसोंसे शून्य होगया । इसका बदला लेनेमें असमर्थ होकर तुमने यह परस्त्रीहरणरूप निन्दित कर्म किया है ॥ २९ ॥ नरसिंह राम लक्ष्मणके शून्य आश्रममें प्रवेश कर जो तुमने किया वह निन्दित है । अधम, उस समय दोनों भाई वनमें गये हुए थे ॥ ३० ॥ राम और लक्ष्मणकी गन्ध पाकर भी तुम उनके सामने नहीं

तस्य ते विग्रहे ताभ्यां युगग्रहणमस्थिरम् । वृत्रस्येवेन्द्रबाहुभ्यां बाहोरेकस्य विग्रहे ॥३२॥
क्षिप्रं तव सनाथो मे रामः सौमित्रिणा सह । तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः ॥३३॥

गिरिं कुबेरस्य गतोऽथवाऽऽलयं सभां गतो वा वरुणस्य राज्ञः ।
असंशयं दाशरथेर्विमोक्ष्यसे महाद्रुमः कालहतोऽशनेरिव ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥२१॥

द्वाविंशः सर्गः २२

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसेश्वरः । प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम् ॥ १ ॥
यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा । यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा ॥ २ ॥
संनियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः । द्रवतो मार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ॥ ३ ॥
वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन्किल निबध्यते । जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥ ४ ॥
एतस्मात्कारणान्न त्वां घातयामि वरानने । वधार्हामवमानार्हां मिथ्या प्रव्रजने रताम् ॥ ५ ॥
परुषाणि हि वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम् । तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ॥ ६ ॥

ठहर सकते, जिस प्रकार दो बाघोंके सामने कुत्ता नहीं ठहर सकता ॥ ३१ ॥ राम और लक्ष्मणसे युद्ध होने पर उसमें तुम्हारा विजयी होना असंभव है । जिस प्रकार एक वृत्रासुर अपनी एक भुजासे इन्द्रकी दो भुजाओंसे युद्ध कर पराजित होता है, उसी प्रकार तुम भी पराजित होओगे ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणके साथ मेरे स्वामी रामचन्द्र, थोड़े जलको सूर्यके समान, अपने बाणोंसे तुम्हारे प्राण खींच लेंगे ॥ ३३ ॥ तुम कुबेरके पर्वत पर जाओ, चाहे वरुणकी सभामें जाओ, निःसन्देह वज्रके द्वारा बड़े वृक्षके समान मारे जाओगे, क्योंकि कालने तुम्हें पकड़ लिया है ।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका इक्कीसवां सर्ग समाप्त ॥ २१ ॥



सीताके कठोर वचन सुनकर राक्षसेश्वर रावण प्रियदर्शना सीतासे अप्रिय वचन बोला, ॥ १ ॥ प्रिय वचन बोलनेवाला मनुष्य स्त्रियोंसे जैसे जैसे प्रिय वचन बोलता है वैसे वैसे स्त्रियाँ उसके वशमें होती जाती हैं, पर तुमसे जैसे जैसे मैं प्रिय वचन बोलता हूँ वैसे वैसे तुम्हारे द्वारा मेरा तिरस्कार हो रहा है ॥ २ ॥ तुममें मेरा जो अनुराग उत्पन्न हुआ है वही मेरे क्रोध को रोक रहा है, जिस प्रकार कुमार्ग में दौड़ते घोड़ेको सारथी थामा करता है ॥ ३ ॥ काम क्रूर है, वह जिसमें बंध जाता है उसपर दया और स्नेह उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥ कपटसे वनवास करनेवाले रामचन्द्रमें अनुरक्त, अतएव वध करने के योग्य और तिरस्कार करनेके योग्य तुम्हारा मैं वध नहीं करता हूँ ॥ ५ ॥ हमारे लिए जो जो कठोर वचन तुम कह रही हो उन वचनोंको सुननेसे तुम्हारा वध करना ही उचित है ॥ ६ ॥ राक्षसाधिप रावणने वैदेहीसे इस

एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः । क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत् ॥ ७ ॥
द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः । ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥ ८ ॥
द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्। मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः॥ ९ ॥
तां भर्त्स्यमानां संप्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम् । देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः ॥१०॥
ओष्ठप्रकारैरपरा नेत्रैर्वक्त्रैस्तथापराः । सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा ॥११॥
ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम् । उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौटीर्यगर्वितम् ॥१२॥
नूनं न ते जनः कश्चिदास्मिन्निःश्रेयसि स्थितः । निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात् ॥१३॥
मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीपतेः । त्वदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसापि कः ॥१४॥
राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः । उक्तवानसि यत्पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे ॥१५॥
यथा दृप्तश्च मातंगः शशश्च सहितौ वने । तथा द्विरदवद्रामस्त्वं नीच शशवत्स्मृतः ॥१६॥
स त्वमिक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन्निह न लज्जसे । चक्षुषो विषये तस्य न यावदुपगच्छसि ॥१७॥
इमे ते नयने क्रूरे विकृते कृष्णपिङ्गले । क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः ॥१८॥
तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषां दशरथस्य च । कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति ॥१९॥

प्रकार कहकर तथा क्रोधसे उद्विग्न होकर सीताको इस प्रकार उत्तर दिया ॥ ७ ॥ जो अवधि मैंने दी है उसमें के दो महीने तुम और बिताओ। सुन्दरि, उसके बाद मेरे साथ शयन करो ॥ ८ ॥ दो महीनोंके बाद यदि तुम मुझे अपना पति स्वीकार न करोगी तो मेरे रसोईदार जलपान बनाने के लिए तुम्हें टुकड़े टुकड़े कर डालेंगे ॥ ९ ॥ रावणके द्वारा सीताका इस प्रकार होता तिरस्कार देखकर देव और गन्धर्व-कन्याओंको दुख हुआ, उनकी आंखें विकृत हो गयीं ॥ १० ॥ राक्षसके द्वारा धमकाई सीताको किसीने ओठके, किसीने नेत्रके, किसीने मुंहके इशारेसे आश्वासित किया ॥ ११ ॥ उनके द्वारा आश्वासित होकर सीता रावणसे बोलीं। उनके वचन रावणके लिए हितकारी थे तथा सदाचार और पातपराक्रमके गर्वसे गर्वित थे ॥ १२ ॥ तुम्हारा कल्याण चाहनेवाला इस लंकामें कोई भी नहीं है-ऐसा मालूम पड़ता है, जो इस निन्दित कर्मसे तुम्हें रोक सके ॥ १३ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्रकी मैं पत्नी हूँ, जिस प्रकार शची इन्द्रकी पत्नी है। तुम्हारे अतिरिक्त त्रिकालमें दूसरा कौन है जो मनसे भी मेरी कामना करे ॥ १४ ॥ राक्षसाधम, अमित तेजस्वी रामचन्द्रकी स्त्रीके लिए जो पापकी बातें तुमने कहीं हैं, उनसे कहाँ जाकर अपनी रक्षा करोगे ? ॥ १५ ॥ जिस प्रकार वनमें मतवाले हाथी और खरहेका युद्ध हो, उसी प्रकार रामचन्द्र और तुम्हारा युद्ध होगा अर्थात् रामचन्द्र हाथीके समान बड़े हैं और तुम शशकके समान नीच ॥ १६ ॥ तुमको रामचन्द्रकी निन्दा करते लज्जा नहीं आती, जब तक उनके सामने तुम नहीं जाते तब तक निन्दा कर लो ॥ १७ ॥ तुम्हारी ये काली, पीली और क्रूर आंखें बुरे अभिप्रायसे मेरी ओर देखते हुए उखड़कर जमीनपर गिर क्यों नहीं पड़तीं ? ॥ १८ ॥ हे पापी, उस धर्मात्मा रामकी पत्नी और दशरथकी पुत्रवधू

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात् । न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥२०॥
नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः । विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः ॥२१॥
शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च । अपोह्य रामं कस्माच्चिद्दारचौर्यं त्वया कृतम् ॥२२॥
सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः । विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत ॥२३॥
नीलजीमूतसंकाशो महाभुजशिरोधरः । सिंहसत्त्वगतिः श्रीमान्दीप्तजिह्वोग्रलोचनः ॥२४॥
चलाग्रमुकुटप्रांशुश्चित्रमाल्यानुलेपनः । रक्तमाल्याम्बरधरस्तप्ताङ्गदविभूषणः ॥२५॥
श्रोणीसूत्रेण महता मेचकेन सुसंवृतः । अमृतोत्पादने नद्धो भुजंगेनेव मन्दरः ॥२६॥
ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसेश्वरः। शुशुभेऽचलसंकाशः शृङ्गाभ्यामिव मन्दरः ॥२७॥
तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विभूषितः । रक्तपल्लवपुष्पाभ्यामशोकाभ्यामिवाचलः ॥२८॥
स कल्पवृक्षप्रतिमो वसन्त इव मूर्तिमान् । श्मशानचैत्यप्रतिमो भूषितोऽपि भयंकरः ॥२९॥
अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः । उवाच रावणः सीतां भुजंग इव निःश्वसन् ॥३०॥
अनयेनाभिसंपन्नमर्थहीनमनुव्रते । नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः संध्यामिवौजसा ॥३१॥
इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः । संददर्श ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥३२॥

मुझसे बुरी बात कहते तुम्हारी जीभ क्यों नहीं गल जाती ॥ १९ ॥ हे दशग्रीव, तुम्हें भस्म करनेकी शक्ति रखती हुई भी रामकी आज्ञा न होनेके कारण और तपस्या भंग होनेके डरसे मैं तुम्हें भस्म नहीं कर रही हूँ ॥ २० ॥ बुद्धिमान् रामचन्द्रकी स्त्री मुझको तुम हर नहीं सकते थे, किन्तु तुम्हारे वधके लिए विधाताने ऐसा किया है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ तुम कुबेर के भाई हो, वीर हो और तुम्हारे पास सेना भी है, फिर भी रामको हटाकर किस प्रकार तुमने उनकी चोरी की है ॥ २२ ॥ सीताकी बातें सुनकर राक्षसाधिप रावणने आंखें तरेर कर सीताकी ओर देखा ॥ २३ ॥ रावण काले मेघके समान विशाल था, उसकी भुजाएँ लम्बी और गला बड़ा था, पराक्रममें और चालमें वह सिंहके समान था, उसकी आंखें और जीभ लपलपा रही थीं ॥ २४ ॥ क्रोधके कारण उसका मुकुट स्थानसे कुछ खिसक गया था, जिससे वह और ऊंचा मालूम पड़ने लगा था। लाल रंगकी माला पहने था और वस्त्र तथा उज्ज्वल हस्ताभूषण धारण किये हुए था । रंग-विरंगी मालाएं तथा अनुलेपन लगाए था ॥ २५ ॥ काले कटिसूत्रसे उसकी कमर बंधी हुई थी, अतएव अमृत निकालनेके समय सांपोंसे बंधे मन्दराचलके समान वह मालूम पड़ता था ॥ २६ ॥ अपनी लम्बी भुजाओंके कारण दो कुण्डल वह धारण किये हुए था अतएव रक्त पल्लव तथा पुष्पवाले दो अशोक वृक्षोंसे युक्त पर्वतके समान मालूम पड़ता था ॥ २८ ॥ विभूषित होनेके कारण कल्पतरुके समान तथा मूर्तिधारी वसन्तके समान उसे सुन्दर मालूम होना चाहिए, पर वह श्मशान-मन्दिरके समान भयानक मालूम पड़ता था ॥२९॥ सीता को देखनेसे उसकी आंखें क्रोधसे लाल हो गई थीं सर्पके समान सांस लेता हुआ रावण बोला ॥ ३० ॥ नीति-विहीन और दरिद्र रामचन्द्र पर तुम अनुरक्त हो, आज ही मैं तुम्हारा नाश करूँगा, जिस प्रकार सूर्य-तेजसे अन्धकारका नाश करता है ॥ ३१ ॥ शत्रुओंको

एकाक्षीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा । गोकर्णीं हस्तिकर्णीं च लम्बकर्णीमकर्णिकाम् ॥३३॥
हस्तिपद्यश्वपद्यौ च गोपदीं पादचूलिकाम् । एकाक्षीमेकपादीं च पृथुपादीमपादिकाम् ॥३४॥
अतिमात्रशिरोग्रीवामतिमात्रकुचोदरीम् । अतिमात्रास्यनेत्रां च दीर्घजिह्वानखामपि ॥३५॥
अनासिकां सिंहमुखीं गोमुखीं सूकरीमुखीम् । यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी ॥३६॥
तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वा क्षिप्रं समेत्य वा । प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः ॥३७॥
आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च । इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः ॥३८॥
काममन्युपरीतात्मा जानकीं प्रति गर्जत । उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी ॥३९॥
परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् । मया क्रीड महाराज सीतया किं तवानया ॥४०॥
विवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर । नूनमस्यां महाराज न देवा भोगमुत्तमान् ॥४१॥
विदधत्यमरश्रेष्ठास्तव बाहुबलार्जितान् । अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते ॥४२॥
इच्छतीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना । एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो बली ॥
प्रहसन्मेघसंकाशो राक्षसः स न्यवर्तत ॥४३॥
प्रस्थितः स दशग्रीवः कम्पयन्निव मेदिनीम् । ज्वलद्भास्करसंकाशं प्रविवेश निवेशनम् ॥४४॥
देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च तास्ततः । परिवार्य दशग्रीवं प्रविशुस्ता गृहोत्तमम् ॥४५॥

रुलानेवाले रावणने सीतासे ऐसा कहकर भयानक दीख पड़नेवाली सब राक्षसियोंकी ओर देखा ॥ ३२ ॥ एकाक्षी एककर्णी कर्णप्रावरणी गोकर्णी हस्तिकर्णी लम्बकर्णी अकर्णिका हस्तिपदी अश्वपदी गोपदी पादचूलिका एकाक्षी एकपादी विशालपदा पादहीना लम्बग्रीवा लम्बशिरा बृहत्कुचा विशालोदरी विशालमुखी विशालनेत्रा दीर्घजिह्वा दीर्घनखी अनासिका सिंहमुखी गोमुखी सूकरीमुखी आदि राक्षसियोंकी ओर उसने देखा और बोला—सीता जिस तरह शीघ्र मेरे वशमें हो जाय तुम सब लोग मिलकर वैसा करो। अनुकूल प्रतिकूल उपायोंसे साम, दाम, दंड और भेदका प्रयोग करके तुमलोग सीताको वशमें करो। बार बार उनसे कहकर काम और क्रोधसे युक्त रावण सीताकी ओर देखकर गर्जा। उस समय धान्यमालिनी नामकी एक राक्षसी रावणके पास आकर बोली—महाराज आप मेरे साथ विहार करें। इस सीतासे आपको क्या करना है। राक्षसेश्वर, इसका वर्ण मलिन है, यह दीन और मानुषी है, अनुराग न रखनेवाली स्त्रीकी चाहसे शरीर जलता है। तुम्हारे बाहुबलसे अर्जित श्रेष्ठ भोग इसके भाग्यमें ब्रह्माने नहीं लिखा है। अनुराग रखनेवालीसे जो प्रेम करता है उसे प्रसन्नता होती है। ऐसा कहकर उस राक्षसीने रावणको दूसरी ओर खींच लिया। मेघके समान वह राक्षस हंसता हुआ वहांसे चला गया ॥ ३३ ॥ ४३ ॥ पृथ्वीको कँपाता हुआ रावण वहां से प्रस्थित हुआ और दीप्तिमान् सूर्यके समान उसने अपने घरमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ देवता और

स मैथिलीं धर्मपरामवस्थितां प्रवेपमानां परिभर्त्स्य रावणः ।
विहाय सीतां मदनेन मोहितः स्वमेव वेश्म प्रविवेश रावणः ॥४६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥२२॥

त्रयोविंशः सर्गः

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः । संदिश्य च ततः सर्वा राक्षसीर्निर्जगाम ह ॥ १ ॥
निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुरं गते । राक्षस्यो भीमरूपास्ताः सीतां समभिदुद्रुवुः ॥ २ ॥
ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः । परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन् ॥ ३ ॥
पौलस्त्यस्य वरिष्ठस्य रावणस्य महात्मनः । दशग्रीवस्य भार्यात्वं सीते न बहु मन्यसे ॥ ४ ॥
ततस्त्वेकजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् । आमन्त्र्य क्रोधताम्राक्षी सीतां करतलोदरीम् ॥ ५ ॥
प्रजापतीनां षण्णां तु चतुर्थोऽयं प्रजापतिः । मानसो ब्रह्मणः पुत्रः पुलस्त्य इति विश्रुतः ॥ ६ ॥
पुलस्त्यस्य तु तेजस्वी महर्षिर्मानसः सुतः । नाम्ना स विश्रवा नाम प्रजापतिसमप्रभः ॥ ७ ॥
तस्य पुत्रो विशालाक्षि रावणः शत्रुरावणः । तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ॥ ८ ॥
मयोक्तं चारुसर्वाङ्गि वाक्यं किं नानुमन्यसे । ततो हरिजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥
विवृत्य नयने कोपान्मार्जारसदृशेक्षणा । येन देवास्त्रयस्त्रिंशद्देवराजश्च निर्जितः ॥१०॥

गन्धर्वकी कन्याओंने भी रावणके साथ घरमें प्रवेश किया ॥ ४५ ॥ धर्मपर स्थित और काँपती सीताको धमकाकर काम-पीड़ित रावण सीताको छोड़कर अपने घर गया ॥ ४६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥२२॥



शत्रुको रुलानेवाला राजा रावण सीतासे ऐसा कहकर और राक्षसियोंको इसप्रकार सन्देश देकर वहाँसे चला गया ॥ १ ॥ राक्षसेन्द्रके यहाँसे निकलने और पुनः अन्तःपुरमें चले जानेपर भयानक राक्षसियाँ सीताके पास गयीं ॥ २ ॥ सीताके पास जाकर और अधिक क्रोध करके राक्षसियाँ उनसे ये कठोर वचन बोलीं ॥ ३ ॥ पुलस्त्यके वंशज श्रेष्ठ महात्मा रावणकी स्त्री होना तुम उत्तम नहीं समझती हो ? ॥ ४ ॥ अनन्तर एकजटा नामकी राक्षसी, क्रोधसे आँखें लाल करके कृशोदरी सीतासे बोली ॥ ५ ॥ पुलस्त्य, छः प्रजापतियोंमें चौथे प्रजापति हैं । ये ब्रह्माके मानस-पुत्र और पुलस्त्य नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ६ ॥ पुलस्त्यके मानसपुत्र तेजस्वी और विश्रवा प्रजापतिके तुल्य हैं ॥ ७ ॥ विशालाक्षि, उन्हींके पुत्र शत्रुओं को रुलानेवाले रावण हैं ॥ ८ ॥ सुन्दरि, मेरी कही बात तुम क्यों नहीं मानती ? तब हरिजटा नामकी राक्षसी बोली ॥ ९ ॥ उसकी आँखें बिल्लीकी आँखोंके समान थीं । वह आँख फाड़कर बोली—जिसने तैंतीस देवताओं और इन्द्रको जीत लिया है, तुम्हें उस राक्षसेन्द्रकी स्त्री

तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि । वीर्योत्सिक्तस्य शूरस्य सङ्ग्रामेष्वनिवर्तिनः ॥
बलिनो वीर्ययुक्तस्य भार्यात्वं किं न लिप्ससे ॥११॥
प्रियां बहुमतां भार्यां त्यक्त्वा राजा महाबलः । सर्वासां च महाभागां त्वामुपैष्यति रावणः ॥१२॥
समृद्धं स्त्रीसहस्रेण नानारत्नोपशोभितम् । अन्तःपुरं तदुत्सृज्य त्वामुपैष्यति रावणः ॥१३॥
अन्या तु विकटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् । असकृद्भीमवीर्येण नागा गन्धर्वदानवाः ॥
निर्जिताः समरे येन स ते पार्श्वमुपागतः ॥१४॥
तस्य सर्वसमृद्धस्य रावणस्य महात्मनः । किमर्थं राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्वं नेच्छसेऽधमे ॥१५॥
ततस्तां दुर्मुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् । यस्य सूर्यो न तपति भीतो यस्य स मारुतः ।
न वाति स्मायतापाङ्गि किं त्वं तस्य न तिष्ठसे ॥१६॥
पुष्पवृष्टिं च तरवो मुमुचुर्यस्य वै भयात् । शैलाः सुस्रुवुः पानीयं जलदाश्च यदेच्छति ॥१७॥
तस्य नैर्ऋतराजस्य राजराजस्य भामिनि । किं त्वं न कुरुषे बुद्धिं भार्यार्थे रावणस्य हि ॥१८॥
साधु ते तत्त्वतो देवि कथितं साधु भामिनि । गृहाण सुस्मिते वाक्यमन्यथा न भविष्यसि ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥२३॥

होजाना चाहिए । वह बहुत पराक्रमी, वीर और युद्धमें पीठ न दिखानेवाला है । उस बली और पराक्रमी रावणकी स्त्री होना तुम क्यों पसन्द नहीं करतीं ? ॥ १०-११ ॥ सब स्त्रियोंमें जो उसे प्रिय है और जिसका वह बहुत आदर करता है, उस स्त्रीको भी छोड़कर महाबली रावण तुम्हारे पास आवेगा ॥ १२ ॥ अनेक रत्नोंसे शोभित हज़ारों अन्तःपुरकी स्त्रियोंको छोड़कर रावण तुम्हारे पास आवेगा ॥१३॥ विकटा नामकी दूसरी राक्षसी बोली—अपने भयानक पराक्रमसे जिसने कई बार नागों, गन्धर्वों और दानवोंको जीता है, वह तुम्हारे पास आया ॥ १४ ॥ रे नीच, सब प्रकारसे योग्य उस राक्षसेन्द्र रावणकी स्त्री बनना, नीच, तू क्यों नहीं पसन्द करती ॥ १५ ॥ फिर दुर्मुखी नामकी राक्षसी बोली—जिसके भयसे सूर्य नहीं तपता, वायु नहीं बहता, हे विशालाक्षि, तू उसके यहाँ क्यों नहीं रहती ? ॥१६॥ जिसके भयसे वृक्ष पुष्पोंकी वृष्टि करते हैं, पर्वत जल चुआते हैं और वह जब चाहता है तब मेघ पानी बरसाते हैं ॥१७॥ उस राक्षसराजकी स्त्री होना तुम क्यों पसन्द नहीं करती ? ॥ १८ ॥ देवि, ठीक ठीक और हितकारी वचन मैंने तुमसे कहे । हे सुस्मिते, तुम मेरी बात मानो । नहीं तो तुम मार दी जाओगी ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका तेईसवाँ सर्ग समाप्त ।

चतुर्विंशः सर्गः २४

ततःसीतां समस्तास्ता राक्षस्यो विकृताननाः । परुषं परुषानर्हामूचुस्तद्वाक्यमप्रियम् ॥ १ ॥
किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोरमे । महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे ॥ २ ॥
मानुषे मानुषस्यैव भार्यात्वं बहु मन्यसे । प्रत्याहर मनो रामान्नैवं जातु भविष्यति ॥ ३ ॥
त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम् । भर्तारमुपसंगम्य विहरस्व यथासुखम् ॥ ४ ॥
मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने । राज्याद्भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लवन्तमनिन्दिते ॥ ५ ॥
राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरत संगताः । नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतितिष्ठति ॥ ७ ॥
न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति । कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥ ८ ॥
दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः । तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥ ९ ॥
यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति । अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा ॥१०॥
लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा । सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ॥११॥
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा । नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता ॥१२॥
तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता । सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ॥
भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः ॥१३॥

अनन्तर विकृतमुखी वे सब राक्षसियाँ कठोर वचन न सुननेवाली सीतासे कठोर और अप्रिय वचन बोलीं ॥ १ ॥ सीते, रावणके महलमें जो सब प्राणियोंके लिए मनोहर है, जिसमें मूल्यवान् पलंग बिछे हुए हैं, रहना तुम क्यों पसन्द नहीं करती ॥ ? ॥ २ ॥ तुम मानुषी हो और मनुष्यकी स्त्री रहना ही अधिक पसन्द करती हो, पर तुम रामकी ओरसे अपना मन हटालो, नहीं तो तुम कभी बच नहीं सकती ॥ ३ ॥ रावण त्रिलोकके धनका उपयोग करता है। वह राक्षसोंका राजा है । उसको पति बनाकर सुखपूर्वक विहार करो ॥ ४ ॥ हे मानुषी, राज्य-भ्रष्ट मनुष्य रामकोही तुम चाहती हो ? वह तो अपने मनोरथोंकी पूर्तिके लिए लालायित रहता है और दुखी है ॥ ५ ॥ राक्षसियोंके वचन सुनकर कमलनयना सीता आँसू भरी आँखोंसे यह वचन बोलीं ॥ ६ ॥ तुम सबलोग मिलकर जो लोक-विरुद्ध बात मुझसे कह रही हो, वह मेरे मनमें नहीं बैठती; क्योंकि वह पापकी बात है ॥ ७ ॥ मानुषी राक्षसकी स्त्री नहीं हो सकती। चाहे, तुम सब लोग मुझे खाही क्यों न डालो, मैं तुम्हारी बातें न मानूँगी ॥ ८ ॥ हीन हो या राज्यहीन जो मेरा पति है वही मेरा उपास्य है । उन्हींकी मैं सदा अनुरागिणी हूँ, जिस प्रकार सुवर्चला सूर्यकी अनुरागिणी है ॥ ९ ॥ महाभागा शची जिस प्रकार इन्द्रकी उपासना करती है, अरुन्धती वसिष्ठकी, रोहिणी चन्द्रमाकी, लोपामुद्रा अगस्त्यकी, सुकन्या च्यवनकी, सावित्री सत्यवान्की, श्रीमती कपिलकी, मदयन्ती सौदासकी, केशिनी सगरकी, भीमपुत्री दमयन्ती नैषध (नल) की जैसी अनुरागिणी है, मैं भी इक्ष्वाकुप्रवर पति रामचन्द्रकी वैसीही अनुरागिणी हूँ । सीताके वचन सुनकर राक्षसियोंको बड़ा क्रोध आया । वे रावणके कहनेसे

अवलीनः स निर्वाक्यो हनुमाञ्छिंशपाद्रुमे । सीतां संतर्जयन्तीस्ता राक्षसीरशृणोत्कपिः ॥१४॥
तामभिक्रम्य संरब्धा वेपमानां समन्ततः । भृशं संलिलिहुर्दीप्तान्प्रलम्बान्दशनच्छदान् ॥१५॥
ऊचुश्च परमक्रुद्धाः प्रगृह्याशु परश्वधान् । नेयमर्हति भर्तारं रावणं राक्षसाधिपम् ॥१६॥
सा भर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वराङ्गना । सा बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपां तामुपागमत् ॥१७॥
ततस्तां शिंशपां सीता राक्षसीभिः समावृता । अभिगम्य विशालाक्षी तस्थौ शोकपरिप्लुता ॥१८॥
तां कृशां दीनवदनां मलिनाम्बरवासिनीम् । भर्त्सयांचक्रिरे भीमा राक्षस्यस्ताः समन्ततः ॥१९॥
ततस्तु विनता नाम राक्षसी भीमदर्शना । अब्रवीत्कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी ॥२०॥
सीते पर्याप्तमेतावद्भर्तुः स्नेहः प्रदर्शितः । सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते ॥२१॥
परितुष्टास्मि भद्रं ते मानुषस्ते कृतो विधिः । ममापि तु वचः पथ्यं ब्रुवन्त्याः कुरु मैथिलि ॥२२॥
रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् । विक्रान्तमापतन्तं च सुरेशमिव वासवम् ॥२३॥
दक्षिणं त्यागशीलं च सर्वस्य प्रियवादिनम् । मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रावणमाश्रय ॥२४॥
दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता । अद्यप्रभृति लोकानां सर्वेषामीश्वरी भव ॥२५॥
अग्नेः स्वाहा यथा देवी शचीवेन्द्रस्य शोभने । किं ते रामेण वैदेहि कृपणेन गतायुषा ॥२६॥
एतदुक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि । अस्मिन्मुहूर्ते सर्वास्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम् ॥२७॥
अन्या तु विकटा नाम लम्बमानपयोधरा । अब्रवीत्कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य तर्जती ॥२८॥

कठोर वचनोंके द्वारा सीताको धमकाने लगीं ॥ १०-१३ ॥ हनुमान् चुपचाप सिंसिपा वृक्षपर छिपे बैठे थे । उन्होंने राक्षसियोंका सीताको धमकाना सुना ॥ १४ ॥ काँपती हुई उन सीता पर सब राक्षसियाँ क्रोधसे झुक पड़ीं । वे बार-बार अपने लम्बे और जलते ओठोंको चाटने लगीं ॥१५॥ क्रोध करके और परशु लेकर वे बोलीं कि यह राक्षसाधिप रावणको पति-रूपमें पानेके योग्य नहीं है ॥ १६ ॥ भयानक राक्षसियोंके द्वारा धमकायी गयी सीता आँसू पोंछती हुई सिंसिपा वृक्षके नीचे आयीं ॥ १७ ॥ सुन्दरी सीताको भयंकर राक्षसियाँ धमका रहीं थीं और वे आँसू पोंछती हुई वहीं बैठी थीं ॥ १८ ॥ वे बहुत शोकयुत थीं । उस कृश, दीनमुखी, मलिन वस्त्र-धारिणी सीताको भयंकर राक्षसियाँ चारो ओरसे धमकाने लगीं ॥ १९ ॥ भयंकर दीख पड़ने-वाली, पिचके पेटवाली, विनता नामकी कराल राक्षसी क्रोध करके बोली ॥२०॥ सीते, पतिके प्रति तुम अधिक स्नेह दिखाचुकी । अतिसे सब जगह दुःख उठाना पड़ता है ॥२१॥ मैं तुमसे प्रसन्न हूं कि तुमने मनुष्योंके समान अपना कर्तव्य पूरा किया । अब, मेरी भी हितकी बात मानो ॥ २२ ॥ सब राक्षसोंके पति रावणको अपना पति स्वीकार करो । वे पराक्रमी हैं और देवराज इन्द्रके तुल्य हैं ॥२३॥ उदार, दाता, सबसे प्रिय बोलनेवाले रावणका आश्रय लो । कृपण रामको छोड़ो ॥२४॥ दिव्य अंगराग और दिव्य आभरणोंसे भूषित होकर, वैदेहि, आजसे सबकी स्वामिनी बनो ॥२५॥ जिस प्रकार अग्निकी स्वाहा है, इन्द्रकी शची है, वैसीही तुम भी रावणकी बनो । कृपण और गतायु रामको लेकर क्या करोगी ? ॥ २६ ॥ मेरी कही इन बातोंको यदि तुम न मानोगी तो इसी समय हम सब लोग मिलकर खा जायँगी ॥ २७ ॥ विकटा नामकी एक राक्षसी थी, जिसके

बहून्यप्रतिरूपाणि वचनानि सुदुर्मते । अनुक्रोशान्मृदुत्वाच्च सोढानि तव मैथिलि ॥२९॥
न च नः कुरुषे वाक्यं हितं कालपुरस्कृतम् । आनीतासि समुद्रस्य पारमन्यैर्दुरासदम् ॥३०॥
रावणान्तःपुरे घोरे प्रविष्टा चासि मैथिलि । रावणस्य गृहे रुद्धा अस्माभिस्त्वभिरक्षिता ॥३१॥
न त्वां शक्तः परित्रातुमपि साक्षात्पुरंदरः । कुरुष्व हितवादिन्या वचनं मम मैथिलि ॥३२॥
अलमश्रुनिपातेन त्यज शोकमनर्थकम् । भज प्रीतिं प्रहर्षं च त्यजन्ती नित्यदैन्यताम् ॥३३॥
सीते राक्षसराजेन परिक्रीड यथासुखम् । जानीमहे यथा भीरु स्त्रीणां यौवनमध्रुवम् ॥३४॥
यावन्न ते व्यतिक्रामेत्तावदुःखमवाप्नुहि । उद्यानानि च रम्याणि पर्वतोपवनानि च ॥३५॥
सह राक्षसराजेन चर त्वं मदिरेक्षणे । स्त्रीसहस्राणि ते देवि वशे स्थास्यन्ति सुन्दरि ॥३६॥
रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् । उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि ॥३७॥
यदि मे व्याहृतं वाक्यं न यथावत्करिष्यसि । ततश्चण्डोदरी नाम राक्षसी क्रूरदर्शना ॥३८॥
भ्रामयन्ती महच्छूलमिदं वचनमब्रवीत् । इमां हरिणशावाक्षीं त्रासोत्कम्पपयोधराम् ॥३९॥
रावणेन हृतां दृष्ट्वा दौर्हृदो मे महानयम् । यकृत्प्लीहं महत्क्रोडं हृदयं च सबन्धनम् ॥४०॥
गात्राण्यपि तथा शीर्षं खादेयमिति मे मतिः । ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥४१॥
विशस्येमां ततः सर्वान्समान्कुरुत पिण्डकान् । विभजाम ततः सर्वा विवादो मे न रोचते ॥४२॥
पेयमानीयतां क्षिप्रं माल्यं च विविधं बहु । ततः शूर्पणखा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥४३॥

स्तन बड़े लम्बे थे । वह क्रोध कर और मुक्का तानकर सीतासे बोली ॥ २८ ॥ मूर्खे, तुम्हारी बहुतसी अनर्गल बातें दया और सरलताके कारण हमलोगोंने सही हैं ॥ २९ ॥ कालोचित और हितकारी वचन तुम नहीं मान रही हो । तुम समुद्रके पार लायी गयी हो, जहाँ दूसरेका आना असंभव है ॥ ३० ॥ रावणके महलमें तुम रक्खी गयी हो । रावणके घरमें तुम कैद हो और हम लोग तुम्हारी रखवाली कर रही हैं ॥ ३१ ॥ साक्षात् इन्द्रभी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता । अतएव मैथिलि, हित कहनेवाली मेरी बातें मानो ॥ ३२ ॥ आँसू गिराना व्यर्थ है । निरर्थक शोकका त्याग करो । प्रसन्न हो जाओ । सदा दुखी रहना छोड़ो ॥ ३३ ॥ राक्षसराजके साथ सुखपूर्वक क्रीड़ा करो । स्त्रियोंका यौवन कुछ दिनोंका ही होता है, यह हमलोग जानती हैं ॥३४॥ जब तक तुम्हारा यौवन नहीं बीतता है, तबतक सुख भोग करो । रमणीय बगीचों और पर्वतके बगीचोंमें राक्षसराजके साथ विहार करो । हजारों स्त्रियाँ तुम्हारे वशमें रहेंगी ॥ ३५-३६ ॥ सब राक्षसोंके पति रावणको अपना पति बनाओ और यदि तुम मेरी बातें ठीक-ठीक न करोगी तो तुम्हारा कलेजा निकालकर मैं खा जाऊँगी । अनन्तर चण्डोदरी नामकी राक्षसी बहुत विशाल शूल घुमाती हुई बोली । वह देखनेमें बड़ी क्रूर थी । उस समय हरिण-शावाक्षी सीताके स्तन भयसे काँप रहे थे ॥ ३७-३९ ॥ रावण हरके ले आया है यह देखकर मेरे मनमें एक बड़ी लालसा है कि यकृत् प्लीहा, हृदय तथा भुजाओंके बीचका भाग, अन्य अंग और मस्तक मैं खाऊँ । इसके बाद प्रघसा नामकी राक्षसी बोली—इसको काटकर बराबरके टुकड़े बनाओ और आपसमें बाँट लो । मुझे विवाद अच्छा नहीं लगता ॥ ४०-४२ ॥ शीघ्रही मद्य लाओ तथा तरह तरहकी

अजामुख्या यदुक्तं वै तदेव मम रोचते। सुरा चानीयतां क्षिप्रं सर्वशोकविनाशिनी ॥४४॥
मानुषं मांसमासाद्य नृत्यामोऽथ निकुम्भिलाम्। एवं निर्भर्त्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा॥
राक्षसीभिर्विरूपाभिर्धैर्यमुत्सृज्य रोदिति ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशः सर्गः

अथ तासां वदन्तीनां परुषं दारुणं बहु। राक्षसीनामसौम्यानां रुरोद जनकात्मजा॥ १ ॥
एवमुक्ता तु वैदेही राक्षसीभिर्मनस्विनी। उवाच परमत्रस्ता बाष्पगद्गदया गिरा॥ २ ॥
न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति। कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः॥ ३ ॥
सा राक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा। न शर्म लेभे शोकार्ता रावणेनेव भर्त्सिता॥ ४ ॥
वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवाङ्गमात्मनः। वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता॥ ५ ॥
सात्वशोकस्यविपुलांशाखामालम्ब्यपुष्पिताम्। चिन्तयामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा॥ ६ ॥
सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः। चिन्तयन्ती न शोकस्य तदान्तमधिगच्छति॥ ७ ॥
सा वेपमाना पतिता प्रवाते कदली यथा। राक्षसीनां भयत्रस्ता विवर्णवदनाभवत्॥ ८ ॥

मालाएँ भी ले आओ। फिर शूर्पणखा नामकी राक्षसी बोली ॥ ४३ ॥ अजामुखीने जो कहा है वह मुझे भी पसन्द है। सब शोकोंको नष्ट करनेवाली सुरा (शराब) शीघ्र ले आओ ॥ ४४ ॥ मनुष्यका मांस पाकर हमलोग निकुंभिला देवीके पास नाचें। देवकन्याके तुल्य सीता विकृत राक्षसियोंके द्वारा इस प्रकार धमकायी जाने पर धैर्य्य छोड़कर रोने लगी ॥ ४५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२४॥



क्रूर राक्षसियोंके कठोर और भयंकर वचन सुनकर जानकी रोने लगीं ॥ १ ॥ मनस्विनी सीता राक्षसियोंके ऐसा कहने पर बहुत डर गयीं और वे वाष्प-गद्गद वचन बोलीं ॥२॥ मानुषी राक्षसकी स्त्री नहीं हो सकती। चाहे तुमलोग मुझे खा ही डालो, मगर मैं तुम्हारी बात न मानूँगी ॥ ३ ॥ देवकन्याके तुल्य सीता राक्षसियोंके बीच आकर सुख न पासकी। वह शोकसे पीड़ित थी और रावणके द्वारा धमकायी गयी थी ॥ ४ ॥ सीता बहुत अधिक काँप रही थी। वह अपने शरीरमें सिमटती जाती थी, यूथसे बिछड़ी हुई मृगी जैसे भेड़ियासे डरायी गयी हो ॥ ५ ॥ अशोककी पुष्पित मोटी शाखा पकड़कर थके मनसे वह अपने पतिकी चिन्ता करने लगी ॥ ६ ॥ नेत्रजलसे वह अपने मोटे स्तनोंको स्नान कराने लगी। सोचती सोचती वह अपना शोक दूर न कर सकी ॥ ७ ॥ वह काँप रही थी, जिस प्रकार हवासे कदली काँपे। राक्षसियोंके

तस्याः सा दीर्घबहुला वेपन्त्याः सीतया तदा। ददृशे कम्पिता वेणी व्यालीव परिसर्पती ॥ ९ ॥
सा निःश्वसन्ती शोकार्ता कोपोपहतचेतना । आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप च ॥१०॥
हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च । हा श्वश्रूर्मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनी ॥११॥
लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः । अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥१२॥
यत्राहमाभिः क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता । जीवामि हीना रामेण मुहूर्तमपि दुःखिता ॥१३॥
एषाल्पपुण्या कृपणा विनशिष्याम्यनाथवत् । समुद्रमध्ये नौः पूर्णा वायुवेगैरिवाहता ॥१४॥
भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता । सीदामि खलु शोकेन कूलं तोयहतं यथा ॥१५॥
तं पद्मदलपत्राक्षं सिंहविक्रान्तगामिनम् । धन्याः पश्यन्ति मे नाथं कृतज्ञं प्रियवादिनम् ॥१६॥
सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना । तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्य दुर्लभं मम जीवनम् ॥१७॥
कीदृशं तु महापापं मया देहान्तरे कृतम् । येनेदं प्राप्यते घोरं महादुःखं सुदारुणम् ॥१८॥
जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता । राक्षसीभिश्च रक्षन्त्या रामो नासाद्यते मया ॥१९॥
धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम् । न शक्यं यत्परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम् ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

भयसे डरी हुई सीताका मुँह पीला पड़ गया था ॥ ८ ॥ काँपती हुई सीताकी लम्बी चोटी काँप रही थी, अतएव वह रेंगती हुई नागिनके समान मालूम पड़ रही थी ॥ ९ ॥ शोकपीड़ित तथा बार-बार श्वास लेती हुई सीता क्रोधसे अधीर होगयी थी। वह दुखी होकर आँसू बहाने लगी और विलाप करने लगी ॥ १० ॥ दुःखसे पीड़ित होकर सीता कहने लगी–हा राम! हा लक्ष्मण! हा मेरी सास कौसल्या! हा सुमित्रा! ॥ ११ ॥ पण्डितोंकी कही हुई यह किंवदन्ती सत्य है कि अकालमें पुरुष या स्त्रीको मृत्यु नहीं होती ॥ १२ ॥ इन क्रूर राक्षसियोंसे पीड़ित होकर तथा रामचन्द्रके बिना आज मैं एक मुहूर्त भी जी रही हूँ ॥ १३ ॥ अल्पपुण्या कृपणा अनाथाके समान मैं मारी जाऊँगी, जिस प्रकार भरी हुई नौका वायुके झकोरेसे समुद्रमें विनष्ट होती है ॥ १४ ॥ मैं उन पतिदेवको नहीं देखती, राक्षसियोंके अधीन होकर शोकसे पीड़ित हो रही हूँ, जिस प्रकार जलके आघातसे तट ॥ १५ ॥ कमलनयन सिंहके समान, पराक्रमी और चलनेवाले, कृतज्ञ और प्रियवादी मेरे पतिको जो देखते हैं, वे धन्य हैं ॥१६॥ अपने पराक्रमको जाननेवाले रामचन्द्र-से हीन होकर तीखा विष खानेवालेके समान मेरा जीना दुर्लभ है ॥ १७ ॥ दूसरे जन्ममें मैंने कैसा पाप किया है, जिससे यह भयानक दुःख उठा रही हूँ ॥ १८ ॥ इस महान् शोकके कारण मैं अपने जीवनका त्याग करना चाहती हूँ। इन राक्षसियोंके हाथोंमें पड़ी हुई मुझको अब रामचन्द्र नहीं पा सकते ॥ १९ ॥ मनुष्यजन्मको और इस परतन्त्रताको धिक्कार है कि अपनी इच्छासे प्राणत्याग भी नहीं किया जा सकता ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका पचीसवां सर्ग समाप्त।

षड्विंशः सर्गः २६

प्रसक्ताश्रुमुखी त्वेवं ब्रुवती जनकात्मजा। अधोगतमुखी बाला विलप्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
उन्मत्तेव प्रमत्तेव भ्रान्तचित्तेव शोचती। उपावृत्ता किशोरीव विचेष्टन्ती महीतले ॥ २ ॥
राघवस्य प्रमत्तस्य रक्षसा कामरूपिणा। रावणेन प्रमथ्याहमानीता क्रोशती बलात् ॥ ३ ॥
राक्षसीवशमापन्ना भर्त्स्यमाना च दारुणम्। चिन्तयन्ती सुदुःखार्ता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ४ ॥
नहि मे जीवितेनार्थो नैवार्थैर्न च भूषणैः। वसन्त्या राक्षसीमध्ये विना रामं महारथम् ॥ ५ ॥
अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम्। हृदयं मम येनेदं न दुःखेन विशीर्यते ॥ ६ ॥
धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता। मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका ॥ ७ ॥
चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्। रावणं किं पुनरहं कामयेयं निशाचरम् ॥ ८ ॥
प्रत्याख्यानं न जानाति नात्मानं नात्मनः कुलम्। यो नृशंसस्वभावेन मां प्रार्थयितुमिच्छति ॥ ९ ॥
छिन्ना भिन्ना प्रभिन्ना वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता। रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम् ॥१०॥
ख्यातः प्राज्ञः कृतज्ञश्च सानुक्रोशश्च राघवः। सद्वृत्तो निरनुक्रोशः शङ्के मद्भाग्यसंक्षयात् ॥११॥
राक्षसानां जनस्थाने सहस्राणि चतुर्दश। एकेनैव निरस्तानि स मां किं नाभिपद्यते ॥१२॥
कामं मध्ये समुद्रस्य लङ्केयं दुष्प्रधर्षणा। न तु राघवबाणानां गतिरोधो भविष्यति ॥१३॥

इस प्रकार बोलती हुई सीताके आँसू बहने लगे। वह नीचे मुँह करके विलाप करने लगी ॥१॥ छोटी घोड़ीके समान पृथिवी पर लोटती हुई सीता उन्मत्त (भूताविष्ट) प्रमत्त (असावधान) भ्रान्तचित्तके समान सोचती हुई विलाप करने लगी ॥ २ ॥ कामरूपी राक्षस मारीचि के पास रामचन्द्र नहीं पहुँचे थे, तभी तक रावण उनकी रोती हुई स्त्रीको बलपूर्वक हरले आया ॥ ३ ॥ मैं राक्षसियोंके अधीन हूँ। उनकी धमकी सहनी पड़ती है। दुःखित होकर रामकी चिन्ता कर रही हूँ। अब मैं जीना नहीं चाहती ॥ ४ ॥ रामके बिना राक्षसियोंके बीचमें यदि मुझे रहना है तो मेरे जीवन से क्या मतलब और धन तथा भूषण आदिसे क्या मतलब? ॥ ५ ॥ यह मेरा हृदय पत्थरका है या अजर अमर है जो इस दुःखसे भी नहीं फटता ॥ ६ ॥ उन रामचन्द्रसे अलग रहकर दुःखमय घृणित जीवन मैं नहीं चाहती। पतिदेवसे विरहित और निर्जीवके समान् मुझको धिक्कार है ॥ ७ ॥ बायें पैरसे भी राक्षस रावणको मैं नहीं छू सकती। फिर उसको चाह कैसे सकती हूँ ॥ ८ ॥ क्रूर स्वभावके कारण जो राक्षस मेरी प्रार्थना कर रहा है वह मेरे निषेध वाक्योंका अर्थ नहीं समझता। न अपनेको जानता है और न अपने कुल को ॥ ९ ॥ मुझे भालेसे छेदो, तलवारसे काटो, कुल्हाड़ीसे काटो, आगमें पकाओ या जला दो, रावणको मैं स्वीकार नहीं करूँगी, तुम लोगोंका बकना व्यर्थ है ॥ १० ॥ रामचन्द्र प्रसिद्ध विद्वान्, कृतज्ञ, दयालु और सदाचारी हैं। मेरे अभाग्यसे वे मुझपर दयाहीन हो गये हैं। जनस्थानमें चौदह हजार राक्षसोंको जिन्होंने अकेले हटाया था, वे क्या मेरे पास न आवेंगे? ॥ ११-१२ ॥ भले ही यह लंका समुद्रके बीच होनेसे दूसरोंके लिए आक्रमण करनेके योग्य न हो, पर रामचन्द्रके बाणोंकी गति तो नहीं रुक सकती ॥ १३ ॥

किं नु तत्कारणं येन रामो दृढपराक्रमः। रक्षसापहृतां भार्यामिष्टां यो नाभिपद्यते ॥१४॥
इहस्थां मां न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूर्वजः। जानन्नपि स तेजस्वी धर्षणां मर्षयिष्यति ॥१५॥
हृतेति मां योऽधिगत्य राघवाय निवेदयेत्। गृध्रराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः ॥१६॥
कृतं कर्म महत्तेन मां तदाभ्यवपद्यता। तिष्ठता रावणवधे वृद्धेनापि जटायुषा ॥१७॥
यदि मामिह जानीयाद्वर्तमानां हि राघवः। अद्य बाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम् ॥१८॥
निर्दहेच्च पुरीं लङ्कां निर्दहेच्च महोदधिम्। रावणस्य च नीचस्य कीर्तिं नाम च नाशयेत् ॥१९॥
ततो निहतनाथानां राक्षसीनां गृहे गृहे। यथाहमेव रुदती तथा भूयो न संशयः ॥२०॥
अन्विष्य रक्षसां लङ्कां कुर्याद्रामः सलक्ष्मणः। नहि ताभ्यां रिपुर्दृष्टो मुहूर्तमपि जीवति ॥२१॥
चिताधूमाकुलपथा गृध्रमण्डलमण्डिता। अचिरेणैव कालेन श्मशानसदृशी भवेत् ॥२२॥
अचिरेणैव कालेन प्राप्स्याम्येनं मनोरथम्। दुष्प्रस्थानोऽयमाभाति सर्वेषां वो विपर्ययः ॥२३॥
यादृशानि तु दृश्यन्ते लङ्कायामशुभानि तु। अचिरेणैव कालेन भविष्यति हतप्रभा ॥२४॥
नूनं लङ्का हते पापे रावणे राक्षसाधिपे। शोषमेष्यति दुर्धर्षा प्रमदा विधवा यथा ॥२५॥
पुण्योत्सवसमृद्धा च नष्टभर्त्री सराक्षसा। भविष्यति पुरी लङ्का नष्टभर्त्री यथाङ्गना ॥२६॥
नूनं राक्षसकन्यानां रुदतीनां गृहे गृहे। श्रोष्यामि नचिरादेव दुःखार्तानामिह ध्वनिम् ॥२७॥

क्या कारण है कि प्रसिद्ध पराक्रमी रामचन्द्र राक्षसके द्वारा हरी गयी अपनी प्यारी पत्नी की खबर नहीं लेते ? ॥ १४ ॥ लक्ष्मणके बड़े भाई मेरा यहाँ का रहना न जानते हों यह संभव है: क्योंकि जानने पर वे इस तिरस्कारको कैसे सहते ? ॥ १५ ॥ सीता हरी गयी, यह संवाद जाकर रामचन्द्रसे जो कहता, उस गृध्रराजको भी रावणने युद्धमें मार डाला ॥ १६ ॥ मेरे प्रति दयासे प्रेरित होकर उस बूढ़े जटायुने भी रावणके वधके लिए उद्यत होकर उस समय बड़ा काम किया था ॥ १७ ॥ यदि मेरा यहाँ रहना रामचन्द्र जान पाते, तो क्रोध करके आजही इस संसारको राक्षसहीन कर देते ॥ १८ ॥ लंकापुरीको जला देते, समुद्रको भस्म कर देते, नीच रावणकी कीर्ति और उसके नामको नष्ट कर देते ॥ १९ ॥ अपने पतियोंके मारे जानेसे घर घरमें राक्षसियाँ भी इसी तरह रोतीं, जिस तरह आज मैं रो रही हूँ, इसमें सन्देह नहीं ॥२०॥ लंकाका पता लगाकर लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र अवश्य ही इसका विनाश करेंगे। उन दोनों-के द्वारा देखा गया शत्रु एक मुहूर्त भी तो नहीं जी सकता ॥ २१ ॥ शीघ्र ही इस लंकाके रास्ते चिताके धूमसे भर जायँगे। इसपर गृद्ध मँड़रायँगे। यह श्मशानके समान हो जायगी ॥ २२ ॥ बहुत शीघ्र ही मेरा यह मनोरथ पूरा होगा। तुम सब लोगोंका यह शास्त्र-विरुद्ध आचरण शीघ्रही फलेगा ॥ २३ ॥ लंकामें जैसी अशुभ बातें दिखाई पड़ती हैं, उनसे यह लंका शीघ्र ही श्रीहीन होजायगी ॥ २४ ॥ पापी राक्षसराज रावणके मारे जानेपर यह दुर्धर्ष लंका विधवा स्त्रीके समान सूख जायगी ॥ २५ ॥ जिस लंकामें आज देवोत्सव होते हैं, वही लंका अपने राजा तथा राक्षसोंके नष्ट होनेपर विधवा स्त्रीके समान मालूम होगी ॥ २६ ॥ अवश्य ही दुखित राक्षसकन्याओंके रोनेका शब्द घर घरमें शीघ्र ही मैं सुनूँगी ॥ २७ ॥

सान्धकारा हतद्योता हतराक्षसपुंगवा । भविष्यति पुरी लङ्का निर्दग्धा रामसायकैः ॥२८॥
यदि नाम स शूरो मां रामो रक्तान्तलोचनः । जानीयाद्वर्तमानां हि राक्षसस्य निवेशने ॥२९॥
अनेन तु नृशंसेन रावणेनाधमेन मे । समयो यस्तु निर्दिष्टस्तस्य कालोऽयमागतः ॥३०॥
स च मे विहितो मृत्युरस्मिन्दुष्टे न वर्तते । अकार्यं ये न जानन्ति नैर्ऋताः पापकारिणः ॥३१॥
अधर्मात्तु महोत्पातो भविष्यति हि सांप्रतम् । नैते धर्मं विजानन्ति राक्षसाः पिशिताशनाः ॥३२॥
ध्रुवं मां प्रातराशार्थं राक्षसः कल्पयिष्यति । साहं कथं करिष्यामि तं विना प्रियदर्शनम् ॥३३॥
रामं रक्तान्तनयनमपश्यन्ती सुदुःखिता । क्षिप्रं वैवस्वतं देवं पश्येयं पतिना विना ॥३४॥
नाजानाज्जीवतीं रामः स मां भरतपूर्वजः । जानन्तौ तु न कुर्यातां नोर्व्यां हि परिमार्गणम् ॥३५॥
नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः । देवलोकमितो यातस्त्यक्त्वा देहं महीतले ॥३६॥
धन्या देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । मम पश्यन्ति ये वीरं रामं राजीवलोचनम् ॥३७॥
अथवा नहि तस्यार्थो धर्मकामस्य धीमतः । मया रामस्य राजर्षेर्भार्यया परमात्मनः ॥३८॥
दृश्यमाने भवेत्प्रीतिः सौहृदं नास्त्यदृश्यतः । नाशयन्ति कृतघ्नास्तु न रामो नाशयिष्यति ॥३९॥
किंवामय्यगुणाःकेचित्किं वा भाग्यक्षयो हि मे । या हि सीता वरार्हेण हीना रामेण भामिनी ॥४०॥
श्रेयो मे जीवितान्मर्तुं विहीनाया महात्मना । रामादक्लिष्टचारित्राच्छूराच्छत्रुनिबर्हणात् ॥४१॥

इस लंकापुरी के रामके बाणोंसे जल जाने पर अंधेरा हो जायगा । इसकी प्रभा जाती रहेगी और श्रेष्ठ राक्षस मारे जांयगे । यदि शूर और रक्तलोचन रामचन्द्र यहां राक्षसके घरमें मेरा रहना जान पाते ! ॥ २८ ॥ २६ ॥ इस क्रूर अधम रावणने मेरेलिए जो अवधि नियत की है वह भी अब आगयी ॥ ३० ॥ रावणने जो मेरे मारनेका निश्चय किया है वह नहीं टल सकता; क्योंकि जो राक्षस कर्तव्य और अकर्तव्य नहीं जानते वे निश्चय पापी हैं ॥ ३१ ॥ मांस खानेवाले राक्षस धर्म नहीं जानते, इसलिए अधर्मके कारण शीघ्र ही यहां बड़े बड़े उत्पात होंगे ॥ ३२ ॥ अवश्य ही यह राक्षस जलपानके लिए मुझे काटेगा । फिर मैं प्रियदर्शन के बिना क्या कर सकूँगी ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रके अदर्शनसे दुखित होकर मैं पतिके बिना शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश करूँगी ॥ ३४ ॥ भरतके भाई रामचन्द्र, मैं जी रही हूँ, यह नहीं जानते । यदि मेरा जीवित होना उन्हें मालूम होता तो अवश्य ही वे मुझे सब जगह ढूढ़ते ॥ ३५ ॥ मालूम होता है मेरे ही शोकके कारण लक्ष्मणके बड़े भाई पृथिवीमें शरीर छोड़कर यहांसे देवलोक में चले गये ॥ ३६ ॥ वे देवता, गन्धर्व, सिद्ध तथा ऋषिगण धन्य हैं, जो राजीवलोचन वीर मेरे रामको देखते हैं ॥ ३७ ॥ अथवा धर्मात्मा उत्तम स्वभाववाले रामचन्द्रको मुझसे कुछ काम ही नहीं ॥ ३८ ॥ देखनेपर प्रीति होती है, बिना देखे प्रीति नहीं होती; पर यह बात रामचन्द्रके विषयमें संभव नहीं है । कृतघ्नोंकी यह रीति है । रामचन्द्र पूर्वप्रेम-को नष्ट न होने देंगे ॥ ३९ ॥ क्या मुझमें कोई दुर्गुण है, या मैं अभागिनी हूँ जो प्रियश्रेष्ठ रामचन्द्र से हीन हो गयी हूँ ॥ ४० ॥ सुन्दरचरित्र, शूर, शत्रुनाशक महात्मा रामचन्द्रसे हीन

अथवा न्यस्तशस्त्रौ तौ वने मूलफलाशनौ । भ्रातरौ हि नरश्रेष्ठौ चरन्तौ वनगोचरौ ॥४२॥
अथवा राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना । छद्मना घातितौ शूरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥४३॥
साहमेवंविधे काले मर्तुमिच्छामि सर्वतः । न च मे विहितो मृत्युरस्मिन्दुःखेऽतिवर्तति ॥४४॥
धन्याः खलु महात्मानो मुनयः सत्यसंमताः । जितात्मानो महाभागा येषां न स्तः प्रियाप्रिये ॥४५॥
प्रियान्न संभवेद्दुःखमप्रियादधिकं भवेत् । ताभ्यां हि ते वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम् ॥४६॥
साहं त्यक्ता प्रियेणैव रामेण विदितात्मना । प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गता वशम् ॥४७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः २७

इत्युक्ताःसीतया घोरं राक्षस्यःक्रोधमूर्च्छिताः । काश्चिज्जग्मुस्तदाख्यातुं रावणस्य दुरात्मनः ॥ १ ॥
ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यो भीमदर्शनाः । पुनः परुषमेकार्थमनर्थार्थमथाब्रुवन् ॥ २ ॥
अद्येदानीं तवानार्ये सीते पापविनिश्चये । राक्षस्यो भक्षयिष्यन्ति मांसमेतद्यथासुखम् ॥ ३ ॥
सीतां ताभिरनार्याभिर्दृष्ट्वा संतर्जितां तदा । राक्षसी त्रिजटा वृद्धा प्रबुद्धा वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥

होकर जीनेकी अपेक्षा मेरा मरना ही उत्तम है ॥ ४१ ॥ अथवा वनमें फल मूलका आहार करने-वाले वनमें भ्रमण करते हुए नरश्रेष्ठ दोनों भाइयोंने अस्त्र त्याग कर दिया होगा ॥ ४२ ॥ अथवा दुरात्मा राक्षसराज रावणने छलसे वीर राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंको मार डाला होगा । अतएव इस समय सब प्रकारसे मैं मरना चाहती हूँ ॥ ४३ ॥ ऐसे दुखके समय मेरा मर जाना ही उचित है, पर मेरी तो मृत्यु लिखीही नहीं ॥ ४४ ॥ ब्रह्मपरायण, जितात्मा, महात्मा वे मुनि धन्य हैं, जिनको न तो कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय ॥ ४५ ॥ जिनको प्रियवियोगसे दुख नहीं होता और न अप्रियसंयोगसे ही अधिक दुख होता है । वे इन दोनोंसे परे हैं, उन महात्माओंको नमस्कार । मैं प्रिय और आत्माभिमानी रामचन्द्रसे त्यक्त और पापी रावणके अधीन हूँ, अतएव प्राण त्याग ही करूँगी ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ।



सीताके ऐसे कठोर वचन सुनकर राक्षसियां क्रोधसे अधीर हो गयीं । उनमें कई रावणके पास यह वृत्तान्त कहनेके लिए गयीं ॥ १ ॥ अन्य भयानक आकारवाली राक्षसियां सीताके पास गयीं और अपने कल्याणके नाशक वचनको एक स्वरसे बोलीं ॥ २ ॥ आज इसी क्षण बुरे अभिप्राय रखनेवाली तुम्हारा मांस राक्षसियां खायँगी ॥ ३ ॥ उन अनार्य राक्षसियों-के द्वारा सीताका तर्जन देखकर बूढ़ी और समझदार त्रिजटा नामकी राक्षसी बोली, ॥ ४ ॥

आत्मानं खादतानार्या न सीतां भक्षयिष्यथ । जनकस्य सुतामिष्टां स्नुषां दशरथस्य च ॥ ५ ॥
स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः । राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या भवाय च ॥ ६ ॥
एवमुक्तास्त्रिजटया राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः । सर्वा एवाब्रुवन्भीतास्त्रिजटां तामिदं वचः ॥ ७ ॥
कथयस्व त्वया दृष्टः स्वप्नोयं कीदृशो निशि । तासां श्रुत्वा तु वचनं राक्षसीनां मुखोद्गतम् ॥ ८ ॥
उवाच वचनं काले त्रिजटा स्वप्नसंश्रितम् । गजदन्तमयीं दिव्यां शिबिकामन्तरिक्षगाम् ॥ ९ ॥
युक्तां वाजिसहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः । शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन समागतः ॥१०॥
स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता । सागरेण परिक्षिप्तं श्वेतपर्वतमास्थिता ॥११॥
रामेण संगता सीता भास्करेण प्रभा यथा । राघवश्च पुनर्दृष्टश्चतुर्दन्तं महागजम् ॥१२॥
आरूढः शैलसंकाशं चकास सहलक्ष्मणः । ततस्तु सूर्यसंकाशौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥१३॥
शुक्लमाल्याम्बरधरौ जानकीं पर्युपस्थितौ । ततस्तस्य नगस्याग्रे ह्याकाशस्थस्य दन्तिनः ॥१४॥
भर्त्रा परिगृहीतस्य जानकी स्कन्धमाश्रिता । भर्तुरङ्कात्समुत्पत्य ततः कमललोचना ।
चन्द्रसूर्यौ मया दृष्टा पाणिभ्यां परिमार्जती ॥१५॥
ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यामास्थितःस गजोत्तमः । सीतया च विशालाक्ष्या लङ्काया उपरिस्थितः ॥
पाण्डुरर्षभयुक्तेन रथेनाष्टयुजा स्वयम् ॥१६॥
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन सहागतः । ततोऽन्यत्र मया दृष्टो रामः सत्यपराक्रमः ॥१७॥

अरे पापिनियो, तुम अपनेको खाओ, जनककी प्यारी पुत्री और दशरथकी पुत्रवधू सीताको मत खाओ ॥ ५ ॥ आज मैंने एक भयानक और रोंगटे खड़े करनेवाला स्वप्न देखा है, जिससे इसके पतिका कल्याण और राक्षसोंका नाश होना मालूम पड़ता है ॥ ६ ॥ क्रोधमें भरी हुई सब राक्षसियाँ त्रिजटाके इस वचनसे भयभीत हो गयीं और वे त्रिजटासे इस प्रकार बोलीं, ॥ ७ ॥ कहो, तुमने कैसा स्वप्न रातको देखा है ? उनके मुँहसे निकले वचन सुनकर त्रिजटा जो प्रातः काल उसने स्वप्न देखा था, वह कहने लगी—हाथीदाँतके बने हुए आकाशमें चलनेवाले हजार घोड़ोंसे युक्त रथपर बैठकर और श्वेत वस्त्र माल्य आदि धारण किये रामचन्द्र लक्ष्मणके साथ लंकामें आये हैं ॥८॥९॥१०॥ आज स्वप्नमें मैंने देखा है कि सीता श्वेत वस्त्र पहने, एक श्वेत पर्वत-पर बैठी है और क्षीरसमुद्रसे वह पर्वत घिरा हुआ है ॥ ११ ॥ जिस प्रकार सूर्यसे प्रभा मिलती है उसी प्रकार सीता रामचन्द्रसे मिल गयी है। पुनः मैंने रामचन्द्रको देखा कि पर्वतके समान ऊँचे और चार दाँतवाले हाथीपर लक्ष्मणके साथ चढ़कर, अपने प्रकाशसे सूर्यके समान दीप्यमान, शुक्लाम्बरधारी रामचन्द्र जानकीके पास आये हैं। अनन्तर उस पर्वतपरसे सीता हाथीके कन्धेपर आ गयी, जिसे स्वयं रामचन्द्र हाँक रहे थे। पुनः कमलनयनी सीताको मैंने पतिके अंकसे निकलकर चन्द्रमा और सूर्यको हाथसे पोंछती देखी ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ अनन्तर वह श्रेष्ठ हाथी, जिसपर राम और लक्ष्मण विशालाक्षी सीताके साथ बैठे हैं, लंकापर आया। श्वेत आठ बैलोंसे युक्त रथपर शुक्ल माल्याम्बरधारी राम, लक्ष्मणके साथ, यहाँ आये हैं। पुनः मैंने सत्यपराक्रम रामचन्द्र-

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह वीर्यवान् । आरुह्य पुष्पकं दिव्यं विमानं सूर्यसंनिभम् ॥१८॥
उत्तरां दिशमालोच्य प्रस्थितः पुरुषोत्तमः । रावणश्च मया दृष्टो मुण्डस्तैलसमुक्षितः ॥१९॥
रक्तवासाः पिबन्मत्तः करवीरकृतस्रजः । विमानात्पुष्पकादद्य रावणः पतितः क्षितौ ॥२०॥
कृष्यमाणःस्त्रिया मुण्डो दृष्टःकृष्णाम्बरःपुनः । रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः ॥२१॥
पिबंस्तैलं हसन्नृत्यन्भ्रान्तचित्ताकुलेन्द्रियः । गर्दभेन ययौ शीघ्रं दक्षिणां दिशमाश्रितः ॥२२॥
पुनरेव मया दृष्टो रावणो राक्षसेश्वरः । पतितो विशिरा भूमौ गर्दभाद्भयमोहितः ॥२३॥
सहसोत्थाय संभ्रान्तो भयार्तो मदविह्वलः । उन्मत्तरूपो दिग्वासा दुर्वाक्यं प्रलपन्बहु ॥२४॥
दुर्गन्धं दुःसहं घोरं तिमिरं नरकोपमम् । मलपङ्कं प्रविश्याशु मग्नस्तत्र स रावणः ॥२५॥
प्रस्थितो दक्षिणामाशां प्रविष्टो कर्दमह्रदम् । कण्ठे बद्ध्वा दशग्रीवं प्रमदा रक्तवासिनी ॥२६॥
काली कर्दमलिप्ताङ्गी दिशं याम्यां प्रकर्षती । एवं तत्र मया दृष्टः कुम्भकर्णो महाबलः ॥२७॥
रावणस्य सुताः सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिताः । वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित् ॥२८॥
उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रयातो दक्षिणां दिशम् । एकस्तत्र मया दृष्टः श्वेतच्छत्रो विभीषणः ।
चतुर्भिः सचिवैः सार्धं वैहायसमुपस्थितः ॥ २९ ॥

को देखा—वे पराक्रमी भाई लक्ष्मण और सीताके साथ सूर्य-सदृश दिव्य पुष्पकविमानपर चढ़कर उत्तर दिशाकी ओर गए हैं और रावणको मैंने मुण्डितमस्तक, तैलयुक्त देखा है ॥ १६, १७, १८, १९ ॥ वह लाल वस्त्र पहने हुए था । पीकर नशेमें चूर था । करवीरकी माला (फाँसीके दण्डित अपराधीका चिन्ह) पहने हुए था । वह रावण पुष्पकविमानसे नीचे गिर पड़ा ॥ २० ॥ मैंने पुनः देखा—रावण काला वस्त्र पहने हुए है, उसका सिर मुण्डित है और एक स्त्री उसका वस्त्र खींच रही है । वह लालरंगकी माला तथा शरीरलेप धारण किये हुए था, और गधेके रथपर बैठा हुआ था ॥ २१ ॥ वह तेल पी रहा था, हंसता था, नाचता था, पागलोंके समान उसका चित्त और इन्द्रियां व्याकुलहो गयीं थी । वह गधेपर चढ़कर दक्षिण दिशाकी ओर गया ॥ २२ ॥ पुनः मैंने देखा कि राक्षसेश्वर रावण भयसे कर्तव्यविमूढ़ होकर भूमिपर गिरा । उसका सिर धड़से अलग हो गया था ॥ २३ ॥ वह घबराकर, भयभीत और मतवाला होकर, सहसा उठा । वह उन्मत्तके समान था, नंगा था, और दुर्वचन बोल रहा था । असहनीय दुर्गन्धवाले नरकके समान अन्धकार और मलपंकमें रावण घुसा और वहीं डूब गया ॥ २४ ॥ २५ ॥ रावण दक्षिण दिशाकी ओर गया और विना कीचड़के तालाबमें घुसा । रक्त वस्त्र धारण करनेवाली एक स्त्री, जो काली थी और जिसके शरीरमें कीचड़ लिपटा हुआ था वह, रावणका गला पकड़कर उसे दक्षिण दिशाकी ओर खींच रही थी । इसी प्रकार महाबली कुम्भकर्णको भी मैंने वहाँ देखा ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसी प्रकार रावणके सब लड़कोंको मुण्डित और तैललिप्त मैंने देखा । रावण सुअरपर चढ़कर, मेघनाद सूंसपर चढ़कर और कुम्भकर्ण ऊँटपर चढ़कर दक्षिण दिशाकी ओर गये । एक विभीषणको मैंने श्वेत छत्र धारण किये हुए देखा । वे चार सचिवोंके साथ आकाशमें उड़ रहे थे ॥ २८ ॥ २९ ॥

समाजश्च महान्वृत्तो गीतवादित्रनिःस्वनः । पिबतां रक्तमाल्यानां रक्षसां रक्तवाससाम् ॥३०॥
लङ्का चेयं पुरी रम्या सवाजिरथकुञ्जरा । सागरे पतिता दृष्टा भग्नगोपुरतोरणा ॥३१॥
पीत्वा तैलं प्रमत्ताश्च प्रहसन्त्यो महास्वनाः । लङ्कायां भस्मरूक्षायां सर्वा राक्षसयोषितः ॥३२॥
कुम्भकर्णादयश्चेमे सर्वे राक्षसपुंगवाः । रक्तं निवसनं गृह्य प्रविष्टा गोमयह्रदम् ॥३३॥
अपगच्छत पश्यध्वं सीतामाप्नोति राघवः । घातयेत्परमामर्षी युष्मान्सार्धं हि राक्षसैः ॥३४॥
प्रियां बहुमतां भार्यां वनवासमनुव्रताम् । भर्त्सितां तर्जितां वापि नानुमंस्यति राघवः ॥३५॥
तदलं क्रूरवाक्यैश्च सान्त्वमेवाभिधीयताम् । अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते ॥३६॥
यस्या ह्येवंविधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते । सा दुःखैर्बहुभिर्मुक्ता प्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥३७॥
भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया । राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम् ॥३८॥
प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा । अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् ॥३९॥
अपि चास्या विशालाक्ष्या न किंचिदुपलक्षये । विरूपमपि चाङ्गेषु सुसूक्ष्ममपि लक्षणम् ॥४०॥
छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम् । अदुःखार्हामिमां देवीं वैहायसमुपस्थिताम् ॥४१॥
अर्थसिद्धिं तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थिताम् । राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च ॥४२॥

रक्त वस्त्र और पुष्पकी मालाएँ धारण किये हुए तथा तेल आदि पीते हुए राक्षसोंका बहुत बड़ा एक उत्सव हुआ, जिसमें गाना और बजाना हुआ ॥ ३० ॥ हाथी, घोड़े और रथके साथ यह रमणीय लंकापुरी समुद्रमें डूब गयी। इसके गोपुर और तोरण टूट गये ॥ ३१ ॥ तेल पीकर मतवाली, चीखती-चिल्लाती हुई राक्षसोंको सब स्त्रियाँ हँसती थीं ॥३२॥ कुम्भकर्ण आदि राक्षसोंके मुखिया लाल वस्त्र पहनकर गोबरके तालाबमें घुस पड़े ॥ ३३ ॥ अतएव तुमलोग यहाँसे हट जाओ। रामचन्द्रको सीता मिलेगी, यह तुम लोग देखना। परम क्रोधी रामचन्द्र राक्षसों-के साथ तुम लोगोंको अवश्य मारेंगे ॥ ३४ ॥ अपनी प्यारी स्त्रीका, जो वनवासमें उनकी अनुगामिनी रही, उसका भर्त्सन और तर्जन रामचन्द्र नहीं सह सकते ॥ ३५ ॥ अतएव सीताको कठोर वचन कहना व्यर्थ है। जहाँतक हो कोमल ही वचन कहे जायँ। हमलोगोंको जानकीकी प्रार्थना करनी चाहिए। मुझे यही अच्छा मालूम होता है ॥ ३६ ॥ जिस दुःखिनी सीताके संबन्धका ऐसा स्वप्न दिखायी पड़ता है, वह शीघ्रही सब दुःखोंसे मुक्त होकर उत्तम कल्याण पा लेगी ॥ ३७ ॥ राक्षसियो, यद्यपि तुमलोगोंने सीताको दुर्वचन कहे हैं, फिर भी इनकी प्रार्थना करो। अब दुर्वचन न कहो; क्योंकि रामचन्द्रसे राक्षसोंको भयंकर भय उपस्थित हो गया है ॥ ३८ ॥ जानकी तो केवल नम्रतासे ही प्रसन्न हो जानेवाली हैं और यही उस बड़े भयसे राक्षसोंकी रक्षा कर सकती हैं ॥ ३९ ॥ विशालाक्षी सीताके अंगोंमें थोड़ा भी विकृत लक्षण नहीं दिखायी पड़ता, जिससे इसका अकल्याण समझा जाय ॥ ४० ॥ स्वप्नमें आकाशमें देखी गयी, दुःख सहन करनेके अयोग्य, इस देवीका यह दुःख चन्द्रमा पर पड़नेवाली छायाके समान थोड़ीही देरके लिए है ॥ ४१ ॥ मैं देख रही हूँ कि सीताके मनोरथकी सिद्धि शीघ्रही होनेवाली है। रावणका नाश और रामचन्द्रका विजय शीघ्र

निमित्तभूतमेतत्तु श्रोतुमस्या महत्प्रियम् । दृश्यते च स्फुरच्चक्षुः पद्मपत्रमिवायतम् ॥४३॥
ईषच्च हृषितो वास्या दक्षिणाया ह्यदक्षिणः । अकस्मादेव वैदेह्या बाहुरेकः प्रकम्पते ॥४४॥
करेणुहस्तप्रतिमः सव्यश्चोरुरनुत्तमः । वेपन्कथयतीवास्या राघवं पुरतः स्थितम् ॥४५॥

पक्षी च शाखानिलयं प्रविष्टः पुनः पुनश्चोत्तमसान्त्ववादी ।
सुस्वागतां वाचमुदीरयाणः पुनः पुनश्चोदयतीव हृष्टः ॥४६॥

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता । अवोचद्यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः ॥४७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः २८

सा राक्षसेन्द्रस्य वचो निशम्य तद्रावणस्याप्रियमप्रियार्ता ।
सीता वितत्रास यथा वनान्ते सिंहाभिपन्ना गजराजकन्या ॥ १ ॥
सा राक्षसीमध्यगता च भीरुर्वाग्भिर्भृशं रावणतर्जिता च ।
कान्तारमध्ये विजने विसृष्टा बालेव कन्या विललाप सीता ॥ २ ॥
सत्यं बतेदं प्रवदन्ति लोके नाकालमृत्युर्भवतीति सन्तः ।
यत्राहमेवं परिभर्त्स्यमाना जीवामि यस्मात्क्षणमप्यपुण्या ॥ ३ ॥
सुखाद्विहीनं बहुदुःखपूर्णमिदं तु नूनं हृदयं स्थिरं मे ।

ही होगा ॥ ४२ ॥ इस अति प्रिय संवादको शीघ्रही सुननेकी सूचना देनेवाली कमल-पत्रके समान लम्बी सीताकी आँख फरक रही है ॥ ४३ ॥ उदार इस सीताका एक बायाँ हाथ थोड़ा रोमांचित होगया है और अकस्मात् काँप रहा है ॥ ४४ ॥ हाथीकी सूँड़के समान इसकी बायीं जंघा फरक कर रामचन्द्रका सीताके आगे खड़ा होना बतला रही है ॥ ४५ ॥ यह पक्षी अपने शाखावाले घरमें बैठकर स्वागत वचन बार-बार प्रसन्न होकर बोल रहा है। यह पक्षी सदा मंगल बोलनेवाला है ॥ ४६ ॥ पतिके विजय-संवादसे प्रसन्न और लज्जित सीता बोली—यदि ऐसी बात हुई तो मैं तुम सबकी रक्षा करूँगी ॥ ४७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका सत्ताईसवां सर्ग समाप्त ॥ २७ ॥

रावणके वे कठोर और अप्रिय वचन याद करके रामचन्द्रके वियोगसे दुःखित सीता डर गयीं, जिस प्रकार वनमें सिंहके पंजेमें आयी हुई हाथीकी बच्ची डर जाती है ॥ १ ॥ स्वभावसे डरनेवाली सीता, रावणके द्वारा बार-बार धमकायी गयी और राक्षसियोंसे घिरी हुई, जनहीन जंगलमें छोड़ी हुई कन्याके समान विलाप करने लगी ॥ २ ॥ सज्जनोंका यह लोक-प्रवाद सत्यही है कि अकालमृत्यु नहीं होती; अतएव, इस प्रकार दुर्वचन सुनकर भी मैं पापिनी क्षणमात्रके लिए भी जी रही हूँ ॥ ३ ॥ सुखसे हीन और अनेक दुःखोंसे भरा हुआ मेरा यह हृदय,

विदीर्यते यत्र सहस्रधाद्य वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ ४ ॥
नैवास्ति नूनं मम दोषमत्र वध्याहमस्याप्रियदर्शनस्य ।
भावं न चास्याहमनुप्रदातुमलं द्विजो मन्त्रमिवाद्विजाय ॥ ५ ॥
तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे गर्भस्थ जन्तोरिव शल्यकृन्तः ।
नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः शरैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः ॥ ६ ॥
दुःखं बतेदं ननु दुःखिताया मासौ चिरायाभिगमिष्यतो द्वौ ।
बद्धस्य वध्यस्य यथा निशान्ते राजोपरोधादिव तस्करस्य ॥ ७ ॥
हा राम हा लक्ष्मण हा सुमित्रे हा राममातः सह मे जनन्याः ।
एषा विपद्याम्यहमल्पभाग्या महार्णवे नौरिव मूढवाता ॥ ८ ॥
तरस्विनौ धारयता मृगस्य सत्त्वेन रूपं मनुजेन्द्रपुत्रौ ।
नूनं विशस्तौ मम कारणात्तौ सिंहर्षभौ द्वाविव वैद्युतेन ॥ ९ ॥
नूनं स कालो मृगरूपधारी मामल्पभाग्यां लुलुभे तदानीम् ।
यत्रार्यपुत्रौ विससर्ज मूढा रामानुजं लक्ष्मणपूर्वजं च ॥१०॥
हा राम सत्यव्रत दीर्घबाहो हा पूर्णचन्द्रप्रतिमानवक्त्र ।
हा जीवलोकस्य हितः प्रियश्च वध्यां न मां वेत्सि हि राक्षसानाम् ॥११॥
अनन्यदेवत्वमियं क्षमा च भूमौ च शय्या नियमश्च धर्मे ।

वज्रके द्वारा आहत पर्वतके शिखरके समान स्थिर है, अतएव यह आज हज़ारों टुकड़े होकर फट क्यों नहीं जाता ! ॥४॥ अप्रियदर्शन रावणकी मैं वध्य हूँ, अतएव आत्मघात करनेमें मेरा कोई दोष नहीं है । मैं इस रावणको अपना हृदय नहीं दे सकती, जिस प्रकार शूद्रको वेद नहीं दिया जाता ॥ ५ ॥ लोकनाथ रामचन्द्रके न आने पर दितिके गर्भस्थ बालकको रावणने टुकड़े-टुकड़े कर दिया था, उसी प्रकार अनार्य रावण तीखे बाणोंसे मेरे अंगोंको काटेगा ॥ ६ ॥ बहुत दिनोंकी दुःखिनी मेरे लिए यह दो महीनेकी अवधि भी समाप्त हो जायगी । यह दुःखकी बात है । जिस प्रकार राजाके द्वारा बँधा हुआ और रात्रि बीत जानेपर फाँसी पहनेवाले चोरको दुःख होता है, मेरा यह दुःख भी वैसाही है ॥ ७ ॥ हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा सुमित्रे ! हा राममाता कौशल्या ! हा मेरी माताएँ ! मैं अभागिनी यहाँ मर रही हूँ, जिस प्रकार महासागरमें आँधीसे नाव डूब जाती है ॥ ८ ॥ मृगका रूप धारण करनेवाले उस जन्तुने मेरे कारणसे अवश्यही उन वेगवान् दोनों राजपुत्रोंका वध कर दिया है, जिस प्रकार दो सिंह बिजलीसे मार दिये गये हों ॥९॥ उस समय जिस मृगरूपधारीने मुझ अभागिनीको लुभाया था और लक्ष्मणके बड़े भाई तथा रामचन्द्रके छोटे भाई, अर्थात् राम और लक्ष्मणको जिसके पीछे मैंने दौड़ाया था, वह काल था ॥ १० ॥ हा सत्यव्रत राम, हा पूर्णचन्द्रमुख दीर्घबाहु राम, हा संसारके प्रिय और हित करनेवाले रामचन्द्र, मैं यहाँ राक्षसोंके द्वारा मारी जानेवाली हूँ, यह आपको मालूम नहीं है ! ॥ ११ ॥ यह मेरी अनन्योपासना, यह क्षमा, यह भूमिशयन, यह धार्मिक नियमोंका पालन, यह पातिव्रत

पतिव्रतात्वं विफलं ममेदं कृतं कृतघ्नेष्विव मानुषाणाम् ॥१२॥
मोघं हि धर्मश्चरितो ममायं तथैकपत्नीत्वमिदं निरर्थकम् ।
या त्वां न पश्यामि कृशा विवर्णा हीना त्वया संगमने निराशा ॥१३॥
पितुर्निदेशं नियमेन कृत्वा वनान्निवृत्तश्चरितव्रतश्च ।
स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलेक्षणाभिः संरंस्यसे वीतभयः कृतार्थः ॥१४॥
अहं तु राम त्वयि जातकामा चिरं विनाशाय निबद्धभावा ।
मोघं चरित्वाथ तपो व्रतं च त्यक्ष्यामि धिग्जीवितमल्पभाग्याम् ॥१५॥
संजीवितं क्षिप्रमहं त्यजेयं विषेण शस्त्रेण शितेन वापि ।
विषस्य दाता न तु मेऽस्ति कश्चिच्छस्त्रस्य वा वेश्मनि राक्षसस्य ॥१६॥
शोकाभितप्ता बहुधा विचिन्त्य सीताथ वेणीग्रथनं गृहीत्वा ।
उद्बध्य वेण्युद्ग्रथनेन शीघ्रमहं गमिष्यामि यमस्य मूलम् ॥१७॥
उपस्थिता सा मृदुसर्वगात्री शाखां गृहीत्वा च नगस्य तस्य ।
तस्यास्तु रामं परिचिन्तयन्त्या रामानुजं स्वं च कुलं शुभाङ्ग्याः ॥१८॥
तस्या विशोकानि तदा बहूनि धैर्यार्जितानि प्रवराणि लोके ।
प्रादुर्निमित्तानि तदा बभूवुः पुरापि सिद्धान्युपलक्षितानि ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥२८॥

सब व्यर्थ हुआ, जिस प्रकार कृतघ्नके लिए किया हुआ कर्म व्यर्थ होता है ॥ १२ ॥ आपसे हीन और आपके संगम होनेसे निराश, अतएव कृश-विवर्ण, जो मैं आपको नहीं देख रही हूँ, मेरा धर्माचरण व्यर्थ हुआ और मैं ही रामचन्द्रकी स्त्री हूं-यह अभिमान निरर्थक हुआ ॥ १३ ॥ पिताकी आज्ञाका नियमसे पालन करके और व्रतके नियमोंका उचित पालन करके तुम यहाँसे घर लौट गये हो और बड़ी आँखोंवाली स्त्रियोंके साथ निर्भय और निश्चिन्त होकर रमण कर रहे हो ॥ १४ ॥ राम, मैं तो केवल तुम्हारीही अनुरागिणी हूँ और मरकर भी तुम्हें प्राप्त करनेकी इच्छा मैं रखती हूं। निरर्थक तप व्रत आदिका पालन करके मैं जीवन त्याग करूँगी। मुझ अभागिनीको धिक्कार है! ॥१५॥ विषके द्वारा या तेज शस्त्रके द्वारा शीघ्रही मैं अपने प्राण छोड़ूँगी। पर यहां राक्षसके घरमें न तो मुझे कोई विष देनेवाला है और न शस्त्र देनेवाला ॥ १६ ॥ शोक-तप्त सीताने इस प्रकार बहुत विचार करके अपनी चोटीसे गला बाँध प्राण देनेको निश्चय किया ॥ १७ ॥ सर्वाङ्गकोमल सीता उस शिंशपा वृक्षके नीचे पहुँची। राम लक्ष्मण और अपने कुलके संबन्धमें इस प्रकार सीता विचार कर रही थी, उसी समय उसके शोकको दूर करनेवाले, उसे ढाढ़स बंधानेवाले, लोकप्रसिद्ध शकुन हुए, जिनकी पहलेहीसे संभावना थी ॥ १८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका अट्ठाईसवां सर्ग समाप्त।

एकोनत्रिंशः सर्गः २९

तथागतां तां व्यथितामनिन्दितां व्यतीतहर्षां परिदीनमानसाम् ।
शुभां निमित्तानि शुभानि भेजिरे नरं श्रिया जुष्टमिवोपसेविनः ॥ १ ॥
तस्याः शुभं वाममरालपक्ष्मराज्यावृतं कृष्णविशालशुक्लम् ।
प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवाभिताम्रम् ॥ २ ॥
भुजश्च चार्वञ्चितवृत्तपीनः परार्ध्यकालागुरुचन्दनार्हः ।
अनुत्तमेनाध्युषितः प्रियेण चिरेण वामः समवेपताशु ॥ ३ ॥
गजेन्द्रहस्तप्रतिमश्च पीनस्तयोर्द्वयोः संहतयोस्तु जातः ।
प्रस्पन्दमानः पुनरूरुरस्या रामं पुरस्तात्स्थितमाचचक्षे ॥ ४ ॥
शुभं पुनर्हेमसमानवर्णमीषद्रजोध्वस्तमिवातुलाक्ष्याः ।
वासः स्थितायाः शिखराग्रदन्त्याः किंचित्परिस्रंसत चारुगात्र्याः ॥ ५ ॥
एतैर्निमित्तैरपरैश्च सुभ्रूः संचोदिता प्रागपि साधुसिद्धैः ।
वातातपक्लान्तमिव प्रणष्टं वर्षेण बीजं प्रतिसंजहर्ष ॥ ६ ॥
तस्याः पुनर्बिम्बफलोपमोष्ठं स्वक्षिभ्रुकेशान्तमरालपक्ष्म ।
वक्त्रं बभासे सितशुक्लदंष्ट्रं राहोर्मुखाच्चन्द्र इव प्रमुक्तः ॥ ७ ॥

इस प्रकारसे शाखाके पास पहुँची हुई दुखिनी, आनन्दहीन, दीनचित्त, अनिन्दित, पवित्र सीताको उसीप्रकार शुभ शकुन दिखाई पड़ने लगे, जैसे धनी मनुष्यके यहाँ नौकर आने लगते हैं ॥ १ ॥ सीताका शुभसूचक वाम नेत्र, जो विशाल काला और श्वेत था, जो टेढ़ी पपनियोंसे घिरा हुआ था, फरका, जिस प्रकार मछलीके आघातसे एक लाल कमल हिलने लगा हो ॥ २ ॥ और सुन्दर गोल और मोटा तथा उत्तम काला अगरु और चन्दन धारण करनेके योग्य, श्रेष्ठ पतिके द्वारा उपयुक्त वाम बाहु देर तक फरकता रहा ॥ ३ ॥ जुड़े हुए दो मोटे जंघाओंमेंसे एक जाँघ फरकने लगी, जिससे रामचन्द्रका सीताके सामने शीघ्र उपस्थित होना सूचित हुआ ॥ ४ ॥ पुनः सुवर्णके समान वर्णवाला, धूल लगनेसे थोड़ा मलिन, दाड़िमबीजके समान दाँतवाली, विशालाक्षी, सुन्दर गात्रवाली, बैठी हुई सीताका वस्त्र थोड़ा खिसक गया ॥ ५ ॥ इन निमित्तोंसे, जो पहले भी उसके मनोरथोंकी सिद्धि बतला चुके थे, सुभ्रु सीता, हवा और धूपसे सूखा हुआ, अतएव, नष्टप्राय बीज जिस प्रकार वर्षाके द्वारा हर्षित हो जाता है, उसी प्रकार सीता भी हर्षित हुई ॥ ६ ॥ बिम्बफलके समान ओठवाला सुन्दर आँख भौंह-केश और टेढ़ी पपनीवाला,

सा वीतशोका व्यपनीततन्द्रा शान्तज्वरा हर्षविबुद्धसत्त्वा।
अशोभतार्या वदनेन शुक्ले शीतांशुना रात्रिरिवोदितेन ॥ ८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ३०

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः। सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसानां च गर्जितम् ॥ १ ॥
अवेक्षमाणस्तां देवीं देवतामिव नन्दने। ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः ॥ २ ॥
यां कपीनां सहस्राणि सुबहून्ययुतानि च। दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया ॥ ३ ॥
चारेण तु सुयुक्तेन शत्रोः शक्तिमवेक्षता। गूढेन चरता तावदवेक्षितमिदं मया ॥ ४ ॥
राक्षसानां विशेषश्च पुरी चेयं निरीक्षिता। राक्षसाधिपतेरस्य प्रभावो रावणस्य च ॥ ५ ॥
यथा तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयावतः। समाश्वासयितुं भार्यां पतिदर्शनकांक्षिणीम् ॥ ६ ॥
अहमाश्वासयाम्येनां पूर्णचन्द्रनिभाननाम्। अदृष्टदुःखां दुःखस्य न ह्यन्तमधिगच्छतीम् ॥ ७ ॥
यदि ह्यहं सतीमेनां शोकोपहतचेतनाम्। अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद्गमनं भवेत् ॥ ८ ॥
गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी। परित्राणमपश्यन्ती जानकी जीवितं त्यजेत् ॥ ९ ॥
यथा च स महाबाहुः पूर्णचन्द्रनिभाननः। समाश्वासयितुं न्याय्यः सीतादर्शनलालसः ॥१०॥

श्वेत दाँतवाला मुख, राहुके मुखसे निकले चन्द्रमाके समान सुशोभित हुआ ॥ ७ ॥ शुक्लपक्षमें चन्द्रमाके उदयसे रात्रिके समान आर्या सीता शोभित हुईं। उनका शोक नष्ट हो गया, थकावट जाती रही, मनका सन्ताप नष्ट हो गया और हर्षसे मन प्रफुल्ल हो गया ॥ ८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकांडका उनतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २९ ॥

विक्रमी हनुमानने सीताका विलाप, त्रिजटाका स्वप्न, राक्षसियोंका धमकाना, ये सब ठीक ठीक सुने ॥ १ ॥ नन्दनवनमें देवीके समान सीताको देखनेसे हनुमानके मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता उत्पन्न हुई ॥ २ ॥ जिस सीताको कई हजार और लाखों वानर सब दिशाओंमें ढूंढ रहे हैं उस सीताको मैंने पा लिया ॥ ३ ॥ स्वामीके द्वारा नियुक्त और शत्रुकी शक्तिका पता लगानेके लिए गुप्तरूपसे विचरण करते हुए मैंने पहले पहल यह देखा ॥ ४ ॥ राक्षसोंकी विशेषता, राक्षसाधिपति रावणका प्रभाव और वह लंका नगरी मैंने देखी ॥ ५ ॥ असीम प्रभाववाले, सब प्राणियों पर दया करनेवाले रामचन्द्रकी पत्नी जो पतिका दर्शन चाहती है, जिसने पहले दुख नहीं देखा था और जो आज दुखका पार नहीं पा रही है, उस पूर्णचन्द्रानना सीताको मैं आज समझाऊंगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ यदि शोकसे संज्ञाहीन सती सीताको बिना समझाये मैं यहाँसे लौट आऊंगा तो मेरा जाना दोषयुक्त होगा ॥ ८ ॥ मेरे चले जानेपर यशस्विनी राजपुत्री सीता अपनी रक्षाका कोई उपाय न देखकर प्राणत्याग कर देगी ॥ ९ ॥ जिस प्रकार महाबाहु, पूर्णचन्द्रानन सीताको

निशाचरीणां प्रत्यक्षमक्षमं चाभिभाषितम् । कथं नु खलु कर्तव्यमिदं कृच्छ्रगतो ह्यहम् ॥११॥
अनेन रात्रिशेषेण यदि नाश्वास्यते मया । सर्वथा नास्ति संदेहः परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥१२॥
रामस्तु यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताब्रवीद्वचः । किमहं तं प्रतिब्रूयामसंभाष्य सुमध्यमाम् ॥१३॥
सीतासंदेशरहितं मामितस्त्वरया गतम् । निर्दहेदपि काकुत्स्थः क्रोधतीव्रेण चक्षुषा ॥१४॥
यदि वोद्योजयिष्यामि भर्तारं रामकारणात् । व्यर्थमागमनं तस्य ससैन्यस्य भविष्यति ॥१५॥
अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामवास्थितः । शनैराश्वासयाम्यद्य संतापबहुलामिमाम् ॥१६॥
अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः । वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ॥१७॥
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् । रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥१८॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् । मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ॥१९॥
सेयमालोक्य मे रूपं जानकी भाषितं तथा । रक्षोभिस्त्रासिता पूर्वं भूयस्त्रासमुपैष्यति ॥२०॥
ततो जातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनस्विनी । जानाना मां विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम् ॥२१॥
सीतया च कृते शब्दे सहसा राक्षसीगणः । नानाप्रहरणो घोरः समेयादन्तकोपमः ॥२२॥
ततो मां संपरिक्षिप्य सर्वतो विकृताननाः । वधे च ग्रहणे चैव कुर्युर्यत्नं महाबलाः ॥२३॥
तं मां शाखाःप्रशाखाश्च स्कन्धांश्चोत्तमशाखिनाम् । दृष्ट्वा च परिधावन्तं भवेयुः परिशङ्किताः ॥२४॥

देखनेके लिए उत्कण्ठित रामचन्द्रको आश्वासन देना आवश्यक है, उसी प्रकार सीताको भी आश्वासित करना चाहिए ॥ १० ॥ राक्षसियोंके सामने मेरा बात करना हानिकर होगा, अतएव अपने कर्तव्यका पालन करना हमारे लिए कठिन बात है । यदि रात रहते ही रहते सीताको न समझाऊँ तो इसमें सन्देह नहीं कि वे प्राण त्याग कर देंगी ॥ ११ ॥ १२ ॥ यदि राम मुझसे पूछेंगे कि सीता कहाँ है तो सीतासे बातचीत किए बिना मैं उनको क्या उत्तर दूंगा ॥१३॥ सीताका सन्देश बिना लिए यदि मैं शीघ्रतापूर्वक यहाँसे लौट जाऊँ तो क्रोधसे तीव्र आँखोंके द्वारा वे मुझे जला देंगे ॥ १४ ॥ अथवा यदि रामचन्द्रके लिए अपने स्वामी सुग्रीवको उद्योग करनेके लिए तय्यार करूँ तो सेनाके सहित उनका यहाँ आना व्यर्थ होगा; क्योंकि तब तक सीता मर चुकी रहेंगी ॥ १५ ॥ राक्षसियोंके बीचमें आकर जब उनका मन दूसरी ओर लगे तो अधिक सन्ताप-पीड़ित सीताको मैं शनैः शनैः समझाऊंगा ॥ १६ ॥ मैं बहुत छोटा हूँ, विशेष कर वानर, मनुष्योंके समान संस्कृत वचन बोलूँगा ॥१७॥ यदि मैं ब्राह्मणोंके समान संस्कृत बोलूं तो सीता मुझे रावण समझकर डर जायगी ॥ १८ ॥ अवश्य ही मुझे अर्थयुक्त मनुष्य भाषाका व्यवहार करना चाहिए । इसी प्रकार मैं अनिन्दित सीताको समझा सकूंगा ॥ १९ ॥ यह सीता मेरा रूप देखकर और वचन सुनकर राक्षसोंसे डरी हुई पुनः एक बार डर जायगी ॥ २० ॥ डरकर मनस्विनी सीता मुझको कामरूपी रावण समझकर चिल्लाने लगेगी ॥ २१ ॥ सीताके चिल्लानेपर शीघ्रही अनेक अस्त्र शस्त्र लेकर भयंकर राक्षसियाँ वहाँ उपस्थित हो जायँगी ॥२२॥ विकृतमुखी महाबली राक्षसियाँ मुझे चारों ओर ढूंढ कर पकड़ने और मारनेका प्रयत्न करेंगी ॥२३॥ वृक्षोंकी शाखा प्रशाखाओं और स्कन्धों पर मुझे दौड़ते देखकर उनके मनमें सन्देह

मम रूपं च संप्रेक्ष्य वने विचरतो महत् । राक्षस्यो भयवित्रस्ता भवेयुर्विकृतस्वराः ॥२५॥
ततः कुर्युः समाह्वानं राक्षस्यो रक्षसामपि । राक्षसेन्द्रनियुक्तानां राक्षसेन्द्रनिवेशने ॥२६॥
ते शूलशरनिस्त्रिंशविविधायुधपाणयः । आपतेयुर्विमर्देऽस्मिन्वेगेनोद्वेगकारणात् ॥२७॥
संरुद्धस्तैस्तु परितो विधमे राक्षसं बलम् । शक्नुयां न तु संप्राप्तुं परं पारं महोदधेः ॥२८॥
मां वा गृह्णीयुरावृत्य बहवः शीघ्रकारिणः । स्यादियं चागृहीतार्था मम च ग्रहणं भवेत् ॥२९॥
हिंसाभिरुचयो हिंस्युरिमां वा जनकात्मजाम् । विपन्नं स्यात्ततः कार्यं रामसुग्रीवयोरिदम् ॥३०॥
उद्देशे नष्टमार्गेऽस्मिन्राक्षसैः परिवारिते । सागरेण परिक्षिप्ते गुप्ते वसति जानकी ॥३१॥
विशस्ते वा गृहीते वा रक्षोभिर्मयि संयुगे । नान्यं पश्यामि रामस्य सहायं कार्यसाधने ॥३२॥
विमृशंश्च न पश्यामि यो हते मयि वानरः । शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत महोदधिम् ॥३३॥
कामं हन्तुं समर्थोऽस्मि सहस्राण्यपि रक्षसाम् । न तु शक्ष्याम्यहं प्राप्तुं परं पारं महोदधेः ॥३४॥
असत्यानि च युद्धानि संशयो मे न रोचते । कश्च निःसंशयं कार्यं कुर्यात्प्राज्ञः ससंशयम् ॥३५॥
एष दोषो महान्हि स्यान्मम सीताभिभाषणे । प्राणत्यागश्च वैदेह्या भवेदनभिभाषणे ॥३६॥
भूताश्चार्था विरुध्यन्ति देशकालविरोधिताः । विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥३७॥
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते । घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥३८॥

उत्पन्न हो जायगा ॥ २४ ॥ मुझ वनमें घूमनेवालेका विशाल रूप देखकर राक्षसियाँ भयभीत हो जायँगी और चीखने चिल्लाने लगेंगी ॥ २५ ॥ तब रावणके घरके रक्षकों और रावणके द्वारा नियुक्त राक्षसोंको वे बुलायेंगी ॥ २६ ॥ वे राक्षस उद्विग्न होकर और शूल, शर, तलवार तथा अन्य अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर इस हलचलमें आ जायँगे ॥ २७ ॥ वे राक्षस यदि मुझे घेर लेंगे, तो मैं उनका नाश कर सकता हूँ; पर समुद्रके उस पार नहीं जा सकता ॥ २८ ॥ यदि वे राक्षस घेर कर शीघ्रतापूर्वक मुझे पकड़ लें तो सीताका मनोरथ पूरा न होगा और मैं पकड़ लिया जाऊंगा ॥ २९ ॥ हिंसासे प्रेम रखनेवाले राक्षस शायद जानकी को मार डालें । इस प्रकार राम और सुग्रीवका कार्यही नष्ट हो जायगा ॥ ३० ॥ दूसरोंके द्वारा अपरिज्ञात, गुप्त, समुद्र और राक्षसोंसे घिरे हुए इस स्थानपर जानकी रहती है ॥ ३१ ॥ युद्धमें यदि राक्षस मुझे मार दें या पकड़ लें तो रामचन्द्रके कार्य-साधनमें मैं कोई दूसरा सहायक नहीं देखता ॥३२॥ विचारने पर भी मैं किसी ऐसे वानरको नहीं देखता जो सौ योजन लम्बे समुद्रको लांघ जाय ॥३३॥ हजारों राक्षसोंको मैं मार सकता हूं, पर समुद्रके उस पार नहीं जा सकता ॥ ३४ ॥ युद्ध अनिश्चयात्मक होते हैं, कौन जीतेगा कौन हारेगा इसका पता नहीं रहता है और संदिग्ध कार्य मुझे पसन्द नहीं । कौन बुद्धिमान् संशयहीन कार्यको छोड़कर संशययुक्त कार्यको करेगा ॥ ३५ ॥ सीतासे बातचीत करनेमें मुझे यही बुराई दीख पड़ती है, पर बातचीत न करनेसे सीताका प्राण त्याग करना भी निश्चित है ॥ ३६ ॥ सिद्धप्राय कार्य भी दूतकी लापरवाहीके कारण देश कालसे विरुद्ध होकर उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्योदयके समय अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ ३७ ॥ स्वामीके द्वारा कर्तव्याकर्तव्यके निश्चित होनेपर भी अपनी बुद्धिमत्ताका अहंकार रखनेवाले

न विनश्येत्कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं मम । लंघनं च समुद्रस्य कथं नु न वृथा भवेत् ॥३९॥
कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत च । इति संचिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान्मतिम् ॥४०॥
राममक्लिष्टकर्माणं स्वबन्धुमनुकीर्तयन् । नैनामुद्वेजयिष्यामि तद्बन्धुगतचेतनाम् ॥४१॥
इक्ष्वाकूणां वरिष्ठस्य रामस्य विदितात्मनः । शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन् ॥४२॥
श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन्गिरम् । श्रद्धास्यति यथा भीता तथा सर्वं समादधे ॥४३॥

इति स बहुविधं महाप्रभावो जगतिपतेः प्रमदामवेक्षमाणः ।
मधुरमवितथं जगाद वाक्यं द्रुमविटपान्तरमास्थितो हनुमान् ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१

एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महामतिः । संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह ॥ १ ॥
राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् । पुण्यशीलो महाकीर्तिरिक्ष्वाकूणां महायशाः ॥ २ ॥
अहिंसारतिरक्षुद्रो घृणी सत्यपराक्रमः । मुख्यस्येक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मिवर्धनः ॥ ३ ॥
पार्थिवव्यञ्जनैर्युक्तः पृथुश्रीः पार्थिवर्षभः । पृथिव्यां चतुरन्तायां विश्रुतः सुखदः सुखी ॥ ४ ॥

दूत कार्योंको नष्ट कर देते हैं ॥ ३८ ॥ कार्यका नाश क्यों न हो जायगा, मेरी असावधानी क्यों न सिद्ध होगी और समुद्रका पार करना किस प्रकार व्यर्थ न होगा ॥ ३९ ॥ किस प्रकार यह मेरे वचन सुनेगी और उद्विग्न न होगी, इस प्रकार विचार कर बुद्धिमान् हनुमानने समयानुकूल कर्तव्य निश्चित किया ॥४०॥ रामचन्द्रके लिए प्राण देनेवाली सीताके सामने उत्तम काम करनेवाले रामके गुणोंका कीर्तन करके मैं इसे उद्विग्न न बनाऊंगा ॥४१॥ अपने पराक्रम जाननेवाले इक्ष्वाकु-श्रेष्ठ रामचन्द्रके धर्मयुक्त सुन्दर वचन सुनकर मधुरवाणीके द्वारा उनके सब सन्देश सुनाऊंगा, जिससे सीता मुझपर विश्वास करे । इस प्रकार हनुमानने सब कर्तव्य निश्चित किए ॥ ४२॥४३ ॥ इस प्रकार वृक्षकी शाखामें छिपकर पृथिवीपति रामचन्द्रकी भार्याको देखते हुए महाप्रभावशाली हनुमान मधुर और सत्य वचन बोले ॥ ४४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३०॥

इसतरह बहुत विचार करके महामति हनुमान सीताके पास जाकर इस प्रकार मधुर वचन बोले जिसमें सीता सुनसकें ॥१॥ पुण्यात्मा कीर्तिमान् यशस्वी इक्ष्वाकुवंशमें राजा दशरथ थे। उनके पास रथ हाथी और घोड़े थे ॥ २ ॥ वे अहिंसासे प्रेम रखनेवाले, नीचोंका साथ न करनेवाले, दयावान्, सत्यपराक्रमी और श्रेष्ठ इक्ष्वाकुवंशके लक्ष्मी बढ़ानेवाले थे ॥ ३ ॥ वे राजचिन्होंसे

तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः । रामो नाम विशेषज्ञः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ५ ॥
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता । रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परंतपः ॥ ६ ॥
तस्य सत्याभिसंधस्य वृद्धस्य वचनात्पितुः । सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्रजितो वनम् ॥ ७ ॥
तेन तत्र महारण्ये मृगयां परिधावता । राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः ॥ ८ ॥
जनस्थानवधं श्रुत्वा निहतौ खरदूषणौ । ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु ॥ ९ ॥
वञ्चयित्वा वने रामं मृगरूपेण मायया । स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीतामनिन्दिताम् ॥१०॥
आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम् । ततः स वालिनं हत्वा रामः परपुरंजयः ॥११॥
आयच्छत्कपिराज्यं तु सुग्रीवाय महात्मने । सुग्रीवेणाभिसंदिष्टा हरयः कामरूपिणः ॥१२॥
दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्तः सहस्रशः । अहं संपातिवचनाच्छतयोजनमायतम् ॥१३॥
तस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः समुद्रं वेगवान्प्लुतः । यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मवतीं च ताम् ॥१४॥
अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया । विरराम‌ैवमुक्त्वा स वाचं वानरपुंगवः ॥१५॥
जानकी चापि तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं गता । ततः सा वक्रकेशान्ता सुकेशी केशसंवृतम् ।
उन्नम्य वदनं भीरुः शिंशपामन्ववैक्षत । ॥१६॥

निशम्य सीता वचनं कपेश्च दिशश्च सर्वाः प्रदिशश्च वीक्ष्य ।
स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती ॥ १७ ॥

युक्त श्रेष्ठ राजा थे, उनकी बड़ी शोभा थी, वे दूसरोंको सुख देनेवाले और स्वयं सुखी थे और समुद्र-पर्यन्त पृथिवीमें प्रसिद्ध थे ॥ ४ ॥ उनके ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र हैं, उनका मुख चन्द्रमाके समान है, वे सब धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ विशेषज्ञ तथा पिताके प्रिय हैं ॥ ५ ॥ वे अपने चरित्र, स्वजन, सब प्राणी तथा धर्मके रक्षक हैं ॥ ६ ॥ सत्यप्रतिज्ञ वृद्ध पिताके वचनसे वे भाई और स्त्रीके साथ वनमें चले आये ॥ ७ ॥ मृगयाके लिए घोर वनमें भ्रमण करते हुए उन्होंने अनेक राक्षस मारे ॥ ८ ॥ खरदूषणका मारा जाना तथा जनस्थानका विध्वंस सुनकर रावणने इसी बैरसे जानकीका हरण किया ॥ ९ ॥ कपटमृग बनकर उसने रामचन्द्रको धोखा दिया, अनिन्दित सीतादेवीको ढूंढते हुए रामने वनमें सुग्रीव नामक वानरको मित्र बनाया, अनन्तर शत्रुनगर जीतनेवाले रामने वालिको मारकर महात्मा सुग्रीवको वानरराज्य देदिया । अनेक रूप धारण करनेवाले वानर सुग्रीवकी आज्ञा पाकर हजारोंकी संख्याओंमें उस देवीको सब दिशाओंमें ढूँढ़ने लगे । सम्पातिके कहनेसे उस विशालाक्षीके लिए मैंने सौ योजन चौड़े समुद्रको पार किया । जैसा रूप जैसा वर्ण और जैसी शोभा मैंने रामचन्द्रके मुँहसे सीताकी सुनी है, उन्हें मैंने पा लिया । ऐसा कहकर वानरश्रेष्ठ हनुमान चुप हो गये ॥ १०-११-१२-१३-१४-१५ ॥ ये बातें सुनकर जानकीको बड़ा विस्मय हुआ, घुंघुराले और सुन्दर बालोंवाली सीताने केशोंसे ढंका मुँह ऊपरको उठाकर शिंशपा वृक्षकी ओर देखा ॥१६॥ वानरके वचन सुनकर तथा दिशाएँ और उपदिशाएँ देखकर सब ओरसे चित्त हटाकर केवल रामका

सा तिर्यगूर्ध्वं च तथा ह्यधस्तान्निरीक्षमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम् ।
ददर्श पिङ्गाधिपतेरमात्यं वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम् ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२

ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चलितमानसा । वेष्टितार्जुनवस्त्रं तं विद्युत्संघातपिङ्गलम् ॥ १ ॥
सा ददर्श कपिं तत्र प्रश्रितं प्रियवादिनम् । फुल्लाशोकोत्कराभासं तप्तचामीकरेक्षणम् ॥ २ ॥
साथ दृष्ट्वा हरिश्रेष्ठं विनीतवदवस्थितम् । मैथिली चिन्तयामास विस्मयं परमं गता ॥ ३ ॥
अहो भीममिदं सत्त्वं वानरस्य दुरासदम् । दुर्निरीक्ष्यमिदं मत्वा पुनरेव मुमोह सा ॥ ४ ॥
विललाप भृशं सीता करुणं भयमोहिता । रामरामेति दुःखार्ता लक्ष्मणेति च भामिनी ॥ ५ ॥
रुरोद सहसा सीता मन्दमन्दस्वरा सती । साथ दृष्ट्वा हरिवरं विनीतवदुपागतम् ।
मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति भामिनी । ॥ ६ ॥

सा वीक्षमाणा पृथुभग्नवक्त्रं शाखामृगेन्द्रस्य यथोक्तकारम् ।
ददर्श पिङ्गप्रवरं महार्हं वातात्मजं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ॥ ७ ॥
सा तं समीक्ष्यैव भृशं विपन्ना गतासुकल्पेव बभूव सीता ।
चिरेण संज्ञां प्रतिलभ्य चैवं विचिन्तयामास विशालनेत्रा ॥ ८ ॥

स्मरण करती हुई सीता नितान्त प्रसन्न हुईं ॥ १७ ॥ सामने ऊपर तथा नीचे देखती हुई सीताने सुग्रीवके सचिव अचिन्त्यबुद्धि वायुपुत्र हनुमानको उदयाचलपर स्थित सूर्यके समान देखा ॥१८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका एकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३१॥

अनन्तर शाखाओंमें छिपे हुए हनुमानको देखकर सीताका मन कुछ चंचल हुआ । पुनः सीताने विद्युद्राशिके समान पीले, लाल वस्त्र धारण किए हुए, विनत, प्रियवादी, प्रफुल्ल अशोकके समान सुशोभित होनेवाले, उज्ज्वल सुवर्णके समान आँखवाले, वानरको वहाँ देखा ॥ १ ॥ २ ॥ विनीतके समान बैठे हुए वानरश्रेष्ठ हनुमानको देखकर सीता बहुत विस्मित हुईं और वे सोचने लगीं ॥ ३ ॥ वानरका यह शरीर बड़ा भयानक है । राक्षसोंके लिए भी भयानक है । वे इसे पकड़ भी नहीं सकते । इसकी ओर देखना भी कठिन है । यह सोचकर सीता विमूढ़सी हो गयीं ॥ ४ ॥ भयभीत होकर सीता दुःखके साथ विलाप करने लगीं । राम-राम, लक्ष्मण-लक्ष्मण कहकर दुःखिनी सीता सहसा धीरे-धीरे रोने लगीं । सहसा विनीतके समान सामने आये हुए कपिवरको देखकर जानकी सोचने लगीं कि यह स्वप्न तो नहीं है ॥ ५ ॥ ६ ॥ सुग्रीवके दूत, कपियोंमें श्रेष्ठ, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, वक्र एवं विशाल मुखवाले वायुके योग्य पुत्र हनुमानको सीताने देखा ॥ ७ ॥ उनको देखते ही सीता बहुत दुःखिनी होकर मृतकके समान हो गईं ।

स्वप्नो मयायं विकृतोऽद्य दृष्टः शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः ।
स्वस्त्यस्तु रामाय सलक्ष्मणाय तथा पितुर्मे जनकस्य राज्ञः ॥ ९ ॥
स्वप्नो हि नायं नहि मेऽस्ति निद्रा शोकेन दुःखेन च पीडितायाः ।
सुखं हि मे नास्ति यतो विहीना तेनेन्दुपूर्णप्रतिमाननेन ॥ १० ॥
रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या विचिन्त्य वाचा ब्रुवती तमेव ।
तस्यानुरूपं च कथां तदर्थामेवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि ॥ ११ ॥
अहं हि तस्याद्य मनोभवेन संपीडिता तद्गतसर्वभावा ।
विचिन्तयन्ती सततं तमेव तथैव पश्यामि तथा शृणोमि ॥ १२ ॥
मनोरथः स्यादिति चिन्तयामि तथापि बुद्ध्यापि वितर्कयामि ।
किं कारणं तस्य हि नास्ति रूपं सुव्यक्तरूपश्च वदत्ययं माम् ॥ १३ ॥
नमोऽस्तु वाचस्पतये सवज्रिणे स्वयंभुवे चैव हुताशनाय ।
अनेन चोक्तं यदिदं ममाग्रतो वनौकसा तच्च तथास्तु नान्यथा ॥ १४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

देरके बाद होशमें आकर विशालनेत्रा सीता इस प्रकार सोचने लगीं ॥ ८ ॥ मैंने आज यह बुरा स्वप्न देखा । वानरका सपनेमें शास्त्रोंमें देखना निन्दित बतलाया गया है । लक्ष्मण सहित रामका कल्याण हो, तथा मेरे पिता राजा जनकका कल्याण हो ॥ ९ ॥ शोक और दुःखसे पीड़ित मुझे तो निद्रा ही नहीं आती । पूर्ण चन्द्रानन रामचन्द्रसे अलग होनेके कारण मुझे सुखही कौनसा है, जिससे नींद आवे ॥ १० ॥ मैं राम हीको सदा अपने मनमें सोचा करती हूँ, मुंहसे केवल राम राम कहा करती हूँ, इसीसे अपने विचारोंके अनुरूप यह वचन सुन रही हूँ तथा देख रही हूँ ॥ ११ ॥ मैं सर्वात्मना रामचन्द्रकी हूँ । अतएव मानसिक अभिलाषाओंके द्वारा मैं पीड़ित हो रही हूँ । सदा रामचन्द्रके संबन्धकी बातें सोचनेसे मैं ऐसा देख और सुन रही हूँ ॥ १२ ॥ यह मनोरथ ही हो सकता है, ऐसा सोचती हूँ । फिर भी बुद्धिके द्वारा तर्क उपस्थित होता है कि मनोरथ तो बोलता नहीं और न उसका रूपही होता है । इसका रूप तो स्पष्ट दीख पड़ता है और यह बोलता भी है ॥ १३ ॥ इन्द्रके साथ बृहस्पतिको नमस्कार । स्वयंभू ब्रह्माको नमस्कार तथा अग्निको नमस्कार । इस वानरने मेरे सामने जो कहा है वह सत्य हो, झूठा नहीं ॥ १४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३

सोऽवतीर्य द्रुमात्तस्माद्विद्रुमप्रतिमाननः । विनीतवेषः कृपणः प्रणिपत्योपसृत्य च ॥ १ ॥
तामब्रवीन्महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः । शिरस्यञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा ॥ २ ॥
का नु पद्मपलाशाक्षि क्लिष्टकौशेयवासिनि । द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिता ॥ ३ ॥
किमर्थं तव नेत्राभ्यां वारि स्रवति शोकजम् । पुण्डरीकपलाशाभ्यां विप्रकीर्णमिवोदकम् ॥ ४ ॥
सुराणामसुराणां च नागगन्धर्वरक्षसाम् । यक्षाणां किंनराणां च का त्वं भवसि शोभने ॥ ५ ॥
का त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां वा वरानने । वसूनां वा वरारोहे देवता प्रतिभासि मे ॥ ६ ॥
किं नु चन्द्रमसा हीना पतिता विबुधालयात् । रोहिणी ज्योतिषां श्रेष्ठा श्रेष्ठा सर्वगुणाधिका ॥ ७ ॥
कोपाद्वा यदि वा मोहाद्भर्तारमसितेक्षणे । वसिष्ठं कोपयित्वा त्वं नासि कल्याण्यरुन्धती ॥ ८ ॥
को नु पुत्रः पिता भ्राता भर्ता वा ते सुमध्यमे । अस्माल्लोकादमुं लोकं गतं त्वमनुशोचसि ॥ ९ ॥
रोदनादतिनिःश्वासाद्भूमिसंस्पर्शनादपि । न त्वां देवीमहं मन्ये राज्ञः संज्ञावधारणात् ॥ १० ॥
व्यञ्जनानि हि ते यानि लक्षणानि च लक्षये । महिषी भूमिपालस्य राजकन्या च मे मता ॥ ११ ॥
रावणेन जनस्थानाद्बलात्प्रमथिता यदि । सीता त्वमसि भद्रं ते तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ १२ ॥
यथा हि तव वै दैन्यं रूपं चाप्यतिमानुषम् । तपसा चान्वितो वेषस्त्वं राममहिषी ध्रुवम् ॥ १३ ॥

विद्रुम-समान मुखवाले, नम्रवेषधारी, सीताकी दशासे दीन, महातेजस्वी वायुपुत्र हनुमान वृक्षकी शाखासे सीताके पास उतरकर प्रणाम कर माथेपर अंजलि रखकर मधुरवाणी बोले ॥ १ ॥ २ ॥ हे कमलपत्राक्षि, मलिन कौशेय-वस्त्र-धारिणी, तुम कौन हो ? वृक्षकी शाखाके सहारे खड़ी हुई अनिन्दित तुम कौन हो ? ॥ ३ ॥ कमलपत्रके समान तुम्हारी आँखोंसे शोकके आँसू क्यों गिरते हैं ? फूटे हुए घड़ेसे जिस प्रकार जल निकलता है, उसी प्रकार तुम्हारी आँखोंसे जल क्यों निकल रहा है ? ॥ ४ ॥ देवता, असुर, नाग, गंधर्व, राक्षस, यक्ष, किन्नर—इनमें किसकी तुम हो ? ॥ ५ ॥ (एकादश) रुद्रोंमें, (उनचास) मरुओंमें और (आठ) वसुओंमें किनकी तुम हो ? हे सुन्दरी, मुझे तुम कोई देवता मालूम पड़ती हो ? ॥ ६ ॥ अथवा, तुम चन्द्रमासे वियुक्त होकर, नक्षत्रोंमें श्रेष्ठ गुणोंके कारण सबसे अधिक, स्वर्गसे गिरी रोहिणी हो ? ॥ ७ ॥ या कोप अथवा मोहसे पति वसिष्ठको नाराज करके यहाँ आयी हुई कल्याणी तुम अरुन्धती हो ? ॥ ८ ॥ हे सुमध्यमे, कौन तुम्हारा पति है, पुत्र है, पिता अथवा भाई है जो इस लोकसे परलोकको चला गया है और जिसकी तुम चिन्ता कर रही हो ? ॥ ९ ॥ रोनेके, कारण श्वास लेनेके कारण और पृथिवी स्पर्श करनेके कारण और राजचिन्होंसे युक्त होनेके कारण मैं तुम्हें देवांगना नहीं समझता ॥ १० ॥ जो तुम्हारे चिह्न हैं, जो शरीरके लक्षण हैं, उनसे मालूम पड़ता है कि तुम किसी राजाकी महारानी हो, या किसी राजाकी कन्या हो ॥ ११ ॥ जनस्थानसे रावणने बलपूर्वक जिसको हरण किया है, वह सीता यदि तुम हो तो मैं जो पूछ रहा हूँ उसका उत्तर दो ॥ १२ ॥ जैसी यह तुम्हारी दीनता है, जैसा अलौकिक रूप है और तपस्वियोंकासा जैसा यह वेष है, उससे

सा तस्य वचनं श्रुत्वा रामकीर्तनहर्षिता । उवाच वाक्यं वैदेही हनूमन्तं द्रुमाश्रितम् ॥१४॥
पृथिव्यां राजसिंहानां मुख्यस्य विदितात्मनः। स्नुषा दशरथस्याहं शत्रुसैन्यप्रणाशिनः ॥१५॥
दुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मनः । सीतेति नाम्ना चोक्ताहं भार्या रामस्य धीमतः ॥१६॥
समा द्वादश तत्राहं राघवस्य निवेशने । भुञ्जाना मानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ॥१७॥
ततस्त्रयोदशे वर्षे राज्ये चेक्ष्वाकुनन्दनम् । अभिषेचयितुं राजा सोपाध्यायः प्रचक्रमे ॥१८॥
तस्मिन्संभ्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने । कैकेयी नाम भर्तारमिदं वचनमब्रवीत् ॥१९॥
न पिबेयं न खादेयं प्रत्यहं मम भोजनम् । एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते ॥२०॥
यत्तदुक्तं त्वया वाक्यं प्रीत्या नृपतिसत्तम । तच्चेन्न वितथं कार्यं वनं गच्छतु राघवः ॥२१॥
स राजा सत्यवाग्देव्या वरदानमनुस्मरन् । मुमोह वचनं श्रुत्वा कैकेय्याः क्रूरमप्रियम् ॥२२॥
ततस्तं स्थविरो राजा सत्यधर्मे व्यवस्थितः । ज्येष्ठं यशस्विनं पुत्रं रुदन्राज्यमयाचत ॥२३॥
स पितुर्वचनं श्रीमानभिषेकात्परं प्रियम् । मनसा पूर्वमासाद्य वाचा प्रतिगृहीतवान् ॥२४॥
दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात्सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् । अपि जीवितहेतोर्हि रामः सत्यपराक्रमः ॥२५॥
स विहायोत्तरीयाणि महार्हाणि महायशाः । विसृज्य मनसा राज्यं जनन्यै मां समादिशत् ॥२६॥
साहं तस्याग्रतस्तूर्णं प्रस्थिता वनचारिणी । नहि मे तेन हीनाया वासः स्वर्गेऽपि रोचते ॥२७॥

मालूम पड़ता है कि अवश्य ही तुम रामकी महारानी हो ॥ १३ ॥ उसके वचन सुनकर रामके कीर्तनसे प्रसन्न जानकी पेड़पर बैठे हुए हनुमानसे बोलीं ॥१४॥ पृथिवीके श्रेष्ठ राजाओंमें मुख्य, आत्मज्ञानी, शत्रुओंकी सेनाको नष्ट करनेवाले महाराज दशरथकी मैं पुत्रवधू हूँ ॥ १५ ॥ महात्मा विदेह जनकराजकी मैं कन्या हूं । मेरा सीता नाम है । और बुद्धिमान् रामचन्द्रकी मैं स्त्री हूँ ॥ १६ ॥ बारह वर्ष तक रामचन्द्रके घरमें मनुष्यप्राप्य सब भोगोंको भोगती रही और सब मनोरथोंकी पूर्तिसे प्रसन्न रही ॥ १७ ॥ तेरहवें वर्षमें इक्ष्वाकुप्रवर रामचन्द्रका अभिषेक करनेके लिए पुरोहितके साथ राजा तय्यार हुए । जब रामचन्द्रके अभिषेककी तय्यारी हो रही थी उस समय कैकेयी पतिसे बोली ॥ १८ ॥ यदि रामचन्द्रका अभिषेक हुआ तो न मैं जल ग्रहण करूँगी और न रोजका अपना भोजन ही करूँगी, और यही मेरे जीवनका अन्त हो जायगा ॥ २० ॥ राजश्रेष्ठ, आपने प्रेमपूर्वक जो वचन कहे हैं, वे असत्य होने न पावें । रामचन्द्र वनको जायँ ॥ २१ ॥ सत्यवादी राजा दशरथ कैकेयीको दिए हुए वरोंका स्मरण करते हुए कैकेयीके कठोर वचन सुनकर मोहित (बेहोश) होगये ॥ २२ ॥ सत्यधर्ममें स्थित बूढ़े राजा दशरथने यशस्वी जेठे पुत्र रामचन्द्रसे राज्य माँगा अर्थात् राज्य ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा करायी ॥ २३ ॥ रामचन्द्रने अभिषेकसे भी अधिक प्रिय पिताके कहनेसे वनवासको पहले मनसे स्वीकार किया था, पुनः वचनके द्वारा स्वीकार किया ॥ २४ ॥ सत्यपराक्रमी रामचन्द्र जो दे देते हैं वह प्राणों पर आ बनने पर भी पुनः ग्रहण नहीं करते । उन्होंने मूल्यवान् चादर उतार दिये, मनही मन राज्य छोड़ दिया और मुझे अपनी माताको सौंपा ॥ २५-२६ ॥ पर, मैं शीघ्रही उनके आगे आगयी और वनके लिए प्रस्थित होगयी, क्योंकि उनके बिना स्वर्गमें भी

प्रागेव तु महाभागः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः । पूर्वजस्यानुयात्रार्थे कुशचीरैरलंकृतः ॥२८॥
ते वयं भर्तुरादेशं बहुमान्य दृढव्रताः । प्रविष्टाः स्म पुरादृष्टं वनं गम्भीरदर्शनम् ॥२९॥
वसतो दण्डकारण्ये तस्याहममितौजसः । रक्षसापहृता भार्या रावणेन दुरात्मना ॥३०॥
द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः । ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम् ३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्हरिपुंगवः । दुःखाद्दुःखाभिभूतायाः सान्त्वमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥
अहं रामस्य संदेशाद्देवि दूतस्तवागतः । वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥ २ ॥
यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः । स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत् ॥ ३ ॥
लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः । कृतवाञ्छोकसंतप्तः शिरसा तेऽभिवादनम् ॥ ४ ॥
सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः । प्रतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ५ ॥
कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा । एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ ६ ॥
तयोः समागमे तस्मिन्प्रीतिरुत्पादिताद्भुता । परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः ॥ ७ ॥

रहना मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ २७ ॥ मित्रोंको प्रसन्न रखनेवाले सुमित्राके पुत्र महाभाग लक्ष्मण, बड़े भाईके साथ जानेके लिए पहलेसे ही कुश तथा वल्कल धारण किये हुए थे ॥ २८ ॥ यों हम तीनोंने स्वामीकी आज्ञाको मानकर, दृढ़ताके साथ, उस वनमें प्रवेश किया, जो पहलेका देखा हुआ नहीं था और जो देखनेमें प्रवेश करने योग्य नहीं मालूम पड़ता था ॥२९॥ दण्डकारण्यमें रहनेके समय अतुल पराक्रमी रामचन्द्रकी स्त्री मुझे दुरात्मा राक्षस रावणने हर लिया ॥ ३० ॥ दो मास तक मुझे दयाकर उसने जीने दिया । इन दो महीनोंके बाद मैं प्राणत्याग करूँगी ॥ ३१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका तैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३३ ॥

दुःखोंसे दुःखिनी सीताके वे वचन सुनकर वानरश्रेष्ठ हनुमान् नम्र उत्तर बोले ॥ १ ॥ देवि, रामकी आज्ञासे मैं तुम्हारे पास दूत बनकर आया हूं । देवि, राम कुशलसे हैं और तुमको अपनी कुशल उन्होंने कहवायी है और तुम्हारी कुशल पूछी है ॥ २ ॥ जो वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ दशरथ-पुत्र रामचन्द्र ब्रह्मास्त्र तथा वेदोंको जानते हैं, उन्होंने तुम्हारी कुशल पूछी है ॥ ३ ॥ तुम्हारे पतिके सेवक महातेजस्वी लक्ष्मणने शोकसन्तप्त होकर और सिर झुकाकर तुम्हें प्रणाम कहा है ॥ ४ ॥ नरश्रेष्ठ राम और लक्ष्मणकी कुशल सुनकर सीता प्रसन्न हुईं । उनका सर्वाङ्ग रोमाञ्चित होगया और वे हनुमान्से बोलीं ॥ ५ ॥ "जीते हुए मनुष्योंको सौ वर्षोंके बाद भी आनन्द प्राप्त होता है" यह लौकिकी गाथा सत्यही मालूम पड़ती है ॥ ६ ॥ सीता-हनुमान्के मिलापमें सीताका हनुमान् पर अद्भुत स्नेह उत्पन्न हुआ और वे दोनों विश्वासपूर्वक परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥ ७ ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः । सीतायाः शोकतप्तायाः समीपमुपचक्रमे ॥ ८ ॥
यथा यथा समीपं स हनूमानुपसर्पति । तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते ॥ ९ ॥
अहो धिग्धिक्कृतमिदं कथितं हि यदस्य मे । रूपान्तरमुपागम्य स एवायं हि रावणः ॥१०॥
तामशोकस्य शाखां तु विमुक्त्वा शोककर्शिता । तस्यामेवानवद्याङ्गी धरण्यां समुपाविशत् ॥११॥
अवन्दत महाबाहुस्ततस्तां जनकात्मजाम् । सा चैनं भयसंत्रस्ता भूयो नैनमुदैक्षत ॥१२॥
तं दृष्ट्वा वन्दमानं च सीता शशिनिभानना । अब्रवीद्दीर्घमुच्छ्वस्य वानरं मधुरस्वरा ॥१३॥
मायां प्रविष्टो मायावी यदि त्वं रावणः स्वयम् । उत्पादयसि मे भूयः संतापं तन्न शोभनम् ॥१४॥
स्वं परित्यज्य रूपं यः परिव्राजकरूपवान् । जनस्थाने मया दृष्टस्त्वं स एव हि रावणः ॥१५॥
उपवासकृशां दीनां कामरूप निशाचर । संतापयसि मां भूयः संतापं तन्न शोभनम् ॥१६॥
अथवा नैतदेवं हि यन्मया परिशङ्कितम् । मनसो हि मम प्रीतिरुत्पन्ना तव दर्शनात् ॥१७॥
यदि रामस्य दूतस्त्वमागतो भद्रमस्तु ते । पृच्छामि त्वां हरिश्रेष्ठ प्रिया रामकथा हि मे ॥१८॥
गुणान्रामस्य कथय प्रियस्य मम वानर । चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः ॥१९॥
अहो स्वप्नस्य सुखता याहमेव चिराहृता । प्रेषितं नाम पश्यामि राघवेण वनौकसम् ॥२०॥
स्वप्नेऽपि यद्यहं वीरं राघवं सहलक्ष्मणम् । पश्येयं नावसीदेयं स्वप्नोऽपि मम मत्सरी ॥२१॥

शोकतप्त उन सीताके वचन सुनकर हनुमान् उनके और पास गये ॥ ८ ॥ हनुमान् ज्यों ज्यों सीताके पास जाते थे, त्यों त्यों उनपर रावण होनेका सीताका सन्देह बढ़ता जाता था ॥ ९ ॥ दूसरा रूप धारण किए हुए यदि यह वही रावण है तो इसने जो कुछ मुझसे कहा है, वह धिक्कारके योग्य है ॥ १० ॥ शोककृश सीता उस अशोक वृक्षकी शाखा छोड़कर वहीं पृथिवी पर बैठ गयीं ॥ ११ ॥ अनन्तर महाबाहु हनुमान्ने सीताको प्रणाम किया; पर भयभीत सीताने इन्हें पुनः नहीं देखा ॥ १२ ॥ उनको प्रणाम करते जानकर चन्द्रमुखी सीता लम्बी साँस लेकर मधुर स्वरमें उस वानरसे बोलीं ॥ १३ ॥ यदि कपटरूप बनाकर तुम स्वयं रावण हो और पुनः मुझे दुख दे रहे हो तो यह अच्छी बात नहीं है ॥ १४ ॥ अपना रूप छोड़कर संन्यासीके रूपमें, जिसको मैंने जनस्थानमें देखा था, तुम वही रावण हो ॥ १५ ॥ मैं उपवासके कारण कृश हूं, दीन हूं । मायावी रावण, तुम जो मुझे पुनः दुःख दे रहे हो यह अच्छा नहीं ॥ १६ ॥ अथवा मेरे मनमें जो यह शंका उत्पन्न हुई है, वह नहीं भी हो सकती, क्योंकि तुमको देखनेसे मेरे मनमें प्रेम उत्पन्न हो रहा है ॥ १७ ॥ यदि तुम रामचन्द्रके दूत होकर मेरे पास आये हो तो तुम्हारा कल्याण हो । वानरश्रेष्ठ, मैं तुमसे रामचन्द्रकी बातें पूछती हूँ ॥ १८ ॥ हे वानर, तुम मेरे प्रिय रामचन्द्रके गुण कहो । सौम्य, तुम मेरे चित्तको हरण कर रहे हो, जिस प्रकार धारा नदीतटका हरण करती है ॥ १९ ॥ स्वप्न बड़ा ही सुखकारी होता है, जो बहुत दिनोंसे हरी हुई मैं रामचन्द्रके द्वारा भेजे हुए वानरको देख रही हूँ ॥ २० ॥ स्वप्नमें भी यदि मैं लक्ष्मणके साथ वीर रामचन्द्रको देखती तो इतना दुःखित न होती; पर स्वप्न भी तो मुझसे रूठ गया है ॥ २१ ॥

नाहं स्वप्नमिमं मन्ये स्वप्ने दृष्ट्वा हि वानरम् । न शक्योऽभ्युदयः प्राप्तुं प्राप्तश्चाभ्युदयो मम ॥२२॥
किं नु स्याच्चित्तमोहोऽयं भवेद्वातगतिस्त्वियम् । उन्मादजो विकारो वा स्यादयं मृगतृष्णिका ॥२३॥
अथवा नायमुन्मादो मोहोऽप्युन्मादलक्षणः । संबुध्ये चाहमात्मानमिमं चापि वनौकसम् ॥२४॥
इत्येवं बहुधा सीता संप्रधार्य बलाबलम् । रक्षसां कामरूपत्वान्मेने तं राक्षसाधिपम् ॥२५॥
एतां बुद्धिं तदा कृत्वा सीता सा तनुमध्यमा । न प्रतिव्याजहाराथ वानरं जनकात्मजा ॥२६॥
सीताया निश्चितं बुद्ध्वा हनूमान्मारुतात्मजः । श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां संप्रहर्षयन् ॥२७॥
आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा । राजा सर्वस्य लोकस्य देवो वैश्रवणो यथा ॥२८॥
विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः । सत्यवादी मधुरवाग्देवो वाचस्पतिर्यथा ॥२९॥
रूपवान्सुभगः श्रीमान्कंदर्प इव मूर्तिमान् । स्थानक्रोधे प्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः ॥३०॥
बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः । अपक्रम्याश्रमपदान्मृगरूपेण राघवम् ॥३१॥
शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि तत्फलम् । अचिराद्रावणं संख्ये यो वधिष्यति वीर्यवान् ॥३२॥
क्रोधप्रमुक्तैरिषुभिर्ज्वलद्भिरिव पावकैः । तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥३३॥
त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत् । लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥३४॥
अभिवाद्य महाबाहुः स त्वां कौशलमब्रवीत् । रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानरः ॥३५॥

मैं इसे स्वप्न नहीं समझती हूं, क्योंकि स्वप्नमें वानर देखकर अभ्युदय नहीं पाया जा सकता और मेरा अभ्युदयकाल समीप आया है ॥२२॥ क्या यह चित्तका भ्रम है या भूत आदिका आवेश है। उन्मादसे उत्पन्न विकार है या मृगतृष्णाके समान प्रत्यक्ष भ्रम है ॥ २३ ॥ अथवा यह उन्माद नहीं है । मोहमें भी उन्मादके लक्षण दीख पड़ते हैं । मैं तो इस वानरको और अपनेको अच्छी तरह समझ रही हूँ ॥ २४ ॥ इस प्रकार संभव असंभवका बहुत विचार करके राक्षसोंकी इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति जानकर सीताने उसे रावण समझा ॥ २५ ॥ इस प्रकार निश्चय करके तनुमध्या जनकपुत्री सीता वानरसे कुछ भी न बोली ॥ २६ ॥ वायुपुत्र हनुमान् सीताका निश्चय समझकर अनुकूल वचनोंके द्वारा उनको प्रसन्न करने लगे ॥ २७ ॥ सूर्यके समान तेजस्वी, चन्द्रमाके समान सर्वप्रिय, कुबेरके समान सब लोकके राजा, महायशस्वी विष्णुके समान पराक्रम-से युक्त, सत्यवादी और बृहस्पतिके समान मधुर वचन बोलनेवाले, सुन्दर रमणीय कामदेवके समान कान्तिमान्, उचित स्थानपर क्रोध करनेवाले और दण्ड देनेवाले, लोकश्रेष्ठ महारथ श्रीरामचन्द्र हैं ॥ २८ ॥ ३० ॥ जिसकी भुज-छायामें सब लोग स्थित हैं, उन रामचन्द्रको मृगरूपसे आश्रमसे दूर हटाकर शून्य आश्रमसे जिसके द्वारा तुम हरी गयी हो, उसका फल तुम शीघ्रही देखोगी । जो पराक्रमी रामचन्द्र जलती हुई अग्निके समान क्रोधसे छोड़े बाणोंसे शीघ्रही युद्धमें रावणको मारेंगे, उन्हींका भेजा हुआ दूत मैं आपके पास आया हूँ ॥ ३१-३३ ॥ तुम्हारे वियोगसे दुःखी होकर रामचन्द्र और सुमित्रानन्दवर्धन महातेजस्वी लक्ष्मणने तुम्हें कुशल-संवाद कहा है ॥ ३४ ॥ रामके मित्र सुग्रीव नामक वानरने प्रणाम करके तुम्हें कुशल सम्वाद कहा है ॥ ३५ ॥

राजा वानरमुख्यानां स त्वां कौशलमब्रवीत् । नित्यं स्मरति ते रामः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ॥३६॥
दिष्ट्या जीवसि वैदेहि राक्षसीवशमागता । नचिराद्द्रक्ष्यसे रामं लक्ष्मणं च महारथम् ॥३७॥
मध्ये वानरकोटीनां सुग्रीवं चामितौजसम् । अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान्नाम वानरः ॥३८॥
प्रविष्टो नगरीं लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् । कृत्वा मूर्ध्नि पदन्यासं रावणस्य दुरात्मनः ॥३९॥
त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम् । नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि ॥
विशङ्का त्यज्यतामेषा श्रद्धस्व वदतो मम ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः ३५

तां तु रामकथां श्रुत्वा वैदेही वानरर्षभात् । उवाच वचनं सान्त्वमिदं मधुरया गिरा ॥ १ ॥
क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम् । वानराणां नराणां च कथमासीत्समागमः ॥ २ ॥
यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च वानर । तानि भूयः समाचक्ष्व न मां शोकः समाविशेत् ॥ ३ ॥
कीदृशं तस्य संस्थानं रूपं तस्य च कीदृशम् । कथमूरू कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शंस मे ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्तु वैदेह्या हनूमान्मारुतात्मजः । ततो रामं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥

वानरोंके राजा सुग्रीवने तुम्हें कुशल कहा है । सुग्रीव और लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र प्रतिदिन तुम्हारा स्मरण करते हैं ॥ ३६ ॥ वैदेहि, राक्षसियोंके अधीन होने पर भी तुम जी रही हो यह प्रसन्नताकी बात है । तुम शीघ्रही महारथ राम और लक्ष्मणको यहाँ देखोगी । अमित तेजस्वी सुग्रीव और उनकी विशाल वानरी सेनाको देखोगी । मैं सुग्रीवका सचिव हनुमान नामक वानर हूं । समुद्र नाँघकर दुरात्मा रावणके माथे पर पैर रखकर इस नगरीमें मैंने प्रवेश किया है ॥३७-३९ ॥ अपने पराक्रमके सहारे तुम्हें देखनेके लिए मैं यहाँ आया हूं । देवि ! मैं वह नहीं हूँ, जिसकी तुम आशंका कर रही हो । यह शंका छोड़ो और मेरी बातों पर विश्वास करो ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुंदरकाण्डका चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३४ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमानसे रामचन्द्रकी बातें सुनकर सीता नम्रतापूर्वक मधुर वाणीसे इस प्रकार बोलीं ॥ १ ॥ तुम्हारा रामचन्द्रसे साथ कहाँ हुआ, तुम लक्ष्मणको कैसे जानते हो, नरों और वानरोंका यह साथ कैसा ? ॥ २ ॥ रामचन्द्रके और लक्ष्मणके जो चिह्न हैं वे पुनः मुझसे कहो, जिससे मेरे मनमें किसी प्रकारका दुःख न रहे अर्थात् मेरी शंका जाती रहे ॥ ३ ॥ उन राम और लक्ष्मणके अङ्ग कैसे हैं, कैसा उनका रूप है, कैसी आँखें हैं, कैसी भुजाएँ हैं । यह सब मुझसे कहो ॥ ४ ॥ वायुपुत्र हनुमान सीताके ऐसा कहनेपर रामचन्द्रका यथावत् वर्णन

जानन्ती बत दिष्ट्या मां वैदेहि परिपृच्छसि । भर्तुः कमलपत्राक्षि संस्थानं लक्ष्मणस्य च ॥ ६ ॥
यानि रामस्य चिन्हानि लक्ष्मणस्य च यानि वै । लक्षितानि विशालाक्षि वदतः शृणु तानि मे ॥ ७ ॥
रामः कमलपत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः । रूपदाक्षिण्यसंपन्नः प्रसूतो जनकात्मजे ॥ ८ ॥
तेजसादित्यसंकाशः क्षमया पृथिवीसमः । बृहस्पतिसमो बुद्ध्या यशसा वासवोपमः ॥ ९ ॥
रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता । रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परंतपः ॥१०॥
रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता । मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः ॥११॥
अर्चिष्मानर्चितोऽत्यर्थं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः । साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम् ॥१२॥
राजनीत्यां विनीतश्च ब्राह्मणानामुपासकः । ज्ञानवाञ्शीलसंपन्नो विनीतश्च परंतपः ॥१३॥
यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः । धनुर्वेदे च वेदे च वेदाङ्गेषु च निष्ठितः ॥१४॥
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवः शुभाननः । गूढजत्रुः सुताम्राक्षो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥१५॥
दुन्दुभिस्वननिर्घोषः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् । समश्च सुविभक्ताङ्गो वर्णं श्यामं समाश्रितः ॥१६॥
त्रिस्थिरस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिसमस्त्रिषु चोन्नतः । त्रिताम्रस्त्रिषु च स्निग्धो गम्भीरस्त्रिषु नित्यशः॥१७॥
त्रिवलीमांस्त्र्यवनतश्चतुर्व्यङ्गस्त्रिशीर्षवान् । चतुष्कलश्चतुर्लेखश्चतुष्किष्कुश्चतुःसमः ॥१८॥

करने लगे ॥ ५ ॥ हे वैदेहि, अपने पति रामचन्द्रके और लक्ष्मणके अङ्गसन्निवेशके बारेमें जान कर जो मुझसे पूछ रही हो यह प्रसन्नताकी बात है (क्योंकि इससे सीताका हनुमानपर विश्वास हुआ ऐसा मालूम होता है) ॥ ६ ॥ विशालाक्षि, रामचन्द्र और लक्ष्मणके शरीरके जिन चिन्होंको मैं जानता हूँ कहता हूँ, सुनो ॥ ७ ॥ कमलनयन पूर्णचन्द्रानन रामचन्द्र रूप और उदारतासे युक्त उत्पन्न हुए हैं ॥ ८ ॥ सूर्यके समान तेजस्वी, पृथिवीके समान क्षमावान्, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् और इन्द्रके समान यशस्वी हैं ॥ ९ ॥ शत्रुतापी रामचन्द्र सब प्राणियों के, स्वजनोंके, अपने चरित्र और धर्मके रक्षक हैं ॥ १० ॥ सुन्दरि, रामचन्द्र चातुर्वर्ण्यके रक्षक हैं, संसारकी मर्यादा बांधनेवाले तथा उसका पालन करनेवाले हैं ॥ ११ ॥ प्रकाशमान वे तीनों वर्णोंसे पूजित हैं, ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेवाले, सज्जनोंके केवल उपकारोंको जाननेवाले, और सत्कर्मोंके प्रचार करनेवाले हैं ॥ १२ ॥ वे राजनीतिमें शिक्षित, ब्राह्मणोंके उपासक, ज्ञानी, शीलवान् और नम्र हैं ॥ १३ ॥ यजुर्वेदके ज्ञाता, वेदज्ञोंके द्वारा प्रशंसित, धनुर्वेद और वेदांगोंके प्रामाणिक ज्ञाता हैं ॥१४॥ उनके कंधे विशाल हैं, भुजाएं बड़ी हैं, गला सुराहीदार है, मुंह सुन्दर है, गलेकी हड्डी छिपी हुई है, आंखें लाल हैं और वे राम नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥ दुन्दुभिके शब्दके समान उनका कण्ठस्वर है । शरीरका वर्ण सुन्दर है । वे प्रतापी हैं, उनके सब अंग शरीरके अनुकूल और अलग-अलग मालूम पड़नेवाले हैं, वे श्याम वर्णके हैं ॥ १६ ॥ जंघा, गट्टा और मुट्ठि ये तीन उनके स्थिर हैं; भौंह, अंडकोश और भुजा ये तीन लंबे हैं; बालोंका अग्रभाग, अंडकोष और जानु (घुटनेके ऊपरका भाग) ये तीन बराबर हैं; नाभि, कोंख और छाती ये तीन ऊँचे हैं; आँखोंके कोन, नख और हाथ पैरके तलवे ये तीन लाल हैं; पैरकी रेखाएँ माथेके बाल और पुरुष-चिन्ह कोमल हैं; वचन, गमन और नाभि ये तीन गंभीर हैं ॥ १७ ॥ उदर और कंठमें त्रिवली

चतुर्दशसमद्वन्द्वश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्गतिः । महोष्ठहनुनासश्च पञ्चस्निग्धोऽष्टवंशवान् ॥१९॥
दशपद्मो दशबृहत्त्रिभिर्व्याप्तो द्विशुक्लवान् । षडुन्नतो नवतनुस्त्रिभिर्व्याप्नोति राघवः ॥२०॥
सत्यधर्मरतः श्रीमान्संग्रहानुग्रहे रतः । देशकालविभागज्ञः सर्वलोकप्रियंवदः ॥२१॥
भ्राता चास्य च द्वैमात्रः सौमित्रिरमितप्रभः । अनुरागेण रूपेण गुणैश्चापि तथाविधः ॥२२॥
स सुवर्णच्छविः श्रीमान्रामः श्यामो महायशाः । तावुभौ नरशार्दूलौ त्वद्दर्शनकृतोत्सवौ ॥२३॥
विचिन्वन्तौ महीं कृत्स्नामस्माभिः सह संगतौ । त्वामेव मार्गमाणौ तौ विचरन्तौ वसुंधराम् ॥२४॥
ददर्शतुर्मृगपतिं पूर्वजेनावरोपितम् । ऋष्यमूकस्य मूले तु बहुपादपसंकुले ॥२५॥
भ्रातुर्भयार्तमासीनं सुग्रीवं प्रियदर्शनम् । वयं च हरिराजं तं सुग्रीवं सत्यसंगरम् ॥२६॥
परिचर्यामहे राज्यात्पूर्वजेनावरोपितम् । ततस्तौ चीरवसनौ धनुःप्रवरपाणिनौ ॥
स तौ दृष्ट्वा नरव्याघ्रौ धन्विनौ वानरर्षभः ॥२७॥

हैं; पैरके तलवे, परकी रेखाएँ और स्तनोंके चूचुक गहरे हैं; गला, पीठ, पुरुष-चिन्ह और दोनों जंघा छोटे हैं, मस्तक पर तीन भँवर हैं; अंगूठेमें चार रेखाएँ हैं; चार हाथ लम्बे हैं और उनके हाथ आनु अंघे और कपोल ये चारो समान हैं ॥ १८ ॥ उनके शरीरके चौदह जोड़े समान हैं वे ये हैं-दोनों भौंह, दोनों नासिकापुट, दोनों आँखें, दोनों कान, दोनों ओठ, स्तनोंके दोनों चूचुक, दोनों केहुनियाँ, गट्टे, जानु, अंडकोश, कमर, हाथ, पैर, स्फिक (मुख छिद्रकी दोनों शिराएँ), आगेवाले चार दाँत नुकीले हैं, सिंह बाघ हाथी और बैलके समान उनका सुन्दर गमन है, ओठ ठुड्ढी और नाक सुन्दर हैं, वचन मुँह नख लोम और त्वचाएं कोमल हैं, बाहु नली ऊरु और अंघे ये आठ लंबे हैं ॥ १९ ॥ उनके दस अंग (मुख नेत्र मुख-विवर जिह्वा ओष्ठ तालु स्तन नख पैर और हाथ) कमलके समान तथा पद्मचिन्हसे चिन्हित हैं ये दस अंग विशाल हैं-छाती मस्तक ललाट गला बाहु कंधे नाभि पैर पीठ और कान । यश श्री और तेज ये तीन सर्वत्र फैले हैं, माता और पिता दोनों वंश शुद्ध हैं, बगल कोख छाती नाक कंधे और ललाट ये छः ऊँचे हैं, अंगुलियोंके पोर केश रोम नख त्वचा शेफ दाढ़ीके बाल बुद्धि दृष्टि ये नौ सूक्ष्म हैं और धर्म अर्थ तथा कामका यथोचित सेवन करते हैं ॥ २० ॥ राम सत्यधर्मपरायण प्रजासे धन जनका संग्रह करके उसके द्वारा प्रजाकी रक्षा एवं देशकालविभागके अनुसार अपने कर्तव्योंका पालन करनेवाले और सबसे प्रिय बोलनेवाले हैं ॥ २१ ॥ इनके वैमात्र भ्राता लक्ष्मण बड़े तेजस्वी हैं, अनुराग रूप और गुणोंसे रामचन्द्रके समान हैं ॥ २२ ॥ लक्ष्मण सुवर्णके समान गोरे हैं और रामचन्द्र साँवले। वे दोनों नरसिंह तुमको देखनेके लिए उत्सुक होकर पृथिवीमें ढूंढते हुए हमलोगोंसे मिले, तुम्हींको ढूंढते हुए वे परिभ्रमण कर रहे थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ अपने बड़े भाईसे राज्यच्युत किये गये सुग्रीवको अनेक वृक्षोंसे ऋष्यमूककी तलहटीमें देखा ॥ २५ ॥ भाईके भयसे भीत, सत्यप्रतिज्ञ, प्रियदर्शन सुग्रीवको हमलोग सेवा कर रहे थे, क्योंकि वे बड़े भाईके द्वारा राज्यसे निकाल दिये गये थे । जब वल्कल वस्त्र धारण किये हुए वे दोनों वीर ऋष्यमूकके पास पहुँचे तब उन दोनों धनुर्धारी वीरोंको देखकर सुग्रीव डर गये और वे ऋष्यमूकके ऊपरवाले शिखरपर चले गये तथा वहां

तयोः समीपं मामेव प्रेषयामास सत्वरम् । तावहं पुरुषव्याघ्रौ सुग्रीववचनात्प्रभू ॥२९॥
रूपलक्षणसंपन्नौ कृताञ्जलिरुपस्थितः । तौ परिज्ञाततत्त्वार्थौ मया प्रीतिसमन्वितौ ॥३०॥
पृष्ठमारोप्य तं देशं प्रापितौ पुरुषर्षभौ । निवेदितौ च तत्त्वेन सुग्रीवाय महात्मने ॥३१॥
तयोरन्योन्यसंभाषाद्भृशं प्रीतिरजायत । तत्र तौ कीर्तिसंपन्नौ हरीश्वरनरेश्वरौ ॥३२॥
परस्परकृताश्वासौ कथया पूर्ववृत्तया । तं ततः सान्त्वयामास सुग्रीवं लक्ष्मणाग्रजः ॥३३॥
स्त्रीहेतोर्वालिना भ्रात्रा निरस्तं पुरुतेजसा । ततस्त्वन्नाशजं शोकं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥३४॥
लक्ष्मणो वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयत् । स श्रुत्वा वानरेन्द्रस्तु लक्ष्मणेनेरितं वचः ॥३५॥
तदासीन्निष्प्रभोऽत्यर्थं ग्रहग्रस्त इवांशुमान् । ततस्त्वद्गात्रशोभीनि रक्षसा ह्रियमाणया ॥३६॥
यान्याभरणजालानि पातितानि महीतले । तानि सर्वाणि रामाय आनीय हरियूथपाः ॥३७॥
संहृष्टा दर्शयामासुर्गतिं तु न विदुस्तव । तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च ॥३८॥
स्वनवन्त्यवकीर्णानि तस्मिन्विहतचेतसि । तान्यङ्के दर्शनीयानि कृत्वा बहुविधं तव ॥३९॥
तेन देवप्रकाशेन देवेन परिदेवितम् । प्रादीपयद्दाशरथेस्तदा शोकहुताशनम् ॥४०॥
शायितं च चिरं तेन दुःखार्तेन महात्मना ।मयापि विविधैर्वाक्यैःकृच्छ्रादुत्थापितःपुनः॥४१॥
तानि दृष्ट्वा महार्हाणि दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः । राघवः सहसौमित्रिः सुग्रीवे संन्यवेशयत् ॥४२॥
स तवादर्शनादार्ये राघवः परितप्यते । महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्निपर्वतः ॥४३॥

रहने लगे ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ उन दोनों वीरोंके पास सुग्रीवने मुझेही भेजा । सुग्रीवके कहनेसे मैं उन सर्वलक्षण-सम्पन्न वीर पुरुषसिंहोंके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हुआ । वे मुझसे सब बातें जानकर प्रसन्न हुए ॥ २९ ॥ ३० ॥ मैं पीठ पर चढ़ाकर उन दोनोंको सुग्रीवके पास ले गया और सुग्रीवसे उनका यथार्थ परिचय कराया ॥ ३१ ॥ परस्पर वार्तालापसे उनमें प्रेम उत्पन्न हुआ। उस समय कीर्तिमान् रामचन्द्र और सुग्रीवने पहली घटनाएं सुनायीं तथा एकने दूसरेको ढाढ़स बँधाया । स्त्रीके कारण उग्रतेजस्वी बड़े भाईके द्वारा निकाले गये सुग्रीवको रामचन्द्रने धैर्य दिलाया अनन्तर तुम्हारे खोजानेसे उत्पन्न रामचन्द्रके कष्टोंका वर्णन लक्ष्मणने सुग्रीवसे किया । लक्ष्मणकी बातें सुनकर सुग्रीव बहुत दुखी हुए और राहुग्रस्त सूर्यके समान वे हो गये। पुनः तुम्हारे अंगोंकी शोभा बढ़ानेवाले गहने जिन्हें तुमने राक्षसके द्वारा हरी जानेके समय पृथिवीपर गिराया था, वानरदलपति लालाकर रामचन्द्रको दिखाने लगे, पर तुम्हारे रहनेका पता उन लोगोंको न था। वे सब गहने मैं ही बटोर लाया था, जो बजनेवाले थे और जमीनमें पड़े थे। रामचन्द्र उस समय चेतनाहीन थे, उन सुन्दर गहनोंको लेकर रामचन्द्रने गोदमें रक्खा, उस समय देवतुल्य रामचन्द्रने विलाप किया, उन गहनोंको देखनेसे उनकी शोकाग्नि भड़क उठी, दुःख-पीड़ित महात्मा राम बड़ी देर तक पृथिवीमें पड़े रहे, मैंने बहुत समझाकर किसी किसी तरह उन्हें उठाया ॥३२-४१॥ उन मूल्यवान् गहनोंको बार-बार देखकर तथा दिखाकर लक्ष्मण और रामचन्द्रने वे गहने सुग्रीवको दिये ॥४२॥ आर्ये, आपके वियोगसे रामचन्द्र बहुत दुःखी हो रहे हैं।

त्वत्कृते तमनिद्रा च शोकश्चिन्ता च राघवम् । तापयन्ति महात्मानमग्न्यगारमिवाग्नयः ॥४४॥
तवादर्शनशोकेन राघवः परिचाल्यते । महता भूमिकम्पेन महानिव शिलोच्चयः ॥४५॥
काननानि सुरम्याणि नदीप्रस्रवणानि च । चरन्न रतिमाप्नोति त्वामपश्यन्नृपात्मजे ॥४६॥
स त्वां मनुजशार्दूलः क्षिप्रं प्राप्स्यति राघवः । समित्रबान्धवं हत्वा रावणं जनकात्मजे ॥४७॥
सहितौ रामसुग्रीवावुभावकुरुतां तदा । समयं वालिनं हन्तुं तव चान्वेषणं प्रति ॥४८॥
ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यां वीराभ्यां स हरीश्वरः । किष्किन्धां समुपागम्य वाली युद्धे निपातितः ॥४९॥
ततो निहत्य तरसा रामो वालिनमाहवे । सर्वर्क्षहरिसङ्घानां सुग्रीवमकरोत्पतिम् ॥५०॥
रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत । हनूमन्तं च मां विद्धि तयोर्दूतमुपागतम् ॥५१॥
स्वं राज्यं प्राप्य सुग्रीवः स्वानानीय महाकपीन् । त्वदर्थं प्रेषयामास दिशो दश महाबलान् ॥५२॥
आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महौजसः । अद्रिराजप्रतीकाशाः सर्वतः प्रस्थिता महीम् ॥५३॥
ततस्ते मार्गमाणा वै सुग्रीववचनातुराः । चरन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः ॥५४॥
अङ्गदो नाम लक्ष्मीवान्वालिसूनुर्महाबलः । प्रस्थितः कपिशार्दूलस्त्रिभागबलसंवृतः ॥५५॥
तेषां नो विप्रणष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे । भृशं शोकपरीतानामहोरात्रगणा गताः ॥५६॥
ते वयं कार्यनैराश्यात्कालस्यातिक्रमेण च । भयाच्च कपिराजस्य प्राणांस्त्यक्तुमुपस्थिताः ॥५७॥

वे जलती हुई आगसे अग्निपर्वतके समान जल रहे हैं ॥ ४३ ॥ तुम्हारे लिए रामचन्द्रको निद्रा नहीं आती, शोक और चिन्तासे वे व्याकुल हैं, जिस प्रकार त्रिविध अग्नि अग्निशालाको तपा देती हैं ॥४४॥ तुम्हारे विरहके शोकसे रामचन्द्र चंचल होगये हैं जिस प्रकार बड़े भूकंपसे कोई बड़ा पर्वत काँप जाता है ॥ ४५ ॥ राजपुत्रि, तुम्हारे बिना रमणीय वनों नदियों और झरनोंके पास भ्रमण करके प्रसन्न नहीं होते ॥ ४६ ॥ जनकपुत्रि, वे पुरुषसिंह रामचन्द्र मित्र और बन्धुओंके साथ रावणको मारकर शीघ्र ही तुम्हारे पास पहुँचेंगे ॥ ४७ ॥ राम और सुग्रीव इन दोनोंने मिलकर वालिके वध और तुम्हारे ढूँढनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ४८ ॥ अनन्तर उन वीर कुमारोंके साथ किष्किन्धा आकर सुग्रीवने युद्धमें वालिको मार डाला ॥ ४९ ॥ युद्धमें वालिको शीघ्रतापूर्वक मारकर रामचन्द्रने सुग्रीवको सब वानरों और भालुओंका राजा बनाया ॥ ५० ॥ देवि, इस प्रकार राम और सुग्रीवकी मैत्री हुई, मैं उनका दूत हूँ, तुम्हारे पास आया हूं ॥ ५१ ॥ अपना राज्य पाकर और अपने बली वानरोंको बुलाकर सुग्रीवने उन्हें तुम्हारे खोजनेके लिए दशों दिशाओंमें भेजा ॥ ५२ ॥ वानरराज सुग्रीवकी आज्ञासे बड़े पराक्रमी और पर्वतके समान विशाल हमलोग पृथिवीमें चारों ओर प्रस्थित हुए ॥ ५३ ॥ सुग्रीवकी आज्ञासे वे वानर तथा हमलोग तुमको ढूँढते हुए समस्त पृथिवीमें भ्रमण कर रहे हैं ॥ ५४ ॥ वालिपुत्र सुन्दर महाबली अंगद सेनाके तीसरे हिस्सेके साथ प्रस्थित हुए हैं ॥ ५५ ॥ हम सब लोग विन्ध्यपर्वतपर भूल गये, अतएव शोकयुक्त हमलोगोंकी अवधिसे भी अधिक कई दिन बीत गये ॥ ५६ ॥ कार्य सिद्ध न होने, अवधि बीत जाने और सुग्रीवके भयके कारण हमलोग प्राण त्याग करनेके लिए तैयार हुए ॥५७॥

विचित्य गिरिदुर्गाणि नदीप्रस्रवणानि च ।अनासाद्य पदं देव्याःप्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिताः॥५८॥
ततस्तस्य गिरेर्मूर्ध्नि वयं प्रायमुपास्महे। दृष्ट्वा प्रायोपविष्टांश्च सर्वान्वानरपुंगवान् ॥५९॥
भृशं शोकार्णवे मग्नः पर्यदेवयदङ्गदः। तव नाशं च वैदेहि वालिनश्च तथा वधम् ॥६०॥
प्रायोपवेशमस्माकं मरणं च जटायुषः। तेषां नः स्वामिसंदेशान्निराशानां मुमूर्षताम् ॥६१॥
कार्यहेतोरिहायातः शकुनिर्वीर्यवान्महान्। गृध्रराजस्य सोदर्यः संपातिर्नाम गृध्रराट् ॥६२॥
श्रुत्वा भ्रातृवधं कोपादिदं वचनमब्रवीत्। यवीयान्केन मे भ्राता हतः क्व च निपातितः ॥६३॥
एतदाख्यातुमिच्छामि भवद्भिर्वानरोत्तमाः। अङ्गदोऽकथयत्तस्य जनस्थाने महद्वधम् ॥६४॥
रक्षसा भीमरूपेण त्वामुद्दिश्य यथार्थतः।जटायोस्तु वधं श्रुत्वा दुःखितः सोऽरुणात्मजः॥६५॥
त्वामाह स वरारोहे वसन्तीं रावणालये। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संपातेः प्रीतिवर्धनम् ॥६६॥
अङ्गदप्रमुखाः सर्वे ततः प्रस्थापिता वयम्। विन्ध्यादुत्थाय संप्राप्ताः सागरस्यान्तमुत्तमम् ॥६७॥
त्वद्दर्शने कृतोत्साहा हृष्टाः पुष्टाः प्लवंगमाः। अङ्गदप्रमुखाः सर्वे वेलोपान्तमुपागताः ॥६८॥
चिन्तां जग्मुः पुनर्भीमां त्वद्दर्शनसमुत्सुकाः। अथाहं हरिसैन्यस्य सागरं दृश्य सीदतः ॥६९॥
व्यवधूय भयं तीव्रं योजनानां शतं प्लुतः। लङ्का चापि मया रात्रौ प्रविष्टा राक्षसाकुला ॥७०॥
रावणश्च मया दृष्टस्त्वं च शोकनिपीडिता। एतत्ते सर्वमाख्यातं यथावृत्तमनिन्दिते ॥७१॥
अभिभाषस्व मां देवि दूतो दाशरथेरहम्। तन्मां रामकृतोद्योगं त्वन्निमित्तमिहागतम् ॥७२॥

पर्वतोंकी कन्दराएँ और झरने ढूँढ़कर और देवी सीताका पता न पाकर हमलोग प्राण त्याग करनेके लिए उद्यत हुए ॥ ५८ ॥ उस पर्वतके शिखरपर हमलोग धरना देकर उपवास करने लगे, उपवास करते हुए हम सब वानरोंको देखकर अत्यन्त शोकातुर होकर अंगद विलाप करने लगे। तुम्हारा पता न लगना, बालिका उस प्रकार बध होना, हम लोगोंका उपवास करना और जटायुका मारा जाना—इन बातोंका स्मरण करके वे विलाप करने लगे। स्वामीकी अवधि बीत जाने कार्य सिद्धिमें निराश होनेसे प्राणत्यागके लिए उद्यत हमलोगोंके पास गृद्धराजका भाई सम्पाति नामका बली पक्षी आया ॥ ५९—६२ ॥ भाईका बध सुनकर क्रोध करके वह बोला—मेरे छोटे भाईको किसने मारा और उसे कहाँ गिराया ॥ ६३ ॥ वानरो, मैं चाहता हूँ कि तुम लोग यह वृत्तान्त मुझसे कहो, जनस्थानमें तुम्हारे कारण कराल राक्षसने जो बध किया था, वह यथावत् अंगदने कहा। जटायुका बध सुनकर वह अरुणपुत्र सम्पाति दुखी हुआ ॥६४॥६५॥ उसीने रावणके घरमें तुम्हारे रहनेकी बात कही। सम्पातिके द्वारा कही हुई प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाली बात सुनकर अंगद आदि हम सब विन्ध्यपर्वतसे चलकर समुद्रतीरपर आये ॥ ६६॥६७ ॥ तुम्हारे दर्शन पानेकी आशासे उत्साहित प्रसन्न अंगद आदि बली सभी वानर समुद्रतीरपर आये ॥ ६८ ॥ तुम्हारे दर्शनके लिए उत्कंठित समुद्र तीर पर आये हुए वे भयानक चिन्तामें पड़ गये, समुद्रको देखकर घबड़ाते हुए वानरोंका बड़ा भय दूर करके मैं सौ योजन समुद्र लाँघ आया, राक्षसोंसे आकुल लंकाको रातमें मैंने देखा, रावणको और शोकसे दुखी तुमको भी मैंने देखा। हे अनिन्दिते, यह सब जैसा हुआ था मैंने बतलाया ॥ ६९ ॥ ७१ ॥ देवि, मैं दशरथपुत्र रामचन्द्रका

सुग्रीवसचिवं देवि बुद्ध्यस्व पवनात्मजम् । कुशली तव काकुत्स्थः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥७३॥
गुरोराराधने युक्तो लक्ष्मणः शुभलक्षणः । तस्य वीर्यवतो देवि भर्तुस्तव हिते रतः ॥७४॥
अहमेकस्तु संप्राप्तः सुग्रीववचनादिह । मयेयमसहायेन चरता कामरूपिणा ॥७५॥
दक्षिणा दिगनुक्रान्ता त्वन्मार्गविचयैषिणा । दिष्ट्याहं हरिसैन्यानां त्वन्नाशमनुशोचताम् ॥७६॥
अपनेष्यामि संतापं तवाधिगमशासनात् । दिष्ट्या हि न मम व्यर्थं सागरस्येह लङ्घनम् ॥७७॥
प्राप्स्याम्यहमिदं देवि त्वद्दर्शनकृतं यशः । राघवश्च महावीर्यः क्षिप्रं त्वामभिपत्स्यते ॥७८॥
सपुत्रबान्धवं हत्वा रावणं राक्षसाधिपम् । माल्यवान्नाम वैदेहि गिरीणामुत्तमो गिरिः ॥७९॥
ततो गच्छति गोकर्णं पर्वतं केसरी हरिः । स च देवर्षिभिर्दिष्टः पिता मम महाकपिः ।
तीर्थे नदीपतेः पुण्ये शम्बसादनमुद्धरन् । ॥८०॥
यस्याहं हरिणः क्षेत्रे जातो वातेन मैथिलि । हनूमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा ॥८१॥
विश्वासार्थं तु वैदेहि भर्तुरुक्ता मया गुणाः । अचिरात्त्वामितो देवि राघवो नयिता ध्रुवम् ॥८२॥
एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्शिता । उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमधिगच्छति ॥८३॥
अतुलं च गता हर्षं प्रहर्षेण तु जानकी । नेत्राभ्यां वक्रपक्ष्माभ्यां मुमोचानन्दजं जलम् ॥८४॥
चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम् । अशोभत विशालाक्ष्या राहुमुक्त इवोडुराट् ॥८५॥
हनुमन्तं कपिं व्यक्तं मन्यते नान्यथेति सा । अथोवाच हनुमांस्तामुत्तरं प्रियदर्शनाम् ॥८६॥

दूत हूं, मुझसे बोलो, रामचन्द्रके लिए प्रयत्न करनेवाला, तुम्हारे लिए यहाँ आया हुआ, सुग्रीवका सचिव और वायुका पुत्र मुझे समझो। समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तुम्हारे रामचन्द्र कुशली हैं ॥ ७२॥७३ ॥ बड़े भाईकी सेवामें तत्पर शुभलक्षण लक्ष्मण भी कुशली हैं, उन तुम्हारे पराक्रमी पतिका हित चाहनेवाला मैं अकेला सुग्रीवके कहनेसे यहाँ आया। सहायहीन कामरूपी मैंने तुम्हारा पता लगानेके लिए इस दक्षिण दिशामें प्रवेश किया। खुशीकी बात है कि तुम्हारे नाशकी कल्पना करनेवाले वानर सैनिकोंका दुःख तुम्हारा पता बताकर मैं दूर करूँगा, समुद्रका मेरा लाँघना व्यर्थ नहीं हुआ, यह प्रसन्नताकी बात है ॥ ७४—७७ ॥ देवि, तुम्हारे देखनेका यह यश मुझे मिलेगा और पराक्रमी रामचन्द्र तुम्हारे पास आवेंगे, और पुत्रों और बान्धवोंके साथ राक्षसराज रावणको मारेंगे। वैदेहि पर्वतोंमें श्रेष्ठ माल्यवान् नामका पर्वत है, केसरी नामके वानर वहाँसे गोकर्ण पर्वत पर गये, मेरे पिता महाकपि केसरीको देवर्षियोंकी आज्ञासे समुद्रके पवित्र तीरपर शंबसादन नामके राक्षसका वध करना पड़ा ॥ ७८—८० ॥ उन्हींकी स्त्रीमें वायुसे मैं उत्पन्न हुआ हूं, अपने ही कर्मोंके द्वारा हनुमान नामसे प्रसिद्ध हूँ ॥ ८१ ॥ वैदेहि, तुम्हारे विश्वासके लिए मैंने, स्वामीके गुणोंका वर्णन किया। रामचन्द्र शीघ्र ही तुमको यहाँसे ले जायँगे ॥ ८२ ॥ उचित चिह्नों और कारणोंके द्वारा अब सीताको विश्वास हो गया, तब उन्होंने हनुमानको रामचन्द्रका दूत समझा ॥ ८३ ॥ जानकी बहुत प्रसन्न हुईं, प्रसन्नताके कारण उनकी आँखोंसे आनन्दाश्रु निकलने लगे ॥ ८४ ॥ उनका सुन्दर मुंह, जिसमें लाल और श्वेत बड़ी बड़ी आँखें थीं, राहुमुक्त चन्द्रमाके समान मालूम हुआ ॥८५॥ उनने हनुमानको वानर ही समझा और

एतत्ते सर्वमाख्यातं समाश्वसिहि मैथिलि । किं करोमि कथं वा ते रोचते प्रतियाम्यहम् ॥८७॥
हतेऽसुरे संयति शम्बसादने कपिप्रवीरेण महर्षिचोदनात् ।
ततोऽस्मि वायुप्रभवो हि मैथिलि प्रभावतस्तत्प्रतिमश्च वानरः ॥ ८८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ३६

भूय एव महातेजा हनुमान्पवनात्मजः । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सीताप्रत्ययकारणात् ॥ १ ॥
वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः । रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम् ॥ २ ॥
प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना । समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि ॥ ३ ॥
गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषितम् । भर्तारमिव संप्राप्तं जानकी मुदिताभवत् ॥ ४ ॥
चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम् । बभूव हर्षोदग्रं च राहुमुक्त इवोडुराट् ॥ ५ ॥
ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुः संदेशहर्षिता । परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम् ॥ ६ ॥
विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम । येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम् ॥ ७ ॥
शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः । विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः ॥ ८ ॥

कुछ नहीं । पुनः हनुमान सीतासे यह उत्तम वचन बोले ॥ ८६ ॥ मैथिलि, मैंने तुम्हारे सब प्रश्नोंके उत्तर दिये, अब तुम धैर्य धारण करो । मुझे यह बताओ कि मैं क्या करूँ । आज्ञा हो तो मैं रामचन्द्रके समीप जाऊं ॥८७॥ महर्षियोंके कहनेसे वीर कपि केसरीके द्वारा शंबसादन नामक राक्षसके युद्धमें मारे जानेपर मैं उनकी स्त्रीमें वायुसे उत्पन्न हुआ हूं और उन्हींके समान बल रखनेवाला वानर हूं ॥८८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका पैंतीसवां सर्ग समाप्त ॥३५॥

महातेजस्वी वायुपुत्र हनुमान सीताके विश्वासके लिए पुनः नम्र वचन बोले ॥ १ ॥ महाभागे, मैं वानर हूं, बुद्धिमान् रामचन्द्रका दूत हूं । देवि, रामनामांकित यह अंगूठी देखो ॥ २ ॥ तुम्हारे विश्वासके लिए मैं ले आया हूँ और महात्मा रामचन्द्रने दी है । देवि शीघ्र ही तुम्हारे दुःखोंका अन्त होगा । तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३ ॥ पतिके हाथका भूषण लेकर सीता देखने लगीं और पतिके मिल जानेके समान आनन्दित हुईं ॥ ४ ॥ श्वेत और लाल आंखोंवाला उसका सुन्दर और हर्षसे दमकता हुआ मुंह राहुमुक्त चन्द्रमाके समान शोभित हुआ ॥ ५ ॥ लज्जाशीला नव बाला पतिका सन्देश पाकर हर्षित हुई और हनुमानको प्रिय समझकर उनकी प्रशंसा करने लगी ॥ ६ ॥ वानरश्रेष्ठ, तुम पराक्रमी हो, शक्तिमान् हो और बुद्धिमान हो, क्योंकि तुमने अकेले इस राक्षसपुरीमें प्रवेश किया ॥ ७ ॥ क्योंकि सौ योजन विस्तारवाले

नहि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ । यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि संभ्रमः ॥ ९ ॥
अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम् । यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना ॥१०॥
प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो नह्यपरीक्षितम् । पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः ॥११॥
दिष्ट्या च कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसंगरः । लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥१२॥
कुशली यदि काकुत्स्थः किं न सागरमेखलाम् । महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥१३॥
अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे । ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः ॥१४॥
कच्चिन्न व्यथते रामः कच्चिन्न परितप्यते । उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः ॥१५॥
कच्चिन्न दीनः संभ्रान्तः कार्येषु च न मुह्यति । कच्चित्पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुतः ॥१६॥
द्विविधं त्रिविधोपायमुपायमपि सेवते । विजिगीषुः सुहृत्कच्चिन्मित्रेषु च परंतपः ॥१७॥
कच्चिन्मित्राणि लभते मित्रैश्चापि पुरस्कृतः । ॥१८॥
कच्चिदाशास्ति देवानां प्रसादं पार्थिवात्मजः । कच्चित्पुरुषकारं च दैवं च प्रतिपद्यते ॥१९॥
कच्चिन्न विगतस्नेहो विवासान्मयि राघवः । कच्चिन्मां व्यसनादस्मान्मोक्षयिष्यति राघवः ॥२०॥
सुखानामुचितो नित्यमसुखानामनूचितः । दुःखमुत्तरमासाद्य कच्चिद्रामो न सीदति ॥२१॥

मकर आदि हिंस्र जंतुओंके निवासभूत सागरको पराक्रमी तुमने लांघते हुए गोष्पदके समान बना दिया है। हे वानरश्रेष्ठ, मैं तुमको साधारण वानर नहीं समझती; क्योंकि तुम्हें रावणसे भी न भय है और न घबराहट ॥ ९ ॥ आत्मविश्वासी रामचन्द्रके द्वारा यदि तुम भेजे गये हो तो मुझसे बातें करनेके योग्य हो ॥ १० ॥ शत्रुके द्वारा अपराजेय रामचन्द्र अपरीक्षित, पराक्रम बिना जाने, विशेष कर मेरे पास, दूत नहीं भेज सकते ॥ ११ ॥ प्रसन्नताकी बात है कि धर्मात्मा सत्यप्रतिज्ञ रामचन्द्र तथा सुमित्रानन्दन महातेजस्वी लक्ष्मण कुशल हैं ॥ १२ ॥ रामचन्द्र यदि कुशल हैं तो मेरे लिए समुद्र पर्यन्त पृथिवीको प्रलयकालमें उत्थित अग्निके समान क्रोधसे क्यों नहीं जला देते ॥ १३ ॥ अथवा वे तो देवताओंको भी दण्ड देनेकी शक्ति रखते हैं; पर मेरे ही दुःखोंका अन्त अभी नहीं आया ॥ १४ ॥ रामचन्द्र दुःख तो नहीं करते, परिताप तो नहीं करते ? पुरुषश्रेष्ठ वे मेरे उद्धारके लिए कुछ प्रयत्न करते हैं ॥ १५ ॥ वे हताश तो नहीं होते, घबराते तो नहीं, कार्योंमें भूल तो नहीं करते, राजपुत्र राम पुरुषोंके योग्य काम तो करते हैं ? शत्रुसंतापी राम मित्रोंके विषयमें मित्र बनकर साम और दाम इन दो उपायोंका प्रयोग तो करते हैं और शत्रुओंके विषयमें विजयी रामचन्द्र दान भेद और दण्ड इन तीन उपायोंका प्रयोग तो करते हैं ? ॥ १७ ॥ क्या रामचन्द्रको मित्र मिलते जाते हैं, और मित्र उनके पास आते हैं ? सज्जनोंसे मैत्री करनेवाले रामचन्द्रकी प्रशंसा उनके मित्र तो करते हैं ? ॥१८॥ राजपुत्र राम देवोंकी प्रसन्नताके लिए प्रार्थना करते हैं, भाग्य और प्रयत्न इनका आश्रय लेते हैं ? ॥ १९ ॥ अधिक दूर रहनेके कारण रामचन्द्रका स्नेह मुझसे हट तो नहीं गया है ? क्या वे इस दुःखसे मेरा उद्धार करेंगे ? ॥ २० ॥ रामचन्द्रको सुखका ज्ञान है, दुःखोंका नहीं, दुःख पर दुःख पाकर वे

कौसल्यायास्तथा कच्चित्सुमित्रायास्तथैव च । अभीक्ष्णं श्रूयते कच्चित्कुशलं भरतस्य च ॥२२॥
मन्निमित्तेन मानार्हः कच्चिच्छोकेन राघवः । कच्चिन्नान्यमना रामःकच्चिन्मां तारयिष्यति ॥२३॥
कच्चिदक्षौहिणीं भीमां भरतो भ्रातृवत्सलः । ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां प्रेषयिष्यति मत्कृते ॥२४॥
वानराधिपतिः श्रीमान्सुग्रीवः कच्चिदेष्यति । मत्कृते हरिभिर्वीरैर्वृतो दन्तनखायुधैः ॥२५॥
कच्चिच्च लक्ष्मणः शूरः सुमित्रानन्दवर्धनः । अस्त्रविच्छरजालेन राक्षसान्विधमिष्यति ॥२६॥
रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे । द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम् ॥२७॥

कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णं तस्याननं पद्मसमानगन्धि ।
मया विना शुष्यति शोकदीनं जलक्षये पद्ममिवातपेन ॥ २८ ॥
धर्मापदेशात्त्यजतः स्वराज्यं मां चाप्यरण्यं नयतःपदातेः ।
नासीद्यथा यस्य न भीर्न शोकःकच्चित्स धैर्यं हृदये करोति ॥२९॥
न चास्य माता न पिता न चान्यःस्नेहाद्विशिष्टोऽस्ति मया समो वा ।
तावद्ध्यहं दूत जिजीविषेयं यावत्प्रवृत्तिं शृणुयां प्रियस्य ॥३०॥
इतीव देवी वचनं महार्थं तं वानरेन्द्रं मधुरार्थमुक्त्वा ।
श्रोतुं पुनस्तस्य वचोऽभिरामं रामार्थयुक्तं विरराम रामा ॥३१॥

सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः । शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥३२॥
न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमललोचनः । तेन त्वां नानयत्याशु शचीमिव पुरंदरः ॥३३॥

व्याकुल तो नहीं हो जाते ? ॥२१॥ क्या कौसल्याका सुमित्राका तथा भरतका कुशल-संवाद बीच बीचमें रामचन्द्रको मालूम होता रहता है ? ॥२२॥ सम्मान योग्य रामचन्द्र मेरे वियोगके शोकके कारण अन्यमनस्क तो नहीं हो गये हैं. क्या वे मेरा उद्धार करेंगे ॥ २३ ॥ क्या भ्रातृ-प्रेमी भरत मन्त्रियोंके बुद्धि बलसे रक्षित अपनी विशाल अक्षौहिणी सेना मेरे लिए भेजेंगे ॥ २४ ॥ क्या वानरराज श्रीमान् सुग्रीव मेरे लिए अपनी वानरी सेनाके साथ, जिनके अस्त्र दाँत और नख हैं, आवेंगे ॥ २५ ॥ अस्त्रवेत्ता सुमित्रानन्दवर्द्धन वीर लक्ष्मण क्या अपनी बाणवर्षासे राक्षसोंका नाश करेंगे ? ॥ २६ ॥ रामके द्वारा भयंकर अस्त्रसे मित्रोंके साथ मारे गये रावणको क्या मैं शीघ्र ही देखूँगी ॥ २७ ॥ सुवर्णतुल्य वर्णवाला, कमलगन्ध, शोकसे पीड़ित उनका मुख मेरे बिना सूख तो नहीं रहा है, जिस प्रकार जलके अभावसे सूर्यतापसे कमल सूखता है ॥ २८ ॥ धर्मके व्याजसे जिन्होंने राज्य छोड़ा और पैदल चलते समय जिन्हें न शोक हुआ और न भय, वे हृदयमें धैर्य धारण किए हैं ? ॥ २९ ॥ माता पिता या और कोई मेरे समान भी रामचन्द्रका प्रिय नहीं है, फिर अधिक कैसे हो सकता है । दूत, मैं भी तभीतक जीती हूँ, जब तक रामचन्द्रके यहाँ आनेकी आशा है ॥ ३० ॥ देवी सीता इस प्रकार गम्भीर और महान् अर्थयुक्त वचन हनुमानसे कह कर उनके रमणीय तथा हितकारी वचन सुननेके लिए चुप हो गयीं ॥ ३१ ॥ सीताके वचन सुनकर परम पराक्रमी हनुमान हाथ जोड़कर इस प्रकार उत्तरमें बोले ॥ ३२ ॥ कमलनयन राम तुम्हारा यहाँ रहना नहीं जानते, इस लिए यहाँसे शीघ्र नहीं ले जाते, जिस प्रकार इन्द्र

श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः । चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसंयुताम् ॥३४॥
विष्टम्भयित्वा बाणौघैरक्षोभ्यं वरुणालयम् । करिष्यति पुरीं लङ्कां काकुत्स्थः शान्तराक्षसाम् ॥३५॥
तत्र यद्यन्तरा मृत्युर्यदि देवा महासुराः । स्थास्यन्ति पथि रामस्य स तानपि वधिष्यति ॥३६॥
तवादर्शनजेनार्ये शोकेन परिपूरितः । न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥३७॥
मन्दरेण च ते देवि शपे मूलफलेन च । मलयेन च विन्ध्येन मेरुणा दर्दुरेण च ॥३८॥
यथा सुनयनं वल्गु बिम्बोष्ठं चारुकुण्डलम् । मुखं द्रक्ष्यसि रामस्य पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ॥३९॥
क्षिप्रं द्रक्ष्यसि वैदेहि रामं प्रस्रवणे गिरौ । शतक्रतुमिवासीनं नागपृष्ठस्य मूर्धनि ॥४०॥
न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते । वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पञ्चमम् ॥४१॥
नैव दंशान्न मशकान्न कीटान्न सरीसृपान् । राघवोऽपनयेद्गात्रात्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥४२॥
नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायणः । नान्यच्चिन्तयते किंचित्स तु कामवशं गतः ॥४३॥
अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः । सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन्प्रतिबुध्यते ॥४४॥
दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं वा यच्चान्यत्स्त्रीमनोहरम् । बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते ॥४५॥

स देवि नित्यं परितप्यमानस्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः ।
धृतव्रतो राजसुतो महात्मा तवैव लाभाय कृतप्रयत्नः ॥४६॥

शचीको ले गये थे ॥ ३३ ॥ मेरे वचन सुनते ही वानर भालुओंकी बड़ी सेनाके साथ रामचन्द्र शीघ्र ही यहाँ आवेंगे ॥३४॥ बाणोंसे समुद्रको लाँघकर लंकापुरीके राक्षसोंका बाणोंसे वे विनाश करेंगे। ॥ ३५ ॥ इस बीचमें यदि मृत्यु, देवता या और कोई बड़ा असुर उनके रास्तेमें बाधा डालेगा तो वे उसका भी वध करेंगे ॥३६॥ आर्ये, तुम्हारे न देखनेके दुःखसे भरकर रामचन्द्र सुख नहीं पारहे हैं, जिस प्रकार सिंहसे पीड़ित हाथी ॥३७॥ देवि ! मूलफल, मन्दराचल, मलयाचल, विन्ध्याचल, मेरु और दर्दुर इन पर्वतोंकी शपथ करके मैं कहता हूं (ये सब पर्वत निवास स्थान होनेके कारण हनुमानके प्रिय थे और फलमूल आहार होनेके कारण प्रिय थे। प्रिय वस्तुकी मनुष्यकी शपथ करनेकी रीति है। इसीसे हनुमानने इनकी शपथ की है) कि पूर्ण चन्द्रमाके समान उदित रामचन्द्रका मुंह तुम शीघ्रही देखोगी, जो सुन्दर कुण्डलोंसे सुशोभित है, जिसमें बिम्ब फलके समान ओष्ठ हैं तथा सुन्दर आँखें हैं ॥३८,३९॥ वैदेहि, प्रस्रवण पर्वत पर बैठे रामचन्द्रको ऐरावत पर बैठे इन्द्रके समान तुम शीघ्रही देखोगी ॥ ४० ॥ रामचन्द्र कोई भी राजभोग नहीं भोगते, न वे माँस खाते हैं और न मधु, किन्तु, ब्रह्मचर्य विधिके अनुसार दिनके पाँचवें पहरमें जंगली फलमूल आदिका आहार करते हैं ॥ ४१ ॥ तुममें उनका इतना ध्यान लगारहता है कि शरीरपर चढ़े हुए डाँस, मच्छड़, कीड़े-मकोड़े आदिके हटानेकी उन्हें फिक्र नहीं होती ॥४२॥ तुममें चित्त लगनेके कारण, रामचन्द्र तुम्हारे लिए इतने व्याकुल हो गये हैं कि वे सदा तुम्हारा ही ध्यान किया करते हैं, तुम्हारे ही लिए शोकमग्न रहा करते हैं, और कुछ सोचते ही नहीं ॥ ४३ ॥ उन्हें नींद नहीं आती । कभी कभी सो जाते हैं तो सीता सीता कहते उठ खड़े होते हैं । फल पुष्प आदि स्त्रियोंके पसन्दकी चीजें जब वे देखते हैं तो तुम्हारा स्मरण करके 'हा प्रिये, हा प्रिये' कहने लगते हैं ॥ ४५ ॥ देवि, वे सदा दुखी हैं । सदा सीता सीता कहा करते हैं । तुम्हें पानेहीके लिए राजपुत्र वे महात्मा

सा रामसंकीर्तनवीतशोका रामस्य शोकेन समानशोका।
शरन्मुखेनाम्बुदशेषचन्द्रा निशेव वैदेहसुता बभूव ॥४७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७

सा सीता वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना। हनूमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः ॥ १ ॥
अमृतं विषसंपृक्तं त्वया वानर भाषितम्। यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायणः ॥ २ ॥
ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे। रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति ॥ ३ ॥
विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम। सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैःपश्य मोहितान्॥ ४ ॥
शोकस्यास्य कथं पारं राघवोऽधिगमिष्यति। प्लवमानः परिक्रान्तो हतनौः सागरे यथा ॥ ५ ॥
राक्षसानां वधं कृत्वा सूदयित्वा च रावणम्। लङ्कामुन्मथितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः ॥ ६ ॥
स वाच्यः संत्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते। अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ॥ ७ ॥
वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवंगम। रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥ ८ ॥
विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति। अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत्कुरुते मतिम् ॥ ९ ॥

प्रयत्न कर रहे हैं और व्रत धारण किये हुए हैं ॥ ४६ ॥ रामकी चर्चासे सीताका शोक दूर हो गया, पर रामचन्द्रके शोकित होनेके कारण वह भी उन्हींके समान शोकित हुईं। शरद्कालके प्रारंभमें मेघके टुकड़ेसे आच्छन्न चन्द्रवाली रात्रिके समान सीता हुईं ॥४७॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका छत्तीसवां सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

पूर्णचन्द्रानना सीता हनुमानके वचन सुनकर धर्म और अर्थयुक्त ये वचन उनसे बोलीं ॥ १ ॥ वानर, तुम्हारे ये वचन विषमिले अमृतके समान हैं, कि रामचन्द्र तुम्हारा सदा चिन्तन किया करते हैं और वे दुखी हैं ॥ २ ॥ कोई बड़ा ऐश्वर्यशाली हो अथवा बड़े भयानक दुःखमें फँसा हो—उन दोनोंको रस्सीमें बाँधकर काल खींचता है, अर्थात् दुखीको सुखी बनाता है और सुखीको दुखी ॥ ३ ॥ वानरश्रेष्ठ, भाग्यको उलट देना, मनुष्यकी शक्तिके बाहर है। लक्ष्मणको, मुझको और श्रीरामचन्द्रको दुखमें पड़कर कर्तव्य-विमूढ़ होते देख लो ॥ ४ ॥ रामचन्द्र इस शोकके पार कैसे जायँगे? नावके डूबनेपर पराक्रमी पुरुष तैरकर जैसे समुद्रका पार बड़ी कठिनतासे कर पाता है, वैसीही कठिनता रामचन्द्रको भी उठानी पड़ेगी ॥ ५ ॥ राक्षसोंको मार कर, रावणका नाशकर, लंकाको उजाड़कर मेरे पति मुझे कब देखेंगे ॥ ६ ॥ रामचन्द्रसे कहना कि शीघ्रता करें। यह, वर्षकी अवधि बीतने न पावे; क्योंकि इतनेही दिनोंका मेरा जीवन है ॥७॥ वानर, यह दसवाँ महीना बीत रहा है, दो महीने और बाकी हैं, जो क्रूर रावणने मुझे अवधि दी है ॥ ८ ॥ उसके भाई विभीषणने मुझे लौटा देनेके लिए उसे बहुत समझाया पर वह उनकी बात

मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते । रावणं मार्गते संख्ये मृत्युः कालवशं गतम् ॥१०॥
ज्येष्ठा कन्या कला नाम विभीषणसुता कपे । तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् ॥११॥
अविन्ध्यो नाम मेधावी विद्वान्राक्षसपुंगवः । धृतिमाञ्छीलवान्वृद्धो रावणस्य सुसंमतः ॥१२॥
रामक्षयमनुप्राप्तं रक्षसां प्रत्यचोदयत् । न च तस्य स दुष्टात्मा शृणोति वचनं हितम् ॥१३॥
आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः । अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः ॥१४॥
उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता । विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥१५॥
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां जघान यः । जनस्थाने विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत्॥१६॥
न स शक्यस्तुलयितुं व्यसनैः पुरुषर्षभः । अहं तस्यानुभावज्ञा शक्रस्येव पुलोमजा ॥१७॥
शरजालांशुमाञ्छूरः कपे रामदिवाकरः । शत्रुरक्षोमयं तोयमुपशोषं नयिष्यति ॥१८॥
इति संजल्पमानां तां रामार्थे शोककर्शिताम् । अश्रुसंपूर्णवदनामुवाच हनुमान्कपिः ॥१९॥
श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः । चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसंकुलाम् ॥२०॥
अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव स राक्षसात् । अस्माद्दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते ॥२१॥
त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा संतरिष्यामि सागरम् । शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणाम् ॥२२॥
अहं प्रस्रवणस्थाय राघवायाद्य मैथिलि । प्रापयिष्यामि शक्राय हव्यं हुतमिवानलः ॥२३॥

नहीं मानता है ॥९॥ रावणको मेरा लौटाना अच्छा नहीं लगता, क्योंकि वह कालवश हो गया है । उसे युद्धक्षेत्रमें मृत्यु ढूंढ़ रही है ॥१०॥ वानर, विभीषणकी बड़ी लड़कीका नाम कला है । उसने मुझसे ये बातें कही हैं, उसकी माताने उसे मेरे पास भेजा था ॥ ११ ॥ अविन्ध्य नामक एक विद्वान, धीर, शीलवान्, बूढ़ा राक्षस है और वह रावणका प्रिय है ॥ १२ ॥ उसने रामके द्वारा राक्षसोंके क्षय होनेकी बात कही, पर दुष्टात्मा रावण उसके हितकारी वचन नहीं सुनता । वानरश्रेष्ठ, मुझे आशा है कि मेरे पति शीघ्र ही मुझे मिलेंगे, क्योंकि मेरी अन्तरात्मा शुद्ध है, और उनमें अनेक गुण हैं ॥ १३ ॥ उत्साह, पुरुषार्थ, बल, अक्रूरता, कृतज्ञता, विक्रम और प्रभाव ये गुण रामचन्द्रमें हैं ॥१५॥ जिन्होंने जनस्थानमें चौदह हजार राक्षसोंका भाईकी सहायताके बिना वध किया था उनके द्वारा कौन शत्रु पराजित नहीं किया जा सकता ॥१६॥ रामचन्द्र दुःखोंसे या दुःख देनेवाले राक्षसोंसे विचलित नहीं किये जा सकते । मैं उनके प्रभावको जानती हूँ, जिस प्रकार शची इन्द्रके प्रभावको जानती है ॥ १७ ॥ वानर, रामरूपी सूर्य, बाणरूपी किरणोंसे शत्रुराक्षसरूपी जलको शीघ्र ही सोख लेंगे ॥१८॥ इस प्रकार शोकपीड़ित सीताके कहने पर हनुमान उनसे बोले, उस समय सीताका मुख आँसुओंसे भर गया था ॥१९॥ मेरे वचन सुनते ही वानरभालुओंके साथ शीघ्रही रामचन्द्र तुम्हारे पास आवेंगे ॥२०॥ अथवा, अनिन्दिते, आप मेरी पीठ पर चढ़ें, आजही इस राक्षससे आपका उद्धार मैं कर दूं ॥२१॥ आपको पीठपर लेकर सागर पार करनेकी शक्ति मुझमें है, रावणके साथ समूची लंकाको भी मैं उठा सकता हूं ॥ २२ ॥ प्रस्रवणपर्वत पर बैठे हुए रामचन्द्रके पास आज ही आपको मैं पहुँचा दूंगा, जिस प्रकार हवन की हुई हवि इन्द्रके पास

द्रक्ष्यस्यद्यैव वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् । व्यवसायसमायुक्तं विष्णुं दैत्यवधे यथा ॥२४॥
त्वद्दर्शनकृतोत्साहमाश्रमस्थं महाबलम् । पुरंदरमिवासीनं नगराजस्य मूर्धनि ॥२५॥
पृष्ठमारोह मे देवि मा विकाङ्क्षस्व शोभने । योगमन्विच्छ रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥२६॥
कथयन्तीव शशिना संगमिष्यसि रोहिणी । मत्पृष्ठमधिरोह त्वं तराकाशं महार्णवम् ॥२७॥
नहि मे संप्रयातस्य त्वामितो नयतोऽङ्गने । अनुगन्तुं गतिं शक्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः ॥२८॥
यथैवाहमिह प्राप्तस्तथैवाहमसंशयम् । यास्यामि पश्य वैदेहि त्वामुद्यम्य विहायसम् ॥२९॥
मैथिली तु हरिश्रेष्ठाच्छ्रुत्वा वचनमद्भुतम् । हर्षविस्मितसर्वाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥३०॥
हनूमन्दूरमध्वानं कथं मां नेतुमिच्छसि । तदेव खलु ते मन्ये कपित्वं हरियूथप ॥३१॥
कथं चाल्पशरीरस्त्वं मामितो नेतुमिच्छसि । सकाशं मानवेन्द्रस्य भर्तुर्मे प्लवगर्षभ ॥३२॥
सीतायास्तु वचः श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः । चिन्तयामास लक्ष्मीवान्नवं परिभवं कृतम् ॥३३॥
न मे जानाति सत्त्वं वा प्रभावं वासितेक्षणा । तस्मात्पश्यतु वैदेही यद्रूपं मम कामतः ॥३४॥
इति संचिन्त्य हनुमांस्तदा प्लवगसत्तमः । दर्शयामास सीतायाः स्वरूपमरिमर्दनः ॥३५॥
स तस्मात्पादपाद्धीमानाप्लुत्य प्लवगर्षभः । ततो वर्धितुमारेभे सीताप्रत्ययकारणात् ॥३६॥
मेरुमन्दरसंकाशो बभौ दीप्तानलप्रभः । अग्रतो व्यवतस्थे च सीताया वानरर्षभः ॥३७॥

अग्नि पहुँचाता है ॥ २३ ॥ दैत्यवधके उद्योगमें लगे हुए विष्णुके समान, लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रको आजही आप देखेंगी ॥ २४ ॥ आपके दर्शनके लिए उत्साहित रामचन्द्रको ऐरावतपर बैठे इन्द्रके समान आप देखेंगी ॥२५॥ देवि, मेरी पीठ पर आप चढ़ें, मेरी प्रार्थनाकी उपेक्षा न करें, रामचन्द्रसे मिलिए, जिस प्रकार, चन्द्रमासे रोहिणी मिलती है ॥ २६ ॥ बात समाप्त होते होते चन्द्रमासे रोहिणीके समान आप रामचन्द्रसे मिल जायंगी, आप मेरी पीठ पर चढ़ें और आकाशमार्गसे समुद्र पार करें ॥ २७ ॥ आपको लेकर जब मैं यहाँसे चलूंगा, तब मेरा पीछा करनेकी शक्ति समस्त लंका निवासियोंमें नहीं है ॥ २८ ॥ जिस प्रकार मैं यहाँ पहुँचा हूँ उसी प्रकार आपको लेकर आकाशमार्गसे मैं वहाँ चला जाऊँगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ वानरश्रेष्ठके ये अद्‌भुत वचन सुनकर हर्षसे सीताका सर्वाङ्ग पुलकित हो गया और वे हनुमानसे बोलीं ॥३०॥ हनुमान्, इतनी दूर मुझे ले जानेकी इच्छा तुम क्यों करते हो, मैं तो इसे तुम्हारी वानरी चंचलताही समझती हूँ ॥ ३१ ॥ वानरश्रेष्ठ, तुम्हारा शरीर बहुत छोटा है । तुम मेरे स्वामी रामचन्द्रके पास मुझे ले जानेकी इच्छा कैसे करते हो ॥ ३२ ॥ सीताके वचन सुनकर वायुपुत्र हनुमान सीताके इस अभिनव तिरस्कारसे विचारमें पड़ गये, वे सोचने लगे ॥ ३३ ॥ असितेक्षणा सीता मेरा बल वा प्रभाव नहीं जानतीं अतएव वह मेरा रूप अच्छी तरह देखें ॥ ३४ ॥ शत्रुनाशी हनुमानने ऐसा सोचकर अपना रूप सीताको दिखाया ॥ ३५ ॥ बुद्धिमान हनुमान उस वृक्षसे नीचे उतरकर सीताको अपनी शक्तिका विश्वास दिलानेके लिए बढ़ने लगे ॥ ३६ ॥ मेरुके समान विशाल, प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी होकर हनुमान सीताके समाने खड़े

हरिः पर्वतसंकाशस्ताम्रवक्त्रो महाबल । वज्रदंष्ट्रनखो भीमो वैदेहीमिदमब्रवीत् ॥३८॥
सपर्वतवनोद्देशां साट्टप्राकारतोरणाम् । लङ्कामिमां सनाथां वा नयितुं शक्तिरस्ति मे ॥३९॥
तदवस्थाप्यतां बुद्धिरलं देवि विकाङ्क्षया । विशोकं कुरु वैदेहि राघवं सहलक्ष्मणम् ॥४०॥
तं दृष्ट्वाचलसंकाशमुवाच जनकात्मजा । पद्मपत्रविशालाक्षी मारुतस्यौरसं सुतम् ॥४१॥
तव सत्त्वं बलं चैव विजानामि महाकपे । वायोरिव गतिश्चापि तेजश्चाग्नेरिवाद्भुतम् ॥४२॥
प्राकृतोऽन्यः कथं चेमां भूमिमागन्तुमर्हति । उदधेरप्रमेयस्य पारं वानरयूथप ॥४३॥
जानामि गमने शक्तिं नयने चापि ते मम । अवश्यं संप्रधार्याशु कार्यसिद्धिरिवात्मनः ॥४४॥
अयुक्तं तु कपिश्रेष्ठ मया गन्तुं त्वया सह । वायुवेगसवेगस्य वेगो मां मोहयेत्तव ॥४५॥
अहमाकाशमासक्ता उपर्युपरि सागरम् । प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भूयो वेगेन गच्छतः ॥४६॥
पतिता सागरे चाहं तिमिनक्रझषाकुले । भवेयमाशु विवशा यादसामन्नमुत्तमम् ॥४७॥
न च शक्ष्ये त्वया सार्धं गन्तुं शत्रुविनाशन । कलत्रवति संदेहस्त्वयि स्यादप्यसंशयम् ॥४८॥
ह्रियमाणां तु मां दृष्ट्वा राक्षसा भीमविक्रमाः । अनुगच्छेयुरादिष्टा रावणेन दुरात्मना ॥४९॥
तैस्त्वं परिवृतः शूरैः शूलमुद्गरपाणिभिः । भवेस्त्वं संशयं प्राप्तो मया वीर कलत्रवान् ॥५०॥
सायुधा बहवो व्योम्नि राक्षसास्त्वं निरायुधः । कथं शक्ष्यसि संयातुं मां चैव परिरक्षितुम् ॥५१॥

हुए ॥३७॥ रक्तमुख, महाबली, पर्वतकेसमान भयंकर, वज्रके समान दाढ़ और नखवाले हनुमान सीतासे इस प्रकार बोले ॥ ३८ ॥ पर्वतों, वनों, अटारियों, तोरणों तथा रावणके साथ समस्त लंकाको ले जानेकी शक्ति मुझमें है ॥ ३९ ॥ देवि, अपनी बुद्धि ठीक करो, और लक्ष्मणसहित रामका शोक दूर करो ॥ ४० ॥ वायुपुत्र हनुमानको पर्वतके समान देखकर कमलाक्षी सीता उनसे बोलीं ॥४१॥ तुम्हारा बल और पराक्रम मैं जानती हूँ, वायुके समान तुम्हारा वेग और अग्निके समान अद्भुत तेज भी जानती हूँ ॥ ४२ ॥ वानरसेनापति, इस विशाल समुद्रके पार दूसरा कोई साधारण वानर कैसे आ सकता था, और लंकामें प्रवेश कैसे कर सकता था ॥ ४३ ॥ समुद्र पार करने और मुझे ले जानेकी तुम्हारी शक्ति मैं जानती हूं, फिर भी, अपनी कार्यसिद्धि-के विषयमें अवश्य विचार करना चाहिए ॥ ४४ ॥ वानरश्रेष्ठ, तुम्हारे साथ मेरा जाना अनुचित है, क्योंकि वायुके समान तुम्हारे वेगसे मैं बेहोश हो जाऊंगी ॥ ४५ ॥ समुद्रके ऊपर ऊपर आकाशमें चलती हुई मैं तुम्हारे वेगके कारण तुम्हारी पीठसे गिर जाऊंगी ॥ ४६ ॥ तिमि मगर और मछलियोंसे भरे हुए समुद्र में गिरकर मैं विवशतापूर्वक शीघ्रही जलजन्तुओंका भोजन बन जाऊंगी ॥४७॥ शत्रुविनाशन, मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकती, स्त्रीके साथ तुमको जाते देखकर निश्चय राक्षसोंका तुमपर सन्देह होगा ॥४८॥ मेरा हरण होते देखकर पराक्रमी राक्षस दुरात्मा रावणकी आज्ञासे तुम्हारा पीछा करेंगे ॥ ४९ ॥ वीर, मेरे कारण स्त्रीयुक्त तुम शूल मुद्गर आदि धारण करनेवाले वीर राक्षसोंसे घिर जाओगे और संकटमें पड़ जाओगे ॥५०॥ आकाशमें तुम अकेले और अस्त्रहीन रहोगे, राक्षस अनेक तथा अस्त्रसहित होंगे, उस समय

युद्ध्यमानस्य रक्षोभिस्ततस्तैः क्रूरकर्मभिः । प्रपतेयं हि ते पृष्ठाद्भयार्ता कपिसत्तम ॥५२॥
अथ रक्षांसि भीमानि महान्ति बलवन्ति च । कथंचित्सांपराये त्वां जयेयुः कपिसत्तम ॥५३॥
अथवा युद्ध्यमानस्य पतेयं विमुखस्य ते । पतितां च गृहीत्वा मां नयेयुः पापराक्षसाः ॥५४॥
मां वा हरेयुस्त्वद्धस्ताद्विशसेयुरथापि वा । अनवस्थौ हि दृश्येते युद्धे जयपराजयौ ॥५५॥
अहं वापि विपद्येयं रक्षोभिरभितर्जिता । त्वत्प्रयत्नो हरिश्रेष्ठ भवेन्निष्फल एव तु ॥५६॥
कामं त्वमपि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान् । राघवस्य यशो हीयेत्त्वया शस्तैस्तु राक्षसैः ॥५७॥
अथवादाय रक्षांसि न्यसेयुः संवृते हि माम् । यत्र ते नाभिजानीयुर्हरयो नापि राघवः ॥५८॥
आरम्भस्तु मदर्थोऽयं ततस्तव निरर्थकः । त्वया हि सह रामस्य महानागमने गुणः ॥५९॥
मयि जीवितमायत्तं राघवस्यामितौजसः । भ्रातॄणां च महाबाहो तव राजकुलस्य च ॥६०॥
तौ निराशौ मदर्थं च शोकसंतापकर्शितौ । सह सर्वर्क्षहरिभिस्त्यक्ष्यतः प्राणसंग्रहम् ॥६१॥
भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर । नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ॥६२॥
यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात् । अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥६३॥
यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम् । मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥६४॥

श्रुताश्च दृष्टा हि मया पराक्रमा महात्मनस्तस्य रणावमर्दिनः ।
न देवगन्धर्वभुजंगराक्षसा भवन्ति रामेण समा हि संयुगे ॥ ६५ ॥

तुम उनसे युद्ध तथा मेरी रक्षा दोनों कैसे कर सकोगे ॥५१॥ क्रूर राक्षसोंसे तुम्हारे युद्ध करने के समय डरकर मैं तुम्हारी पीठसे गिर जाऊंगी ॥५२॥ बलवान् विशाल और भयंकर राक्षस यदि युद्धमें तुमको किसी प्रकार जीत लें अथवा युद्धमें बझे रहनेके कारण मेरी ओर तुम्हारा ध्यान न रहे और मैं गिरजाऊं तो राक्षस मुझे उठा ले जायँगे, वे तुम्हारे हाथसे मुझे छीन भी ले जा सकते हैं और मेरा वध भी कर सकते हैं, क्योंकि युद्धमें जय पराजयका कोई निश्चय नहीं रहता ॥५३–५५॥ मैं भी राक्षसोंके तर्जन गर्जनसे, वानरश्रेष्ठ, मर जाऊँगी और तुम्हारा प्रयत्न तो व्यर्थ हो ही जायगा ॥ ५६ ॥ सब राक्षसोंकी मारनेकी शक्ति तुम भी रखते हो, पर तुम्हारे द्वारा राक्षसोंका वध होनेसे रामचन्द्रको अयश होगा ॥ ५७ ॥ अथवा राक्षस मुझको कहीं ऐसी गुप्त जगहमें रख दें जहां न तो वानरोंको और न रामचन्द्रको ही कुछ पता लग सके ॥ ५८ ॥ उस समय मेरे लिए तुम्हारे उद्योग व्यर्थ हो जायंगे । हाँ तुम्हारे साथ रामचन्द्रके आनेमें अनेक गुण हैं ॥ ५९ ॥ अतुल पराक्रमी रामचन्द्रका, भाइयोंका और राजा सुग्रीवके कुलका जीवन मेरे अधीन है, शोक-सन्ताप-पीड़ित वे दोनों जब मेरी ओरसे निराश हो जायँगे तो समस्त भालु वानरोंके साथ प्राणोंकी उपेक्षा कर देंगे ॥ ६०, ६१ ॥ वानर, पतिभक्तिके कारण रामचन्द्रके अतिरिक्त किसी दूसरेका शरीरस्पर्श करना अपनी इच्छासे मैं नहीं चाहती, जो मैंने पहले रावणका शरीर स्पर्श किया उस समय मैं लाचार थी । विवश और रक्षकहीन थी ॥ ६३ ॥ राक्षसोंके साथ रावणको मार कर और मुझे लेकर यदि रामचन्द्र यहाँसे जायं तो यह उनके योग्य होगा ॥ ६४ ॥ रणमें शत्रु-मर्दनकारी महात्मा रामचन्द्रके पराक्रम मैंने सुने और देखे हैं । देवता, गन्धर्व, नाग और राक्षस

समीक्ष्य तं संयति चित्रकार्मुकं महाबलं वासवतुल्यविक्रमम् ।
सलक्ष्मणं को विषहेत राघवं हुताशनं दीप्तमिवानिलेरितम् ॥ ६६ ॥
सलक्ष्मणं राघवमाजिमर्दनं दिशागजं मत्तमिव व्यवस्थितम् ।
सहेत को वानरमुख्य संयुगे युगान्तसूर्यप्रतिमं शरार्चिषम् ॥ ६७ ॥
स मे कपिश्रेष्ठ सलक्ष्मणं प्रियं सयूथपं क्षिप्रमिहोपपादय ।
चिराय रामं प्रति शोककर्शितां कुरुष्व मां वानरवीर हर्षिताम् ॥६८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ३८

ततः स कपिशार्दूलस्तेन वाक्येन तोषितः । सीतामुवाच तच्छ्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ १ ॥
युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने । सदृशं स्त्रीस्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य च ॥ २ ॥
स्त्रीत्वान्न त्वं समर्थासि सागरं व्यतिवर्तितुम् । मामधिष्ठाय विस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ ३ ॥
द्वितीयं कारणं यच्च ब्रवीषि विनयान्विते । रामादन्यस्य नार्हामि संसर्गमिति जानकी ॥ ४ ॥
एतत्ते देवि सदृशं पत्न्यास्तस्य महात्मनः । का ह्यन्या त्वामृते देवि ब्रूयाद्वचनमीदृशम् ॥ ५ ॥
श्रोष्यते चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः । चेष्टितं यत्त्वया देवि भाषितं च ममाग्रतः ॥ ६ ॥

कोई भी युद्धमें उनकी बराबरी नहीं कर सकता ॥ ६५ ॥ युद्धमें चित्रित धनुषवाले, इन्द्रके समान पराक्रमी, महाबली, लक्ष्मणसहित रामचन्द्रको वायुके द्वारा भड़काये अग्निके समान कौन सह सकता है ॥ ६६ ॥ वानरश्रेष्ठ, युद्धमें शत्रुओंका मर्दन करनेवाले, मतवाले दिग्गजके समान अचल, प्रलयकालीन सूर्यके समान बाणरूपी किरणोंसे युक्त राम और लक्ष्मणको युद्धमें कौन सह सकेगा ॥ ६७ ॥ हे कपिश्रेष्ठ, लक्ष्मणके साथ मेरे प्रिय, सेनापति सहित रामचन्द्रको शीघ्र यहाँ ले आओ, उनके लिए बहुत कालसे दुःखित मुझको प्रसन्न करो ॥ ६८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३७॥

इन बातोंसे सन्तुष्ट होकर सीताके वचन सुनकर बोलनेमें चतुर हनुमान् सीतासे बोले ॥ १ ॥ सुन्दरि, आपने उचित कहा है। स्त्रीस्वभाव, सतियों, और विनयके अनुकूल आपके वचन हैं ॥ २ ॥ सौ योजन चौड़े समुद्रको मेरे साथ स्त्री होनेके कारण आप पार नहीं कर सकतीं, यह ठीक है ॥ ३ ॥ विनयी आपने जो दूसरा कारण बतलाया है कि रामके अतिरिक्त दूसरे पुरुषको मैं छूना नहीं चाहती, देवि, उस महात्माकी पत्नीके लिए ऐसे ही वचन योग्य थे। आपको छोड़कर दूसरी कौन स्त्री ऐसे वचन बोल सकती है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ये सब बातें रामचन्द्र सुनेंगे, मेरे

कारणैर्बहुभिर्देवि रामप्रियचिकीर्षया । स्नेहप्रस्कन्नमनसा मयैतत्समुदीरितम् ॥ ७ ॥
लङ्कााया दुष्प्रवेशत्वाद्दुस्तरत्वान्महोदधेः । सामर्थ्यादात्मनश्चैव मयैतत्समुदीरितम् ॥ ८ ॥
इच्छामि त्वां समानेतुमद्यैव रघुनन्दिना । गुरुस्नेहेन भक्त्या च नान्यथा तदुदाहृतम् ॥ ९ ॥
यदि नोत्सहसे यातुं मया सार्धमनिन्दिते । अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि यत् ॥१०॥
एवमुक्ता हनुमता सीता सुरसुतोपमा । उवाच वचनं मन्दं बाष्पप्रग्रथिताक्षरम् ॥११॥
इदं श्रेष्ठमभिज्ञानं ब्रूयास्त्वं तु मम प्रियम् । शैलस्य चित्रकूटस्य पादे पूर्वोत्तरे पदे ॥१२॥
तापसाश्रमवासिन्याः प्राज्यमूलफलोदके । तस्मिन्सिद्धाश्रिते देशे मन्दाकिन्यविदूरतः ॥१३॥
तस्योपवनखण्डेषु नानापुष्पसुगन्धिषु । विहृत्य सलिलं क्लिन्नो ममाङ्के समुपाविशः ॥१४॥
ततो मां स समायुक्तो वायसः पर्यतुण्डयत् । तमहं लोष्टमुद्यम्य वारयामि स्म वायसम् ॥१५॥
दारयन्स च मां काकस्तत्रैव परिलीयते । न चाप्युपारमन्मांसाद्भक्षार्थी बलिभोजनः ॥१६॥
उत्कर्षन्त्यां च रशनां क्रुद्धायां मयि पक्षिणे । स्रंसमाने च वसने ततो दृष्टा त्वया ह्यहम् ॥१७॥
त्वया विहसिता चाहं क्रुद्धा संलज्जिता तदा । भक्ष्यगृद्धेन काकेन दारिता त्वामुपागता ॥१८॥
ततः श्रान्ताहमुत्सङ्गमासीनस्य तवाविशम् । क्रुध्यन्तीव प्रहृष्टेन त्वयाहं परिसान्त्विता ॥१९॥
बाष्पपूर्णमुखी मन्दं चक्षुषी परिमार्जती । लक्षिताहं त्वया नाथ वायसेन प्रकोपिता ॥२०॥

सामने जो कुछ कार्य आपने किया है और जो कुछ कहा है ॥ ६ ॥ देवि, रामचन्द्रका प्रिय करनेकी इच्छा तथा अनेक कारणोंसे स्नेहके द्वारा मनके व्याकुल हो जानेसे मैंने वैसा कहा ॥ ७ ॥ लंकाके दुष्प्रवेश होनेसे, समुद्र पारकरने की कठिनतासे तथा अपनी शक्ति देखकर मैंने वैसा कहा ॥ ८ ॥ मैं रामचन्द्रके साथ आजही तुमको मिला देना चाहता हूँ । इसी बड़ोंके ऊपर स्नेह तथा भक्तिसे मैंने ऐसा कहा है । दूसरा कोई कारण नहीं है ॥ ९ ॥ अनिन्दिते, यदि आप मेरे साथ जाना उचित न समझें तो अपना कोई चिन्ह दें, जिसको रामचन्द्र पहिचान सकें ॥ १० ॥ हनुमानके ऐसा कहने पर देवकन्यातुल्य सीता बोलीं । रोनेके कारण उनके अक्षर मिलसे गये थे । स्पष्ट मालूम नहीं पड़ते थे ॥११॥ मेरे प्रियसे तुम यह सर्वश्रेष्ठ चिन्ह कहना । चित्रकूट पर्वतके ईशान दिशावाले छोटे पर्वत पर हम लोग थे । जहाँ काफ़ी फल मूल और जल हैं । मन्दाकिनीके पास सिद्धोंके उस स्थानमें आश्रममें रहनेवाली मुझे जो हुआ था वह सुनो । वहाँके अनेक पुष्पोंसे सुगन्धित वनोंमें घूमकर तथा पसीने पसीने होकर आप मेरे गोदमें आगये ॥ १२-१४ ॥ वहाँ मेरे प्रति बुरा अभिप्राय रखनेवाला काक मुझे चोंच मारने लगा । मैं ढेला उठाकर उसको रोकने लगी ॥ १५ ॥ मुझे चोंच मारनेवाला काक वहीं छिप जाता था, हटानेपर भी न हटता था । खानेकी इच्छा रखनेवाले उस काकने मेरा मांस खाना न छोड़ा ॥१६॥ पक्षीपर क्रोध करके अपने वस्त्रको कसनेके लिए इज़ारबन्द मैं खींच रही थी । मेरा वस्त्र कुछ खिसक गया था । उस समय मुझे देखा आपने हँस दिया, जिससे मुझे क्रोध हुआ और मैं लज्जित हुई । भोजनलोभी काकके द्वारा क्षत होकर मैं आपके पास आयी ॥ १७, १८ ॥ अनन्तर बैठे हुए आपके गोदमें थककर मैं पड़ गयी । उस समय मुझे क्रोध था; पर, प्रसन्न होकर आपने मुझे शान्त किया ॥ १९ ॥ आँसूसे

परिश्रमाच्च सुप्ताहं राघवाङ्केऽस्म्यहं चिरम् । पर्यायेण प्रसुप्तश्च ममाङ्के भरताग्रजः ॥२१॥
स तत्र पुनरेवाथ वायसः समुपागमत् । ततः सुप्तप्रबुद्धां मां राघवाङ्कात्समुत्थिताम् ।
वायसः सहसागम्य विरराद स्तनान्तरे ॥२२॥
पुनः पुनरथोत्पत्य विरराद स मां भृशम् । ततः समुत्थितो रामो मुक्तैःशोणितबिन्दुभिः ॥२३॥
स मां दृष्ट्वा महाबाहुर्वितुन्नां स्तनयोस्तदा । आशीविष इव क्रुद्धः श्वसन्वाक्यमभाषत ॥२४॥
केन ते नागनासोरु विक्षतं वै स्तनान्तरम् । कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ॥२५॥
वीक्ष्यमाणस्ततस्तं वै वायसं समवैक्षत । नखैःसरुधिरैस्तीक्ष्णैर्मामेवाभिमुखं स्थितम् ॥२६॥
पुत्रः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः । धरान्तरं गतः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः ॥२७॥
ततस्तस्मिन्महाबाहुः कोपसंवर्तितेक्षणः । वायसे कृतवान्क्रूरां मतिं मतिमतां वरः ॥२८॥
स दर्भं संस्तराद्गृह्य ब्रह्मणोऽस्त्रेण योजयत् । स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखो द्विजम् ॥२९॥
स तं प्रदीप्तं चिक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति । ततस्तु वायसं दर्भः सोऽम्बरेऽनुजगाम ह ॥३०॥
अनुसृष्टस्तदा काको जगाम विविधां गतिम् । त्राणकाम इमं लोकं सर्वं वै विचचार ह ॥३१॥
स पित्रा च परित्यक्तः सर्वैश्च परमर्षिभिः । त्रींल्लोकान्संपरिक्रम्य तमेव शरणं गतः ॥३२॥
स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् । वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत् ॥३३॥
परिद्यूनं विवर्णं च पतमानं तमब्रवीत् । मोघमस्त्रं न शक्यं तु ब्राह्मं कर्तुं तदुच्यताम् ॥३४॥

मेरा मुँह भर गया था । आँखें मैं पोंछ रही थी । कौवे पर मेरा क्रोध था । नाथ, उस समय आपने मुझे देखा था ॥ २० ॥ थकावटसे मैं रामचन्द्रके गोदमें बहुत देर तक सो गयी और वे भी मेरे गोदमें सोगये ॥ २१ ॥ वह कौवा पुनः वहाँ आया । रामचन्द्रके गोदसे सोकर उठी हुई मेरे स्तनोंमें सहसा उसने चोंच मारी ॥ २२ ॥ बार बार उड़कर वह चोंच मारने लगा । उस समय गिरे हुए रक्तबिन्दुओंसे आप जाग पड़े ॥ २३ ॥ मेरे स्तनोंकी व्यथा देखकर क्रुद्ध सर्पके समान साँस लेते हुए आप बोले ॥ २४ ॥ नागनासोरु, किसने तुम्हारे स्तनोंको विक्षत किया है ? कौन विशाल मुखवाले क्रुद्ध सर्पसे खेलना चाहता है ? ॥ २५ ॥ देखते हुए रामचन्द्रने सामने ही रुधिरयुक्त तीखे नखोंवाले उस काकको देखा । वह मेरी ओर बैठा था ॥ २६ ॥ वह काक इन्द्रका पुत्र था । वह पृथिवीके भीतर वायुके समान तेज चल सकता था ॥ २७ ॥ क्रोधसे उनकी आँखें घूम गयीं । बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रने उसके विषयमें कठोर विचार किया ॥ २८ ॥ कुशके आसनसे एक कुश निकालकर उसे ब्रह्मास्त्रसे अभिमंत्रित किया । वह प्रलयकालकी अग्निके समान उस पक्षीकी ओर बढ़कर जलने लगा ॥ २९ ॥ उस जलते हुए कुशको कौवेकी ओर उन्होंने फेंका । उसके पीछे वह कुश आकाशमें गया ॥ ३० ॥ रामका बाण काकका पीछा करने लगा । रक्षाके लिये वह काक कई तरहसे चला । इस तरह वह सब लोकोंको घूम आया ॥३१॥ उसके पिताने तथा अन्य ऋषियोंने भी उसका त्याग कर दिया । तीनों लोकोंमें घूमकर वह पुनः रामचन्द्रकी ही शरण आया ॥ ३२ ॥ वह उनकी शरणमें आकर भूमिमें गिर पड़ा, शरणागत-वत्सल रामने वधयोग्य उस काककी रक्षा की ॥ ३३ ॥ क्षीणशक्ति तथा सूखा हुआ वह काक

ततस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्तिस्म स दक्षिणम्। दत्वा तु दक्षिणं नेत्रं प्राणेभ्यः परिरक्षितः ॥३५॥
स रामाय नमस्कृत्वा राज्ञे दशरथाय च। विसृष्टस्तेन वीरेण प्रतिपेदे स्वमालयम् ॥३६॥
मत्कृते काकमात्रेऽपि ब्रह्मास्त्रं समुदीरितम्। कस्माद्यो मा हरत्त्वत्तः क्षमसे तं महीपते ॥३७॥
स कुरुष्व महोत्साहां कृपां मयि नरर्षभ। त्वया नाथवती नाथ अनाथा इव दृश्यते ॥३८॥
आनृशंस्यं परो धर्मस्त्वत्त एव मया श्रुतम्। जानामि त्वां महावीर्यं महोत्साहं महाबलम् ॥३९॥
अपारवारमक्षोभ्यं गाम्भीर्यात्सागरोपमम्। भर्तारं ससमुद्राया धरण्या वासवोपमम् ॥४०॥
एवमस्त्रविदां श्रेष्ठो बलवान्सत्त्ववानपि। किमर्थमस्त्रं रक्षःसु न योजयसि राघव ॥४१॥
न नागा नापि गन्धर्वा न सुरा न मरुद्गणाः। रामस्य समरे वेगं शक्ताः प्रतिसमीहितुम् ॥४२॥
तस्य वीर्यवतः कच्चिद्यद्यस्ति मयि संभ्रमः। किमर्थं न शरैस्तीक्ष्णैःक्षयं नयति राक्षसान् ॥४३॥
भ्रातुरादेशमादाय लक्ष्मणो वा परंतपः। कस्य हेतोर्न मां वीरः परित्राति महाबलः ॥४४॥
यदि तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्विन्द्रसमतेजसौ। सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः ॥४५॥
ममैव दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः। समर्थावपि तौ यन्मां नावेक्षेते परंतपौ ॥४६॥
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रु भाषितम्। अथाब्रवीन्महातेजा हनूमान्हरियूथपः ॥४७॥
त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे। रामे दुःखाभिपन्ने तु लक्ष्मणः परितप्यते ॥४८॥

जब रामके सामने आकर गिरा तब उन्होंने उससे कहा कि ब्रह्मास्त्र व्यर्थ नहीं जा सकता, फिर उपाय बतलाओ ॥ ३४ ॥ अनन्तर उसकी दाहिनी आँख फोड़कर उन्होंने उसके प्राणकी रक्षा की ॥ ३५ ॥ वह राम और दशरथको प्रणाम करके तथा वीर रामसे विदा होकर अपने घर चला गया ॥ ३६ ॥ मेरे लिए एक काक पर जिन्होंने ब्रह्मास्त्र छोड़ा था, वे राजा रामचन्द्र उसे कैसे क्षमा कर रहे हैं जिसने मेरा हरण किया है ॥ ३७ ॥ नरश्रेष्ठ, आप मुझपर उत्साहयुक्त कृपा करें आप जैसा स्वामी होने पर भी मैं अनाथके समान हो रही हूँ ॥ ३८ ॥ दया परम धर्म है यह मैंने आपहीसे सुना है, मैं जानती हूँ आप बड़े उत्साही, पराक्रमी और बली हैं ॥ ३९ ॥ असीम, अक्षोभ्य, गम्भीरतामें समुद्रके समान, समुद्र पर्यन्त पृथिवीका स्वामी तथा इन्द्रके तुल्य आपको मैं जानती हूँ ॥ ४० ॥ इस प्रकार अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, बली और पराक्रमी होकर भी, रामचन्द्र! आप राक्षसों पर अस्त्रप्रयोग क्यों नहीं करते ॥ ४१ ॥ न नाग, न गन्धर्व, न देवता और न मरुद्गण, कोई भी रणमें प्रतिद्वन्द्वी होकर रामके वेगको नहीं सह सकता ॥ ४२ ॥ यदि उन पराक्रमी रामचन्द्र-का मेरे लिए कुछ भी आदर है तो वे तीखे बाणोंसे राक्षसोंका विनाश क्यों नहीं करते ॥ ४३ ॥ अथवा भाईकी आज्ञा लेकर शत्रुतापी महाबली वीर लक्ष्मण किस कारण मेरा उद्धार नहीं करते ॥ ४४ ॥ यदि वे दोनों पुरुषसिंह वायु तथा इन्द्रके समान तेजस्वी हैं, देवताओंसे भी नहीं पराजित होनेवाले हैं, तो वे मेरी उपेक्षा क्यों करते हैं ॥ ४५ ॥ समर्थ होनेपर भी मेरी चिन्ता नहीं करते यह मेरे किसी पापहीका फल है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४६ ॥ जानकीके अश्रुयुक्त तथा दयनीय ये वचन सुनकर महातेजस्वी हनुमान् बोले ॥ ४७ ॥ देवि, सत्यकी शपथ करके मैं कहता हूँ, रामचन्द्र तुम्हारे शोकके कारण सब कार्योंसे विमुख हो गये हैं, रामके दुःखी होनेसे

कथंचिद्भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् । इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि शोभने ॥४९॥
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रौ महाबलौ । त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लोकान्भस्मीकरिष्यतः ॥५०॥
हत्वा च समरे क्रूरं रावणं सहबान्धवम् । राघवस्त्वां विशालाक्षि स्वां पुरीं प्रति नेष्यति ॥५१॥
ब्रूहि यद्राघवो वाच्यो लक्ष्मणश्च महाबलः । सुग्रीवो वापि तेजस्वी हरयो वा समागताः ॥५२॥
इत्युक्तवति तस्मिंश्च सीता पुनरथाब्रवीत् । कौसल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी ॥५३॥
तं ममार्थे सुखं पृच्छ शिरसा चाभिवादय । स्रजश्च सर्वरत्नानि प्रिया याश्च वराङ्गनाः ॥५४॥
ऐश्वर्यं च विशालायां पृथिव्यामपि दुर्लभम् । पितरं मातरं चैव संमान्याभिप्रसाद्य च ॥५५॥
अनुप्रव्रजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः । आनुकूल्येन धर्मात्मा त्यक्त्वा सुखमनुत्तमम् ॥५६॥
अनुगच्छति काकुत्स्थं भ्रातरं पालयन्वने । सिंहस्कन्धो महाबाहुर्मनस्वी प्रियदर्शनः ॥५७॥
पितृवद्वर्तते रामे मातृवन्मां समाचरत् । ह्रियमाणां तदा वीरो न तु मां वेद लक्ष्मणः ॥५८॥
वृद्धोपसेवी लक्ष्मीवाञ्शक्तो न बहुभाषिता । राजपुत्रप्रियश्रेष्ठः सदृशः श्वशुरस्य मे ॥५९॥
मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः । नियुक्तो धुरि यस्यां तु तामुद्वहति वीर्यवान् ॥६०॥
यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनुस्मरत् । स ममार्थाय कुशलं वक्तव्यो वचनान्मम ॥६१॥
मृदुर्नित्यं शुचिर्दक्षः प्रियो रामस्य लक्ष्मणः । यथा हि वानरश्रेष्ठ दुःखक्षयकरो भवेत् ॥६२॥

लक्ष्मण भी दुःखी हैं ॥ ४८ ॥ किसी प्रकार आपका पता लगा। अब शोक करनेका समय नहीं है। शोभने, अपने दुःखोंका अन्त आप शीघ्रही देखेंगी ॥ ४९ ॥ वे दोनों महाबली पुरुषसिंह राजपुत्र आपके दर्शनके लिए उत्साहित होकर शीघ्रही राक्षसोंका विनाश करेंगे ॥ ५० ॥ रणभयंकर रावणको उसके बान्धवोंके साथ मारकर विशालाक्षि, राघव शीघ्रही आपको अपनी नगरीमें ले जायँगे ॥ ५१ ॥ राघव, महाबली लक्ष्मण, तेजस्वी सुग्रीव और वहाँ एकत्र वानरोंसे जो आप कहना चाहती हों कहें। हनुमान्‌के ऐसा कहने पर सीता पुनः बोलीं—मनस्विनी कौशल्याने जिन लोकस्वामीको उत्पन्न किया है, मेरी ओरसे उनसे कुशल पूछना और मस्तक झुकाकर प्रणाम कहना। उत्तम मालाएँ, सब रत्न, सुन्दरी स्त्रियाँ, समस्त पृथिवीके दुर्लभ ऐश्वर्यका त्याग करके माता पिताको प्रसन्न करके जो रामके साथ वन आये, जिसके कारण सुमित्रा पुत्रवती हैं, जो धर्मात्मा सब सुखोंका त्याग करके वनमें भाईकी रक्षा करता हुए, उनके अनुकूल आचरण करते हैं, जिसके कन्धे सिंहके समान हैं, भुजाएँ लम्बी हैं, जो मनस्वी और प्रियदर्शन हैं, जो रामचन्द्रको पिताके समान, मुझको माताके समान समझते हैं मेरा हरण तिन वीर लक्ष्मणको मालूम नहीं है। जो वृद्धोंकी सेवा करनेवाले शक्तिमान और सुन्दर हैं, जो बहुत नहीं बोलते, जो रामचन्द्रके अत्यन्त प्रिय हैं और मेरे श्वशुरके समान हैं, रामचन्द्रके मुझसे भी अधिक प्रिय जो लक्ष्मण हैं, जो कार्य उन्हें सौंपा जाय उसे जो सिद्ध करते हैं जिनको देखकर रामचन्द्र पितृवियोगका स्मरण नहीं करते उन लक्ष्मणसे तुम मेरी ओरसे कुशल पूछना ॥ ५२ .... ६१ ॥ लक्ष्मण कोमल, शुद्ध और रामचन्द्रके प्रिय हैं। वानरश्रेष्ठ, उनसे ऐसी बातें कहना जिससे वे मेरे दुःख दूर करनेके लिए उद्यत हो जाँय ॥ ६२ ॥ वानरसेनापति, इस कार्यका भार तुम्हारेही ऊपर है, तुम्हारेही उत्साह देनेसे

त्वमस्मिन्कार्यनिर्वाहे प्रमाणं हरियूथप । राघवस्त्वत्समारम्भान्मयि यत्नपरो भवेत् ॥६३॥
इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः । जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ॥६४॥
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते । रावणेनोपरुद्धां मां निकृत्या पापकर्मणा ।
त्रातुमर्हसि वीर त्वं पातालादिव कौशिकीम् ॥६५॥
ततोवस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम् । प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ॥६६॥
प्रतिगृह्य ततो वीरो मणिरत्नमनुत्तमम् । अङ्गुल्या योजयामास नह्यस्य प्राभवद्भुजः ॥६७॥
मणिरत्नं कपिवरः प्रतिगृह्याभिवाद्य च । सीतां प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतःपार्श्वतःस्थितः ॥६८॥
हर्षेण महता युक्तः सीतादर्शनजेन सः । हृदयेन गतो रामं लक्ष्मणं च सलक्षणम् ॥६९॥
मणिवरमुपगृह्य तं महार्हं जनकनृपात्मजया धृतं प्रभावात् ।
गिरिवरपवनावधूतमुक्तः सुखितमनाः प्रतिसंक्रमं प्रपेदे ॥ ७० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टत्रिंशः सर्गः ॥३८॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९

मणिं दत्त्वा ततः सीता हनुमन्तमथाब्रवीत् । अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद्रामस्य तत्त्वतः ॥ १ ॥
मणिं दृष्ट्वा तु रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति । वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च ॥ २ ॥

रामचन्द्र मेरे लिए उद्योग करेंगे ॥ ६३ ॥ मेरे वीर स्वामी रामचन्द्रसे तुम बारम्बार यह कहना कि सीता एक महीने तक और जीती रहेंगी, एक महीनेके बाद वे जी न सकेंगी, यह उन्होंने सत्य सत्य कहा है, पापी राक्षस रावणकी कैदमें पड़ी हुई सीताका आप उद्धार करें, जिस प्रकार पातालमग्न पृथिवीका उद्धार विष्णुने किया था ॥ ६४॥६५ ॥ अनन्तर कपड़ेमें बँधा हुआ दिव्य चूड़ामणि निकालकर सीताने हनुमान्‌को रामचन्द्रको देनेके लिए दिया ॥ ६६ ॥ वह श्रेष्ठ भूषण लेकर हनुमान्‌ने अंगुलीमें पहन लिया, वह उनकी बांहमें ठीक नहीं हो सका था ॥ ६७ ॥ मणि लेकर सीताको प्रणाम और प्रदक्षिणा करके नम्रतापूर्वक वे उनके पास खड़े होगये ॥ ६८ ॥ सीताको देखनेसे हनुमान् बहुत प्रसन्न थे, उनका मन सुलक्षण लक्ष्मण और रामके पास पहुँच गया ॥ ६९ ॥ सीताके द्वारा धारण किया हुआ वह उत्तम मणि लेकर हनुमान् पर्वतकी हवासे पहले कम्पित, पुनः मुक्त, होकर वहाँसे धीरे धीरे चले ॥ ७० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त॥ ३८ ॥

मणि देकर सीता हनुमान्‌से बोलीं—यह मेरा दिया हुआ चिन्ह रामचन्द्रका अच्छी तरह जाना हुआ है ॥ १ ॥ इस मणिको देखकर वीर राम माताको मुझको और राजा दशरथको

स भूयस्त्वं समुत्साहचोदितो हरिसत्तम । अस्मिन्कार्यसमुत्साहे प्रचिन्तय यदुत्तरम् ॥ ३ ॥
त्वमस्मिन्कार्यनिर्योगे प्रमाणं हरिसत्तम । तस्य चिन्तय यो यत्नो दुःखक्षयकरो भवेत् ॥ ४ ॥
हनुमन्यत्नमास्थाय दुःखक्षयकरो भव । स तथेति प्रतिज्ञाय मारुतिर्भीमविक्रमः ॥ ५ ॥
शिरसा वन्द्य वैदेहीं गमनायोपचक्रमे । ज्ञात्वा संप्रस्थितं देवी वानरं पवनात्मजम् ॥ ६ ॥
बाष्पगद्गदया वाचा मैथिली वाक्यमब्रवीत् । हनुमन्कुशलं ब्रूयाः सहितौ रामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्वृद्धांश्च वानरान् । ब्रूयास्त्वं वानरश्रेष्ठ कुशलं धर्मसंहितम् ॥ ८ ॥
यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः । अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वं समाधातुमर्हसि ॥ ९ ॥
जीवन्तीं मां यथारामः संभावयति कीर्तिमान् । तत्त्वया हनुमन्वाच्यं वाचा धर्ममवाप्नुहि ॥१०॥
नित्यमुत्साहयुक्तस्य वाचः श्रुत्वा मयेरिताः । वर्धिष्यते दाशरथेः पौरुषं मदवाप्तये ॥११॥
मत्संदेशयुता वाचस्त्वत्तः श्रुत्वैव राघवः । पराक्रमे मतिं वीरो विधिवत्संविधास्यति ॥१२॥
सीतायास्तद्वचः श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः । शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥१३॥
क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृतः । यस्ते युधि विजित्यारीञ्शोकं व्यपनयिष्यति ॥१४॥
नहि पश्यामि मर्त्येषु नासुरेषु सुरेषु वा । यस्तस्य वमतो बाणान्स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥१५॥
अप्यर्कमपि पर्जन्यमपि वैवस्वतं यमम् । स हि सोढुं रणे शक्तस्तव हेतोर्विशेषतः ॥१६॥
स हि सागरपर्यन्तां महीं साधितुमर्हति । त्वन्निमित्तो हि रामस्य जयो जनकनन्दिनि ॥१७॥

अवश्य स्मरण करेंगे ॥ २ ॥ इस मणिको देखकर राघव समुत्साहित होंगे और तुमको प्रेरित करेंगे, उस समयके कर्त्तव्यका विचार कर लो ॥ ३ ॥ कपिप्रवर, इस कार्यका समस्त भार तुमपर है । जिस उपायसे दुःख दूर हो उसका निश्चय तुम करो ॥ ४ ॥ हनुमान, रामचन्द्रको इस कार्यमें प्रवृत्त करके मेरे दुःख दूर करो, पराक्रमी मारुतिने भी प्रतिज्ञा की ॥ ५ ॥ सीताको प्रणाम करके चलनेके लिए तयार हुए । वायुपुत्र हनुमान्को जाता जानकर बाष्पगद्गद स्वरसे जानकी बोलीं—राम और लक्ष्मणसे कुशल कहना । सुग्रीव, उनके सचिव, तथा समस्त बूढ़े वानरोंसे धर्मयुक्त कुशल कहना ॥ ६-८ ॥ इस दुःखसमुद्रसे रामचन्द्र जिस प्रकार मेरा उद्धार करें वैसा उपाय तुम करो ॥ ९ ॥ कीर्तिमान् राम मेरे जीते जीते मुझको जिस प्रकार मिलें, ऐसा तुम उनसे कहना । इस कहनेसे तुम्हें धर्म होगा ॥ १० ॥ मेरी ये बातें सुनकर उत्साहयुक्त रामचन्द्रका पराक्रम और बढ़ेगा ॥ ११ ॥ मेरे सन्देशके वचन तुमसे सुनकर ही रामचन्द्र पुरुषार्थ करनेका यथोचित निश्चय करेंगे ॥ १२ ॥ सीताके वे वचन सुनकर मारुतात्मज हनुमान् हाथ जोड़कर वचन बोले ॥ १३ ॥ वानर भालुओंके साथ रामचन्द्र शीघ्र ही आवेंगे, जो युद्धमें शत्रुओंको जीत कर तुम्हारे दुःख दूर करेंगे । मनुष्यों, असुरों और देवताओंमें किसीको मैं ऐसा नहीं देखता जो बाण बरसाते हुए रामचन्द्रके सामने खड़ा रहनेका उत्साह रखता हो ॥ १५ ॥ सूर्य, इन्द्र, वैवस्वत, यम, इनसे भी रामचन्द्र युद्ध कर सकते हैं, विशेषकर तुम्हारे लिए ॥ १६ ॥ रामचन्द्र समुद्र पर्यन्त पृथिवीको जीत सकते हैं । वे तुम्हारे निमित्त अवश्य ही विजयी होंगे ॥ १७ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सम्यक्सत्यं सुभाषितम् । जानकी बहु मेने तं वचनं चेदमब्रवीत् ॥१८॥
ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्ष्यमाणा पुनः पुनः । भर्तृस्नेहान्वितं वाक्यं सौहार्दादनुमानयत् ॥१९॥
यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिंदम । कस्मिंश्चित्संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥२०॥
मम चैवाल्पभाग्यायाः सांनिध्यात्तव वानर । अस्य शोकस्य महतो मुहूर्तं मोक्षणं भवेत् ॥२१॥
ततो हि हरिशार्दूल पुनरागमनाय तु । प्राणानामपि संदेहो मम स्यान्नात्र संशयः ॥२२॥
तवादर्शनजः शोको भूयो मां परितापयेत् । दुःखाद्दुःखपरामृष्टां दीपयन्निव वानर ॥२३॥
अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः । सुमहांस्त्वत्सहायेषु हर्यृक्षेषु हरीश्वरः ॥२४॥
कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यति महोदधिम् । तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥२५॥
त्रयाणामेव भूतानां सागरस्येह लङ्घने । शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य तव वा मारुतस्य वा ॥२६॥
तदस्मिन्कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे । किं पश्यसे समाधानं त्वं हि कार्यविदां वरः ॥२७॥
काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने । पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते फलोदयः ॥२८॥
बलैः समग्रैर्युधि मां रावणं जित्य संयुगे । विजयी स्वपुरं यायात्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥२९॥
बलैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः । मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥३०॥
तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः । भवेदाहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥३१॥
तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् । निशम्य हनुमाञ्शेषं वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥३२॥

सत्य, सुननेमें मधुर, हनुमान्‌के वचन सुनकर जानकीने उनका बहुत आदर किया और वे उनसे बोलीं॥१८॥जानेके लिये उद्यत, स्वामिपरायण, हनुमान्‌को बार-बार देखती हुई सीताने स्नेहके कारण उनका सत्कार किया ॥ १९ ॥ वीर, यदि तुम उचित समझो तो कहीं गुप्त स्थानमें एक दिन और ठहरो । विश्राम करके कल जाना ॥ २० ॥ हे वानर, तुम्हारे रहनेसे, अभागिनी मुझे इस बड़े दुःखसे थोड़ी देरके लिए शान्ति मिलेगी ॥ २१ ॥ यदि तुम्हारे पुनः आनेमें सन्देह हुआ तो मेरे प्राणोंका भी सन्देह ही होगा अर्थात् उसकी रक्षाका कोई उपाय न रह जायगा ॥ २२ ॥ तुम्हें न देखनेका दुःख मुझे दुःखी करेगा । अति दुःखिनी मुझको जलाने लगेगा ॥ २३ ॥ वीर, यह बड़ा सन्देह तो मेरे सामने ही है कि तुम्हारे सहायक वानर भालु तथा सुग्रीव इस दुष्पार समुद्रको कैसे पार करेंगे ? वानरभालुओंकी सेना तथा वे दोनों राजपुत्र कैसे पार करेंगे ॥ २४, २५ ॥ तीनही प्राणियोंको इस समुद्रको पार करनेकी शक्ति है, गरुड़की, तुम्हारी और वायुकी ॥ २६ ॥ वीर, उपायहीन इस कार्यके लिए कौनसा समाधान देखते हो ? कर्मियोंमें श्रेष्ठ तुम इस विघ्नको कैसे दूर करोगे ? ॥ २७ ॥ हे शत्रुवीरनाशक, तुम्हीं इस कार्यके साधनमें समर्थ हो । इसका फल प्राप्त होने पर तुम्हारा ही यश होगा ॥ २८ ॥ सब सेनाओंके साथ रावणको जीतकर रामचन्द्र विजयी होकर यदि अपने नगरमें जायँगे, तो, यह उनके योग्य होगा ॥ २९ ॥ शत्रु-सेनाको विध्वंस करनेवाले रामचन्द्र अपनी सेनासे लंकाको भर देंगे और मुझको यहाँसे ले जायँगे, तो यह कार्य उनके योग्य होगा ॥ ३० ॥ युद्धवीर रामचन्द्रका पराक्रम जिस प्रकार उनके अनुरूप हो, तुम वैसा करो ॥ ३१ ॥ अर्थयुक्त, स्नेहयुक्त तथा युक्तियुक्त सीताके अन्तिम

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः । सुग्रीवः सत्यसंपन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥३३॥
स वानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंवृतः । क्षिप्रमेष्यति वैदेहि राक्षसानां निबर्हणः ॥३४॥
तस्य विक्रमसंपन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः । मनःसंकल्पसंपाता निदेशे हरयः स्थिताः ॥३५॥
येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक्सज्जते गतिः । न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ॥३६॥
असकृत्तैर्महोत्साहैः ससागरधराधरा । प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ॥३७॥
मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः । मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ ॥३८॥
अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः । नहि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥३९॥
तदलं परितापेन देवि शोको व्यपैतु ते । एकोत्पातेन ते लंकामेष्यन्ति हरियूथपाः ॥४०॥
मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ । त्वत्सकाशं महासङ्घौ नृसिंहावागमिष्यतः ॥४१॥
तौ हि वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ । आगम्य नगरीं लङ्कां सायकैर्विधमिष्यतः ॥४२॥
सगणं रावणं हत्वा राघवो रघुनन्दनः । त्वामादाय वरारोहे स्वपुरीं प्रति यास्यति ॥४३॥
तदाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकाङ्क्षिणी । नचिराद्द्रक्ष्यसे रामं प्रज्वलन्तमिवानलम् ॥४४॥
निहते राक्षसेन्द्रे च सपुत्रामात्यबान्धवे । त्वं समेष्यसि रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥४५॥
क्षिप्रं त्वं देवि शोकस्य पारं द्रक्ष्यसि मैथिलि । रावणं चैव रामेण द्रक्ष्यसे निहतं बलात् ॥४६॥

वचन सुनकर हनुमान् बोले ॥ ३२ ॥ देवि, वानर-भालुओंकी सेनाके स्वामी सुग्रीवने सत्यतापूर्वक तुम्हारे उद्धारका निश्चय किया है । करोड़ों वानरोंके साथ राक्षसोंके विनाशक वे, शीघ्रही तुम्हारे पास आवेंगे ॥ ३३-३४ ॥ पराक्रमी, धीर, महाबली, मानसिक संकल्पके साथही कार्यमें लगनेवाले वानर सुग्रीवके आज्ञावशवर्ती हैं ॥ ३५ ॥ ऊपर, नीचे, सामने जिनकी गति कभी रुकी नहीं, जो बड़े-बड़े कार्योंसे भी नहीं घबराते, जिन तेजस्वी तथा महोत्साहियोंने समुद्र और पर्वतोंके साथ इस पृथिवीकी कई बार प्रदक्षिणा की है, वे वायुके मार्गमें चलनेवाले हैं ॥३६, ३७॥ मुझसे बड़े तथा मेरे समान वानर वहाँ हैं । सुग्रीवके यहाँ मुझसे छोटा वानर कोई नहीं है ॥३८॥ जब मैं यहाँ चला आया, तब उन महाबलियोंके आनेमें सन्देह ही क्या है ? बड़े नहीं भेजे जाते किन्तु भेजे जानेवाले छोटे ही होते हैं ॥ ३९ ॥ देवि, अब दुःख करना व्यर्थ है । आप अपना दुःख दूर करदें । वानरसेनापतिगण एक छलांगमें लङ्का चले आवेंगे ॥ ४० ॥ मेरी पीठ पर चन्द्र सूर्यके समान उदित, बहुत बड़ी सेनाके साथ वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ तुम्हारे पास आवेंगे ॥ ४१ ॥ वीर, नरश्रेष्ठ राम और लक्ष्मण दोनों साथही आकर बाणोंसे लङ्काका विनाश करेंगे ॥ ४२ ॥ सब साथियोंके साथ रावणको मारकर रघुनन्दन राम, सुन्दरी तुमको लेकर अपनी नगरीमें लौट जायँगे ॥ ४३ ॥ देवि, आप धैर्य धारण करें, आपका मंगल हो । समयकी प्रतीक्षा करें । आप शीघ्रही प्रज्वलित अग्निके समान रामचन्द्रको देखेंगी । पुत्र, सचिव और बान्धवोंके साथ राक्षसेन्द्रके मारे जाने पर, आप, चन्द्रमाके साथ रोहिणीके समान रामचन्द्रसे मिलेंगी ॥ ४५ ॥ आप शीघ्रही इस दुःखका अन्त देखेंगी और रामके द्वारा बलपूर्वक रावणका वध देखेंगी ॥ ४६ ॥

एवमाश्वास्य वैदेहीं हनूमान्मारुतात्मजः । गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीं पुनरब्रवीत् ॥४७॥
तमरिघ्नं कृतात्मानं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् । लक्ष्मणं च धनुष्पाणिं लङ्काद्वारमुपागतम् ॥४८॥
नखदंष्ट्रायुधान्वीरान्सिंहशार्दूलविक्रमान् । वानरान्वारणेन्द्राभान्क्षिप्रं द्रक्ष्यसि संगतान् ॥४९॥
शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु । नर्दतां कपिमुख्यानामार्ये यूथान्यनेकशः ॥५०॥
स तु मर्माणि घोरेण ताडितो मन्मथेषुणा । न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥५१॥
रुद मा देवि शोकेन मा भूत्ते मनसो भयम् । शचीव भर्त्रा शक्रेण सङ्गमेष्यसि शोभने ॥५२॥

रामाद्विशिष्टः कोऽन्योऽस्ति कश्चित्सौमित्रिणा समः ।
अग्निमारुततुल्यौ तौ भ्रातरौ तव संश्रयौ ॥ ५३ ॥
नास्मिंश्चिरं वत्स्यसि देवि देशे रक्षोगणैरध्युषितेऽतिरौद्रे ।
न ते चिरादागमनं प्रियस्य क्षमस्व मत्संगमकालमात्रम् ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥

चत्वारिंशः सर्गः ४०

श्रुत्वा तु वचनं तस्य वायुसूनोर्महात्मनः । उवाचात्महितं वाक्यं सीता सुरसुतोपमा ॥ १ ॥
त्वां दृष्ट्वा प्रियवक्तारं संप्रहृष्यामि वानर । अर्धसंजातसस्येव वृष्टिं प्राप्य वसुंधरा ॥ २ ॥

इस प्रकार जानकीको धैर्य देकर मारुतात्मज हनुमान चलनेके लिए तैयार होकर जानकीसे पुनः बोले ॥ ४७ ॥ शत्रुनाशी उन्नतात्मा उन रामचन्द्रको तथा धनुर्धारी लक्ष्मणको लंका-द्वार पर उपस्थित आप शीघ्रही देखेंगी ॥ ४८ ॥ नख और दाँतके अस्त्रवाले, सिंह-व्याघ्रके समान पराक्रमी, हाथीके समान विशाल वानरोंको शीघ्रही आप उपस्थित देखेंगी ॥ ४९ ॥ पर्वत और मेघके समान, लंकाके पर्वतकी शिखर पर गर्जने हुए वानरप्रधानोंके अनेक दल आप शीघ्र ही देखेंगी ॥ ५० ॥ घोर दुःखसे मर्मस्थानमें पीड़ित राम सुखी नहीं हैं, जिस प्रकार सिंह-पीड़ित हाथी सुखी नहीं होता ॥ ५१ ॥ देवि, आप न रोवें, शोकसे आपका मन भयभीत न हो। पति इन्द्रके साथ इन्द्राणीके समान आप भी अपने पतिसे मिलेंगी ॥ ५२ ॥ रामसे बड़ा कौन है ? लक्ष्मणके समान कौन है ? वे दोनों अग्नि और वायुके समान हैं। वे दोनों भाई तुम्हारे रक्षक हैं ॥ ५३ ॥ राक्षसोंकी अति भयानक इस निवासभूमिमें, देवि, आपको बहुत दिनों तक नहीं रहना होगा। आपके प्रियके आनेमें बहुत विलंब नहीं होगा। जब तक मेरी भेंट उनसे हो, इतने समयके लिए आप अपने प्राणोंकी रक्षा करें ॥ ५४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका उन्तालीसवां सर्ग समाप्त ॥ ३९ ॥

उन महात्मा वायुपुत्रकी बातें सुनकर देवकन्याके समान सीता अपने उद्धारके संबन्धकी बात बोलीं ॥ १ ॥ वानर, प्रिय बोलनेवाले तुमको देखकर मैं रोमांचित हुई हूँ, वृष्टि होने पर

यथा तं पुरुषव्याघ्रं गात्रैः शोकाभिकर्शितैः । संस्पृशेयं सकामाहं तथा कुरु दयां मयि ॥ ३ ॥
अभिज्ञानं च रामस्य दद्या हरिगुणोत्तम । क्षिप्तामिषीकां काकस्य कोपादेकाक्षिशातनीम् ॥ ४ ॥
मनःशिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः । त्वया प्रणष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
स वीर्यवान्कथं सीतां हृतां समनुमन्यसे । वसन्तीं रक्षसां मध्ये महेन्द्रवरुणोपम ॥ ६ ॥
एष चूडामणिर्दिव्यो मया सुपरिरक्षितः । एतं दृष्ट्वा प्रहृष्यामि व्यसने त्वामिवानघ ॥ ७ ॥
एष निर्यातितः श्रीमान्मया ते वारिसंभवः । अतः परं न शक्ष्यामि जीवितुं शोकलालसा ॥ ८ ॥
असह्यानि च दुःखानि वाचश्च हृदयच्छिदः । राक्षसैः सह संवासं त्वत्कृते मर्षयाम्यहम् ॥ ९ ॥
धारयिष्यामि मासं तु जीवितं शत्रुसूदन । मासादूर्ध्वं न जीविष्ये त्वया हीना नृपात्मज ॥१०॥
घोरो राक्षसराजोऽयं दृष्टिश्च न सुखा मयि । त्वां च श्रुत्वा विषज्जन्तं न जीवेयमपि क्षणम् ॥११॥
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साश्रु भाषितम् । अथाब्रवीन्महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ॥१२॥
त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे । रामे शोकाभिभूते तु लक्ष्मणः परितप्यते ॥१३॥
दृष्टा कथंचिद्भवती न कालः परिदेवितुम् । इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि ॥१४॥
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रावनिन्दितौ । त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः ॥१५॥
हत्वा तु समरे रक्षो रावणं सहबान्धवैः । राघवौ त्वां विशालाक्षि स्वां पुरीं प्रति नेष्यतः ॥१६॥

अंकुरित हुई धरतीके समान ॥ २ ॥ मुझपर ऐसी दया करो, जिससे उत्कण्ठित मैं अपने शोकसे कृश अंगोंसे उन पुरुष-सिंहका स्पर्श कर सकूँ॥३॥वानरश्रेष्ठ, क्रोध करके काककी आँख फोड़नेवाले कुशके बाणकी याद रामको दिलाना ॥४॥ उनसे कहना, तिलकके नष्ट हो जाने पर, गालके बगलमें तुमने मैनसिल धातुका जो तिलक लगाया था, उसे स्मरण करो ॥ ५ ॥ इन्द्र और वरुणके समान रामचन्द्र पराक्रम रखते हुए, सीताके हरणको कैसे सह रहे हैं॥६॥यह अलौकिक चूड़ामणि आज तक मैंने यत्नसे रक्खा है । इसे देखकर इस दुःखमें भी तुम्हारे देखनेके समान मैं सुख पाती हूँ ॥ ७ ॥ जलसे उत्पन्न यह मणि अब मैं आपके पास भेज देती हूँ । इसके पश्चात् शोकपीड़ित मैं जी न सकूँगी ॥ ८ ॥ असह्य दुःख, हृदय छेदनेवाले वचन, राक्षसोंके साथ रहना, यह सब तुम्हारे लिए मैं सह रही हूँ ॥ ९ ॥ राजपुत्र, एक महीने तक मैं जीवित रहूँगी । इसके पश्चात् आपके बिना मेरा जीवित रहना असंभव है ॥ १० ॥ यह राक्षसराज बड़ा क्रूर है । इसकी दृष्टि तथा नीयत भी अच्छी नहीं है । तुम विलंब कर रहे हो, इस बातके मालूम होने पर मैं एक क्षण भी न जी सकूँगी ॥ ११ ॥ दयनीय अश्रुयुक्त वैदेहीके वचन सुनकर मारुतात्मज हनुमान बोले ॥ १२ ॥ हे देवि, सत्यकी शपथ करके मैं कहता हूँ कि तुम्हारे शोकके कारण रामचन्द्र सब कार्योंसे विमुख हो गये हैं । रामचन्द्रके दुखी होनेसे लक्ष्मण दुखी हो रहे हैं ॥ १३ ॥ किसी तरह आपका पता लगा । दुःख करनेका यह समय नहीं है । अब शीघ्रही आप अपने दुःखोंका अन्त देखेंगी ॥ १४ ॥ अनिन्दित, पुरुषसिंह दोनों राजपुत्र तुम्हें देखनेके लिए उत्कण्ठित हैं और वे लंकाको जलायेंगे ॥ १५ ॥ बान्धवोंके साथ युद्धमें रावणको मारकर, विशालाक्षि, राम-लक्ष्मण तुमको यहाँसे अपनी नगरीमें

यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते । प्रीतिसंजननं भूयस्तस्य त्वं दातुमर्हसि ॥१७॥
साब्रवीद्दत्तमेवाहो मयाभिज्ञानमुत्तमम् । एतदेव हि रामस्य दृष्ट्वा यत्नेन भूषणम् ॥१८॥
श्रद्धेयं हनुमन्वाक्यं तव वीर भविष्यति । स तं मणिवरं गृह्य श्रीमान्प्लवगसत्तमः ॥१९॥
प्रणम्य शिरसा देवीं गमनायोपचक्रमे । तमुत्पातकृतोत्साहमवेक्ष्य हरियूथपम् ॥२०॥
वर्धमानं महावेगमुवाच जनकात्मजा । अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पगद्गदया गिरा ॥२१॥
हनूमन्सिंहसंकाशौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया अनामयम् ॥२२॥
यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः । अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वं समाधातुमर्हसि ॥२३॥

इदं च तीव्रं मम शोकवेगं रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥ २४ ॥
स राजपुत्र्या प्रतिवेदितार्थः कपिः कृतार्थः परिहृष्टचेताः ।
तदल्पशेषं प्रसमीक्ष्य कार्यं दिशं ह्युदीचीं मनसा जगाम ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥४०॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१

स च वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन्पूजितस्तया । तस्माद्देशादपाक्रम्य चिन्तयामास वानरः ॥ १ ॥
अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा । त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते ॥ २ ॥

ले जायँगे ॥ १६ ॥ जिस चिह्नको केवल रामचंद्र ही जानें और जिससे वे प्रसन्न हो सकें, वैसा चिह्न आप और दें ॥ १७ ॥ सीता बोलीं—मैंने उत्तम चिह्न देदिया है । हे वीर, इसी भूषणको सावधानीसे देखकर रामचन्द्र तुम्हारी बातोंको विश्वसनीय समझेंगे । श्रीमान् हनुमान उस श्रेष्ठ मणिको लेकर चलनेको उद्यत हुए । जानेके लिए उनको उत्साहित और ऊँचा उठते हुए देखकर अश्रुपूर्णमुखी दीना सीता गद्गद स्वरमें बोलीं ॥ १८-२१ ॥ हनुमान, सिंहतुल्य दोनों भाई राम और लक्ष्मणसे तथा सचिवोंके साथ सुग्रीवसे कुशल कहना ॥ २२ ॥ जिस प्रकार महाबाहु रामचंद्र इस दुःखसमुद्रसे मेरा उद्धार करें, वैसा उपाय करना ॥ २३ ॥ यह मेरा तीव्र दुःख, राक्षसोंका यह परिभर्त्सन, रामके पास जाकर तुम कहना । हे वानरश्रेष्ठ, तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो ॥ २४ ॥ राजपुत्री सीताका अभिप्राय जाननेसे कृतार्थ और प्रसन्न हनुमान, कार्यको थोड़ा अवशिष्ट सोचकर, उत्तर दिशाकी ओर जानेके लिए मनही मन तयार हुए ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका चालीसवां सर्ग समाप्त ।

सुन्दर वचनोंके द्वारा जानकीसे आदर पाकर तथा वहाँसे दूसरी जगह जाकर हनुमान विचार करने लगे ॥ १ ॥ सीताको मैंने देखा । अब मेरी यात्राकी सफलतामें थोड़ाही कार्य बाकी

न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते न दानमर्थोपचितेषु युज्यते ।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः पराक्रमस्त्वेष ममेह रोचते ॥ ३ ॥
न चास्य कार्यस्य पराक्रमादृते विनिश्चयः कश्चिदिहोपपद्यते ।
हतप्रवीराश्च रणे तु राक्षसाः कथंचिदीयुर्यदिहाद्य मार्दवम् ॥ ४ ॥
कार्ये कर्मणि निर्वृत्ते यो बहून्यपि साधयेत् । पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति ॥ ५ ॥
नह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः । यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ॥ ६ ॥
इहैव तावत्कृतनिश्चयो ह्यहं व्रजेयमद्य प्लवगेश्वरालयम् ।
परात्मसंमर्दविशेषतत्त्ववित्ततः कृतं स्यान्मम भर्तृशासनम् ॥ ७ ॥
कथं नु खल्वद्य भवेत्सुखागतं प्रसह्य युद्धं मम राक्षसैः सह ।
तथैव खल्वात्मबलं च सारवत्समानयेन्मां च रणे दशाननः ॥ ८ ॥
ततः समासाद्य रणे दशाननं समन्त्रिवर्गं सबलं सयायिनम् ।
हृदि स्थितं तस्य मतं बलं च सुखेन मत्वाहमितः पुनर्व्रजे ॥ ९ ॥
इदमस्य नृशंसस्य नन्दनोपममुत्तमम् । वनं नेत्रमनःकान्तं नानाद्रुमलतायुतम् ॥१०॥
इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः । अस्मिन्भग्ने ततः कोपं करिष्यति स रावणः ॥११॥

है अर्थात् शत्रुबलका अन्दाज़ लगाना। इस कार्यके लिए साम, दान और भेद इन तीन उपायों-को छोड़कर चौथा उपाय दण्डही मुझे उचित जान पड़ता है ॥ २ ॥ राक्षसोंमें सामका प्रयोग करनेसे लाभ नहीं। धनियों को दान देनेसे कोई लाभ नहीं। बलवान मनुष्योंमें भेद नहीं डाला जा सकता, अतएव मुझे यहाँ पराक्रमही उचित जान पड़ता है ॥ ३ ॥ पराक्रमके अतिरिक्त इस कार्यकी सिद्धिके लिए मुझे कोई उपाय नहीं दीख पड़ता। मेरे साथ युद्धमें वीरोंके मारे जानेसे, संभव है कि राक्षस लोग नरम पड़ें (हनुमानका अभिप्राय यह मालूम पड़ता है कि जब एक मैं अनेक वीरोंको मारूंगा तो राक्षसोंके मनमें यह भाव उत्पन्न हो सकता है कि यदि एक दूत इतना बली है, तो वह सेना कितनी बली होगी ? इस विचारसे वे निराश होकर युद्ध करनेकी इच्छा त्याग सकते हैं) ॥ ४ ॥ प्रधान कार्यको सफल कर जो प्रधान कार्यके अविरोधी दूसरे कार्योंको कर सकता है, वही कार्यकर्ता है ॥ ५ ॥ छोटे कामको भी सिद्ध करनेवाला एक हेतु नहीं होता, जो प्रयोजनको थोड़े प्रयत्नसे अनेक प्रकारसे सिद्ध करना जानता है, वही कार्य करनेमें समर्थ है ॥ ६ ॥ यहींसे शत्रुके विध्वंस करनेके विषयमें पूरी-पूरी जानकारी तथा तत्संबन्धी उपायोंका निश्चय करके यदि मैं सुग्रीवके पास जाऊँ तो मेरे द्वारा स्वामीकी आज्ञाका यथार्थ पालन होना समझा जायगा ॥ ७ ॥ मेरा यहाँ आना कैसे सफल होगा, राक्षसोंके साथ बलात् मेरा युद्ध कैसे होगा और रावण युद्धमें अपने बलके साथ मेरे बलकी तुलना कैसे करेगा ? ॥८॥ उस युद्धमेंही मंत्री, सेना और अनुयायियोंके साथ दशाननको पाकर, उसके हृदयका अभिप्राय तथा उसका बल जान कर मैं यहाँसे प्रस्थान करूँगा ॥ ९ ॥ क्रूर राक्षसका यह वन नन्दनके समान है। नेत्र और मनको प्रिय है। इसमें अनेक वृक्ष और लताएँ हैं ॥ १० ॥ इसको मैं नष्टभ्रष्ट करूंगा, जैसे अग्नि सूखे

ततो महत्साश्वमहारथद्विपं बलं समानेष्यति राक्षसाधिपः ।
त्रिशूलकालायसपट्टिशायुधं ततो महद्युद्धमिदं भविष्यति ॥ १२ ॥
अहं च तैः संयति चण्डविक्रमैः समेत्य रक्षोभिरभङ्गविक्रमः ।
निहत्य तद्रावणचोदितं बलं सुखं गमिष्यामि हरीश्वरालयम् ॥ १३ ॥

ततो मारुतवत्क्रुद्धो मारुतिर्भीमविक्रमः । ऊरुवेगेन महता द्रुमान्क्षेप्तुमथारभत् ॥१४॥
ततस्तद्धनुमान्वीरो बभञ्ज प्रमदावनम् । मत्तद्विजसमाघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम् ॥१५॥
तद्वनं मथितैर्वृक्षैर्भिन्नैश्च सलिलाशयैः । चूर्णितैः पर्वताग्रैश्च बभूवाप्रियदर्शनम् ॥१६॥
नानाशकुन्तविरुतैः प्रभिन्नसलिलाशयैः । ताम्रैः किसलयैः क्लान्तैः क्लान्तद्रुमलतायुतैः ॥१७॥
न बभौ तद्वनं तत्र दावानलहतं यथा । व्याकुलावरणा रेजुर्विह्वला इव ता लताः ॥१८॥

लतागृहैश्चित्रगृहैश्च सादितैर्व्यालैर्मृगैरार्तरवैश्च पक्षिभिः ।
शिलागृहैरुन्मथितैस्तथा गृहैः प्रनष्टरूपं तदभून्महद्वनम् ॥ १९ ॥
सा विह्वलाशोकलताप्रताना वनस्थली शोकलताप्रताना ।
जाता दशास्यप्रमदावनस्य कपेर्बलाद्धि प्रमदावनस्य ॥ २० ॥
ततः स कृत्वा जगतीपतेर्महान्महद्व्यलीकं मनसो महात्मनः ।
युयुत्सुरेको बहुभिर्महाबलैः श्रिया ज्वलंस्तोरणमाश्रितः कपिः ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

वनको कर देती है . इसके नष्टभ्रष्ट होनेपर रावण क्रोध करेगा ॥ ११ ॥ तब त्रिशूल आदि अस्त्रों-वाली, हाथी घोड़े रथ आदिसे युक्त सेना, रावण ले आवेगा । फिर, एक बड़ा युद्ध होगा ॥ १२ ॥ मैं उन प्रचण्डविक्रमी राक्षसोंसे युद्धमें लड़कर तथा रावणकी भेजी सेनाको मारकर अक्षत-शरीर सुखसे किष्किन्धा चला जाऊंगा ॥ १३ ॥ अनन्तर वायुके समान कुपित होकर वायुपुत्र भीमपराक्रमी हनुमान बड़े वेगसे वृक्षोंको उखाड़ने लगे ॥ १४ ॥ जिसमें मस्त पक्षी बोल रहे थे, अनेक वृक्ष और लताएं थीं, उस प्रमदावनको हनुमान उजाड़ने लगे ॥ १५ ॥ तालाबोंको हिंडोर देनेसे, वृक्षोंको तोड़ देनेसे, पर्वतके शिखरोंको ढहा देनेसे वह वन देखनेमें बुरा मालूम होने लगा ॥ १६ ॥ पक्षियोंकी चिल्लाहट, तालाबोंके टूटने, लाल पत्तोंके मुरझाने तथा वृक्ष और लताओंके श्रीहत होनेसे वह वन शोभाहीन हो गया, मानो उसमें आग लगी हो । आश्रयके नष्ट होनेसे व्याकुल स्त्रियोंके समान वे लताएँ मालूम होती थीं ॥ १७-१८ ॥ लतागृह और चित्रगृहके टूट जानेसे, हिंस्र जन्तुओं, अन्य पशुओं तथा पक्षियोंके आर्तरवसे, पत्थरके बने घरोंके टूटने तथा अन्य घरोंके उजड़नेसे, उस वनकी शोभा नष्ट हो गयी ॥ १९ ॥ अशोककी विशाल लताओंके मुरझानेसे वह वनस्थली मदयुक्त, रावणकी स्त्रियोंके लिये शोककी विस्तृत लता बन गयी ॥ २० ॥ अनन्तर अनेकोंसे अकेला युद्ध करनेकी इच्छा रखनेवाला, युद्धके उत्साहसे जलता हुआ वह महान कपि रावणका नितान्त अप्रिय कार्य करके बाहरवाले फाटक पर आगया ॥ २१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका एकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ।

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२

ततः पक्षिनिनादेन वृक्षभङ्गस्वनेन च। बभूवुस्त्राससंभ्रान्ताः सर्वे लङ्कानिवासिनः॥ १॥
विद्रुताश्च भयत्रस्ता विनेदुर्मृगपक्षिणः। रक्षसां च निमित्तानि क्रूराणि प्रतिपेदिरे॥ २॥
ततो गतायां निद्रायां राक्षस्यो विकृताननाः। तद्वनं ददृशुर्भग्नं तं च वीरं महाकपिम्॥ ३॥
स ता दृष्ट्वा महाबाहुर्महासत्त्वो महाबलः। चकार सुमहद्रूपं राक्षसीनां भयावहम्॥ ४॥
ततस्तु गिरिसंकाशमतिकायं महाबलम्। राक्षस्यो वानरं दृष्ट्वा पप्रच्छुर्जनकात्मजाम्॥ ५॥
कोऽयं कस्य कुतो वायं किंनिमित्तमिहागतः। कथं त्वया सहानेन संवादः कृत इत्युत॥ ६॥
आचक्ष्व नो विशालाक्षि माभूत्ते सुभगे भयम्। संवादमसितापाङ्गि त्वया किं कृतवानयम्॥ ७॥
अथाब्रवीत्तदा साध्वी सीता सर्वाङ्गशोभना। रक्षसां कामरूपाणां विज्ञाने का गतिर्मम॥ ८॥
यूयमेवास्य जानीत योऽयं यद्वा करिष्यति। अहिरेव अहेः पादान्विजानाति न संशयः॥ ९॥
अहमप्यतिभीतास्मि नैव जानामि कोऽह्ययम्। वेद्मि राक्षसमेवैनं कामरूपिणमागतम्॥१०॥
वैदेह्या वचनं श्रुत्वा राक्षस्यो विद्रुता द्रुतम्। स्थिताः काश्चिद्गताः काश्चिद्रावणाय निवेदितुम्॥११॥
रावणस्य समीपे तु राक्षस्यो विकृताननाः। विरूपं वानरं भीमं रावणाय न्यवेदिषुः॥१२॥
अशोकवनिकामध्ये राजन्भीमवपुः कपिः। सीतया कृतसंवादस्तिष्ठत्यमितविक्रमः॥१३॥
न च तं जानकी सीता हरिं हरिणलोचना। अस्माभिर्बहुधा पृष्टा निवेदयितुमिच्छति॥१४॥

पक्षियोंके कोलाहल तथा वृक्षोंके टूटनेके शब्दसे लंकाके समस्त निवासी भयसे उद्विग्न-चित्त होगये॥ १॥ डरे हुए पक्षिगण भाग गये और कोलाहल करने लगे। राक्षसोंके सामने अशुभ शकुन होने लगे॥ २॥ नींद टूटनेपर विकृतमुखवाली राक्षसियोंने उस वनको उजड़ा हुआ देखा और उस वीर वानरको देखा॥ ३॥ महाबली महाबाहु हनुमानने उन राक्षसियोंको देखकर, राक्षसियोंको भयभीत करनेवाला बड़ा रूप बनाया॥ ४॥ पर्वतके समान विशालशरीर महाबली उस वानरको देखकर राक्षसियाँ सीतासे पूछने लगीं॥ ५॥ यह कौन है? किसका है? कहाँसे आया है और किस लिए आया है? तुम्हारे साथ इसने बातचीत क्यों की? विशालाक्षि, यह सब हम लोगोंसे कहो। डरो मत। इसने तुम्हारे साथ क्या बातें की?॥ ६, ७॥ तब सर्वाङ्ग-सुन्दरी साध्वी सीता बोलीं—कामरूपी राक्षसोंका व्यवहार जाननेकी शक्ति मुझमें नहीं है॥ ८॥ आपही लोग जानो, जो यह है और जो यह करेगा; क्योंकि, साँपही साँपोंके पैरोंको जानता है॥ ९॥ मैं भी डर गयी हूँ। मैं नहीं जानती यह कौन है। मैं तो इस आये हुएको कामरूपी राक्षसही समझ रही हूँ॥ १०॥ जानकीके वचन सुनकर राक्षसियाँ वहाँसे भागीं। कई वहाँ रहीं और कई रावणसे कहनेके लिए चली गयीं॥ ११॥ विकृतमुखी राक्षसियाँ रावणके पास गई। अद्भुतरूप भयानक वानरकी बात रावणसे उन लोगोंने कही॥ १२॥ राजन्, अशोक-वाटिकामें बड़े शरीरवाला एक वानर आया है। वह बड़ा पराक्रमी है और सीतासे उसने बातें की हैं॥ १३॥ पर, जनकपुत्री हरिणलोचना सीता हमलोगोंके बहुत पूछनेपर भी उसे बतलाना

वासवस्य भवेद्दूतो दूतो वैश्रवणस्य वा । प्रेषितो वापि रामेण सीतान्वेषणकाङ्क्षया ॥१५॥
तेनैवाद्भुतरूपेण यत्तत्तव मनोहरम् । नानामृगगणाकीर्णं प्रमृष्टं प्रमदावनम् ॥१६॥
न तत्र कश्चिदुद्देशो यस्तेन न विनाशितः । यत्र सा जानकी देवी स तेन न विनाशितः॥१७॥
जानकी रक्षणार्थं वा श्रमाद्वा नोपलक्ष्यते । अथवा कः श्रमस्तस्य सैव तेनाभिरक्षिता ॥१८॥
चारुपल्लवपत्राढ्यं यं सीता स्वयमास्थिता । प्रवृद्धः शिंशपावृक्षः स च तेनाभिरक्षितः ॥१९॥
तस्योग्ररूपस्योग्रं त्वं दण्डमाज्ञातुमर्हसि । सीता संभाषिता येन वनं तेन विनाशितम् ॥२०॥
मनःपरिगृहीतां तां तव रक्षोगणेश्वर । कः सीतामभिभाषेत यो न स्यात्त्यक्तजीवितः ॥२१॥
राक्षसीनां वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः । चिताग्निरिव जज्वाल कोपसंवर्तितेक्षणः ॥२२॥
तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः । दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः॥२३॥
आत्मनःसदृशान्वीरान्किंकरान्नामराक्षसान् । व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनूमतः ॥२४॥
तेषामशीतिसाहस्रं किंकराणां तरस्विनाम् । निर्ययुर्भवनात्तस्मात्कूटमुद्गरपाणयः ॥२५॥
महोदरा महादंष्ट्रा घोररूपा महाबलाः । युद्धाभिमनसः सर्वे हनूमद्ग्रहणोन्मुखाः ॥२६॥
ते कपिं तं समासाद्य तोरणस्थमवस्थितम् । अभिपेतुर्महाभागाः पतङ्गा इव पावकम् ॥२७॥
ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः । आजग्मुर्वानरश्रेष्ठं शरैरादित्यसंनिभैः ॥२८॥

नहीं चाहतीं ॥ १४ ॥ इन्द्रका दूत होगा या कुबेरका दूत । अथवा, सीताको ढूँढनेके लिए रामचन्द्रने भेजा होगा ॥ १५ ॥ उसी अद्भुतरूपी वानरने तुम्हारे उस प्रमदावनको, जो अनेक पशुपक्षियोंसे भरा था, नष्ट कर दिया ॥ १६ ॥ उस वनमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जिसे उसने उजाड़ न दिया हो । केवल उसी स्थानको उसने नहीं उजाड़ा है, जहाँ सीता देवी रहती हैं ॥१७॥ जानकीकी रक्षाके लिये अथवा थकावटके कारण उसने उस स्थानका नाश नहीं किया, इसका हमलोग निश्चय नहीं कर सकतीं । अथवा, उसे थकावट हो कैसे सकती है? अतः सीताकी रक्षाके लिए ही उसने उस स्थानकी रक्षा की है ॥ १८ ॥ सुन्दर पत्रोंसे युक्त जिस सिंसपा वृक्षके पास सीता है, केवल उसी वृक्षकी उसने रक्षा की है ॥ १९ ॥ उस भयानक रूपवालेको आप भयानक दण्ड दें, जिसने सीतासे बातें कीं और वनका विनाश किया ॥ २० ॥ हे राक्षसोंके स्वामी, जिस सीताका आपने मनसे ग्रहण किया है, उससे कौन बातें कर सकता है, जिसे अपनी जान प्यारी है ॥ २१ ॥ राक्षसियोंके वचन सुनकर राक्षसराज रावणकी आँखें चिताग्निके समान जल उठीं । क्रोधके कारण वे घूमने लगीं ॥ २२ ॥ क्रुद्ध राक्षसराजकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें गिरीं, मानो जलते हुए दो दीपकोंसे ज्वालासहित तेलकी बूँदें टपक पड़ी हों ॥ २३ ॥ महातेजस्वी रावणने हनुमान्को दण्ड देनेके लिए अपने समान वीर, किंकर नामक राक्षसोंको भेजा ॥ २४ ॥ अस्सी हजार वेगवान किंकर कूट, मुद्गर आदि लेकर रावणके घरसे निकले ॥ २५ ॥ उनके पेट बड़े विशाल, दाँत बड़े, रूप भयानक था । वे युद्धकी इच्छा रखनेवाले महाबली, हनुमान्को पकड़नेके लिए चले ॥२६॥ वे हनुमान्के पास गये । हनुमान् तोरणपर बैठे थे । मानो, पतंग आगके पास गये हों ॥ २७ ॥ विचित्र गदाओं, परिघों, सोनेकी ज़ंजीरों, सूर्यके समान चमकीले बाणों, मुद्गरों,

मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः प्रासतोमरपाणयः । परिवार्य हनूमन्तं सहसा तस्थुरग्रतः ॥२९॥
हनूमानपि तेजस्वी श्रीमान्पर्वतसंनिभः । क्षितावाविद्ध्य लाङ्गूलं ननाद च महाध्वनिम् ॥३०॥
स भूत्वा तु महाकायो हनूमान्मारुतात्मजः । पुच्छमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन् ॥३१॥
तस्यास्फोटितशब्देन महता चानुनादिना । पेतुर्विहङ्गा गगनादुच्चैश्चेदमघोषयत् ॥३२॥
जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः । राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥३३॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥३४॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत् । शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥३५॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम् । समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥३६॥
तस्य संनादशब्देन तेऽभवन्भयशङ्किताः । ददृशुश्च हनूमन्तं संध्यामेघमिवोन्नतम् ॥३७॥
स्वामिसंदेशनिःशङ्कास्ततस्ते राक्षसाः कपिम् । चित्रैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः ॥३८॥
स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतः स महाबलः । आससादायसं भीमं परिघं तोरणाश्रितम् ॥३९॥
स तं परिघमादाय जघान रजनीचरान् । स पन्नगमिवादाय स्फुरन्तं विनतासुतः ॥४०॥
विचचाराम्बरे वीरः परिगृह्य च मारुतिः । सूदयामास वज्रेण दैत्यानिव सहस्रदृक् ॥४१॥
स हत्वा राक्षसान्वीरः किंकरान्मारुतात्मजः । युद्धाकाङ्क्षी महावीरस्तोरणं समवस्थितः ॥४२॥

पट्टिशों और शूलोंसे हनुमान्‌को घेरकर सहसा उनके सामने खड़े हागये । वे राक्षस हाथमें प्रास और तोमर लिए हुए थे ॥२८॥२६॥ पर्वतके समान विशाल तेजस्वी हनुमान भी पृथ्वीपर अपनी पूँछ पटककर घोर गर्जन करने लगे ॥३०॥ वायुपुत्र हनुमान विशालशरीर होकर अपनी पूँछ पटकने लगे, जिसके शब्दसे लंका भर गयो ॥ ३१ ॥ उस पूँछ पटकनेके शब्दसे तथा उसकी प्रतिध्वनिसे भीत होकर पक्षी आकाशसे गिरने लगे । हनुमानने जोरसे ऐसा कहा ॥ ३२ ॥ अति बली रामचन्द्रकी जय, महाबली लक्ष्मणकी जय, रामचन्द्र द्वारा पालित सुग्रीवकी जय ॥३३॥ अक्लिष्टकर्मा कोशलेन्द्र रामचंद्रका मैं दास हूँ । वायुपुत्र मैं हनुमान हूँ और शत्रुसेनाका नाश करनेवाला हूँ ॥३४॥ हजारों रावण युद्धमें मुझसे बली नहीं हो सकते जब कि मैं पत्थरों और वृक्षोंसे प्रहार करता हूँ ॥३५॥ लंकापुरीको नष्ट करके, जानकीको प्रणाम करके और अपना मनोरथ पूर्ण करके सब राक्षसोंके देखते देखते मैं यहाँसे जाऊँगा ॥ ३६ ॥ हनुमानके इस गर्जनसे वे सब भीत और शंकित हो गये । उन लोगोंने सन्ध्याके मेघके समान हनुमानको उठा हुआ देखा ॥ ३७ ॥ हनुमानके अपने स्वामीका नाम लेनेके कारण उनके परिचयके विषयमें राक्षसोंका सन्देह जाता रहा । वे निशङ्क होकर अनेक प्रकारके भयानक आयुधोंसे हनुमान पर दौड़े ॥ ३८ ॥ महाबली हनुमान उन वीरोंसे घिर गये । तब उन्होंने तोरणपर रक्खा हुआ एक भयानक लोहेका परिघ उठाया ॥ ३६ ॥ वह परिघ लेकर उन्होंने राक्षसोंको मार डाला, जिस प्रकार गरुड़ छटपटाते हुए साँपोंको मार डालता है ॥ ४० ॥ परिघ लेकर मारुति आकाशमें विचरण करने लगे । राक्षसोंका नाश करने लगे, जिस प्रकार सहस्राक्ष इन्द्र वज्रसे दैत्योंका नाश करते हैं ॥ ४१ ॥ वीर वायुपुत्र, किंकर नामके राक्षसों-

ततस्तस्माद्भयान्मुक्ताः कतिचित्तत्र राक्षसाः । निहतान्किंकरान्सर्वान्रावणाय न्यवेदयन् ॥४३॥
स राक्षसानां निहतं महाबलं निशम्य राजा परिवृत्तलोचनः ।
समादिदेशाप्रतिमं पराक्रमे प्रहस्तपुत्रं समरे सुदुर्जयम् ॥ ४४ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३

ततः स किंकरान्हत्वा हनुमान्ध्यानमास्थितः । वनं भग्नं मया चैत्यप्रासादो न विनाशितः ॥ १ ॥
तस्मात्प्रासादमप्यैवमिमं विध्वंसयाम्यहम् । इति संचिन्त्य हनुमान्मनसा दर्शयन्बलम् ॥ २ ॥
चैत्यप्रासादमुत्प्लुत्य मेरुशृङ्गमिवोन्नतम् । आरुरोह हरिश्रेष्ठो हनूमान्मारुतात्मजः ॥ ३ ॥
आरुह्य गिरिसंकाशं प्रासादं हरियूथपः । बभौ स सुमहातेजाः प्रतिसूर्य इवोदितः ॥ ४ ॥
संप्रधृष्य तु दुर्धर्षश्चैत्यप्रासादमुन्नतम् । हनूमान्प्रज्वलँल्लक्ष्म्या पारियात्रोपमोऽभवत् ॥ ५ ॥
स भूत्वा सुमहाकायः प्रभावान्मारुतात्मजः । धृष्टमास्फोटयामास लङ्कां शब्देन पूरयन् ॥ ६ ॥
तस्यास्फोटितशब्देन महता श्रोत्रघातिना । पेतुर्विहंगमास्तत्र चैत्यपालाश्च मोहिताः ॥ ७ ॥
अस्त्रविज्जयता रामो लक्ष्मणश्च महाबलः । राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ ८ ॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः । हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥ ९ ॥

को मारकर पुनः, युद्धकी इच्छासे तोरण पर बैठ गये ॥ ४२ ॥ किंकर राक्षसोंमेंसे कई राक्षस मरने-से बच गये थे, । रावणके पास जाकर उन लोगोंने सब वृत्तान्त कहा ॥४३॥ राक्षसोंकी बड़ी सेना-का मारा जाना सुन कर राजा रावणकी आँखें चढ़ गयीं । अतएव अप्रतिमपराक्रमी, युद्धमें-दुर्जय, प्रहस्त पुत्रको उन्होंने भेजा ॥ ४४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥

किंकरोंके मारनेके पश्चात् हनुमान विचार करने लगे कि मैंने वन उजाड़ दिया । पर, राक्षसोंके कुलदेवताका मंदिर नहीं तोड़ा ॥ १ ॥ इस कारण आजही इस मन्दिरको तोड़ता हूँ और इस प्रकार अपना बल दिखलाता हूँ । ऐसा सोचकर मेरुशिखरके समान ऊँचे उस विशाल मन्दिर पर कपिश्रेष्ठ वायुपुत्रहनुमान चढ़ गये ॥ २, ३ ॥ पर्वतके समान उस मन्दिरपर चढ़कर तेजस्वी हनुमान दूसरे सूर्यके समान मालूम हुए ॥ ४ ॥ दुर्धर्ष हनुमान ऊँचे मन्दिरको तोड़कर विजयके गर्वसे प्रदीप्त होकर पारियात्र नामक पर्वतके समान मालूम पड़े ॥ ५ ॥ अपने प्रभावसे विशालशरीर होकर हनुमान अपनी पूंछ जोरसे पटकने लगे, जिसके शब्दसे लंका भर गयी ॥ ६ ॥ कान फोड़नेवाले उस शब्दसे आकाशके पक्षी गिरने लगे और मन्दिरके रक्षक बेहोश हो गये ॥७॥ हनुमानने घोषणा की, 'अस्त्रवेत्ता रामचंद्रकी जय हो। महाबली लक्ष्मणकी जय हो। रामचंद्रके द्वारा रक्षित राजा सुग्रीवकी जय हो । मैं अक्लिष्टकर्मा कोशलेन्द्र रामचन्द्रका दास हूँ ।

न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत् । शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥१०॥
धर्षयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम् । समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥११॥
एवमुक्त्वा महाकायश्चैत्यस्थो हरियूथपः । ननाद भीमनिर्ह्रादो रक्षसां जनयन्भयम् ॥१२॥
तेन नादेन महता चैत्यपालाः शतं ययुः । गृहीत्वा विविधानस्त्रान्प्रासान्खड्गान्परश्वधान् ॥१३॥
विसृजन्तो महाकाया मारुतिं पर्यवारयन् । ते गदाभिर्विचित्राभिः परिघैः काञ्चनाङ्गदैः ॥१४॥
आजग्मुर्वानरश्रेष्ठं बाणैश्चादित्यसंनिभैः । आवर्त इव गङ्गायास्तोयस्य विपुलो महान् ॥१५॥
परिक्षिप्य हरिश्रेष्ठं स बभौ रक्षसां गणः । ततो वातात्मजः क्रुद्धो भीमरूपं समास्थितः ॥१६॥
प्रासादस्य महांस्तस्य स्तम्भं हेमपरिष्कृतम् । उत्पाटयित्वा वेगेन हनूमान्मारुतात्मजः ॥१७॥
ततस्तं भ्रामयामास शतधारं महाबलः । तत्र चाग्निः समभवत्प्रासादश्चाप्यदह्यत ॥१८॥
दह्यमानं ततो दृष्ट्वा प्रासादं हरियूथपः । स राक्षसशतं हत्वा वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ॥१९॥
अन्तरिक्षस्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् । मादृशानां सहस्राणि विसृष्टानि महात्मनाम् ॥२०॥
बलिनां वानरेन्द्राणां सुग्रीववशवर्तिनाम् । अटन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः ॥२१॥
दशनागबलाः केचित्केचिद्दशगुणोत्तराः । केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ॥२२॥
सन्ति चौघबलाः केचित्सन्ति वायुबलोपमाः । अप्रमेयबलाः केचित्तत्रासन्हरियूथपाः ॥२३॥

वायुपुत्र हनुमान मेरा नाम है । मैं शत्रुसेनाओंका नाश करनेवाला हूँ । हजारों रावण युद्धमें मेरा सामना नहीं कर सकते, जब मैं पत्थरों और वृक्षोंका प्रहार करता रहूँगा ॥ लंकापुरीको उजाड़ कर, जानकीको प्रणाम कर और मनोरथ पूर्ण कर सब राक्षसोंके देखते, मैं यहाँसे लौट जाऊँगा" ॥ ८-११ ॥ मन्दिरपर बैठे हुए विशालशरीर हनुमानने ऐसी घोषणा करके घोर गर्जन किया, जिससे राक्षस भयभीत हुए ॥ १२ ॥ उस घोर शब्दसे सैकड़ों मन्दिर-रक्षक प्रास, खड्ग, परशु आदि अनेक प्रकारके अस्त्र लेकर अस्त्र छोड़ते हुए चले और उन लोगोंने हनुमानको घेर लिया । विचित्र गदाओं, परिघों, सोनेके सिक्कड़ों, सूर्यके समान बाणोंके साथ वे हनुमानके पास पहुँच गये । गंगाके जलके बड़े आवर्तके समान वह राक्षसोंका दल हनुमान पर गदा आदि बरसाने लगा और शोभित होने लगा । वायुपुत्र हनुमानने भी क्रोध करके भयानक रूप धारण किया ॥ १३-१६ ॥ वायुपुत्र हनुमानने शीघ्रतापूर्वक मन्दिरका बड़ा खंभा, जिसमें सोने-का काम किया गया था, उखाड़ लिया ॥ १७ ॥ सौ शिखरोंवाले उस खंभेको घुमाने लगे । उससे आग प्रकट हुई और मन्दिर जलने लगा ॥ १८ ॥ मन्दिरको जलते देखकर और सैकड़ों राक्षसोंको मारकर—जिस प्रकार इन्द्र वज्रसे असुरोंको मारते हैं—आकाशमें स्थित होकर हनुमान इस प्रकार बोले—मेरे जैसे हजारों भेजे गये हैं । सुग्रीवके अधीनस्थ, बली मेरे जैसे हजारों वानर भेजे गये हैं । हमलोग तथा दूसरे वानर समस्त पृथिवीमें घूम रहे हैं ॥ १९-२१ ॥ किसीमें दस हाथीका बल है, किसीमें सौ हाथीका और कोई हजारों हाथीके समान बलवान है ॥ २२ ॥ कई वानर इससे भी अधिक हाथियोंके तुल्य बलवान हैं । कोई वायुके समान हैं और कई वानरोंके बलका

ईदृग्विधैस्तु हरिभिर्वृतो दन्तनखायुधैः । शतैः शतसहस्रैश्च कोटिभिश्चायुतैरपि ॥२४॥
आगमिष्यति सुग्रीवः सर्वेषां वो निषूदनः । नेयमस्ति पुरी लङ्का न यूयं न च रावणः ।
यस्य त्विक्ष्वाकुवीरेण बद्धं वैरं महात्मना । ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४

संदिष्टो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली । जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धनुर्धरः ॥ १ ॥
रक्तमाल्याम्बरधरः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः । महान्विवृत्तनयनश्चण्डः समरदुर्जयः ॥ २ ॥
धनुः शक्रधनुःप्रख्यं महद्रुचिरसायकम् । विस्फारयाणो वेगेन वज्राशनिसमस्वनम् ॥ ३ ॥
तस्य विस्फारघोषेण धनुषो महता दिशः । प्रदिशश्च नभश्चैव सहसा समपूर्यत ॥ ४ ॥
रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः । हनूमान्वेगसंपन्नो जहर्ष च ननाद च ॥ ५ ॥
तं तोरणविटङ्कस्थं हनूमन्तं महाकपिम् । जम्बुमाली महातेजा विव्याध निशितैः शरैः ॥ ६ ॥
अर्धचन्द्रेण वदने शिरस्येकेन कर्णिना । बाह्वोर्विव्याध नाराचैर्दशभिस्तु कपीश्वरम् ॥ ७ ॥
तस्य तच्छुशुभे ताम्रं शरेणाभिहतं मुखम् । शरदीवाम्बुजं फुल्लं विद्धं भास्कररश्मिना ॥ ८ ॥

पता ही नहीं है ॥ २३ ॥ इस तरहके, दाँत और नखके आयुध वाले सैकड़ों, हजारों और करोड़ों वानरोंके साथ सुग्रीव तुम लोगोंका नाश करनेके लिए आवेंगे। न तो यह लंकापुरी रहेगी, न तुम लोग और न रावण ही रहेगा; क्योंकि तुम लोगोंने महात्मा रामचंद्रसे बैर किया है ॥२४-२५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका तैतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥

राक्षसेन्द्रकी आज्ञा पाकर प्रहस्तका पुत्र बली जम्बुमाली धनुष लेकर चला। उसके दाँत बड़े-बड़े थे ॥ १ ॥ लाल वस्त्र पहने हुए था। माला और सुन्दर कुण्डल धारण किये हुए था। विशाल, क्रोधी और रणमें दुर्जय था। आँखें फाड़कर वह देख रहा था। उसका धनुष इन्द्रके धनुषके समान था, जिसपर विशाल और सुन्दर वाण चढ़ा हुआ था। वज्रकी ध्वनिके समान उसके धनुषका शब्द हो रहा था ॥ २, ३ ॥ उसके धनुषके दूरतक फैलनेवाले शब्दसे दिशाएँ उपदिशाएँ तथा आकाश सहसा भर गया ॥४॥ गधेके रथपर आया हुआ उसको देखकर वेगवान् हनुमान् बड़े प्रसन्न हुए और वे गर्जन करने लगे ॥ ५ ॥ तोरणके खोंड़रमें बैठे हुए महाकपि हनुमान्को तेजस्वी जम्बुमालीने तीखे वाणोंसे मारा ॥ ६ ॥ अर्धचन्द्र नामक वाणसे मुँहमें, कर्णी नामक एक वाणसे सिरमें, दस वाणोंसे दोनों बाहुओंमें उसने हनुमान्को मारा ॥ ७ ॥ हनुमान्का वह लाल मुँह वाणोंसे आहत होकर—शरत्कालमें फूले हुए और सूर्यकी किरणोंसे

ततस्य रक्तं रक्तेन रञ्जितं शुशुभे मुखम्। यथाकाशे महापद्मं सिक्तं काञ्चनविन्दुभिः ॥ ९ ॥
चुकोप बाणाभिहतो राक्षसस्य महाकपिः। ततः पार्श्वेऽतिविपुलां ददर्श महतीं शिलाम् ॥१०॥
तरसा तां समुत्पाट्य चिक्षेप जववद्बली। तां शरैर्दशभिः क्रुद्धस्ताडयामास राक्षसः ॥११॥
विपन्नं कर्म तद्दृष्ट्वा हनूमांश्चण्डविक्रमः। सालं विपुलमुत्पाट्य भ्रामयामास वीर्यवान् ॥१२॥
भ्रामयन्तं कपिं दृष्ट्वा सालवृक्षं महाबलम्। चिक्षेप सुबहून्बाणाञ्जम्बुमाली महाबलः ॥१३॥
सालं चतुर्भिश्चिच्छेद वानरं पञ्चभिर्भुजे। उरस्येकेन बाणेन दशभिस्तु स्तनान्तरे ॥१४॥
स शरैः पूरिततनुः क्रोधेन महता वृतः। तमेव परिघं गृह्य भ्रामयामास वेगितः ॥१५॥
अतिवेगोऽतिवेगेन भ्रामयित्वा महोत्कटः। परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि ॥१६॥
तस्य चैव शिरो नास्ति न बाहू जानुनी न च। न धनुर्न रथो नाश्वास्तत्रादृश्यन्त नेषवः ॥१७॥
स हतस्तरसा तेन जम्बुमाली महारथः। पपात निहतो भूमौ चूर्णिताङ्ग इव द्रुमः ॥१८॥
जम्बुमालिं सुनिहतं किंकरांश्च महाबलान्। चुक्रोध रावणः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥१९॥
स रोषसंवर्तितताम्रलोचनः प्रहस्तपुत्रे निहते महाबले।
अमात्यपुत्रानतिवीर्यविक्रमान्समादिदेशाशु निशाचरेश्वरः ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽचतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

युक्त कमलके समान—मालूम हुआ ॥ ८ ॥ हनुमान्का लाल रंगका मुँह रक्तसे रंगा जाकर, आकाशमें सुवर्णविन्दुसे सींचे गये बड़े कमलके समान मालूम हुआ ॥ ९ ॥ बाणसे आहत होकर हनुमान् उस राक्षसपर बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने पासही एक बहुत बड़ा पत्थरका टुकड़ा देखा ॥ १० ॥ बली हनुमान्ने वेगपूर्वक उसको उखाड़कर जोरसे राक्षसपर फेंका। क्रुद्ध राक्षसने दस बाणोंसे उसे चूर कर दिया ॥ ११ ॥ प्रचण्डपराक्रमी हनुमान् अपने उद्योगको निष्फल देखकर सालका एक विशाल पेड़ उखाड़कर घुमाने लगे ॥ १२ ॥ कपिको शालवृक्ष घुमाते देखकर महाबली जम्बुमालीने अनेक बाण छोड़े ॥ १३ ॥ चार बाणोंसे शालवृक्षको उसने काट दिया। वानरकी भुजाओंमें पाँच, कलेजेमें एक और स्तनोंके बीचमें दस बाण उसने मारे ॥ १४ ॥ बाणोंसे हनुमान्का शरीर भर गया। उन्हें बड़ा क्रोध आया। वही परिघ लेकर जोरसे वे घुमाने लगे ॥ १५ ॥ अति वेगवान हनुमान्ने बड़े वेगसे घुमाकर उस परिघको जम्बुमालीकी विशाल छातीमें मारा। हनुमान् उस समय असह्य होगये थे ॥ १६ ॥ उसके सिर, बाहु, जंघे वहाँ दिखाई न पड़े। धनुष, रथ, गधे, और बाण कुछ भी दिखाई न पड़े ॥ १७ ॥ महारथ जम्बुमालीको हनुमान्ने शीघ्रतापूर्वक मार दिया। वह मरकर पृथिवीपर गिर पड़ा, जैसे उखड़ा हुआ वृक्ष ॥ १८ ॥ जम्बुमालीका मरना तथा महाबली किंकरोंका मरना सुनकर रावणने क्रोध किया। उसकी आँखें लाल होगयीं ॥ १९ ॥ प्रहस्त—पुत्रके मारे जानेपर क्रोधसे आँखें लाल करके निशाचरेश्वर रावणने बड़े बली और पराक्रमी अमात्यपुत्रोंको शीघ्र आज्ञा दी ॥२०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका चौवालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ४५

ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणः सुताः । निर्ययुर्भवनात्तस्मात्सप्त सप्तार्चिवर्चसः ॥ १ ॥
महद्बलपरीवारा धनुष्मन्तो महाबलाः । कृतास्त्रास्त्रविदां श्रेष्ठाः परस्परजयैषिणः ॥ २ ॥
हेमजालपरिक्षिप्तैर्ध्वजवद्भिः पताकिभिः । तोयदस्वननिर्घोषैर्वाजियुक्तैर्महारथैः ॥ ३ ॥
तप्तकाञ्चनचित्राणि चापान्यमितविक्रमाः । विस्फारयन्तः संहृष्टास्तडिद्वन्त इवाम्बुदाः ॥ ४ ॥
जनन्यस्तास्ततस्तेषां विदित्वा किंकरान्हतान् । बभूवुः शोकसंभ्रान्ताः सबान्धवसुहृज्जनाः ॥ ५ ॥
ते परस्परसंघर्षास्तप्तकाञ्चनभूषणाः । अभिपेतुर्हनूमन्तं तोरणस्थमवस्थितम् ॥ ६ ॥
सृजन्तो बाणवृष्टिं ते रथगर्जितनिःस्वनाः । प्रावृट्काल इवाम्भोदा विचेरुर्नैर्ऋताम्बुदाः ॥ ७ ॥
अवकीर्णस्ततस्ताभिर्हनूमाञ्शरवृष्टिभिः । अभवत्संवृताकारः शैलराडिव वृष्टिभिः ॥ ८ ॥
स शरान्वञ्चयामास तेषामाशुचरः कपिः । रथवेगांश्च वीराणां विचरन्विमलेऽम्बरे ॥ ९ ॥
स तैः क्रीडन्धनुष्मद्भिर्व्योम्नि वीरः प्रकाशते । धनुष्मद्भिर्यथा मेघैर्मारुतः प्रभुरम्बरे ॥१०॥
स कृत्वा निनदं घोरं त्रासयंस्तां महाचमूम् । चकार हनुमान्वेगं तेषु रक्षःसु वीर्यवान् ॥११॥
तलेनाभिहनत्कांश्चित्पादैः कांश्चित्परंतपः । मुष्टिभिश्चाहनत्कांश्चिन्नखैः कांश्चिद्व्यदारयत् ॥१२॥
प्रममाथोरसा कांश्चिदूरुभ्यामपरानपि । केचित्तस्यैव नादेन तत्रैव पतिता भुवि ॥१३॥

राक्षसेन्द्रसे प्रेरित होकर सूर्यके समान तेजस्वी वे सात मन्त्रिपुत्र घरसे निकले ॥ १ ॥ बड़ी सेनाके साथ, धनुर्धारी, महाबली, अस्त्र-शस्त्रोंके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ और परस्पर जीतनेकी इच्छा रखनेवाले वे वीर सुवर्णकी जाली लगे हुए, ध्वजा और पताकाओंसे युक्त, मेघके समान गर्जन करनेवाले घोड़ोंसे युक्त रथपर चढ़कर उज्ज्वल सोनेके धनुषोंका शब्द करते हुए, असीम-पराक्रमी प्रसन्नचित्त बिजलीवाले मेघके समान घरसे निकले ॥ २-४ ॥ किंकरोंका मारा जाना जानकर उनकी माताएँ बान्धवों और मित्रोंके साथ शोकसे व्याकुल हो गयीं ॥ ५ ॥ आपसमें होड़ लगाकर उज्ज्वल सुवर्णके गहने पहननेवाले वे तोरणपर बैठे हुए हनुमान्की ओर बढ़े ॥६॥ बाण-वृष्टि करते हुए, रथके शब्दसे गर्जन करते हुए वे राक्षस वर्षाके मेघके समान मालूम पड़े ॥ ७ ॥ उनकी बाणवर्षासे हनुमान् नहा गये। वे वृष्टिसे घिरेहुए पर्वतराजके समान मालूम पड़ने लगे ॥ ८ ॥ आकाशमें शीघ्र चलनेवाले हनुमान् उनके बाणों तथा रथकी शीघ्रताको धोखा देने लगे; क्योंकि इनकी शीघ्रताके कारण राक्षसोंका लक्ष्य ठीक नहीं होता था ॥ ९ ॥ वीर हनुमान् उन धनुर्धारियोंसे क्रीड़ा करते हुए आकाशमें शोभित हुए, जिस प्रकार धनुषयुक्त मेघोंसे वायु क्रीड़ा करता है ॥ १० ॥ घोर गर्जन करके उस बड़ी सेनाको भयभीत करते हुए पराक्रमी हनुमानने उन राक्षसों पर अपना बल आजमाया ॥ ११ ॥ किसीको थप्पड़ मारा, किसीको पैरसे मारा, किसीको मुक्केसे मारा और किसीको नखोंसे फाड़ दिया ॥ १२ ॥ किसीको छातीसे, किसीको जंघोंसे मसल डाला। कोई उनके भयानक गर्जनसे ही

ततस्तेष्ववपन्नेषु भूमौ निपतितेषु च। तत्सैन्यमगमत्सर्वं दिशो दश भयार्दितम् ॥१४॥
विनेदुर्विस्वरं नागा निपेतुर्भुवि वाजिनः। भग्ननीडध्वजच्छत्रैर्भूश्च कीर्णाभवद्रथैः ॥१५॥
स्रवता रुधिरेणाथ स्रवन्त्यो दर्शिताः पथि। विविधैश्च स्वनैर्लङ्का ननाद विकृतं तदा ॥१६॥
स तान्प्रवृद्धान्विनिहत्य राक्षसान्महाबलश्चण्डपराक्रमः कपिः।
युयुत्सुरन्यैः पुनरेव राक्षसैस्तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणम् ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६

हतान्मन्त्रिसुतान्बुद्ध्वा वानरेण महात्मना। रावणः संवृताकारश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥ १ ॥
स विरूपाक्षयूपाक्षौ दुर्धर्षं चैव राक्षसम्। प्रघसं भासकर्णं च पञ्च सेनाग्रनायकान् ॥ २ ॥
संदिदेश दशग्रीवो वीरान्नयविशारदान्। हनूमद्ग्रहणे व्यग्रान्वायुवेगसमान्युधि ॥ ३ ॥
यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः। सवाजिरथमातंगाः स कपिः शास्यतामिति ॥ ४ ॥
यत्तैश्च खलु भाव्यं स्यात्तमासाद्य वनालयम्। कर्म चापि समाधेयं देशकालाविरोधितम् ॥ ५ ॥
नह्यहं तं कपिं मन्ये कर्मणा प्रतितर्कयन्। सर्वथा तन्महद्भूतं महाबलपरिग्रहम् ॥ ६ ॥

पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ १३ ॥ उन अमात्यपुत्रोंके मारे जाने और पृथिवीपर गिरने पर, उनकी सेनाएँ डरकर इधर-उधर भाग गयीं ॥ १४ ॥ हाथी दुःखके साथ चिग्घाड़ने लगे। घोड़े पृथिवी पर गिर पड़े। और उन रथोंसे पृथिवी भर गयी, जिनके बैठक, ध्वजा और छत्र टूट गये थे ॥१५॥ बहते हुए रुधिरकी नदियोंको रास्तेमें देखकर राक्षसोंके विविध शब्दसे लंका चीत्कार करने लगी ॥ १६ ॥ चण्डपराक्रमी महाबली वानर उन अहंकारी राक्षसोंको मारकर अन्य राक्षसोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे पुनः तोरण पर गये ॥ १७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका पैंतालीसवां सर्ग समाप्त।

महात्मा हनुमान्के द्वारा मन्त्रिपुत्रोंका मारा जाना जानकर रावणने धीरतापूर्वक आगेका कर्तव्य निश्चित किया ॥ १ ॥ विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर्ष, प्रघस और भासकर्ण इन पाँच नीतिज्ञ और वीर, युद्धमें वायुके समान वेगवान् और शीघ्रतापूर्वक कार्योंको करनेवाले, इन पाँच सेनापतियोंको हनुमान्को पकड़नेकी आज्ञा रावणने दी ॥ २-३ ॥ हाथी, घोड़ा, रथ और बड़ी सेना लेकर तुमलोग जाओ और उस वानरको पकड़ लो ॥ ४ ॥ सावधान होकर उस वानरके पास जाना और देश-कालविरोधी कामोंको छोड़ देना ॥ ५ ॥ उसके कार्योंको देखते हुए, उसे मैं

वानरोऽयमिति ज्ञात्वा नाहि शुद्ध्यति मे मनः । नैवाहं तं कपिं मन्ये यथेयं प्रस्तुता कथा ॥ ७ ॥
भवेदिन्द्रेण वा सृष्टमस्मदर्थं तपोबलात् । सनागयक्षगन्धर्वदेवासुरमहर्षयः ॥ ८ ॥
युष्माभिः सहितैः सर्वैर्मया सह विनिर्जिताः । तैरवश्यं विधातव्यं व्यलीकं किंचिदेव नः ॥ ९ ॥
तदेव नात्र संदेहः प्रसह्य परिगृह्यताम् । यात सेनाग्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः ॥१०॥
सवाजिरथमातंगाः स कपिः शास्यतामिति । नावमान्यो भवद्भिश्च कपिर्धीरपराक्रमः ॥११॥
दृष्टा हि हरयः शीघ्रं मया विपुलविक्रमाः । वाली च सह सुग्रीवो जाम्बवांश्च महाबलः ॥१२॥
नीलः सेनापतिश्चैव ये चान्ये द्विविदादयः । नैव तेषां गतिर्भीमा न तेजो न पराक्रमः ॥१३॥
न मतिर्न बलोत्साहो न रूपपरिकल्पनम् । महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम् ॥१४॥
प्रयत्नं महदास्थाय क्रियतामस्य निग्रहः । कामं लोकास्त्रयः सेन्द्राः ससुरासुरमानवाः ॥१५॥
भवतामग्रतः स्थातुं न पर्याप्ता रणाजिरे । तथापि तु नयज्ञेन जयमाकाङ्क्षता रणे ॥१६॥
आत्मा रक्ष्यः प्रयत्नेन युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला । ते स्वामिवचनं सर्वे प्रतिगृह्य महौजसः ॥१७॥
समुत्पेतुर्महावेगा हुताशसमतेजसः । रथैर्मत्तैश्च नागैश्च वाजिभिश्च महाजवैः ॥१८॥
शस्त्रैश्च निशितैस्तीक्ष्णैः सर्वैश्चोपहिता बलैः । ततस्तु ददृशुर्वीरा दीप्यमानं महाकपिम् ॥१९॥
रश्मिमन्तमिवोद्यन्तं स्वतेजोरश्मिमालिनम् । तोरणस्थं महावेगं महासत्त्वं महाबलम् ॥२०॥

वानर नहीं समझ सकता; किन्तु बड़ी-बड़ी सेनाओंका विध्वंस करनेवाला वह कोई बड़ा प्राणी है ॥ ६ ॥ उसको मेरा मन वानर नहीं समझ रहा है । जिस प्रकारकी बातें हो रही हैं, उनसे उसे मैं वानर नहीं समझ सकता ॥७॥ अपनी तपस्याके बलसे हमलोगोंकी बुराई करनेके लिए सम्भव है इन्द्रने भेजा हो । हमारे द्वारा भेजे जाकर तुमलोगोंने जिन नाग, यक्ष, गन्धर्व, देवता, असुर और महर्षियोंको जीता है, अवश्य ही उनलोगोंको हमारी कुछ बुराई करनी चाहिए ॥ ८-९ ॥ सेनापतियो, यही बात है, इसमें सन्देह नहीं । आपलोग बड़ी सेना लेकर, हाथी, घोड़े और रथ लेकर जायँ और बलपूर्वक उस वानरको पकड़ लें तथा उसको शिक्षा दें । वानर समझकर उसकी उपेक्षा न करें; क्योंकि वह बड़ा पराक्रमी है ॥ १०-११ ॥ मैंने विपुलपराक्रमी वालि, सुग्रीव, महाबली जाम्बवान्, सेनापति नील, तथा द्विविद आदि अन्य वानरोंको देखा है । परन्तु, उनके कार्य इतने भयंकर नहीं हैं, और न उनका इतना तेज तथा पराक्रम ही है ॥१२-१३॥ न बुद्धि है, न बल है और न ऐसा उत्साह है । रूप बदलनेकी ऐसी शक्ति भी नहीं है । वानरके रूपमें यह कोई बड़ा प्राणी है ॥ १४ ॥ बहुत बड़े उद्योगके द्वारा तुमलोग इसको दण्ड दो । इन्द्र सहित देवता, असुर और मनुष्य तथा तीनों लोकके वीर युद्धके मैदानमें आपलोगोंके सामने खड़े नहीं रह सकते । फिर भी नीति जाननेवालोंको तथा विजय चाहनेवालोंको यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए; क्योंकि युद्धमें सफलता अनिश्चित है । वे वीर स्वामीके वचन मान कर रथों, मतवाले हाथियों, वेगवान घोड़ोंपर अग्निके समान जलते हुए चले ॥ १५-१८ ॥ तीखे और तेज शस्त्रों तथा सेनाके साथ उन वीरोंने क्रुद्ध उस महाकपिको देखा ॥ १९ ॥ उदय होनेवाले सूर्यके समान अपने तेजकी किरणोंसे युक्त, महावेगवान्, महापराक्रमी, महाबली, महामति,

महामतिं महोत्साहं महाकायं महाभुजम् । तं समीक्ष्यैव ते सर्वे दिक्षु सर्वास्ववस्थिताः ॥२१॥
तैस्तैः प्रहरणैर्भीमैरभिपेतुस्ततस्ततः । तस्य पञ्चायसास्तीक्ष्णाः सिताः पीतमुखाः शराः ।
शिरस्युत्पलपत्राभा दुर्धरेण निपातिताः । ॥२२॥
स तैः पञ्चभिराविद्धः शरैः शिरसि वानरः । उत्पपात नदन्व्योम्नि दिशो दश विनादयन् ॥२३॥
ततस्तु दुर्धरो वीरः सरथः सज्जकार्मुकः । किरञ्शरशतैर्नैकैरभिपेदे महाबलः ॥२४॥
स कपिर्वारयामास तं व्योम्निशरवर्षिणम् । वृष्टिमन्तं पयोदान्ते पयोदमिव मारुतः ॥२५॥
अर्द्यमानस्ततस्तेन दुर्धरेणानिलात्मजः । चकार निनदं भूयो व्यवर्धत च वीर्यवान् ॥२६॥
स दूरं सहसोत्पत्य दुर्धरस्य रथे हरिः । निपपात महावेगो विद्युद्राशिर्गिराविव ॥२७॥
ततः स मथिताष्टाश्वं रथं भग्नाक्षकूबरम् । विहाय न्यपतद्भूमौ दुर्धरस्त्यक्तजीवितः ॥२८॥
तं विरूपाक्षयूपाक्षौ दृष्ट्वा निपतितं भुवि । तौ जातरोषौ दुर्धर्षावुत्पेततुररिंदमौ ॥२९॥
स ताभ्यां सहसोत्प्लुत्य विष्ठितो विमलेऽम्बरे । मुद्गराभ्यां महाबाहुर्वक्षस्यभिहतः कपिः ॥३०॥
तयोर्वेगवतोर्वेगं निहत्य स महाबलः । निपपात पुनर्भूमौ सुपर्ण इव वेगितः ॥३१॥
स सालवृक्षमासाद्य समुत्पाट्य च वानरः । तावुभौ राक्षसौ वीरौ जघान पवनात्मजः ॥३२॥
ततस्तांस्त्रीन्हताञ्ज्ञात्वा वानरेण तरस्विना । अभिगम्य महावेगः प्रहस्य प्रघसो बली ॥३३॥
भासकर्णश्च संक्रुद्धः शूलमादाय वीर्यवान् । एकतः कपिशार्दूलं यशस्विनमवस्थितौ ॥३४॥

महोत्साही, महाभुजावाले और विशालशरीर उस वानरको तोरणपर बैठे हुए उनलोगोंने देखा। उनको देखकर ही सब दिशाओंमें फैले हुए वे राक्षस भयानक अस्त्र-शस्त्रोंको लेकर उनकी ओर दौड़े। लोहेके, तीखे, पीले मुँहवाले, कमलके पत्रके समान शोभायमान पाँच बाण दुर्धरने हनुमानके सिरमें मारे ॥ १९-२२ ॥ उस राक्षसके द्वारा सिरमें पाँच बाणोंके मारे जानेपर हनुमान आकाशमें चले गये और अपने गर्जनसे दसों दिशाओंको गुँजाने लगे ॥ २३ ॥ अनन्तर वीर दुर्धर जो रथपर बैठा था और धनुष चढ़ाए हुए था, वह महाबली अनेक बाणोंसे हनुमान्‌को मारता हुआ आया ॥ २४ ॥ बाणवृष्टि करनेवाले उसको, आकाशमें विचरण करनेवाले हनुमान्‌ने रोका, जिस प्रकार वर्षाकालके अन्तमें पवन पानी बरसानेवाले मेघोंको रोकता है ॥ २५ ॥ दुर्धरके द्वारा पीड़ित होनेपर वायुपुत्र पराक्रमी हनुमान्‌ने गर्जन किया और वे बढ़े ॥ २६ ॥ अनन्तर दूरस्थ दुर्धरके रथपर सहसा कूद पड़े मानो, बिजलीका समूह पर्वत पर गिरा हो ॥ २७ ॥ उसके रथके आठो घोड़े मारे गये, रथका युग तथा धुरा टूट गया। वह रथ और प्राण छोड़कर पृथिवीमें गिर पड़ा ॥२८॥ दुर्धरको भूमिमें गिरा देखकर अजेय, शत्रुको जीतनेवाले विरूपाक्ष और यूपाक्षने बड़ा क्रोध किया ॥ २९ ॥ आकाशमें स्थित हनुमानकी छातीमें उन दोनोंने मुक्केसे आघात किया। महाबली, महाबाहु वानर वेगवान् उन राक्षसोंके वेगको रोककर पुनः जमीन पर उतरे जिस प्रकार गरुड़ उतरता है ॥ ३०-३१ ॥ शालवृक्षके पास जाकर और उसे उखाड़कर वायुपुत्रने उन दोनों वीर राक्षसोंको मार डाला ॥ ३२ ॥ उस वेगवान वानरके द्वारा तीन राक्षसोंका मारा जाना देखकर महावेगवान और बली प्रघस तथा क्रुद्ध भासकर्ण

पट्टिशेन शिताग्रेण प्रघसः प्रत्यपोथयत् । भासकर्णश्च शूलेन राक्षसः कपिकुञ्जरम् ॥३५॥
स ताभ्यां विक्षतैर्गात्रैरसृग्दिग्धतनूरुहः । अभवद्वानरः क्रुद्धो बालसूर्यसमप्रभः ॥३६॥
समुत्पाट्य गिरेः शृङ्गं समृगव्यालपादपम् । जघान हनुमान्वीरो राक्षसौ कपिकुञ्जरः ।
गिरिशृङ्गसुनिष्पिष्टौ तिलशस्तौ बभूवतुः । ॥३७॥
ततस्तेष्ववसन्नेषु सेनापतिषु पञ्चसु । बलं तदवशेषं तु नाशयामास वानरः ॥३८॥
अश्वैरश्वान्गजैर्नागान्योधैर्योधान्रथै रथान् । स कपिर्नाशयामास सहस्राक्ष इवासुरान् ॥३९॥
हयैर्नागैस्तुरंगैश्च भग्नाक्षैश्च महारथैः । हतैश्च राक्षसैर्भूमी रुद्धमार्गा समन्ततः ॥४०॥

ततः कपिस्तान्ध्वजिनीपतीन्रणे निहत्य वीरान्सबलान्सवाहनान् ।
तथैव वीरः परिगृह्य तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७

सेनापतीन्पञ्च स तु प्रमापितान्हनूमता सानुचरान्सवाहनान् ।
निशम्य राजा समरोद्धतोन्मुखं कुमारमक्षं प्रसमैक्षताक्षम् ॥ १ ॥

पास जाकर यशस्वी उन वानरके एक ओर खड़े होगये ॥ ३३-३४ ॥ वानरश्रेष्ठको प्रघसने तीखे पट्टिशसे तोप दिया और भासकर्णने शूलसे मारा ॥ ३५ ॥ उनके द्वारा आहत हनुमानके गात्रोंसे रुधिर बहने लगा, जिससे उनके शरीरके बाल रंग गये । बालसूर्यके समान वह वानर क्रुद्ध हुआ ॥ ३६ ॥ पशु, सर्प, और वृक्षोंके साथ, पर्वतका शिखर तोड़कर वीर हनुमान्ने उन दोनों राक्षसोंको मारा । शिखरसे दबनेके कारण तिलके समान वे टुकड़े-टुकड़े होगये ॥ ३७ ॥ उन पाँचों सेनापतियोंके मारेजानेपर बची हुई सेनाका हनुमान नाश करने लगे ॥ ३८ ॥ घोड़ोंसे घोड़ोंको, हाथियोंसे हाथियोंको सैनिकोंसे सैनिकोंको, रथोंसे रथोंको हनुमान नष्टकरने लगे, जिस प्रकार असुरोंका नाश इन्द्रने किया था ॥ ३९ ॥ मारे गये घोड़ों, हाथियों और राक्षसोंसे तथा तोड़े गये रथोंसे चारों ओर जमीन भर गयी । रास्ते रुक गये ॥ ४० ॥ वीर हनुमान उन वीर सेनापतियोंको सेना और वाहनके साथ युद्धमें मारकर पुनः तोरणपर जाकर बैठ गये, और अवकाशका समय लोकनाशक कालके समान बिताने लगे ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका छियालीसवाँ सर्ग समाप्त ।



अनुचर और वाहनोंके साथ पाँचो सेनापतियोंका हनुमानके द्वारा माराजाना सुनकर राजाने महासमरके लिए उत्सुक पास बैठे हुए अक्ष नामक अपने पुत्रको ओर देखा अर्थात् युद्धमें

स तस्य दृष्ट्यर्पणसंप्रचोदितः प्रतापवान्काञ्चनचित्रकार्मुकः ।
समुत्पपाताथ सदस्युदीरितो द्विजातिमुख्यैर्हविषेव पावकः ॥ २ ॥
ततो महान्बालदिवाकरप्रभं प्रतप्तजाम्बूनदजालसंततम् ।
रथं समास्थाय ययौ स वीर्यवान्महाहरिं तं प्रति नैर्ऋतर्षभः ॥ ३ ॥
ततस्तपःसंग्रहसंचयार्जितं प्रतप्तजाम्बूनदजालचित्रितम् ।
पताकिनं रत्नविभूषितध्वजं मनोजवाष्टाश्ववरैः सुयोजितम् ॥ ४ ॥
सुरासुराधृष्यमसङ्गचारिणं तडित्प्रभं व्योमचरं समाहितम् ।
सतूणमष्टासिनिबद्धबन्धुरं यथाक्रमावेशितशक्तितोमरम् ॥ ५ ॥
विराजमानं प्रतिपूर्णवस्तुना सहेमदाम्ना शशिसूर्यवर्चसा ।
दिवाकराभं रथमास्थितस्ततः स निर्जगामामरतुल्यविक्रमः ॥ ६ ॥
स पूरयन्खं च महीं च साचलां तुरंगमातंगमहारथस्वनैः ।
बलैः समेतैः सहतोरणास्थितं समर्थमासीनमुपागमत्कपिम् ॥ ७ ॥
स तं समासाद्य हरिं हरीक्षणो युगान्तकालाग्निमिव प्रजाक्षये ।
अवस्थितं विस्मितजातसंभ्रमं समैक्षताक्षो बहुमानचक्षुषा ॥ ८ ॥
स तस्य वेगं च कपेर्महात्मनः पराक्रमं चारिषु रावणात्मजः ।
विचारयन्स्वं च बलं महाबलो युगक्षये सूर्य इवाभिवर्धत ॥ ९ ॥
स जातमन्युः प्रसमीक्ष्य विक्रमं स्थितः स्थिरः संयति दुर्निवारणम्।
समाहितात्मा हनुमन्तमाहवे प्रचोदयामास शितैः शरैस्त्रिभिः ॥१०॥

जानेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥ आँखके इशारेसे प्रेरित, सोनेके विचित्र धनुषवाला प्रतापी वह, ब्राह्मणोंके द्वारा हविषसे प्रेरित अग्निके समान उठ खड़ा हुआ ॥ २ ॥ उज्ज्वल सुवर्णके जालसे मढ़े हुए रथ पर बैठकर बली वह राक्षसश्रेष्ठ, बालदिवाकरके समान दीप्तिमान हनुमानकी ओर चला ॥ ३ ॥ तपस्याओंके द्वारा प्राप्त, उज्ज्वल सुवर्णजालके द्वारा सजाया हुआ, रत्नविभूषित पताका और रत्नविभूषित ध्वजासे युक्त, मनके समान वेगवाले श्रेष्ठ आठ घोड़ोंसे युक्त, देवता और असुरोंके द्वारा अधृष्य, आक्रमणके अयोग्य , आकाशमें चलनेवाला, विद्युतके समान प्रकाशमान, सजा हुआ, वाण तथा आठ तलवारोंके करीनेसे रक्खे जानेके कारण सुन्दर, क्रमानुसार रक्खे हुए शक्ति, तोमर से शोभित, युद्धकी अन्य सामग्रियोंसे पूर्ण, चन्द्रमासूर्यके समान सोनेके सिकड़से बँधा हुआ, सूर्यके समान चमकीला, ऐसे रथपर बैठकर देव-तुल्य पराक्रमी वह अक्षकुमार निकला ॥ ४–६ ॥ हाथी घोड़े और रथोंके शब्दसे पर्वतोंके साथ पृथ्वी और आकाशको गुँजाता हुआ, सेना लेकर तोरणपर बैठे हुए शक्तिमान हनुमानके पास आया ॥ ७ ॥ सिंहतुल्य भयंकर आँखोंवाले अक्षने प्रलयकालकी अग्निके समान स्थित तथा विस्मयसे उद्विग्न हनुमानको गर्वसे देखा ॥ ८ ॥ महात्मा उस कपिका वेग तथा शत्रुविषयक पराक्रम तथा अपना बल विचारता हुआ वह, प्रलयकालिक सूर्यके समान बढ़ने लगा ॥ ९ ॥ हनुमानके पराक्रमसे अक्षको क्रोध आ गया था । उसने संग्राममें

ततः कपिं तं प्रसमीक्ष्य गर्वितं जितश्रमं शत्रुपराजयोचितम् ।
अवैक्षताक्षः समुदीर्णमानसं सबाणपाणिः प्रगृहीतकार्मुकः ॥११॥
स हेमनिष्काङ्गदचारुकुण्डलः समाससादाशुपराक्रमः कपिम् ।
तयोर्बभूवाप्रतिमः समागमः सुरासुराणामपि संभ्रमप्रदः ॥१२॥
ररास भूमिर्न तताप भानुमान्ववौ न वायुः प्रचचाल चाचलः ।
कपेः कुमारस्य च वीर्यसंयुगं ननाद च द्यौरुदधिश्च चुक्षुभे ॥१३॥
स तस्य वीरः सुमुखान्पतत्रिणः सुवर्णपुङ्खान्सविषानिवोरगान् ।
समाधिसंयोगविमोक्षतत्त्वविच्छरानथ त्रीन्कपिमूर्ध्न्यताडयत् ॥१४॥
स तैः शरैर्मूर्ध्नि समं निपातितैः क्षरन्नसृग्दिग्धविवृत्तनेत्रः ।
नवोदितादित्यनिभः शरांशुमान्व्यराजतादित्य इवांशुमालिकः ॥१५॥
ततः प्लवंगाधिपमन्त्रिसत्तमः समीक्ष्य तं राजवरात्मजं रणे ।
उदग्रचित्रायुधचित्रकार्मुकं जहर्ष चापूर्यत चाहवोन्मुखः ॥१६॥
स मन्दराग्रस्थ इवांशुमाली विवृद्धकोपो बलवीर्यसंवृतः ।
कुमारमक्षं सबलं सवाहनं ददाह नेत्राग्निमरीचिभिस्तदा ॥१७॥
ततः सबाणासनशक्रकार्मुकः शरप्रवर्षो युधि राक्षसाम्बुदः ।
शरान्मुमोचाशु हरीश्वराचले बलाहको वृष्टिमिवाचलोत्तमे ॥१८॥

एकाग्रचित्त होकर हनुमानको स्थिर और दुःखसे निवारण करने योग्य तीन तीखे बाणोंसे युद्धके लिए प्रेरित किया ॥ १० ॥ युद्धके लिए उत्साहित हनुमानको धनुष बाण हाथमें लेकर अक्षने देखा । हनुमान थकावटको जीते हुए थे और गर्वित मालूम पड़ते थे, तथा शत्रुपराजयके लिए योग्य मालूम होते थे ॥ ११ ॥ सोनेका निष्क (गलेका एक गहना), अंगद और सुन्दर कुण्डल धारण करनेवाला प्रबल पुरुषार्थी वह कुमार वानरके पास आया । देवता और असुरोंको भी आश्चर्य दिलानेवाला उन दोनोंका अपूर्व समागम हुआ ॥ १२ ॥ भूमिके प्राणियोंका आनन्द जाता रहा, सूर्यका तपना और वायुका चलना बन्द हुआ । कुमार और वानरके बड़े पराक्रमके युद्धको देखकर पर्वत हिलने लगे, आकाश गर्जन करने लगा और समुद्र क्षुभित हुआ ॥ १३ ॥ निशाना साधने, बाण रखने और छोड़नेमें दक्ष, वीर कुमारने सीधे, सुवर्णपक्षवाले, विषैले सर्पके समान तीन बाण हनुमानके मस्तकपर मारे ॥ १४ ॥ मस्तक पर एक साथ गिरे हुए, उन बाणोंसे हनुमानका शरीर रक्तसे भर गया । उनकी आँखें टेढ़ी हो गयीं । वे नवोदित सूर्यके समान मालूम हुए । वे बाण किरणके समान थे, अतएव किरणोंकी माला धारण करनेवाले सूर्यके समान हनुमान शोभित हुए ॥१५॥ अनन्तर सुग्रीवके श्रेष्ठ सचिव हनुमान अत्युत्तम आयुध और धनुष धारण करनेवाले राजाके पुत्र उस अक्षको देखकर और युद्धके लिए तयार होकर बढ़ने लगे ॥ १६ ॥ बली और पराक्रमी हनुमान कोप बढ़ जानेके कारण मन्दरशिखरस्थ सूर्यके समान मालूम पड़ने लगे, और सेना और वाहनके साथ अक्षकुमारको नेत्राग्निकी किरणोंसे जलाने लगे ॥१७॥ वह राक्षस-रूपी

कपिस्ततस्तं रणचण्डविक्रमं प्रवृद्धतेजोबलवीर्यसायकम्।
कुमारमक्षं प्रसमीक्ष्य संयुगे ननाद हर्षाद्घनतुल्यनिःस्वनः ॥१९॥
स बालभावाद्युधि वीर्यदर्पितः प्रवृद्धमन्युः क्षतजोपमेक्षणः।
समाससादाप्रतिमं रणे कपिं गजो महाकूपमिवावृतं तृणैः ॥२०॥
स तेन बाणैः प्रसभं निपातितैश्चकार नादं घननादनिःस्वनः।
समुत्सहेनाशु नभः समारुजन्भुजोरुविक्षेपणघोरदर्शनः ॥२१॥
तमुत्पतन्तं समभिद्रवद्बली स राक्षसानां प्रवरः प्रतापवान्।
रथी रथिश्रेष्ठतरः किरञ्छरैः पयोधरः शैलमिवाश्मवृष्टिभिः ॥२२॥
स ताञ्छरांस्तस्य हरिर्विमोक्षयंश्चचार वीरः पथि वायुसेविते।
शरान्तरे मारुतवद्विनिष्पतन्मनोजवः संयति भीमविक्रमः ॥२३॥
तमात्तबाणासनमाहवोन्मुखं खमास्तृणन्तं विविधैः शरोत्तमैः।
अवैक्षताक्षं बहुमानचक्षुषा जगाम चिन्तां स च मारुतात्मजः ॥२४॥
ततः शरैर्भिन्नभुजान्तरः कपिः कुमारवर्येण महात्मना नदन्।
महाभुजः कर्मविशेषतत्त्वविद्विचिन्तयामास रणे पराक्रमम् ॥२५॥
अबालवद्बालदिवाकरप्रभः करोत्ययं कर्म महान्महाबलः।
न चास्य सर्वाहवकर्मशालिनः प्रमापणे मे मतिरत्र जायते ॥२६॥

मेघ जिसका धनुष इन्द्र-धनुषके समान था और बाणवृष्टि वर्षाके समान थी, वानर-रूपी पर्वतपर बाण छोड़ने लगा, जिस प्रकार मेघ पर्वतपर जल गिराता है ॥ १८ ॥ रणमें प्रचण्ड पराक्रमी, तेज, बल, वीर्य और बाण चलानेमें बढ़ा हुआ अक्षकुमारको देखकर मेघके समान गर्जनेवाले हनुमानने प्रसन्नतापूर्वक गर्जन किया ॥ १९ ॥ बालक होनेके कारण उसका क्रोध बढ़ा हुआ था, उसको अपने पराक्रमका घमण्ड था, रक्तके समान उसकी आँखें थीं, वह युद्धमें अप्रतिम, तृणसे छिपे कुएँके पास जैसे हाथी जाता है उसी प्रकार वानरराजके पास आया ॥ २० ॥ उसके छोड़े बाणोंसे मेघके समान गर्जन करनेवाले और हाथ पैर पटकनेके कारण भयानक दीख पड़नेवाले हनुमानने आकाशमें रहनेवालोंको दुःखित करते हुए गर्जन किया ॥ २१ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ, रथपर बैठा हुआ, राक्षसप्रवर, प्रतापी वह अक्षकुमार, पर्वतपर पत्थर बरसाते हुए मेघके समान, ऊपर उठे हनुमानपर बाण बरसाते हुए उनकी ओर चला ॥ २२ ॥ भीमपराक्रमी वायुके समान वेगवान्, वीर हनुमान बाणवर्षाके समानवाले युद्धमें, उस अक्षके बाणोंको व्यर्थ करते हुए आकाशमें विचरण करने लगे ॥ २३ ॥ धनुष धारण किये हुए, युद्धमें उत्साहित, अनेक प्रकारके उत्तम बाणोंसे आकाशको आच्छन्न करते हुए उस अक्षको हनुमानने बड़े आदरसे देखा और वे विचार करने लगे ॥ २४ ॥ महात्मा कुमारके द्वारा बाणोंसे छातीमें आघात पाकर महाबाहु, कार्योंके तत्वज्ञ कपि गर्जन करते हुए, युद्धमें अक्षके पराक्रमका विचार करने लगे ॥ २५ ॥ बालसूर्यके समान महाबली यह बालक अबालके समान यह कार्य कर रहा है। सब प्रकारके युद्ध-कार्योंमें निपुण

अयं महात्मा च महांश्च वीर्यतः समाहितश्चातिसहश्च संयुगे ।
असंशयं कर्मगुणोदयादयं सनागयक्षैर्मुनिभिश्च पूजितः ॥२७॥
पराक्रमोत्साहविवृद्धमानसः समीक्षते मां प्रमुखोऽग्रतः स्थितः ।
पराक्रमो ह्यस्य मनांसि कम्पयेत्सुरासुराणामपि शीघ्रकारिणः ॥२८॥
न खल्वयं नाभिभवेदुपेक्षितः पराक्रमो ह्यस्य रणे विवर्धते ।
प्रमापणं ह्यस्य ममाद्य रोचते न वर्धमानोऽग्निरुपेक्षितुं क्षमः ॥२९॥
इति प्रवेगं तु परस्य तर्कयन्स्वकर्मयोगं च विधाय वीर्यवान् ।
चकार वेगं तु महाबलस्तदा मतिं च चक्रेऽस्य वधे तदानीम् ॥३०॥
स तस्य तानष्ट वरान्महाहयान्समाहितान्भारसहान्विवर्तने ।
जघान वीरः पथि वायुसेविते तलप्रहारैः पवनात्मजः कपिः ॥३१॥
ततस्तलेनाभिहतो महारथः स तस्य पिङ्गाधिपमन्त्रिनिर्जितः ।
स भग्ननीडः परिवृत्तकूबरः पपात भूमौ हतवाजिरम्बरात् ॥३२॥
स तं परित्यज्य महारथो रथं सकार्मुकः खड्गधरः खमुत्पतन् ।
ततोऽभियोगादृषिरुग्रवीर्यवान्विहाय देहं मरुतामिवालयम् ॥३३॥
कपिस्ततस्तं विचरन्तमम्बरे पतत्रिराजानिलसिद्धसेविते ।
समेत्य तं मारुतवेगविक्रमः क्रमेण जग्राह च पादयोर्दृढम् ॥३४॥

इसको मारनेकी मेरी इच्छा नहीं होती ॥ २६ ॥ यह महात्मा पराक्रमसे बड़ा है, सावधान है और युद्धके कष्टोंको सहनेवाला है। युद्धके श्रेष्ठ कर्मोंके कारण यह नाग, यक्ष, तथा मुनियोंसे निस्सन्देह पूजा पानेके योग्य है ॥ २७ ॥ पराक्रम, उत्साहसे इसका मन बढ़ा हुआ है। यह युद्धमें मेरे आगे सेनापतिके रूपमें खड़ा है। शीघ्र युद्ध करनेवाले इसका पराक्रम देवता और असुरोंके मनको भी कँपानेवाला है ॥ २८ ॥ उपेक्षा करनेसे यह पराजित कर देगा, क्योंकि युद्धमें इसका पराक्रम बढ़ रहा है। अब इसको मार देनाही अच्छा है; क्योंकि बढ़ती हुई आगकी उपेक्षा उचित नहीं ॥ २९ ॥ इस प्रकार शत्रुका पराक्रम तथा शत्रुवधके लिए अपना युद्धक्रम विचारकर महाबली हनुमानने वेग प्रकाशित किया और वे शत्रुवधके लिए उद्यत हुए ॥ ३० ॥ उसके आठ बड़े घोड़ोंको, जो शिक्षित थे तथा बायें दहिने घूमनेमें रथभारको सँभालनेवाले थे, वायुमार्गमें वर्तमान पवनपुत्र हनुमानने थप्पड़ोंसे मार डाला ॥ ३१ ॥ थप्पड़ोंसे पीटा गया, सुग्रीवके मन्त्रीसे जीता गया, महारथी वह राक्षस रथके युग टूट जानेसे और रथके भग्न हो जानेसे तथा घोड़ोंके मारे जानेसे ऊपरसे गिर पड़ा ॥ ३२ ॥ महारथ अक्ष उस रथको छोड़कर धनुष और तलवार लेकर आकाशमें उड़ा, तपके बलसे शरीर छोड़नेपर जिस प्रकार ऋषि देवलोकमें जाते हैं ॥ ३३ ॥ गरुड़, वायु और सिद्धोंके मार्गमें (आकाशमें) विचरण करते हुए उस राक्षसके दोनों पैर वायुके समान वेगवान् और पराक्रमी हनुमानने दृढ़तापूर्वक पकड़े ॥ ३४ ॥ गरुड़

स तं समाविध्य सहस्रशः कपिर्महोरगं गृह्य इवाण्डजेश्वरः ।
मुमोच वेगात्पितृतुल्यविक्रमो महीतले संयति वानरोत्तमः ॥३५॥
स भग्नबाहूरुकटीपयोधरः क्षरन्नसृङ्निर्मथितास्थिलोचनः ।
संभिन्नसंधिः प्रविकीर्णबन्धनो हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः ॥३६॥
महाकपिर्भूमितले निपीड्य तं चकार रक्षोधिपतेर्महद्भयम् ।
महर्षिभिश्चक्रचरैः समागतैः समेत्य भूतैश्च सयक्षपन्नगैः ।
सुरैश्च सेन्द्रैर्भृशजातविस्मयैर्हते कुमारे स कपिर्निरीक्षितः ॥३७॥
निहत्य तं वज्रिसुतोपमं रणे कुमारमक्षं क्षतजोपमेक्षणम् ।
तदेव वीरोऽभिजगाम तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८

ततस्तु रक्षोधिपतिर्महात्मा हनूमताक्षे निहते कुमारे ।
मनः समाधाय स देवकल्पं समादिदेशेन्द्रजितं सरोषः ॥ १ ॥
त्वमस्त्रविच्छस्त्रभृतां वरिष्ठः सुरासुराणामपि शोकदाता ।
सुरेषु सेन्द्रेषु च दृष्टकर्मा पितामहाराधनसंचितास्त्रः ॥ २ ॥

जिस प्रकार बड़े भारी सर्पको पकड़कर घुमाता है, उसी प्रकार अपने पिता वायुके समान पराक्रमी वानरश्रेष्ठ हनुमानने अक्षको हज़ारों बार घुमाकर पृथ्वीपर पटक दिया ॥३५॥ उसकी बाँहें, जंघा, कमर, और छाती टूट गयीं। खून निकलने लगा। आँखोंकी हड्डियाँ टूट गयीं। जोड़ बिखर गये। बन्धन शिथिल हो गये। वायुपुत्रने राक्षसको मार डाला ॥ ३६ ॥ उसको पृथ्वीपर पटककर हनुमानने रावणको बहुत भयभीत कर दिया। महर्षियों, नक्षत्रोंमें भ्रमण करनेवालों, यक्ष, पन्नग आदि प्राणियों, और इन्द्रसहित देवताओंने विस्मयपूर्वक, अक्षकुमारके मरने पर हनुमानको देखा ॥ ३७ ॥ इन्द्रपुत्रके समान, रक्ताक्ष अक्षकुमारको युद्धमें मारकर वीर हनुमान प्रलयकालीन कालकी तरह अवकाशका समय बितानेके लिये उसी तोरण पर गये ॥ ३८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकांडका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४७॥

महात्मा रावणने अक्षकुमारके मारे जानेपर अपने मनको सावधान करके क्रुद्ध होकर देवतुल्य इन्द्रजीतको आज्ञा दी ॥ १ ॥ तुम अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा स्वयं अस्त्र जाननेवाले हो। देवता और असुरोंको भी शोक देनेवाले हो। देवता और इन्द्रपर तुम्हारे पराक्रमका परिचय

त्वदस्त्रबलमासाद्य ससुराः समरुद्गणाः । न शेकुः समरे स्थातुं सुरेश्वरसमाश्रिताः ॥ ३ ॥
न कश्चित्त्रिषु लोकेषु संयुगेन गतश्रमः । भुजवीर्याभिगुप्तश्च तपसा चाभिरक्षितः ।
देशकालप्रधानश्च त्वमेव मतिसत्तमः । ॥ ४ ॥

न तेऽस्त्यशक्यं समरेषु कर्मणा न तेऽस्त्यकार्यं मतिपूर्वमन्त्रणे ।
न सोऽस्ति कश्चित्त्रिषु संग्रहेषु न वेद यस्तेऽस्त्रबलं बलं च ॥ ५ ॥
ममानुरूपं तपसो बलं च ते पराक्रमश्चास्त्रबलं च संयुगे ।
न त्वां समासाद्य रणावमर्दे मनः श्रमं गच्छति निश्चितार्थम् ॥ ६ ॥

निहताः किंकराः सर्वे जम्बुमाली च राक्षसः । अमात्यपुत्रा वीराश्च पञ्च सेनाग्रगामिनः ॥ ७ ॥
बलानि सुसमृद्धानि साश्वनागरथानि च । महोदरश्च शयितः कुमारोऽक्षश्च सूदितः ॥
न तु तेष्वेव मे सारो यस्त्वय्यरिनिषूदन । ॥ ८ ॥

इदं च दृष्ट्वा निहतं महद्बलं कपेः प्रभावं च पराक्रमं च ।
त्वमात्मनश्चापि निरीक्ष्य सारं कुरुष्व वेगं स्वबलानुरूपम् ॥ ९ ॥
बलावमर्दस्त्वयि संनिकृष्टे यथागते शाम्यति शान्तशत्रुः ।
तथा समीक्ष्यात्मबलं परं च समारभस्वास्त्रभृतां वरिष्ठ ॥१०॥
न वीर सेना गणशो च्यवन्ति न वज्रमादाय विशालसारम् ।

मिल चुका है । ब्रह्माकी आराधनासे तुमने अस्त्रविद्या पायी है ॥ २ ॥ देवता और मरुत् इन्द्रके द्वारा रक्षित होनेपर भी युद्धमें तुम्हारे अस्त्रबलके सामने नहीं ठहर सके ॥ ३ ॥ तीनों लोकोंमें कोई तुम्हारे समान युद्धमें न थकनेवाला नहीं है । भुजाओंके पराक्रम तथा तपस्याके द्वारा रक्षित भी तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा नहीं है । देश कालके ज्ञाता और बुद्धिमान तुम्हीं हो ॥ ४ ॥ युद्धमें किये जानेवाले कोई भी कार्य तुम्हारे लिए अशक्य नहीं हैं । शास्त्रीय बुद्धिके द्वारा कर्तव्यनिर्णयके संबन्धमें तुम्हारे विचार अनुचित नहीं होते । तीनों लोकोंमें ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारे अस्त्र-बल और बलको न जानता हो ॥ ५ ॥ मेरेही समान तुम्हारा पराक्रम, तपोबल तथा युद्धमें अस्त्र-बल है । युद्धमें तुमको पाकर मेरा मन चिन्तित नहीं होता, अर्थात् मैं जयके विषयमें सन्देह नहीं करता । विजयका निश्चय रहता है ॥ ६ ॥ सब किंकर मारे गये । जम्बुमाली राक्षस मारा गया । सेनाके आगे चलनेवाले पाँच अमात्यपुत्र भी मारे गये ॥ ७ ॥ बड़ी सेना, हाथी, घोड़े आदि नष्ट हुए । महोदर भी सो गया । कुमार अक्ष भी मारा गया । शत्रुसूदन, सब संसारको जीतनेकी जो हमारी इच्छा है, उसमें सहायता देनेवाला मैं तुम्हींको समझता हूँ, इन लोगोंको नहीं ॥ ८ ॥ इन मारे जानेवालोंको देखकर, वानरके बल-प्रभाव और पराक्रमको देखकर तथा अपने बलकी ओर देखकर, तुम अपने बलके अनुरूप पराक्रम प्रकाशित करो ॥ ९ ॥ युद्धके लिए निकलकर तुम जब शत्रुके समीप जाओगे, उस समय सेनाओंके मारनेसे शत्रु क्षीण-बल दीख पड़ेगा । वह शत्रु जिस प्रकार अपने अधिकारमें आवे वैसा अपना और शत्रुका बल देखकर तुम कार्य प्रारंभ करना ॥ १० ॥ वीर, तुम सेना लेकर न जाओ; क्योंकि सैनिक दलबद्ध

न मारुतस्यास्ति गतिप्रमाणं न चाग्निकल्पः करणेन हन्तुम् ॥११॥
तमेवमर्थं प्रसमीक्ष्य सम्यक्स्वकर्मसाम्याद्धि समाहितात्मा।
स्मरंश्च दिव्यं धनुषोऽस्य वीर्यं व्रजाक्षतं कर्म समारभस्व ॥१२॥
न खल्वियं मतिःश्रेष्ठा यत्त्वां संप्रेषयाम्यहम्। इयं च राजधर्माणां क्षत्रस्य च मतिर्मता ॥१३॥
नानाशास्त्रेषु संग्रामे वैशारद्यमरिंदम। अवश्यमेव बोद्धव्यं काम्यश्च विजयो रणे ॥१४॥
ततः पितुस्तद्वचनं निशम्य प्रदक्षिणं दक्षसुतप्रभावः।
चकार भर्तारमतित्वरेण रणाय वीरः प्रतिपन्नबुद्धिः ॥१५॥
ततस्तैः स्वगणैरिष्टैरिन्द्रजित्प्रतिपूजितः। युद्धोद्धतकृतोत्साहः संग्रामं संप्रपद्यत ॥१६॥
श्रीमान्पद्मविशालाक्षो राक्षसाधिपतेः सुतः। निर्जगाम महातेजाः समुद्र इव पर्वणि ॥१७॥
स पक्षिराजोपमतुल्यवेगैर्व्यालैश्चतुर्भिः स तु तीक्ष्णदंष्ट्रैः।
रथं समायुक्तमसह्यवेगः समारुरोहेन्द्रजिदिन्द्रकल्पः ॥१८॥
स रथी धन्विनां श्रेष्ठः शस्त्रज्ञोऽस्त्रविदां वरः। रथेनाभिययौ क्षिप्रं हनुमान्यत्र सोऽभवत् ॥१९॥
स तस्य रथनिर्घोषं ज्यास्वनं कार्मुकस्य च। निशम्य हरिवीरोऽसौ संप्रहृष्टतरोऽभवत् ॥२०॥
इन्द्रजिच्चापमादाय शितशल्यांश्च सायकान्। हनुमन्तमभिप्रेत्य जगाम रणपण्डितः ॥२१॥

होकर भागते हैं तथा अत्यन्त तीखे और कठिन वाण लेकर भी न जाओ। वायुपुत्रकी सामर्थ्यकी इयत्ता नहीं है। वह कितना बली है, इसका निश्चय नहीं है। अग्निके समान तेजस्वी वह बाणोंके द्वारा नहीं मारा जा सकता ॥११॥ मेरी कही बातोंको ठीक ठीक समझकर, स्वय प्रयत्नोंके द्वाराही इस कार्यकी सिद्धि होगी, इसलिए सावधान होकर इस कार्यके विषयमें दिव्य धनुषकी सामर्थ्य देखकर, तुम जाओ और शत्रुओंकेद्वारा विनष्ट न होनेवाले कार्य प्रारम्भ करो॥१२॥ हे बुद्धिमान,अपने प्रियपुत्र तुमको जो मैं इस संकटके काममें भेज रहा हूँ, यह ठीक नहीं है। पर, मेरा यह विचार राजधर्म और क्षत्रियत्वके अनुकूल है ॥१३॥ रणमें विजय चाहनेवालेको अवश्यही विविध शस्त्रों तथा युद्धोंकी निपुणता प्राप्त करनी चाहिए ॥१४॥ पिताके वचन सुनकर देवताओंके समान प्रभाव-वाले, युद्धमें जानेके लिए तैयार मेघनादने राजा रावणकी, शीघ्रतापूर्वक प्रदक्षिणा की ॥१५॥ अपने प्रिय दलवालोंसे प्रशंसित इन्द्रजित्, विकट युद्धके लिए उत्साहित होकर संग्रामक्षेत्रमें जानेके लिए, प्रस्थित हुए ॥ १६ ॥ राक्षसाधिपतिका, सुन्दर कमलके समान नेत्रवाला, तेजस्वी पुत्र निकला ॥ १७ ॥ पक्षिराजके समान वेगवाले तथा तीखे दाँतवाले चार व्यालों (व्यालका अर्थ साँप और दुष्ट हाथी हैं, टीकाकारोंने यहाँ व्यालका अर्थ सर्प ही लिखा है, पर, वह ठीक नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि साँपोंका दाँत न तो प्रशंसनीय ही होता है और न सुन्दर। दूसरे इस विशेषणकी सार्थकता भी साँपोंके लिए नहीं होती, किन्तु, हाथीके दांत उनकी सुन्दरता बढ़ानेवाले होते हैं। कवियोंने हाथीदाँतका वर्णनभी किया है। अतएव व्यालका अर्थ यहाँ दुष्ट हाथीही समझना चाहिए) से युक्त रथपर असह्य-वेग, इन्द्रके तुल्य इन्द्रजित् चढ़ा ॥ १८ ॥ धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ, शास्त्रज्ञ, अस्त्रवेत्ताओंमें अग्रगामी वह रथी, रथसे वहाँ गया जहाँ वे हनुमान थे ॥ १९ ॥ उसके रथकी घरघराहट, धनुषके शब्द सुनकर वे कपिवीर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २० ॥ इन्द्रजित् धनुष और

तस्मिंस्ततः संयति जातहर्षे रणाय निर्गच्छति बाणपाणौ ।
दिशश्च सर्वाः कलुषा बभूवुर्मृगाश्च रौद्रा बहुधा विनेदुः ॥२२॥
समागतास्तत्र तु नागयक्षा महर्षयश्चक्रचराश्च सिद्धाः ।
नभः समावृत्य च पक्षिसङ्घा विनेदुरुच्चैः परमप्रहृष्टाः ॥२३॥
आयान्तं सरथं दृष्ट्वा पूर्णमिन्द्रध्वजं कपिः । ननाद च महानादं व्यवर्धत च वेगवान् ॥२४॥
इन्द्रजित्स रथं दिव्यमाश्रितश्चित्रकार्मुकः । धनुर्विस्फारयामास तडिदूर्जितनिःस्वनम् ॥२५॥
ततः समेतावतितीक्ष्णवेगौ महाबलौ तौ रणनिर्विशङ्कौ ।
कपिश्च रक्षोधिपतेस्तनूजः सुरासुरेन्द्राविव बद्धवैरौ ॥२६॥
स तस्य वीरस्य महारथस्य धनुष्मतः संयति संमतस्य ।
शरप्रवेगं व्यहनत्प्रवृद्धश्चचार मार्गे पितुरप्रमेयः ॥२७॥
ततः शरानायततीक्ष्णशल्यान्सुपत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खान् ।
मुमोच वीरः परवीरहन्ता सुसंततान्वज्रसमानवेगान् ॥२८॥
ततः स तत्स्यन्दननिःस्वनं च मृदङ्गभेरीपटहस्वनं च ।
विकृष्यमाणस्य च कार्मुकस्य निशम्य घोषं पुनरुत्पपात ॥२९॥
शराणामन्तरेष्वाशु व्यावर्तत महाकपिः । हरिस्तस्याभिलक्ष्यस्य मोक्षयंल्लक्ष्यसंग्रहम् ॥३०॥
शराणामग्रतस्तस्य पुनः समभिवर्तत । प्रसार्य हस्तौ हनुमानुत्पपातानिलात्मजः ॥३१॥
तावुभौ वेगसंपन्नौ रणकर्मविशारदौ । सर्वभूतमनोग्राहि चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥३२॥

तीखे बाण लेकर हनुमानको लक्ष्य करके चला ॥ २१ ॥ युद्धमें उत्साही, बाणधारी उसके रणके लिए प्रस्थित होनेपर सब दिशाएँ कलुषित हो गयीं । भयानक पशु बोलने लगे ॥ २२ ॥ वहाँ नाग, यक्ष, और आकाशचारी सिद्ध आये । पक्षियोंका समूह आकाश घेरकर प्रसन्नतासे खूब बोलने लगा ॥ २३ ॥ इन्द्रके आकारसे चिन्हित ध्वजावाले रथके साथ उसको आते देखकर हनुमानने घोर गर्जन किया औरवे बढ़ने लगे ॥ २४ ॥ दिव्य रथपर बैठा हुआ, चित्र धनुष धारण करके वह इन्द्रजित् बिजलीके समान भयंकर धनुषका टंकार करने लगा ॥ २५ ॥ अतिदारुण वेगवाले, युद्धमें निर्भय, महाबली वे दोनों, राक्षसराजके पुत्र और हनुमान, नैसर्गिक शत्रु देवासुरके समान मिले ॥ २६ ॥ अनुपम हनुमानने युद्धमें प्रशंसित धनुर्धारी महारथ वीर इन्द्रजित्के बाणोंको व्यर्थ कर दिया और वे अपने पिता वायुके मार्गमें चलने लगे ॥ २७ ॥ अनन्तर शत्रुओंको मारनेवाले वीर इन्द्रजित्ने विशाल, तीखे अच्छे पंखवाले, सोनेसे चित्रित, अतिदृढ़ और वज्रके समान वेगवाले बाण छोड़े ॥ २८ ॥ इन्द्रजित्के रथके शब्दको, मृदङ्ग भेरी पटह आदिके शब्दोंको तथा खींचे जाते हुए धनुषके शब्दको सुनकर हनुमान पुनः उछले ॥ २९ ॥ लक्ष्यवेध करनेमें प्रसिद्ध उस इन्द्रजित्का निशाना व्यर्थ करते हुए महाकपि बाणपातके अवकाशके समय ऊपर उछल गये ॥ ३० ॥ पुनः महाकपि उसके बाणोंके आगे आकर खड़े हो गए । वायुपुत्र हनुमान पुनः हाथ बढ़ाकर ऊपर कूद गये ॥ ३१ ॥ वेगयुक्त, युद्धमें निपुण वे दोनों, सबको प्रसन्न करनेवाले, उत्तमतापूर्वक युद्ध

हनूमतो वेद न राक्षसोऽन्तरं न मारुतिस्तस्य महात्मनोऽन्तरम् ।
परस्परं निर्विषहौ बभूवतुः समेत्य तौ देवसमानविक्रमौ ॥३३॥
ततस्तु लक्ष्ये स विहन्यमाने शरेष्वमोघेषु च संपतत्सु ।
जगाम चिन्तां महतीं महात्मा समाधिसंयोगसमाहितात्मा ॥३४॥
ततो मतिं राक्षसराजसूनुश्चकार तस्मिन्हरिवीरमुख्ये ।
अवध्यतां तस्य कपेः समीक्ष्य कथं निगच्छेदिति निग्रहार्थम् ॥३५॥
ततः पैतामहं वीरः सोऽस्त्रमस्त्रविदां वरः । संदधे सुमहातेजास्तं हरिप्रवरं प्रति ॥३६॥
अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित् । निजग्राह महाबाहुं मारुतात्मजमिन्द्रजित् ॥३७॥
तेन बद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः । अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले ॥३८॥
ततोऽथ बुद्ध्वा स तदस्त्रबन्धं प्रभोः प्रभावाद्विगताल्पवेगः ।
पितामहानुग्रहमात्मनश्च विचिन्तयामास हरिप्रवीरः ॥३९॥
ततः स्वायंभुवैर्मन्त्रैर्ब्रह्मास्त्रं चाभिमन्त्रितम् । हनूमांश्चिन्तयामास वरदानं पितामहात् ॥४०॥
न मेऽस्य बन्धस्य च शक्तिरस्ति विमोक्षणे लोकगुरोःप्रभावात् ।
इत्येवमेवं विहितोऽस्त्रबन्धो मयाऽऽत्मयोनेरनुवर्तितव्यः ॥४१॥
स वीर्यमस्त्रस्य कपिर्विचार्य पितामहानुग्रहमात्मनश्च ।
विमोक्षशक्तिं परिचिन्तयित्वा पितामहाज्ञामनुवर्तते स्म ॥४२॥

करने लगे ॥ ३२ ॥ हनुमानके अन्तर (अर्थात् हनुमानके द्वारा बाणोंका व्यर्थ करना) वह न जान सका और महात्मा उस इन्द्रजित्के अन्तरको (अर्थात् अविरत बाणवर्षाके अवकाशको) हनुमान न जान सके । इस प्रकार देवताके समान पराक्रमी वे दोनों वीर परस्परमें एक दूसरे को न सह सके ॥ ३३ ॥ अमोघ बाणोंके चलानेपरभी लक्ष्यवेध होते न देखकर महात्मा और लक्ष्यवेध करनेमें सावधान इन्द्रजित् विचार करने लगा ॥ ३४ ॥ राक्षसराजके पुत्रने उस कपि, वीरोंमें श्रेष्ठ हनुमानके विषयमें निश्चय किया, क्योंकि हनुमान अवध्य हैं, यह उसने जान लिया था । अतएव, किस प्रकार ये पकड़े जायँगे, इसका उसने विचार किया ॥ ३५ ॥ अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी वीर इन्द्रजित्ने ब्रह्माका अस्त्र हनुमानके लिए चढ़ाया ॥ ३६ ॥ यह अवध्य है ऐसा जानकर अस्त्रतत्त्वविद् इन्द्रजित्ने महाबाहु हनुमानको पकड़ लिया ॥ ३७ ॥ राक्षसके द्वारा उस अस्त्रसे बँध जानेपर हनुमान निश्चेष्ट हो गये और पृथ्वीपर गिर गये ॥ ३८ ॥ वे हनुमान अपनेको ब्रह्मास्त्रसे बँधा जानकरभी ब्रह्माके वरके प्रभावसे चिन्तित और पीड़ित नहीं हुए । ब्रह्माके वरका विचार कर हनुमान सोचने लगे ॥ ३९ ॥ स्वयंभु देवतावाले मंत्रोंसे अभिमंत्रित उस ब्रह्मास्त्रसे अपनेको बँधा देखकर हनुमान ब्रह्मासे पाये वरका विचार करने लगे ॥ ४० ॥ ब्रह्मामें श्रद्धा होनेके कारण मैं इस बन्धनको न माननेकी शक्ति नहीं रखता । अतएव, ब्रह्माके इस बन्धनको मुझे मानना ही चाहिए ॥ ४१ ॥ उस अस्त्रका बल, पितामहकी कृपा और उसको तोड़नेकी अपनी शक्ति विचार

अस्त्रेणापि हि बद्धस्य भयं मम न जायते । पितामहमहेन्द्राभ्यां रक्षितस्यानिलेन च ॥४३॥
ग्रहणे चापि रक्षोभिर्महन्मे गुणदर्शनम् । राक्षसेन्द्रेण संवादस्तस्माद्गृह्णन्तु मां परे ॥४४॥
स निश्चितार्थः परवीरहन्ता समीक्ष्यकारी विनिवृत्तचेष्टः ।
परैः प्रसह्याभिगतैर्निगृह्य ननाद तैस्तैः परिभर्त्स्यमानः ॥४५॥
ततस्ते राक्षसा दृष्ट्वा विनिश्चेष्टमरिंदमम् । बबन्धुः शणवल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहतैः ॥४६॥
स रोचयामास परैश्च बन्धं प्रसह्य वीरैरभिगर्हणं च ।
कौतूहलान्मां यदि राक्षसेन्द्रो द्रष्टुं व्यवस्येदिति निश्चितार्थः॥४७॥
स बद्धस्तेन वल्केन विमुक्तोऽस्त्रेण वीर्यवान । अस्त्रबन्धः स चान्यं हि न बन्धमनुवर्तते ॥४८॥
अथेन्द्रजित्तं द्रुमचीरबद्धं विचार्य वीरः कपिसत्तमं तम् ।
विमुक्तमस्त्रेण जगाम चिन्तामन्येन बद्धोऽप्यनुवर्ततेऽस्त्रम् ॥४९॥
अहो महत्कर्म कृतं निरर्थं न राक्षसैर्मन्त्रगतिर्विमृष्टा ।
पुनश्च नास्त्रे विहतेऽस्त्रमन्यत्प्रवर्तते संशयिताः स्म सर्वे ॥५०॥
अस्त्रेण हनुमान्मुक्तो नात्मानमवबुध्यते । कृष्यमाणस्तु रक्षोभिस्तैश्च बन्धैर्निपीडितः ॥५१॥
हन्यमानस्ततः क्रूरै राक्षसैः कालमुष्टिभिः । समीपं राक्षसेन्द्रस्य प्राकृष्यत स वानरः ॥५२॥

करके हनुमानने ब्रह्माकी आज्ञाको माननाही उचित समझा ॥ ४२ ॥ अस्त्रसे बाँधे जानेपरभी मुझे भय नहीं है; क्योंकि, मैं ब्रह्मा, इन्द्र, वायुके द्वारा रक्षित हूँ ॥ ४३ ॥ राक्षसोंके द्वारा पकड़े जानेमें भी रावणसे बातचीत होगी, यह लाभ दीखता है । इस कारण ये लोग मुझे पकड़ें ॥ ४४ ॥ इस प्रकार विचार निश्चय करके शत्रुहंता, विचारपूर्वक काम करनेवाले, निश्चेष्ट हो गये । चारों तरफ घिरे हुए राक्षस उन्हें पकड़कर मारने लगे । वे वानरोंके समान शब्द करने लगे ॥ ४५ ॥ शत्रु-नाशी हनुमानको निश्चेष्ट देखकर राक्षस बटे हुए सनके छिलके और वृक्षोंके वल्कलोंसे उन्हें बाँधने लगे ॥ ४६ ॥ कौतुकसे मुझे देखना रावण यदि निश्चित करे, इस विचारसे हनुमानने वीर शत्रुओं-के द्वारा अपना बाँधा जाना तथा तिरस्कारभी अच्छा समझा ॥ ४७ ॥ सनकी रस्सियोंके द्वारा बाँधे जानेपर हनुमान ब्रह्मास्त्रसे मुक्त हो गये, क्योंकि ब्रह्मास्त्र दूसरे बंधनोंके साथ नहीं रहता ॥ ४८ ॥ उन कपिश्रेष्ठको वल्कलसे बँधा तथा ब्रह्मास्त्रसे विमुक्त देखकर इन्द्रजित् सोचने लगा कि दूसरी चीजोंसे बँधे होने परभी यह वानर ब्रह्मास्त्रसे बँधेके समान है ॥ ४९ ॥ अहो, मैंने यह सब काम निरर्थक किया । राक्षसोंने मंत्र-प्रभावकी ओर न देखा । इस अस्त्रके एकबार निरर्थक होने पर पुनः इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता । अब हम लोगोंकी जय सन्देहमें पड़ गयी ॥ ५० ॥ अस्त्रसे मुक्त होने परभी हनुमानने यह नहीं जनाया कि मैं अस्त्रमुक्त हो गया हूँ । साधा-रण बन्धनोंसे पीड़ित और क्रूर राक्षसोंके द्वारा कालमुष्टिसे आहत तथा खींचे जाकर वे रावणके

अथेन्द्रजित्तं प्रसमीक्ष्य मुक्तमस्त्रेण बद्धं द्रुमचीरसूत्रैः ।
व्यदर्शयत्तत्र महाबलं तं हरिप्रवीरं सगणाय राज्ञे ॥५३॥

तं मत्तमिव मातङ्गं बद्धं कपिवरोत्तमम् । राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥५४॥

कोऽयं कस्य कुतो वापि किं कार्यं कोऽभ्युपाश्रयः।इति राक्षसवीराणां दृष्ट्वा संजज्ञिरे कथाः ॥५५॥

हन्यतां दह्यतां वापि भक्ष्यतामिति चापरे । राक्षसास्तत्र संक्रुद्धाः परस्परमथाब्रुवन् ॥५६॥

अतीत्य मार्गं सहसा महात्मा स तत्र रक्षोधिपपादमूले ।
ददर्श राज्ञः परिचारवृद्धान्गृहं महारत्नविभूषितं च ॥५७॥

स ददर्श महातेजा रावणः कपिसत्तमम् । रक्षोभिर्विकृताकारैः कृष्यमाणमितस्ततः ॥५८॥

राक्षसाधिपतिं चापि ददर्श कपिसत्तमः । तेजोबलसमायुक्तं तपन्तमिव भास्करम् ॥५९॥

स रोषसंवर्तितताम्रदृष्टिर्दशाननस्तं कपिमन्ववेक्ष्य ।
अथोपविष्टान्कुलशीलवृद्धान्समादिशत्तं प्रति मुख्यमन्त्रीन् ॥६०॥

यथाक्रमं तैः स कपिश्च पृष्टः कार्यार्थमर्थस्य च मूलमादौ ।
निवेदयामास हरीश्वरस्य दूतः सकाशादहमागतोऽस्मि ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

पास पहुँचाये गये ॥ ५१-५२ ॥ इन्द्रजितने हनुमानको अस्त्रसे मुक्त तथा रस्सीसे बँधा देखकर महाबली उस वानरवीरको सभासदोंके सहित राजाको दिखलाया ॥ ५३ ॥ वे राक्षस मतवाले हाथीके समान बँधे हुए कपिश्रेष्ठ हनुमानको रावणके पास ले गये ॥ ५४ ॥ हनुमानको देखनेसे राक्षसलोग आपसमें कहने लगे, यह कौन है, किसका है, कहाँसे आया है, किस कामसे आया है, और इसका मालिक कौन है ॥ ५५ ॥ क्रोध करके राक्षस कहने लगे कि इसे मार डालो, जला डालो, तथा खा डालो ॥ ५६ ॥ महात्मा हनुमान रास्ता पार करके रावणके पास गये। वहाँ उन्होंने बूढ़े सेवक और रत्नभूषित घर देखे ॥ ५७ ॥ महातेजस्वी रावणने विकृताकार राक्षसोंके द्वारा इधर उधर घसीटे जाते वानरको देखा ॥ ५८ ॥ कपिश्रेष्ठ हनुमानने भी तेजबलसे युक्त, सूर्यके समान तपते हुए रावणको देखा ॥ ५९ ॥ वानरको देखकर रावणकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने वहाँ बैठे हुए कुलशीलमें बड़े प्रधान मंत्रियोंको आज्ञा दी ॥ ६० ॥ यथाक्रम उनके द्वारा उद्देश्य तथा उद्देश्यका मूलभूत पूछने पर हनुमानने कहा—वानरराज सुग्रीवके यहाँसे मैं आया हूँ ॥ ६१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९

ततः स कर्मणा तस्य विस्मितो भीमविक्रमः । हनुमान्क्रोधताम्राक्षो रक्षोधिपमवैक्षत ॥ १ ॥
भ्राजमानं महार्हेण काञ्चनेन विराजता । मुक्ताजालवृतेनाथ मुकुटेन महाद्युतिम् ॥ २ ॥
वज्रसंयोगसंयुक्तैर्महार्हमणिविग्रहैः । हैमैराभरणैश्चित्रैर्मनसेव प्रकल्पितैः ॥ ३ ॥
महार्हक्षौमसंवीतं रक्तचन्दनरूषितम् । स्वनुलिप्तं विचित्राभिर्विविधाभिश्च भक्तिभिः॥ ४ ॥
विचित्रं दर्शनीयैश्च रक्ताक्षैर्भीमदर्शनैः । दीप्ततीक्ष्णमहादंष्ट्रं प्रलम्बं दशनच्छदैः ॥ ५ ॥
शिरोभिर्दशभिर्वीरो भ्राजमानं महौजसम् । नानाव्यालसमाकीर्णैः शिखरैरिव मन्दरम् ॥ ६ ॥
नीलाञ्जनचयप्रख्यं हारेणोरसि राजता । पूर्णचन्द्राभवक्त्रेण सबालार्कमिवाम्बुदम् ॥ ७ ॥
बाहुभिर्बद्धकेयूरैश्चन्दनोत्तमरूषितैः । भ्राजमानाङ्गदैर्भीमैः पञ्चशीर्षैरिवोरगैः ॥ ८ ॥
महति स्फाटिके चित्रे रत्नसंयोगचित्रिते । उत्तमास्तरणास्तीर्णे सूपविष्टं वरासने ॥ ९ ॥
अलंकृताभिरत्यर्थं प्रमदाभिः समन्ततः । वालव्यजनहस्ताभिरारात्समुपसेवितम् ॥१०॥
दुर्धरेण प्रहस्तेन महापार्श्वेन रक्षसा । मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्निकुम्भेन च मन्त्रिणा ॥११॥
उपोपविष्टं रक्षोभिश्चतुर्भिर्बलदर्पितम् । कृत्स्नं परिवृतं लोकं चतुर्भिरिव सागरैः ॥१२॥
मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैरन्यैश्च शुभदर्शिभिः । आश्वास्यमानं सचिवैः सुरैरिव सुरेश्वरम् ॥१३॥

मेघनादके इस कामसे पराक्रमी हनुमान विस्मित हुए और क्रोधरक्त आँखोंसे उन्होंने रावणको देखा ॥ १ ॥ वह सोनेके बने मुकुटसे शोभित होरहा था, जिसमें मोती टँके हुए थे । बहु-मूल्य मणियोंसे बने जगह-जगह हीरे जड़े हुए, मानसिक कल्पनाके द्वारा प्रस्तुतसे, गहनोंसे वह शोभित होरहा था ॥ २-३ ॥ दामी रेशमी वस्त्र पहने हुआ था, रक्तचन्दन धारण किये हुए था, इसके शरीरमें अंगरागोंसे तरह-तरहकी रचनाएँ बनी हुई थीं ॥ ४ ॥ उसकी लाल आँखें देखनेमें भयानक और सुन्दर थीं, उसके दांत चमकीले तीखे और ओठ लंबे थे, ॥ ५ ॥ बड़े-बड़े सर्पोवाले मन्दराचलके शिखरके समान उसके दस सिर थे जिनसे वह शोभित होरहा था ॥ ६ ॥ रावण नीले कज्जलराशिके समान था, छातीपर हार शोभित होरहा था, पूर्ण चन्द्रके समान उसका मुख था, अतएव बालसूर्ययुक्त मेघके समान मालूम पड़ता था ॥ ७ ॥ बाहुमें केयूर बँधे हुए थे, उत्तम चन्दन लगा हुआ था, और गहने पड़े हुए थे, जिनसे उसके हाथ पांच सिरवाले सर्पके समान मालूम होते थे ॥८॥ वह स्फटिकके सुन्दर आसनपर बैठा था, रत्नोंके संयोगसे वह चित्रित होगया था, उसपर उत्तम बिछौने बिछे हुए थे ॥ ९ ॥ अलंकृत स्त्रियां छोटे-छोटे चंवर लेकर चारों ओरसे पासहीसे उसकी सेवा कर रही थीं ॥ १० ॥ दुर्धर, स्थूलपार्श्ववाला राक्षस प्रहस्त, मन्त्रतत्त्व जाननेवाले मन्त्री, और निकुम्भनामका मन्त्री ये चार बलवान राक्षस उसको घेरे हुए बैठे थे, जिस प्रकार चार समुद्रोंसे समस्त लोक घिरा हुआ है । उन मन्त्रतत्त्वज्ञ तथा हितैषी अन्य मन्त्रियोंके द्वारा रावण आश्वासित किया जारहा था, जिस प्रकार देवताओं द्वारा इन्द्र ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

अपश्यद्राक्षसपतिं हनूमानतितेजसम् । वेष्टितं मेरुशिखरे सतोयमिव तोयदम् ॥१४॥
स तैःसंपीड्यमानोऽपि रक्षोभिर्भीमविक्रमैः। विस्मयं परमं गत्वा रक्षोधिपमवैक्षत ॥१५॥
भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनूमान्राक्षसेश्वरम् । मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः ॥१६॥
अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः । अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता ॥१७॥
यद्यधर्मो न बलवान्स्यादयं राक्षसेश्वरः । स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥१८॥
अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोककुत्सितैः । सर्वे बिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः ॥१९॥
अयं ह्युत्सहते क्रुद्धः कर्तुमेकार्णवं जगत् । इति चिन्तां बहुविधामकरोन्मतिमान्कपिः ।
दृष्ट्वा राक्षसराजस्य प्रभावममितौजसः । ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥४९॥

पञ्चाशः सर्गः ५०

तमुद्वीक्ष्य महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम् । रोषेण महताविष्टो रावणो लोकरावणः ॥ १ ॥
शङ्काहतात्मा दध्यौ स कपीन्द्रं तेजसा वृतम् । किमेष भगवान्नन्दी भवेत्साक्षादिहागतः ॥ २ ॥
येन शप्तोऽस्मि कैलासे मया प्रहसिते पुरा । सोऽयं वानरमूर्तिःस्यात्किंस्विद्बाणोऽपि वासुरः ॥ ३ ॥

मेरुके शिखरपर बैठे सजल मेघके समान अतितेजस्वी राक्षसपतिको हनुमानने देखा ॥ १४ ॥ पराक्रमी राक्षसोंके द्वारा पीड़ित होनेपरभी हनुमान अत्यन्त विस्मित होकर राक्षसराजको देखने लगे ॥ १५ ॥ राक्षसराजकी शोभा देखकर तथा उसके तेजसे मोहित होकर हनुमान मनही मन सोचने लगे ॥१६॥ कैसा इसका रूप है, कैसी वीरता है, कैसा पराक्रम है, कैसी कान्ति है! यह राक्षसराज सब लक्षणोंसे युक्त है ॥१७॥ यदि इस राक्षसराजमें अधर्मकी अधिकता न होती तो इन्द्रसहित देवलोकका यह रक्षक होता ॥ १८ ॥ इसके क्रूर कठोर तथा निन्दित कर्मोंसे सब लोग, देवता दानव तक, डरते हैं ॥ १९ ॥ यह क्रोध करके समस्त संसारको एकार्णव कर सकता है अर्थात् समस्त पृथिवीका नाश कर सकता है । तेजस्वी राक्षसराजके प्रभावको देखकर हनुमान अनेक प्रकारकी चिन्ताएँ करने लगे ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुंदरकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४९ ॥

पीली आँखवाले उनको सामने देखकर लोकोंको रुलानेवाला रावण बड़े क्रोधमें भरकर तथा शंकासे आकुलित होकर विचार करने लगा । तेजस्वी हनुमानको देखकर वह सोचने लगा, क्या ये भगवान् नन्दी तो साक्षात् यहाँ नहीं आये हैं ! ॥ १ ॥ २ ॥ जिन्होंने कैलाशमें मेरे हँसनेपर मुझे शाप दिया था, वही वानर बनकर तो नहीं आये हैं ! अथवा वह बाणासुर वानर बनकर

स राजा रोषताम्राक्षः प्रहस्तं मन्त्रिसत्तमम् । कालयुक्तमुवाचेदं वचो विपुलमर्थवत् ॥ ४ ॥
दुरात्मा पृच्छ्यतामेष कुतः किं वास्य कारणम्। वनभङ्गे च कोऽस्यार्थो राक्षसानां च तर्जने ॥ ५ ॥
मत्पुरीमप्रधृष्यां वै गमने किं प्रयोजनम् । आयोधने वा किं कार्यं पृच्छ्यतामेष दुर्मतिः ॥ ६ ॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत् । समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः कार्या त्वया कपे ॥ ७ ॥
यदि तावत्त्वमिन्द्रेण प्रेषितो रावणालयम् । तत्त्वमाख्याहि मा ते भूद्भयं वानर मोक्ष्यसे ॥ ८ ॥
यदि वैश्रवणस्य त्वं यमस्य वरुणस्य च । चारुरूपमिदं कृत्वा प्रविष्टो नः पुरीमिमाम् ॥ ९ ॥
विष्णुना प्रेषितो वापि दूतो विजयकाङ्क्षिणा। नहि ते वानरं तेजो रूपमात्रं तु वानरम् ॥१०॥
तत्त्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे । अनृतं वदतश्चापि दुर्लभं तव जीवितम् ॥११॥
अथ वा यन्निमित्तस्ते प्रवेशो रावणालये । एवमुक्तो हरिवरस्तदा रक्षोगणेश्वरम् ॥१२॥
अब्रवीन्नास्मि शक्रस्य यमस्य वरुणस्य च । धनदेन न मे सख्यं विष्णुना नास्मि चोदितः ॥१३॥
जातिरेव मम त्वेषा वानरोऽहमिहागतः । दर्शने राक्षसेन्द्रस्य तदिदं दुर्लभं मया ॥१४॥
वनं राक्षसराजस्य दर्शनार्थे विनाशितम् । ततस्ते राक्षसाः प्राप्ता बलिनो युद्धकाङ्क्षिणः ॥१५॥
रक्षणार्थं च देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे । अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बद्धुं देवासुरैरपि ॥१६॥
पितामहादेष वरो ममापि हि समागतः । राजानं द्रष्टुकामेन मयास्त्रमनुवर्तितम् ॥१७॥
विमुक्तोऽप्यहमस्त्रेण राक्षसैस्त्वभिवेदितः । केनचिद्रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम् ॥१८॥

आया है ? ॥ ३ ॥ वह राजा क्रोधसे लाल आँखें करके मन्त्रिश्रेष्ठ प्रहस्तसे कालोचित गम्भीर और अर्थयुक्त वचन बोला ॥ ४ ॥ इस दुरात्मासे पूछो कि वह कहाँसे आया है और किसलिए आया है। वन उजाड़ने तथा राक्षसोंको मारनेसे इसे क्या लाभ हुआ ॥ ५ ॥ प्रवेशके अयोग्य मेरी इस नगरीमें आनेका क्या मतलब और युद्ध करनेका क्या मतलब, यह इस मूर्खसे पूछो ॥ ६ ॥ रावणके वचन सुनकर प्रहस्त बोला—वानर, तुम घबराओ न; तुम्हारा कल्याण हो; भय न करो॥७॥ यदि इन्द्रने तुम्हें इस रावणपुरीमें भेजा हो तो सच-सच बतला दो। डरो मत, तुम छोड़ दिये जाओगे ॥८॥ क्या कुबेर, यम या वरुणने तुम्हें यहाँ भेजा है जो ऐसा सुन्दर रूप बनाकर तुमने इस नगरीमें प्रवेश किया है ॥ ९ ॥ अथवा विजय चाहनेवाले विष्णुने तुम्हें दूत बनाकर भेजा है। तुम्हारा तेज वानरोंका नहीं है, तुम केवल रूपसे ही वानर हो ॥ १० ॥ सच सच बतला दो, छूट जाओगे, यदि झूठ बोलोगे तो तुम्हारा जीना असंभव हो जायगा ॥११॥ अथवा जिस लिए तुमने इस रावणनगरीमें प्रवेश किया हो वही कहो। उसके ऐसा कहनेपर वानरश्रेष्ठ हनुमान उससे बोले—मैं इन्द्र, यम अथवा वरुणका दूत नहीं हूँ, कुबेरके साथ भी मेरी मैत्री नहीं है, विष्णुने भी मुझे नहीं भेजा है ॥ १२ ॥ १३ ॥ मैं जन्मसेही वानर हूँ, राक्षसेन्द्रके दर्शनके लिए आया, पर वह दर्शन दुर्लभ था १४ ॥ अतएव राक्षसराजके दर्शनके लिये मैंने वन उजाड़ा, तब बली राक्षस युद्ध करनेके लिए मेरे पास पहुँचे ॥१५॥ अपनी रक्षाके लिए मैंने भी उत्तरमें युद्ध किया। देवता और असुरोंसे भी पाशके द्वारा मैं बाँधा नहीं जा सकता ॥ १६ ॥ पितामहसे यह वर मुझे भी मिला है। केवल राजाको देखने केलिए मैंने यह अस्त्र माना है ॥ १७ ॥ मैं अस्त्रसे मुक्त हूँ। मुझे बँधा

दूतोऽहमिति विज्ञाय राघवस्यामितौजसः । श्रूयतामेव वचनं मम पथ्यमिदं प्रभो ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥५०॥

एकपञ्चाशः सर्गः ५१

तं समीक्ष्य महासत्त्वं सत्त्ववान्हरिसत्तमः । वाक्यमर्थवदव्यग्रस्तमुवाच दशाननम् ॥ १ ॥
अहं सुग्रीवसंदेशादिह प्राप्तस्तवान्तिके । राक्षसेश हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत् ॥ २ ॥
भ्रातुः शृणु समादेशं सुग्रीवस्य महात्मनः । धर्मार्थसंहितं वाक्यमिह चामुत्र च क्षमम् ॥ ३ ॥
राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान् । पितेव बन्धुर्लोकस्य सुरेश्वरसमद्युतिः ॥ ४ ॥
ज्येष्ठस्तस्य महाबाहुः पुत्रः प्रियतरः प्रभुः । पितुर्निदेशान्निष्क्रान्तः प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥ ५ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह भार्यया । रामो नाम महातेजा धर्म्यं पन्थानमाश्रितः ॥ ६ ॥
तस्य भार्या जनस्थाने भ्रष्टा सीतेति विश्रुता । वैदेहस्य सुता राज्ञो जनकस्य महात्मनः ॥ ७ ॥
मार्गमाणस्तु तां देवीं राजपुत्रः सहानुजः । ऋष्यमूकमनुप्राप्तः सुग्रीवेण च संगतः ॥ ८ ॥
तस्य तेन प्रतिज्ञातं सीतायाः परिमार्गणम् । सुग्रीवस्यापि रामेण हरिराज्यं निवेदितुम् ॥ ९ ॥
ततस्तेन मृधे हत्वा राजपुत्रेण वालिनम् । सुग्रीवः स्थापितो राज्ये हर्यृक्षाणां गणेश्वरः ॥१०॥

समझकर राक्षस तुम्हारे पास ले आये हैं। मैं रामचन्द्रके किसी कामके लिए तुम्हारे पास आया हूँ ॥१८॥ अतुलपराक्रमी रामचन्द्रका मैं दूत हूँ, यह जानकर प्रभो, मेरे हितकारी वचन सुनें ॥१९॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका पचासवां सर्ग समाप्त ॥५०॥

बली हनुमान, बली रावणको देखकर अर्थयुक्त तथा असन्दिग्ध वचन बोले ॥ १ ॥ सुग्रीवके कहनेसे मैं यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ। राक्षसेश, तुम्हारे भाई वानरेशने कुशल पूछी है ॥ २ ॥ अपने भाई महात्मा सुग्रीवका सन्देश सुनो, वह धर्म्म और अर्थसे युक्त है, इस लोक तथा परलोकमें कल्याण करनेवाला है ॥ ३ ॥ दशरथ नामके राजा थे, उनके पास रथ, हाथी, घोड़े थे। वे पिताके समान लोगोंके कल्याणकारी थे और इन्द्रके समान तेजस्वी ॥ ४ ॥ उनके परमप्रिय ज्येष्ठपुत्र महाबाहु राम, पिताकी आज्ञासे घरसे निकलकर, दण्डक वनमें आये ॥ ५ ॥ धर्म्मानुकूल मार्गका अवलम्बन करके महातेजस्वी राम सीता नामकी स्त्री तथा भाई लक्ष्मणके साथ वनमें आये ॥ ६ ॥ महात्मा वैदेह राजा जनककी कन्या, सीता नामसे प्रसिद्ध, उनकी भार्या जनस्थानमें खो गयी ॥ ७ ॥ भाईके साथ उनको ढूँढते हुए राजपुत्र ऋष्यमूक पर्वतपर आये और सुग्रीवसे मिले ॥ ८ ॥ सुग्रीवने सीताको ढूंढनेकी प्रतिज्ञा की और रामने सुग्रीवको वानरराज्य देनेकी प्रतिज्ञा की ॥ ९ ॥ पुनः उन राजपुत्रने युद्धमें वालीको मारकर वानर-भालुओंके राज्यपर सुग्रीव-

त्वया विज्ञातपूर्वश्च वाली वानरपुंगवः । स तेन निहतः संख्ये शरेणैकेन वानरः ॥११॥
स सीतामार्गणे व्यग्रः सुग्रीवः सत्यसंगरः । हरीन्संप्रेषयामास दिशः सर्वा हरीश्वरः ॥१२॥
तां हरीणां सहस्राणि शतानि नियुतानि च । दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते ह्यधश्चोपरि चाम्बरे ॥१३॥
वैनतेयसमाः केचित्केचित्तत्रानिलोपमाः । असङ्गगतयः शीघ्रा हरिवीरा महाबलाः ॥१४॥
अहं तु हनुमान्नाम मारुतस्यौरसः सुतः । सीतायास्तु कृते तूर्णं शतयोजनमायतम् ॥१५॥
समुद्रं लङ्घयित्वैव त्वां दिदृक्षुरिहागतः । भ्रमता च मया दृष्टा गृहे ते जनकात्मजा ॥१६॥
तद्भवान्दृष्टधर्मार्थस्तपःकृतपरिग्रहः । परदारान्महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि ॥१७॥
नहि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु । मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥१८॥
कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम् । शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि ॥१९॥
न चापि त्रिषु लोकेषु राजन्विद्येत कश्चन । राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥२०॥
तत्त्रिकालहितं वाक्यं धर्म्यमर्थानुयायि च । मन्यस्व नरशार्दूल जानकी प्रतिदीयताम् ॥२१॥
दृष्टा हीयं मया देवी लब्धं यदिह दुर्लभम् । उत्तरं कर्म यच्छेषं निमित्तं तत्र राघवः ॥२२॥
लक्षितेयं मया सीता तथा शोकपरायणा । गृहे यां नाभिजानासि पञ्चास्यामिव पन्नगीम् ॥२३॥
नेयं जरयितुं शक्या सासुरैरमरैरपि । विषसंसृष्टमत्यर्थं भुक्तमन्नमिवौजसा ॥२४॥
तपःसंतापलब्धस्ते सोऽयं धर्मपरिग्रहः । न स नाशयितुं न्याय्य आत्मप्राणपरिग्रहः ॥२५॥

का अभिषेक किया ॥ १० ॥ वानरश्रेष्ठ वालिको तुम भी जानते हो, उस वानरको रामने एक बाणसे युद्धमें मार डाला ॥ ११ ॥ सत्यप्रतिज्ञ सुग्रीव सीताको ढूंढ़नेके लिए व्याकुल हैं, उन्होंने सब दिशाओंमें वानरोंको भेजा है ॥ १२ ॥ सीताको हजारों लाखों वानर, सब दिशाओंमें, पातालमें और आकाशमें ढूंढ रहे हैं ॥ १३ ॥ उन वीर वानरोंमें कोई गरुड़के समान हैं, कोई वायु के समान हैं, वे सब बिना अवलम्बके चलनेवाले हैं ॥१४॥ मेरा जन्म वायुसे हुआ है, मेरा नाम हनुमान है, सीताको देखनेके लिए सौ योजन लंबा समुद्र लांघकर तथा तुमको देखनेके लिए यहाँ आया हूँ, घूमते हुए मैंने तुम्हारे घरमें सीताको देखा है ॥१५-१६॥ आप धर्म और अर्थका रहस्य जानते हैं, तपस्यामें आपकी आदरबुद्धि है अतएव प्राज्ञ, दूसरेकी स्त्रीको रोकना आपके लिए उचित नहीं ॥१७॥ आपके समान बुद्धिमान, मूल नष्ट करनेवाले, अनेक अनर्थोंकी जड़, धर्मविरुद्ध कार्य नहीं करते ॥ १८ ॥ रामके क्रोधके अधीन लक्ष्मणके छोड़े बाणोंके सामने देवता असुरोंमें भी कौन ठहर सकता है ॥ १९ ॥ राजन्, तीनों लोकोंमें ऐसा कौन है जो रामचन्द्रका विरोध करके सुख पा सके ॥ २० ॥ इस कारण तीनों कालोंमें हितकारी धर्म और अर्थके अनुकूल मेरे वचन मानो, नरसिंह रामको जानकी दे दो ॥ २१ ॥ मैंने सीताको यहाँ देखा है, जो दुर्लभ यश था वह मैंने पा लिया, इसके आगेका कर्तव्य राम निश्चित करेंगे ॥ २२ ॥ घरमें बैठी साँपिनके समान जिसके प्रभावको तुम नहीं जानते, उस सीताको तुम्हारे घरमें मैंने दुःखिनी देखा है ॥२३॥ जिस प्रकार विष मिला अन्न पाकशक्तिके द्वारा नहीं पचाया जा सकता, उसी प्रकार सीताको देवता और असुर भी नहीं छिपा सकते ॥ २४ ॥ तपके द्वारा जो तुमने यह ऐश्वर्य और लम्बी आयु

अवध्यतां तपोभिर्यां भवान्समनुपश्यति। आत्मनः सासुरैर्देवैर्हेतुस्तत्राप्ययं महान् ॥२६॥
सुग्रीवो न च देवोऽयं न यक्षो न च राक्षसः। मानुषो राघवो राजन्सुग्रीवश्च हरीश्वरः॥
तस्मात्प्राणपरित्राणं कथं राजन्करिष्यसि। ॥२७॥
न तु धर्मोपसंहारमधर्मफलसंहितम्। तदेव फलमन्वेति धर्मश्चाधर्मनाशनः ॥२८॥
प्राप्तं धर्मफलं तावद्भवता नात्र संशयः। फलमस्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेव प्रपत्स्यसे ॥२९॥
जनस्थानवधं बुद्ध्वा वालिनश्च वधं तथा। रामसुग्रीवसख्यं च बुद्ध्यस्व हितमात्मनः ॥३०॥
कामं खल्वहमप्येकः सवाजिरथकुञ्जराम्। लङ्कां नाशयितुं शक्तस्तस्यैष तु न निश्चयः ॥३१॥
रामेण हि प्रतिज्ञातं हर्यृक्षगणसंनिधौ। उत्सादनममित्राणां सीता यैस्तु प्रधर्षिता ॥३२॥
अपकुर्वन्हि रामस्य साक्षादपि पुरंदरः। न सुखं प्राप्नुयादन्यः किं पुनस्त्वद्विधो जनः॥३३॥
यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे। कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम् ॥३४॥
तदलं कालपाशेन सीताविग्रहरूपिणा। स्वयं स्कन्धावसक्तेन क्षेममात्मनि चिन्त्यताम् ॥३५॥
सीतायास्तेजसा दग्धां रामकोपप्रदीपिताम्। दह्यमानामिमां पश्य पुरीं साट्टप्रतोलिकाम् ॥३६॥
स्वानि मित्राणि मन्त्रींश्च ज्ञातीन्भ्रातॄन्सुतान्हितान्। भोगान्दारांश्च लङ्कां च मा विनाशमुपानय॥३७॥
सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम। रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः ॥३८॥

पायी है, उसका विनाश करना उचित नहीं ॥ २५ ॥ तपस्याके द्वारा प्राप्त, देवता असुर आदिके द्वारा अपने अवध्य होनेकी जो बात आप सोच रहे हैं, उस अवध्यताका कारण भी तपस्याही है ॥ २६ ॥ ये सुग्रीव और राम न देवता हैं, न यक्ष और न राक्षस। राम मनुष्य हैं और सुग्रीव वानरराज। राजन्, इनसे तुम अपने प्राणोंकी रक्षा कैसे करोगे ॥ २७ ॥ जो अधर्मी है, वह यदि कुछ धर्म भी करे, तो उसे धर्मफल नहीं मिलता; किन्तु अधर्मकाही फल उसे मिलता है, उत्कृष्ट धर्मसे अधर्मका नाश होता है ॥ २८ ॥ आपने धर्मफल पाया है, इसमें सन्देह नहीं, इस अधर्मका फल भी शीघ्रही आप पावेंगे ॥ २९ ॥ जनस्थानके राक्षसोंका वध, बालिका वध जानकर तथा राम और सुग्रीवकी मैत्री जानकर अपने कल्याणका उपाय करो ॥ ३० ॥ केवल अकेला मैं ही हाथी, घोड़े, रथके साथ इस लंकाका नाश कर सकता हूँ; पर रामचन्द्रकी मेरे लिए ऐसी आज्ञा नहीं है ॥ ३१ ॥ वानर भालुओंके सामने रामचन्द्रने उन शत्रुओंके विनाशकी प्रतिज्ञा की है, जिन्होंने सीताका अपमान किया है ॥ ३२ ॥ रामका अपकार करके साक्षात् इन्द्र भी सुख नहीं पा सकता, फिर तुम्हारे जैसोंकी तो बातही क्या ॥ ३३ ॥ जिसको तुम सीता समझ रहे हो और जो इस समय तुम्हारे घरमें है, उसको तुम समस्त लंकाका नाश करनेवाली कालरात्रि समझो ॥ ३४ ॥ अतएव सीतारूपधारी इस कालपाशमें स्वयं गला फँसाना अनुचित है, तुम अपने कल्याणकी चिन्ता करो ॥ ३५ ॥ सीताके तेजसे जली और रामके कोपसे धधकाई अटारी और गलियोंके साथ इस लंकापुरीको जलती देखो ॥ ३६ ॥ अपने मित्रों, मन्त्रियों, ज्ञातिभाइयों, पुत्रों, हितकारियों, भोगविलासों, स्त्रियों और लंकाका विनाश मत करो ॥ ३७ ॥ राजेन्द्र, मेरा सत्य वचन सुनो, रामके दास और दूत मुझ वानरकी बात विशेष कर सुनो ॥ ३८ ॥

सर्वांल्लोकान्सुसंहृत्य सभूतान्सचराचरान् । पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ॥३९॥
देवासुरनरेन्द्रेषु यक्षरक्षोरगेषु च । विद्याधरेषु नागेषु गन्धर्वेषु मृगेषु च ॥४०॥
सिद्धेषु किंनरेन्द्रेषु पतत्रिषु च सर्वतः । सर्वत्र सर्वभूतेषु सर्वकालेषु नास्ति सः ॥४१॥
यो रामं प्रतियुद्ध्येत विष्णुतुल्यपराक्रमम् । सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम् ॥
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम् । ॥४२॥

देवाश्च दैत्याश्च निशाचरेन्द्र गन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः ।
रामस्य लोकत्रयनायकस्य स्थातुं न शक्ताः समरेषु सर्वे ॥४३॥
ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा रुद्रास्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥४४॥
स सौष्ठवोपेतमदीनवादिनः कपेर्निशम्याप्रतिमोऽप्रियं वचः ।
दशाननः कोपविवृत्तलोचनः समादिशत्तस्य वधं महाकपेः ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः ५२

स तस्य वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः । आज्ञापयद्वधं तस्य रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १ ॥
वधे तस्य समाज्ञप्ते रावणेन दुरात्मना । निवेदितवतो दौत्यं नानुमेने विभीषणः ॥ २ ॥

सचराचर सब प्राणियोंका विनाश करके यशस्वी राम पुनः वैसी सृष्टि करनेकी शक्ति रखते हैं ॥३९॥ देवता, असुर, राजा, यक्ष, राक्षस, सर्प, विद्याधर, गन्धर्व, पशु, सिद्ध, किन्नर, पक्षी आदि सब प्राणियोंमें सब कालोंमें ऐसा कोई नहीं है. जो विष्णुके समान पराक्रमी रामसे युद्ध कर सके, सब लोकोंकेस्वामी, राजसिंह रामका ऐसा अप्रिय कार्य करनेसे तुम्हारा जीवन दुर्लभ हो गया है ॥४०॥ ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ निशाचरेन्द्र, युद्धमें त्रिलोकके स्वामी रामके सामने देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, यक्ष-ये कोई भी नहीं ठहर सकते ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा स्वयंभू चतुरानन, त्रिपुरान्तक त्रिनेत्र रुद्र, सुरनायक महेन्द्र इन्द्र, ये कोई भी युद्धमें रामचन्द्रके सामने नहीं ठहर सकते ॥ ४४ ॥ उन सुन्दर और निर्भय बोलनेवाले कपिके अप्रिय वचन सुनकर अप्रतिम दशाननने क्रोधसे आँखें फाड़कर उस महाकपिके वधकी आज्ञा दी ॥४५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका एकावनवाँ सर्ग समाप्त ॥५१॥

हनुमानके वचन सुनकर क्रोधसे जलते हुए रावणने हनुमानके वधकी आज्ञा दी ॥ १ ॥ दुरात्मा रावणके द्वारा हनुमानके वधकी आज्ञा होनेपर विभीषणने उस आज्ञाको उचित नहीं

तं रक्षोधिपतिं क्रुद्धं तच्च कार्यमुपस्थितम् । विदित्वा चिन्तयामास कार्यं कार्यविधौ स्थितः ॥ ३ ॥
निश्चितार्थस्ततः साम्ना पूज्यं शत्रुजिदग्रजम् । उवाच हितमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ४ ॥

क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र प्रसीद मे वाक्यमिदं शृणुष्व ।
वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः ॥ ५ ॥

राजन्धर्मविरुद्धं च लोकवृत्तेश्च गर्हितम् । तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम् ॥ ६ ॥
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च राजधर्मविशारदः । परावरज्ञो भूतानां त्वमेव परमार्थवित् ॥ ७ ॥
गृह्यन्ते यदि रोषेण त्वादृशोऽपि विचक्षणाः । ततः शास्त्रविपश्चित्त्वं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥
तस्मात्प्रसीद शत्रुघ्न राक्षसेन्द्र दुरासद । युक्तायुक्तं विनिश्चित्य दूतदण्डो विधीयताम् ॥ ९ ॥
विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः । कोपेन महताऽऽविष्टो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥१०॥
न पापानां वधे पापं विद्यते शत्रुसूदन । तस्मादिमं वधिष्यामि वानरं पापकारिणम् ॥११॥

अधर्ममूलं बहुदोषयुक्तमनार्यजुष्टं वचनं निशम्य ।
उवाच वाक्यं परमार्थतत्त्वं विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ॥१२॥

प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र धर्मार्थतत्त्वं वचनं शृणुष्व ।
दूता न वध्याः समयेषु राजन्सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः ॥१३॥

असंशयं शत्रुरयं प्रवृद्धः कृतं ह्यनेनाप्रियमप्रमेयम् ।
न दूतवध्यां प्रवदन्ति सन्तो दूतस्य दृष्टा बहवो हि दण्डाः ॥१४॥

समझा, क्योंकि हनुमानने अच्छी तरहसे अपने दूत होनेकी बात कह दी थी ॥ २ ॥ उत्तम काम करनेकी इच्छा रखनेवाले विभीषण, राक्षसाधिपतिको क्रोधित और हनुमानके वधकी आज्ञा, दोनोंको एक साथ देखकर विचार करने लगे ॥ ३ ॥ शत्रुजयी, निपुण वक्ता विभीषण कर्तव्य निश्चित करके पूज्य भाईसे नम्रतापूर्वक अत्यन्त हितकारी वचन बोले ॥ ४ ॥ क्षमा कीजिए, राक्षसेन्द्र, क्रोध छोड़िए । प्रसन्न हूजिए, मेरी बात सुनिए । ऊँच, नीच जाननेवाले सज्जन राजा दूतका वध नहीं करते ॥ ५ ॥ वीर, इस वानरका वध करना धर्मविरुद्ध, लोकव्यवहारसे निन्दित, तथा तुम्हारे अयोग्य है ॥ ६ ॥ आप धर्मज्ञ, कृतज्ञ तथा राजधर्म जाननेमें निपुण हैं । उचित अनुचितका विचार करनेवाले तथा सत्यका ज्ञान रखनेवाले आपही हैं ॥७॥ आपके समान बुद्धिमान भी यदि क्रोधवश हो जायँ तो शास्त्रज्ञान प्राप्त करनेका केवल परिश्रमही फल होगा ॥८॥ अतएव, हे शत्रुघ्न, दुरासद (अजेय), राक्षसेन्द्र, आप प्रसन्न हों । योग्य अयोग्यका विचार करके दूतको दण्ड दें ॥ ९ ॥ विभीषणकी बात सुनकर राक्षसेश्वर रावण बड़ा कोप करके उत्तरमें बोला ॥१०॥ शत्रुसूदन, पापियोंका वध करनेमें पाप नहीं है, अतएव, पापी इस वानरका मैं वध करूँगा ॥११॥ नीचोंके समान, अधर्ममूलक और अनेक बुराइयोंसे युक्त, रावणका यह वचन सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विभीषण निश्चित सिद्धान्तके वचन बोले ॥ १२ ॥ लंकेश्वर राक्षसेन्द्र, आप प्रसन्न हो । धर्म और अर्थयुक्त मेरे वचन सुनें । सब समयोंमें, सब स्थानोंमें दूत अवध्य है, ऐसा सज्जन कहते हैं ॥ १३ ॥ निस्सन्देह, यह शत्रु बहुत बढ़ा हुआ है और इसने बहुत बड़ा अप्रिय

वैरूप्यमङ्गेषु कशाभिघातो मौण्ड्यं तथा लक्षणसंनिपातः ।
एतान्हि दूते प्रवदन्ति दण्डान्वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽस्ति ॥१५॥
कथं च धर्मार्थविनीतबुद्धिः परावरप्रत्ययनिश्चितार्थः ।
भवद्विधः कोपवशे हि तिष्ठेत्कोपं न गच्छन्ति हि सत्त्ववन्तः ॥१६॥
न धर्मवादे न च लोकवृत्ते न शास्त्रबुद्धिग्रहणेषु वापि ।
विद्येत कश्चित्तव वीर तुल्यस्त्वं ह्युत्तमः सर्वसुरासुराणाम् ॥१७॥
न चाप्यस्य कपेर्घाते कंचित्पश्याम्यहं गुणम् । तेष्वयं पात्यतां दण्डो यैरयं प्रेषितः कपिः ॥१८॥
साधुर्वा यदि वाऽसाधुः परैरेष समर्पितः । ब्रुवन्परार्थं परवान्न दूतो वधमर्हति ॥१९॥
अपिचास्मिन्हते नान्यं राजन्पश्यामि खेचरम् । इह यः पुनरागच्छेत्परं पारं महोदधेः ॥
तस्मान्नास्य वधे यत्नः कार्यः परपुरंजय । भवान्सेन्द्रेषु देवेषु यत्नमास्थातुमर्हति ॥२०॥
अस्मिन्विनष्टे नहि भूतमन्यं पश्यामि यस्तौ नरराजपुत्रौ ।
युद्धाय युद्धप्रियदुर्विनीतावुद्योजयेद्दीर्घ भवता विरुद्धौ ॥२१॥
पराक्रमोत्साहमनस्विनां च सुरासुराणामपि दुर्जयेन ।
त्वया मनोनन्दन नैर्ऋतानां युद्धाय निर्नाशयितुं न युक्तम् ॥२२॥
हिताश्च शूराश्च समाहिताश्च कुलेषु जाताश्च महागुणेषु ।

काम किया है; फिर भी सज्जन दूतोंके वधकी सम्मति नहीं देते । उनके लिए दूसरे अनेक दंड हैं ॥ १४ ॥ अंग भंग कर देना, कोड़े लगवाना, भौं आदि मुँड़वा देना, माथेपर किसी गरम चीजसे कोई चिन्ह आदि बनवा देना, ऐसेही दंड दूतोंके लिए कहे गये हैं । उनका वध तो मैंने कहीं नहीं सुना है ॥ १५ ॥ धर्म अर्थके द्वारा आपकी बुद्धि शिक्षित है । अच्छे बुरेका आपको ज्ञान है । आपके समान व्यक्ति क्रोधके अधीन कैसे हो सकता है ? बलवान मनुष्य क्रोध नहीं करते ॥ १६ ॥ धर्मशास्त्रमें, लौकिक व्यवहारमें तथा शास्त्रीय ज्ञानमें, हे वीर, तुम्हारे समान कोई नहीं है । तुम समस्त देवताओं और असुरोंमें श्रेष्ठ हो ॥ १७ ॥ इस वानरके वधसे मैं कोई लाभ नहीं देखता । यह वधका दण्ड आप उनको दें जिन्होंने इसे भेजा है ॥ १८ ॥ अच्छा हो या बुरा, यह दूसरेका भेजा हुआ दूसरेकी बात कहनेवाला, अतएव पराधीन दूत वधके योग्य नहीं है ॥ १९ ॥ इसके मारे जाने पर मैं दूसरे आकाशचारीको नहीं देखता जो समुद्रके इस पार पुनः आसके । अतएव, हे शत्रुपुरञ्जय आप इसके वधका प्रयत्न न करें, किन्तु, इन्द्र सहित देवताओंके वधका आपको प्रयत्न करना चाहिए ॥ २० ॥ इसके मारे जाने पर दूसरे किसी प्राणीको मैं नहीं देखता जो उन राजपुत्रोंको जो युद्धप्रिय और दुर्विनीत हैं, आपके विरुद्ध युद्धके लिए तयार करे ॥ २१ ॥ राक्षसोंके मनको प्रसन्न करनेवाले, पराक्रमी, उत्साही और मनस्वी देवता तथा असुरोंके लिए दुर्जय आपको शत्रुसे युद्ध करनेकी प्रवृत्तिका नाश, इस दूतका वधकर, नहीं करना चाहिए ॥ २२ ॥ हितकारी,

मनस्विनःशस्त्रभृतांवरिष्ठाःकोपप्रशस्ताःसुभृताश्च योधाः ॥२३॥
तदेकदेशेन बलस्य तावत्केचित्तवादेशकृतोऽद्य यान्तु ।
तौ राजपुत्रावुपगृह्य मूढौ परेषु ते भावयितुं प्रभावम् ॥२४॥
निशाचराणामधिपोऽनुजस्य विभीषणस्योत्तमवाक्यमिष्टम्।
जग्राह बुद्ध्या सुरलोकशत्रुर्महाबलो राक्षसराजमुख्यः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः ५३

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवो महात्मनः । देशकालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥
सम्यगुक्तं हि भवता दूतवध्या विगर्हिता । अवश्यं तु वधादन्यः क्रियतामस्य निग्रहः ॥ २ ॥
कपीनां किल लाङ्गूलमिष्टं भवति भूषणम् । तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु ॥ ३ ॥
ततः पश्यन्त्विमं दीनमङ्गवैरूप्यकर्शितम् । सुमित्रज्ञातयः सर्वे बान्धवाः ससुहृज्जनाः ॥ ४ ॥
आज्ञापयद्राक्षसेन्द्रः पुरं सर्वं सचत्वरम् । लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन रक्षोभिः परिणीयताम् ॥ ५ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः । वेष्टन्ते तस्य लाङ्गूलं जीर्णैः कार्पासिकैः पटैः ॥ ६ ॥
संवेष्ट्यमाने लाङ्गूले व्यवर्धत महाकपिः । शुष्कमिन्धनमासाद्य वनेष्विव हुताशनः ॥ ७ ॥

शूर, सावधान, कुलीन, गुणी, मनस्वी, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, प्रशस्तकोप तथा अधिक वेतन पाने वाले योधा आपकी आज्ञा लेकर थोड़ी सेनाके साथ वहाँ जायँ और शत्रुओं पर आपका प्रभाव डालनेके लिए उन मूर्ख राजपुत्रोंको पकड़ लावें ॥ २३।२४ ॥ छोटे भाई विभीषणकी उत्तम बातें राक्षसोंके स्वामी देवशत्रु महाबली राक्षसराजने मनही मन स्वीकार कीं ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका बावनवां सर्ग समाप्त ॥ ५२ ॥

देशकालके योग्य महात्मा भाईके वे वचन सुनकर दशाननने उत्तर दिया. ॥ १ ॥ आपने ठीक कहा है कि दूतका वध निन्दित है। पर, वधके अतिरिक्त दूसरा दण्ड इसे अवश्य देना चाहिए ॥ २ ॥ वानरोंको पूँछ बड़ी प्रिय होती है और वह उनका गहना है। वह जला दो और जली पूँछ लेकर यह यहाँसे जाय ॥ ३ ॥ तब इसके मित्र, जाति, भाई, बन्धु तथा इसके प्रेमी शरीरके विकृत होनेसे दुखी इसको देखेंगे ॥ ४ ॥ रावणने आज्ञा दी कि इसकी पूँछमें आग लगाकर समस्त नगर तथा अखाड़ों पर इसे राक्षस लेकर घुमावें ॥ ५ ॥ रावणके वे वचन सुनकर क्रोधसे कठोर राक्षस पुराने वस्त्र उसकी पूँछमें लपेटने लगे ॥ ६ ॥ पूँछ लपेटी जाने पर हनुमान बहुत बढ़। बहुत उत्साहित हुए। जिस प्रकार वनमें सूखी लकड़ी पाकर आग बढ़ती है ॥ ७ ॥

तैलेन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रोपपादयन् । लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन राक्षसांस्तानताडयत् ॥ ८ ॥
रोषामर्षपरीतात्मा बालसूर्यसमाननः । स भूयः संगतैः क्रूरै राक्षसैर्हरिपुंगवः ॥ ९ ॥
सहस्त्रीबालवृद्धाश्च जग्मुः प्रीतिं निशाचराः । निबद्धः कृतवान्वीरस्तत्कालसदृशीं मतिम् ॥१०॥
कामं खलु न मे शक्ता निबद्धस्यापि राक्षसाः । छित्त्वा पाशान्समुत्पत्य हन्यामहमिमान्पुनः ॥११॥
यदि भर्तृहितार्थाय चरन्तं भर्तृशासनात् । निबध्नन्ते दुरात्मानो न तु मे निष्कृतिः कृता ॥१२॥
सर्वेषामेव पर्याप्तो राक्षसानामहं युधि । किं तु रामस्य प्रीत्यर्थं विषहिष्येऽहमीदृशम् ॥१३॥
लङ्का चारयितव्या मे पुनरेव भवेदिति । रात्रौ नहि सुदृष्टा मे दुर्गकर्मविधानतः ॥१४॥
अवश्यमेव द्रष्टव्या मया लङ्का निशाक्षये । कामं बध्नन्तु मे भूयः पुच्छस्योद्दीपनेन च ॥१५॥
पीडां कुर्वन्ति रक्षांसि न मेऽस्ति मनसः श्रमः । ततस्ते संवृताकारं सत्त्ववन्तं महाकपिम् ॥१६॥
परिगृह्य ययुर्हृष्टा राक्षसाः कपिकुञ्जरम् । शङ्खभेरीनिनादैश्च घोषयन्तः स्वकर्मभिः ॥१७॥
राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति स्म तां पुरीम् । अन्वीयमानो रक्षोभिर्ययौ सुखमरिंदमः ॥१८॥
हनूमांश्चारयामास राक्षसानां महापुरीम् । यथापश्यद्विमानानि विचित्राणि महाकपिः ॥१९॥
संवृतान्भूमिभागांश्च सुविभक्तांश्च चत्वरान् । रथ्याश्च गृहसंबाधाः कपिः शृङ्गाटकानि च ॥२०॥
तथा रथ्योपरथ्याश्च तथैव च गृहान्तरान् । चत्वरेषु चतुष्केषु राजमार्गे तथैव च ॥२१॥

तेलसे सींचकर राक्षसोंने आग लगा दी । क्रोधसे युक्त, बालसूर्यके समान मुखवाले हनुमान जलती हुई पूँछसे राक्षसोंको मारने लगे । पुनः क्रूर राक्षसोंने मिलकर हनुमानको बाँधा ॥ ८-९ ॥ स्त्री, बालक, वृद्ध सभी राक्षस इससे प्रसन्न हुए । बँधे हुए वीर हनुमानने उस समयके योग्य विचार निश्चय किया ॥ १० ॥ यद्यपि मैं बँधा हुआ हूँ, फिरभी ये हमारे लिए समर्थ नहीं हैं, अर्थात् हमें जीत नहीं सकते । मैं इस बन्धनको तोड़कर इन राक्षसोंको पुनः मार सकता हूँ ॥ ११ ॥ रामचंद्रके हितके लिए घूमते हुए मुझको यदि अपने स्वामी रावणकी आज्ञासे दुरात्मा राक्षस बाँधते हैं तो बाँधें । परन्तु मैंने जो हानि इनकी की है, उसका बदला इन लोगोंने नहीं लिया ॥ १२ ॥ मैं अकेलाही समस्त राक्षसोंके लिए काफी हूँ । परन्तु, रामचंद्रके लिए मैं यह अपमान सह रहा हूँ । अर्थात् रामचंद्रने सब राक्षसोंका स्वयं वध करनेकी प्रतिज्ञा की है; अतएव, मेरे द्वारा इनके मारे जाने पर उनकी प्रतिज्ञा भंग हो जायगी ॥ १३ ॥ मैं पुनः समस्त लंकामें घुमाया जाऊंगा । अच्छा है, रातको दुर्गके कामोंमें फँसे रहनेके कारण मैंने अच्छी तरह देखाभी नहीं ॥ १४ ॥ रात्रिके अन्तमें अर्थात् प्रातःकाल अवश्यही मुझे लंका देखना है । भलेही ये मुझे बाँधें, पूँछ जलावें, पीड़ा दें; पर, राक्षसोंके इन कामोंसे मेरे मनमें कुछभी कष्ट नहीं है । अनन्तर बलवान् तथा अपनेको छिपाए हुए वानरश्रेष्ठको पकड़कर राक्षस प्रसन्न होकर चले और शंख भेरी आदि बजाकर हनुमानके कामोंकी घोषणा करते हुए चले ॥ १५-१७ ॥ क्रूर राक्षस उस महानगरीमें हनुमानको घुमाने लगे । शत्रुनाशी हनुमानभी राक्षसोंके साथ घूमने लगे ॥ १८ ॥ हनुमान राक्षसोंकी नगरीमें घूमने लगे । उन महाकपिने विचित्र विमान देखे ॥ १९ ॥ छिपे मैदान, अलग अलग बने अखाड़े, सघन बस्तियोंवाली गलियाँ तथा चौराहे हनुमानने देखे ॥२०॥ इसी प्रकार गलियों और छोटी गलियोंको

घोषयन्ति कपिं सर्वे चार इत्येव राक्षसाः । दीप्यमाने ततस्तस्य लाङ्गूलाग्रे हनूमतः ॥२२॥
राक्षस्यस्ता विरूपाक्ष्यःशंसुर्देव्यास्तदप्रियम् । यस्त्वया कृतसंवादः सीते ताम्रमुखः कपिः ॥२३॥
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन स एष परिणीयते । श्रुत्वा तद्वचनं क्रूरमात्मापहरणोपमम् ॥२४॥
वैदेही शोकसंतप्ता हुताशनमुपागमत् । मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ॥२५॥
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् । यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ॥२६॥
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः । ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्रः प्रदक्षिणशिखोऽनलः ॥२७॥
जज्वाल मृगशावाक्ष्याः शंसन्निव शुभं कपेः । हनुमज्जनकश्चैव पुच्छानलयुतोऽनिलः ॥
ववौ स्वास्थ्यकरो देव्याः प्रालेयानिलशीतलः । ॥२८॥
दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः । प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मान्न मां दहति सर्वतः ॥२९॥
दृश्यते च महाज्वालः करोति च न मे रुजम् । शिशिरस्येव संपातो लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितः ॥३०॥
अथ वा तदिदं व्यक्तं यद्दृष्टं प्लवता मया । रामप्रभावादाश्चर्यं पर्वतः सरितां पतौ ॥३१॥
यदि तावत्समुद्रस्य मैनाकस्य च धीमतः । रामार्थं संभ्रमस्तादृक्किमग्निर्न करिष्यति ॥३२॥
सीतायाश्चानृशंस्येन तेजसा राघवस्य च । पितुश्च मम सख्येन न मां दहति पावकः ॥३३॥
भूयः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः । कथमस्मद्विधस्येह बन्धनं राक्षसाधमैः ॥३४॥

देखते हुए हनुमानने घरों और गुप्त घरोंको देखा । मैदानों, चौराहों, पर वे सब राक्षस हनुमानके दूत होनेकी घोषणा करते थे । हनुमानकी पूँछमें इस प्रकार आग लगने पर ॥ २१-२२ ॥ विकृतमुखी राक्षसियोंने देवी सीताके पास जाकर यह अप्रिय संवाद कहा । सीते, लाल मुँहवाले जिस वानरने तुमसे बातें की हैं, वह पूँछमें आग लगाकर घुमाया जा रहा है । अपने हरणके समान कठोर, उनलोगोंके इस वचनको सुनकर जानकीको बड़ा शोक हुआ । उन्होंने अग्निका ध्यान किया; क्योंकि उस समय वे इस कपिका मंगल करना चाहती थीं ॥ २३-२५ ॥ पवित्र होकर उन्होंने अग्निकी स्तुति की । यदि मैंने पतिकी सेवा की है, यदि मैंने तपस्या की है, यदि मैं एक रामकीही पत्नी रही हूँ, तो अग्नि, तुम हनुमानके लिए शीतल हो जाओ । अनन्तर तीखी ज्वाला-वालेभी अग्निदेव प्रदक्षिण होकर सीताको मानो शुभ संदेश देते हुए जलने लगे। हनुमानके पिता वायु भी पूँछकी आगके साथ रहनेपरभी वर्फके समान शीतल होकर सीताको सुखी करनेकी इच्छासे बहने लगे ॥ २६-२८ ॥ पूँछमें आग लगायी जानेपर हनुमान सोचने लगे कि यह जलती हुई आग मुझे क्यों नहीं जलाती ? क्यों नहीं फैलती ? ॥ २९ ॥ ज्वाला बढ़ी हुई दीख पड़ती है, पर इससे मुझे कोई कष्ट नहीं मालूम होता । शिशिर ऋतु (जाड़ेके दिनों) की आगके समान यह मुझे मालूम होती है ॥ ३० ॥ अथवा, यह तो स्पष्ट है । समुद्रपार करते समय मैंने इस आश्चर्य-को प्रत्यक्षभी किया है । समुद्रसे पर्वत निकला था । यदि समुद्रको और बुद्धिमान मैनाकको राम-चन्द्रके कार्यकी ऐसी चिन्ता है तो अग्निको क्यों न होगी ? ॥ ३१-३२ ॥ सीताकी दया, रामचन्द्र-के तेजसे और मेरे पितासे मैत्री होनेके कारण आग मुझे नहीं जला रही है ॥३३॥ कपिश्रेष्ठने पुनः थोड़ी देर विचार किया कि मेरे समान व्यक्तिका इन नीच राक्षसोंके द्वारा बन्धन कैसे हुआ ॥३४॥

प्रतिक्रियास्य युक्ता स्यात्सति मह्यं पराक्रमे । ततश्छित्त्वा च तान्पाशान्वेगवान्वै महाकपिः ॥३५॥
उत्पपाताथ वेगेन ननाद च महाकपिः । पुरद्वारं ततः श्रीमाञ्शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ॥३६॥
विभक्तरक्षः संबाधमाससादानिलात्मजः । स भूत्वा शैलसंकाशः क्षणेन पुनरात्मवान् ॥३७॥
ह्रस्वतां परमां प्राप्तो बन्धनान्यवशातयत् । विमुक्तश्चाभवच्छ्रीमान्पुनः पर्वतसंनिभः ॥३८॥
वीक्षमाणश्च ददृशे परिघं तोरणाश्रितम् । स तं गृह्य महाबाहुः कालायसपरिष्कृतम् ॥
रक्षिणस्तान्पुनः सर्वान्सूदयामास मारुतिः । ॥३९॥

स तान्निहत्वा रणचण्डविक्रमः समीक्षमाणः पुनरेव लङ्काम् ।
प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली प्रकाशितादित्य इवार्चिमाली ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३॥

चतुष्पञ्चाशः सर्गः ५४

वीक्षमाणस्ततो लङ्कां कपिः कृतमनोरथः । वर्धमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत् ॥ १ ॥
किं नु खल्ववशिष्टं मे कर्तव्यमिह सांप्रतम् । यदेषां रक्षसां भूयः संतापजननं भवेत् ॥ २ ॥
वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः । बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम् ॥ ३ ॥

यदि मुझमें पराक्रम है, तो इसका बदला लेना चाहिए। अनन्तर, वेगवान् हनुमानने उन बन्धनों को तोड़ दिया ॥ ३५ ॥ वेगसे वे ऊपर उठे और गर्जन करने लगे। अनन्तर वे पर्वतके समान ऊँचे पुरद्वार पर आ गये। उस समयतक राक्षसोंकी भीड़ वहाँसे हट गयी थी। पर्वत-प्रमाण शरीरवाले होकरभी हनुमान शीघ्रही बहुत छोटे हो गये और उन्होंने बन्धनोंको दूर हटा दिया। बन्धनोंके हट जानेपर श्रीमान् हनुमान पुनः पर्वतके समान हो गये ॥ ३६-३८ ॥ तोरणपर रक्खे हुए परिघको देखते हनुमानको राक्षसोंने देखा। लोहेके बने हुए उसको उठाकर महाबाहु हनुमानने पुनः द्वाररक्षक राक्षसोंको मार डाला ॥ ३९ ॥ उन राक्षसोंको मारकर रणमें प्रचण्डविक्रमी हनुमान पुनः लंकाका निरीक्षण करने लगे। पूंछ जलनेके कारण अग्नि ज्वालाकी माला सी बन गयी थी। अतएव, किरणोंकी माला धारण करनेवाले सूर्यके समान वे प्रकाशित हुए ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त।



सफलमनोरथ तथा प्रवृद्धउत्साह कपि लंकाको देखते हुए बाकी बचे कार्यके संबन्धमें विचार करने लगे ॥ १ ॥ अब लंकामें मेरा कौनसा कार्य अवशिष्ट है, जिससे राक्षसोंका सन्ताप और बढ़े ॥ २ ॥ वन मैंने उजाड़ दिया। बलवान् राक्षसोंको मारा। थोड़ीसी सेनाका भी नाश किया। अब

दुर्गे विनाशिते कर्म भवेत्सुखपरिश्रमम्। अल्पयत्नेन कार्येऽस्मिन्मम स्यात्सफलःश्रमः॥ ४ ॥
यो ह्ययं मम लाङ्गूले दीप्यते हव्यवाहनः। अस्य संतर्पणं न्याय्यं कर्तुमेभिर्गृहोत्तमैः ॥ ५ ॥
ततः प्रदीप्तलाङ्गूलः सविद्युदिव तोयदः। भवनाग्रेषु लङ्कायाः विचचार महाकपिः ॥ ६ ॥
गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः। वीक्षमाणो ह्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥ ७ ॥
अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम्। अग्निं तत्र विनिक्षिप्य श्वसनेन समो बली॥ ८ ॥
ततोऽन्यत्पुप्लुवे वेश्म महापार्श्वस्य वीर्यवान्। मुमोच हनुमानग्निं कालानलशिखोपमम् ॥ ९ ॥
वज्रदंष्ट्रस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः। शुकस्य च महातेजाः सारणस्य च धीमतः ॥१०॥
तथा चेन्द्रजितो वेश्म ददाह हरियूथपः। जम्बुमालेः सुमालेश्च ददाह भवनं ततः ॥११॥
रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च। ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य रोमशस्य च रक्षसः ॥१२॥
युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य रक्षसः। विद्युज्जिह्वस्य घोरस्य तथा हस्तिमुखस्य च ॥१३॥
करालस्य विशालस्य शोणिताक्षस्य चैव हि। कुम्भकर्णस्य भवनं मकराक्षस्य चैव हि ॥१४॥
नरान्तकस्य कुम्भस्य निकुम्भस्य महात्मनः। यज्ञशत्रोश्च भवनं ब्रह्मशत्रोस्तथैव च ॥१५॥
वर्जयित्वा महातेजा विभीषणगृहं प्रति। क्रममाणः क्रमेणैव ददाह हरिपुंगवः ॥१६॥
तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महायशाः। गृहेष्वृद्धिमतामृद्धिं ददाह कपिकुञ्जरः ॥१७॥
सर्वेषां समतिक्रम्य राक्षसेन्द्रस्य वीर्यवान्। आससादाथ लक्ष्मीवान्रावणस्य निवेशनम् ॥१८॥
ततस्तस्मिन्गृहे मुख्ये नानारत्नविभूषिते। मेरुमन्दरसंकाशे नानामङ्गलशोभिते ॥१९॥

किलेका नाश करना बाकी है ॥३॥ किलाके नाश करनेपर मेरा परिश्रम सफल हो जायगा। इस मेरे कार्यमें अब थोड़े ही प्रयत्नसे पूरी सफलता मुझे मिल जायगी ॥ ४ ॥ जो मेरी पूँछमें यह आग धधक रही है, उसको इन गृहोंके द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिए ॥ ५ ॥ यह विचार कर विद्युत्युक्त मेघके समान् दीप्त-पुच्छ हनुमान लंकाकी अटारियोंपर घूमने लगे ॥ ६ ॥ राक्षसोंके इस घरसे उस घरको और घरके बागोंको देखते हुए वे निर्भय होकर अटारियोंपर घूमने लगे ॥७॥ महावेग-वान् वायुके समान बली हनुमान प्रहस्तके घरपर उतरकर, उसमें आग लगाकर, महापार्श्वके घरपर चले गये और उसमें प्रलयकालकी आगके समान आग उन्होंने लगा दी ॥ ८ ॥ ९ ॥ वज्रदंष्ट्र, शुक और महाबुद्धिमान सारणके घरोंमें हनुमानने आग लगायी। वानरसेनापतिने इंद्रजित्‌का घर जला दिया। इसके बाद जम्बुमाली और सुमालीके घर उन्होंने जला दिये। रश्मि-केतु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्रक तथा रोमश, इन राक्षसोंके घर हनुमानने जला दिये। युद्धोन्मत्त, मत्त ध्वजग्रीव, विद्युज्जिह्व, घोर, हस्तिमुख, कराल, विशाल शोणिताक्ष, कुम्भकर्ण और मकराक्ष इनके घर हनुमानने जला दिये। नरान्तक, कुम्भ, महात्मा निकुम्भ, यज्ञशत्रु और ब्रह्मशत्रुके घर हनुमानने जला दिये ॥ १०, १५ ॥ केवल विभीषणका घर छोड़कर कपिश्रेष्ठ हनुमानने राक्षसों-के घर क्रमसे जा-जाकर जला दिये ॥१६॥ उन-उन श्रेष्ठ भवनोंमें धनिकोंके ऐश्वर्य, मणि मुक्ता आदिको यशस्वी कपिश्रेष्ठने जला दिया ॥ १७ ॥ सबके घरोंसे होकर वीर्यवान् हनुमान राक्ष-सेन्द्र रावणके घर पर आये ॥ १८ ॥ नाना रत्नोंसे विभूषित, अनेक मंगलमय पदार्थोंसे शोभित,

प्रदीप्तमग्निमुत्सृज्य लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितम् । ननाद हनुमान्वीरो युगान्तजलदो यथा ॥२०॥
श्वसनेन च संयोगादतिवेगो महाबलः । कालाग्निरिव जज्वाल प्रावर्धत हुताशनः ॥२१॥
प्रदीप्तमग्निं पवनस्तेषु वेश्मसु चारयन् । तानि काञ्चनजालानि मुक्तामणिमयानि च ॥२२॥
भवनानि व्यशीर्यन्त रत्नवन्ति महान्ति च । तानि भग्नविमानानि निपेतुर्वसुधातले ॥२३॥
भवनानीव सिद्धानामम्बरात्पुण्यसंक्षये । संजज्ञे तुमुलः शब्दो राक्षसानां प्रधावताम् ॥२४॥
स्वेस्वे गृहपरित्राणेभग्नोत्साहोज्झितश्रियाम् । नूनमेषोऽग्निरायातः कपिरूपेण हा इति ॥२५॥
क्रन्दन्त्यःसहसा पेतुः स्तनन्धयधराः स्त्रियः । काश्चिदग्निपरीताङ्ग्यो हर्म्येभ्यो मुक्तमूर्धजाः ॥२६॥
पतन्त्योरेजिरेऽभ्रेभ्यः सौदामन्य इवाम्बरात् । वज्रविद्रुमवैदूर्यमुक्तारजतसंहतान् ॥२७॥
विचित्रान्भवनाद्धातून्स्यन्दमानान्ददर्श सः । नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां तृणानां च यथा तथा ॥२८॥
हनूमान्राक्षसेन्द्राणां वधे किंचिन्न तृप्यति । न हनूमद्विशस्तानां राक्षसानां वसुंधरा ॥२९॥
हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना । लङ्कापुरं प्रदग्धं तद्रुद्रेण त्रिपुरं यथा ॥३०॥

ततः स लङ्कापुरपर्वताग्रे समुत्थितो भीमपराक्रमोऽग्निः ।
प्रसार्य चूडावलयं प्रदीप्तो हनूमता वेगवतोपसृष्टः ॥३१॥
युगान्तकालानलतुल्यरूपः स मारुतोऽग्निर्ववृधे दिवस्पृक् ।
विधूमरश्मिर्भवनेषु सक्तो रक्षःशरीराज्यसमर्पितार्चिः ॥३२॥

मेरुमन्दरके समान उस श्रेष्ठ घरमें पूंछमें जलती हुई आग लगाकर हनुमानने प्रलयकालके मेघके समान गर्जन किया ॥ १९-२० ॥ वायुके संयोगसे, अतिवेगवान् महाबली हुताशन कालाग्निके समान जलने लगे और प्रदीप्त अग्निको वायु उन घरोंमें फैलाकर बढ़ने लगा ॥ २१ ॥ सुवर्ण-जालवाले, मणिमुक्तामय, रत्नोंसे विभूषित व बड़े-बड़े महल टूटने लगे । उनकी छतें टूटकर पृथिवीपर गिरने लगीं ॥ २२ ॥ २३ ॥ पुण्यक्षय होने पर सिद्धोंके घरके समान वे घर गिरने लगे । इधरसे उधर राक्षसोंके दौड़नेका महाभयानक शब्द होने लगा ॥२४॥ उनके उत्साह नष्ट हो गये थे, शोभा चली गयी थी । वे अपने अपने घरोंकी रक्षाके लिए व्याकुल थे । हा, निश्चय अग्निही यह वानररूप धरकर आया है, इस प्रकार आगसे जलती हुई, बच्चेको गोदमें लेकर, सिर खोले हुए, रोती हुई, कई स्त्रियाँ अपनी अटारियोंसे सहसा गिर पड़ीं ॥ २५, २६ ॥ वे गिरती हुई, मेघसे गिरती बिजलीके समान मालूम हुईं । हीरा, विद्रुम, वैदूर्य, मुक्ता, चाँदी आदिसे बने हुए विचित्र घरोंकी धातु टपक रही है, यह हनुमानने देखा । लकड़ियोंसे तथा तृणोंसे जिस प्रकार आगकी तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार राक्षसोंका वध करनेसे हनुमान तृप्त नहीं होते थे और पृथ्वी हनुमानके मारे राक्षसोंसे तृप्त नहीं होती थी ॥ २७-२९ ॥ वेगवान् महात्मा वानर हनुमानने समस्त लंका नगरी जला दी, जिस प्रकार रुद्रने त्रिपुर जलाया था ॥३०॥ लंका नगरीके पर्वतके शिखरपर वेगवान् हनुमानके द्वारा लगायी गयी भीमपराक्रमी आग धधक कर ज्वालाओंको फैलाकर जलने लगी ॥ ३१ ॥ प्रलयकालकी अग्निके समान आकाश छूनेवाली

आदित्यकोटीसदृशः सुतेजा लङ्कां समस्तां परिवार्य तिष्ठन् ।
शब्दैरनेकैरशनिप्ररूढैर्भिन्दन्निवाण्डं प्रबभौ महाग्निः ॥३३॥
तत्राम्बरादग्निरतिप्रवृद्धो रूक्षप्रभः किंशुकपुष्पचूडः ।
निर्वाणधूमाकुलराजयश्च नीलोत्पलाभाः प्रचकाशिरेऽभ्राः ॥३४॥
वज्री महेन्द्रस्त्रिदशेश्वरो वा साक्षाद्यमो वा वरुणोऽनिलो वा ।
रौद्रोऽग्निरर्को धनदश्च सोमो न वानरोऽयं स्वयमेव कालः ॥३५॥
किं ब्रह्मणः सर्वपितामहस्य लोकस्य धातुश्चतुराननस्य ।
इहागतो वानररूपधारी रक्षोपसंहारकरः प्रकोपः ॥३६॥
किं वैष्णवं वा कपिरूपमेत्य रक्षोविनाशाय परं सुतेजः ।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमेकं स्वमायया सांप्रतमागतं वा ॥३७॥
इत्येवमूचुर्बहवो विशिष्टा रक्षोगणास्तत्र समेत्य सर्वे ।
सप्राणिसङ्घां सगृहां सवृक्षां दग्धां पुरीं तां सहसा समीक्ष्य ॥३८॥
ततस्तु लङ्का सहसा प्रदग्धा सराक्षसा साश्वरथा सनागा ।
सपक्षिसङ्घा समृगा सवृक्षा रुरोद दीना तुमुलं सशब्दम् ॥३९॥
हा तात हा पुत्रक कान्त मित्र हा जीवितेशाङ्ग हतं सुपुण्यम् ।
रक्षोभिरेवं बहुधा ब्रुवद्भिः शब्दः कृतो घोरतरः सुभीतः ॥४०॥

वह अग्नि बढ़ने लगी । राक्षसोंके घरमें लगी हुई उस आगकी ज्वाला राक्षसशरीररूपी घृतसे बढ़ी हुई थी और बिना धुएँ की थी ॥ ३२ ॥ करोड़ों सूर्य्यके समान तेजस्वी, समस्त लंकामें फैली हुई, वज्र-शब्दके समान भयंकर अनेक प्रकारके शब्द करती हुई, ब्रह्माण्डको फोड़ती हुईके समान वह महाअग्नि मालूम पड़ा ॥ ३३ ॥ आकाश तक फैली हुई, रूखी प्रभावाली, पलाशपुष्पके समान शिखावाली आग बहुत बढ़ गयी । फैले हुए, नील कमलके समान धूम-पंक्तियाँ मेघोंके समान शोभने लगीं ॥ ३४ ॥ राक्षसलोग कहते थे, वज्रधारी देवराज इन्द्र हैं क्या ? साक्षात् यम हैं, वरुण हैं या वायु हैं ? यह रुद्र है, अग्नि है, सूर्य है, कुबेर हैं या चन्द्रमा हैं ? यह वानर तो नहीं है, साक्षात् काल है ॥ ३५ ॥ पितामह चतुरानन लोककी सृष्टि करनेवाले साक्षात् ब्रह्माका कोप वानरका रूप धरके राक्षसोंका संहार करनेके लिए आया है क्या ? ॥ ३६ ॥ अथवा, राक्षसोंके नाशके लिए विष्णुका तेज वानररूप धरकर आया है, जो तेज एक है, अचिन्त्य है, अव्यक्त है और अपनी मायाके द्वारा अनन्त हो जाता है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार बहुतसे राक्षसोंका दल वहाँ एकत्र होकर बात करने लगा । प्राणियों, गृहों और वृक्षोंके साथ उस नगरीको जलना देखकर वे इस प्रकारकी बातें करने लगे ॥ ३८ ॥ पक्षियों पशुओं, वृक्षों, हाथियों, घोड़ों और रथों तथा राक्षसोंके साथ लंका नगरी शीघ्र जल गयी और उसके दीन अधिवासी भयानक चीत्कारसे रोने लगे ॥ ३९ ॥ हा तात, हा पुत्र, हा कान्त, हा मित्र, हा जीवितेश, आज समस्त पुण्य नष्ट हो गये, इस प्रकार राक्षसोंने भीत और

हुताशनज्वालसमावृता सा हतप्रवीरा परिवृत्तयोधा ।
हनूमतः क्रोधबलाभिभूता बभूव शापोपहतेव लङ्का ॥ ४१ ॥

ससंभ्रमं त्रस्तविषण्णराक्षसां समुज्ज्वलज्ज्वालहुताशनाङ्किताम् ।
ददर्श लङ्कां हनुमान्महामनाः स्वयंभुरोषोपहतामिवावनिम् ॥ ४२ ॥

भङ्क्त्वा वनं पादपरत्नसंकुलं हत्वा तु रक्षांसि महान्ति संयुगे ।
दग्ध्वा पुरीं तां गृहरत्नमालिनीं तस्थौ हनूमान्पवनात्मजः कपिः ॥ ४३ ॥

स राक्षसांस्तान्सुबहूंश्च हत्वा वनं च भङ्क्त्वा बहुपादपं तत ।
विसृज्य रक्षोभवनेषु चाग्निं जगाम रामं मनसा महात्मा ॥ ४४ ॥

ततस्तु तं वानरवीरमुख्यं महाबलं मारुततुल्यवेगम् ।
महामतिं वायुसुतं वरिष्ठं प्रतुष्टुवुर्देवगणाश्च सर्वे ॥ ४५ ॥

देवाश्च सर्वे मुनिपुंगवाश्च गन्धर्वविद्याधरपन्नगाश्च ।
भूतानि सर्वाणि महान्ति तत्र जग्मुः परां प्रीतिमतुल्यरूपाम् ॥ ४६ ॥

भङ्क्त्वा वनं महातेजा हत्वा रक्षांसि संयुगे । दग्ध्वा लङ्कापुरीं भीमां रराज स महाकपिः ॥४७॥

गृहाग्र्यशृङ्गाग्रतले विचित्रे प्रतिष्ठितो वानरराजसिंहः ।
प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली व्यराजतादित्य इवार्चिमाली ॥ ४८ ॥

लङ्कां समस्तां संपीड्य लाङ्गूलाग्निं महाकपिः । निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिपुंगवः ॥४९॥

भयानक अनेक शब्द किये ॥ ४० ॥ आगकी ज्वालासे घिरी हुई और हनुमानके क्रोधसे परास्त हुई लंका वीरोंके मारे जाने तथा उद्विग्नचित्त होनेसे शापितके समान मालूम होने लगी ॥ ४१ ॥ घबड़ाए, डरे और दुखी राक्षसोंसे युक्त और धधकती आगकी ज्वालासे घिरी, महात्मा हनुमानने लंका देखी । मानो, ब्रह्माके क्रोधसे उजड़ी हुई पृथ्वी हो ॥ ४२ ॥ उत्तम वृक्षोंवाले वनको उजाड़कर, युद्धमें राक्षसोंको मारकर तथा गृहरूपी रत्नोंकी माला धारण करनेवाली लंकाको जलाकर पवनपुत्र हनुमान विश्रामके लिए बैठे ॥ ४३ ॥ अनेक राक्षसोंको मारकर, अनेक वृक्षोंवाले बागको जलाकर, राक्षसोंके घरोंमें आग लगाकर महात्मा हनुमानने रामचन्द्रका स्मरण किया ॥ ४४ ॥ अनन्तर, वानर वीरोंमें श्रेष्ठ, महाबली, वायुके समान वेगवान् महामति, श्रेष्ठ, वायुपुत्रकी सब देवता स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ सब देवता, श्रेष्ठ मुनि, गन्धर्व, विद्याधर, नाग आदि सभी प्राणी हनुमानके कामसे बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४६ ॥ वनको उजाड़ कर, राक्षसोंको मारकर और लंकाको जलाकर हनुमान शोभित होने लगे ॥ ४७ ॥ श्रेष्ठ गृहोंके शिखरके नीचे वानर राजसिंह हनुमान बैठे । जलती हुई पूँछकी ज्वालाओंसे वे किरणोंकी माला धारण करनेवाले सूर्यके समान मालूम हुए ॥ ४८ ॥ महाकपि हनुमानने समूची लंकाको जलाकर अपनी पूँछकी आग

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । दृष्ट्वा लङ्कां प्रदग्धां तां विस्मयं परमं गताः ॥५०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ५५

संदीप्यमानां वित्रस्तां त्रस्तरक्षोगणां पुरीम् । अवेक्ष्य हनुमाँल्लङ्कां चिन्तयामास वानरः ॥ १ ॥
तस्याभूत्सुमहांस्त्रासः कुत्सा चात्मन्यजायत । लङ्कां प्रदहता कामं किंस्वित्कृतमिदं मया ॥ २ ॥
धन्याः खलु महात्मानो ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम् । निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा ॥ ३ ॥
क्रुद्धः पापं न कुर्यात्कः क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि । क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत् ॥ ४ ॥
वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित् । नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित् ॥ ५ ॥
यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति । यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते ॥ ६ ॥
धिगस्तु मां सुदुर्बुद्धिं निर्लज्जं पापकृत्तमम् । अचिन्तयित्वा तां सीतामग्निदं स्वामिघातकम् ॥ ७ ॥
यदि दग्धा त्वियं सर्वा नूनमार्यापि जानकी । दग्धा तेन मया भर्तुर्हतं कार्यमजानता ॥ ८ ॥
यदर्थमयमारम्भस्तत्कार्यमवसादितम् । मया हि दहता लङ्कां न सीता परिरक्षिता ॥ ९ ॥
ईषत्कार्यमिदं कार्यं कृतमासीन्न संशयः । तस्य क्रोधाभिभूतेन मया मूलक्षयः कृतः ॥१०॥

समुद्रमें बुझायी ॥ ४९ ॥ अनन्तर, गन्धर्वोंके साथ देवता, सिद्ध और ऋषि लंकाका जलना देखकर बहुतही विस्मित हुए ॥ ५० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका चौवनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५४ ॥

जली हुई, उजड़ी हुई लंकापुरी और वहाँके डरे राक्षसोंको देखकर हनुमान सोचने लगे ॥ १ ॥ वे बहुत डर गये । वे अपनी निन्दा करने लगे कि लंकाको जलाते समय मैंने यह क्या अनर्थ कर डाला ॥ २ ॥ वे महात्मा धन्य हैं, जो अपने उत्पन्न कोपको विचारके द्वारा रोक लेते हैं, जिस प्रकार प्रदीप्त अग्नि जलके द्वारा बुझा दी जाती है ॥ ३ ॥ क्रुद्ध मनुष्य कौन पाप नहीं कर सकता ? क्रुद्ध मनुष्य गुरुका भी वध कर सकता है । वह कठोर वचनोंसे सज्जनोंका भी तिरस्कार कर सकता है ॥ ४ ॥ क्रुद्ध मनुष्य, क्या कहना चाहिए और क्या न कहना चाहिए, यह नहीं जानता । उसके लिए न तो कुछ अकर्तव्य है न कुछ अवक्तव्य ॥ ५ ॥ जो उत्पन्न क्रोधको क्षमाके द्वारा हटा देता है, जिस प्रकार साँप अपनी पुरानी त्वचाको, वही पुरुष कहा जाता है ॥ ६ ॥ मुझ मूर्ख, निर्लज्ज, पापीको धिक्कार है ! मैंने सीताको बिना सोचे आग लगा दी । मुझ स्वामिघातीको धिक्कार ! ॥ ७ ॥ यदि यह समूची लंका जल गयी है, तो आर्या सीता भी अवश्य जली है । स्वामीके कार्यकी ओर ध्यान न देकर मैंने उनका समस्त कार्य नष्ट कर दिया ॥ ८ ॥ जिसके लिए हमारा यह उद्योग था, उस कार्यको मैंने नष्ट कर दिया, जो मैंने लंकाको जलाते समय सीताकी रक्षा न की ॥ ९ ॥ यह सब मेरे कार्य बहुतही साधारण कार्य है, इसमें सन्देह नहीं । क्रोधके

विनष्टा जानकी व्यक्तं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते । लङ्कायाः कश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥११॥
यदि तद्विहितं कार्यं मया प्रज्ञाविपर्ययात । इहैव प्राणसंन्यासो ममापि ह्यद्य रोचते ॥१२॥
किमग्नौ निपताम्यद्य आहोस्विद्बडवामुखे । शरीरमिह सत्त्वानां दद्मि सागरवासिनाम् ॥१३॥
कथं नु जीवता शक्यो मया द्रष्टुं हरीश्वरः । तौ वा पुरुषशार्दूलौ कार्यसर्वस्वघातिना ॥१४॥
मया खलु तदेवेदं रोषदोषात्प्रदर्शितम् । प्रथितं त्रिषु लोकेषु कपित्वमनवस्थितम् ॥१५॥
धिगस्तु राजसं भावमनीशमनवस्थितम् । ईश्वरेणापि यद्रागान्मया सीता न रक्षिता ॥१६॥
विनष्टायां तु सीतायां तावुभौ विनशिष्यतः । तयोर्विनाशे सुग्रीवः सबन्धुर्विनशिष्यति ॥१७॥
एतदेव वचः श्रुत्वा भरतो भ्रातृवत्सलः । धर्मात्मा सहशत्रुघ्नः कथं शक्ष्यति जीवितुम् ॥१८॥
इक्ष्वाकुवंशे धर्मिष्ठे गते नाशमसंशयः । भविष्यन्ति प्रजाःसर्वाः शोकसंतापपीडिताः ॥१९॥
तदहं भाग्यरहितो लुप्तधर्मार्थसंग्रहः । रोषदोषपरीतात्मा व्यक्तं लोकविनाशनः ॥२०॥
इति चिन्तयतस्तस्य निमित्तान्युपपेदिरे । पूर्वमप्युपलब्धानि साक्षात्पुनरचिन्तयत् ॥२१॥
अथ वा चारुसर्वाङ्गी रक्षिता स्वेन तेजसा । न नशिष्यति कल्याणी नाग्निरग्नौ प्रवर्तते ॥२२॥
नहि धर्मात्मनस्तस्य भार्याममिततेजसः । स्वचारित्राभिगुप्तां तां स्प्रष्टुमर्हति पावकः ॥२३॥
नूनं रामप्रभावेण वैदेह्याः सुकृतेन च । यन्मां दहनकर्मायं नादहद्धव्यवाहनः ॥२४॥

वशीभूत होकर मैंने स्वामी रामचंद्रके कार्यका समूल नाश कर दिया ॥ १० ॥ जानकी नष्ट हो गयी । लंकाका ऐसा कोई भाग नहीं दीख पड़ता, जो जला न हो । मैंने तो समस्त लंका जला दी है ॥ ११ ॥ यदि बुद्धिनाशके कारण मैंने यह काम कर दिया है, तो यहीं और आजही मुझे भी अपना प्राण त्याग कर देना अच्छा मालूम होता है ॥ १२ ॥ क्या मैं आगमें गिर पड़ूँ या बड़वानलमें, अथवा समुद्रके प्राणियोंको अपना शरीर सौंपदूँ ? ॥ १३ ॥ जीते जीते मैं सुग्रीवके सामने किस प्रकार जा सकता हूँ और समस्त कार्योंका नाश करके राम और लक्ष्मणके सामने भी कैसे जा सकता हूँ ॥ १४ ॥ क्रोधके कारण मैंने लोकप्रसिद्ध वानरोंकी चंचलता प्रकाशित कर दी ॥ १५ ॥ रजोगुणजनित भावको धिक्कार, जिससे न तो कार्य सिद्ध होता है और न जो सुव्यवस्थित है; क्योंकि समर्थ होने परभी मैं सीताकी रक्षा न कर सका ॥ १६ ॥ सीताके नष्ट होने पर वे दोनों राम और लक्ष्मण नष्ट हो जायँगे । उनके नष्ट होने पर सुग्रीव अपने वानरोंके साथ नष्ट हो जायँगे ॥ १७ ॥ इस बातको सुनकर भ्रातृप्रेमी धर्मात्मा भरतभी शत्रुघ्नके साथ जी न सकेंगे ॥१८॥ धर्मात्मा इक्ष्वाकुवंशके नष्ट होने पर समस्त प्रजा शोक और सन्तापसे पीड़ित हो जायगी (या शोकके सन्तापसे पीड़ित हो जायगी) ॥ १९ ॥ मैं अभागा धर्म-अर्थका लोप कर क्रोधके दोषोंसे युक्त, प्रसिद्ध, संसारका विनाशक समझा जाऊँगा ॥ २० ॥ इस प्रकार विचार करते हुए हनुमानको कुछ निमित्त—चिन्ह—दिखाई पड़े जो पहलेभी दिखाई पड़े थे । वे पुनः सोचने लगे ॥ २१ ॥ अथवा सर्वाङ्गसुन्दरी सीताने अपने तेजसे अपनी रक्षा कर ली होगी । कल्याणी सीताका नाश नहीं हो सकता; क्योंकि आग आगको नहीं जलाती ॥ २२ ॥ अतुलतेजस्वी धर्मात्मा रामचंद्रकी, अपने चरित्रसे रक्षित पत्नीको अग्नि नहीं छू सकता ॥ २३ ॥ निश्चय है कि रामचंद्रके प्रभाव और

त्रयाणां भरतादीनां भ्रातॄणां देवता च या । रामस्य च मनःकान्ता सा कथं विनशिष्यति ॥२५॥
यद्वा दहनकर्माऽयं सर्वत्र प्रभुरव्ययः । न मे दहति लाङ्गूलं कथमार्यां प्रधक्ष्यति ॥२६॥
पुनश्चाचिन्तयत्तत्र हनूमान्विस्मितस्तदा । हिरण्यनाभस्य गिरेर्जलमध्ये प्रदर्शनम् ॥२७॥
तपसा सत्यवाक्येन अनन्यत्वाच्च भर्तरि । असौ विनिर्दहेदग्निं न तामग्निः प्रधक्ष्यति ॥२८॥
स तथा चिन्तयंस्तत्र देव्या धर्मपरिग्रहम् । शुश्राव हनुमांस्तत्र चारणानां महात्मनाम् ॥२९॥
अहो खलु कृतं कर्म दुर्विगाहं हनूमता । अग्निं विसृजता तीक्ष्णं भीमं राक्षससद्मनि ॥३०॥
प्रपलायितरक्षः स्त्रीबालवृद्धसमाकुला । जनकोलाहलाध्माता क्रन्दतीवाद्रिकंदरैः ॥३१॥
दग्धेयं नगरी लङ्का साट्टप्राकारतोरणा । जानकी न च दग्धेति विस्मयोऽद्भुत एव नः ॥३२॥
इति शुश्राव हनुमान्वाचंताममृतोपमाम् । बभूव चास्य मनसो हर्षस्तत्कालसंभवः ॥३३॥
स निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः । ऋषिवाक्यैश्च हनुमानभवत्प्रीतमानसः ॥३४॥

ततः कपिः प्राप्तमनोरथार्थस्तामक्षतां राजसुतां विदित्वा ।
प्रत्यक्षतस्तां पुनरेव दृष्ट्वा प्रतिप्रयाणाय मतिं चकार ॥३५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥५५॥

सीताके पुण्यसे, जलानेवाली इस आगने हमें नहीं जलाया (फिर सीताही कैसे जली होंगी ?) ॥ २४ ॥ जो भरत आदि तीन भाइयोंकी देवी हैं, रामचंद्रके मनकी प्रिया है, वह कैसे नष्ट हो सकती है ॥ २५ ॥ जो अग्नि सब जगह सब चीजोंको जलानेमें समर्थ है, पर हमारी पूँछको वह नहीं जला सकी, वह आर्या सीताको कैसे जला सकती है ? ॥ २६ ॥ पुनः विस्मित होकर हनुमान समुद्रमें मैनाकके दिखाई पड़नेकी बात सोचने लगे ॥ २७ ॥ तपस्या, सत्यता और पतिमें अनन्य अनुरागके कारण सीताही अग्निको जला सकती हैं, अग्नि उन्हें नहीं जला सकती ॥ २८ ॥ इस प्रकार सीताके धर्म-प्रभावका विचार करते हुए हनुमानने वहाँ महात्मा चारणोंके ये वचन सुने ॥ २९ ॥ आश्चर्य है, हनुमानने यह कैसा न समझने योग्य अद्भुत काम किया है । उन्होंने राक्षसोंके घरमें भयानक आग लगायी ॥ ३० ॥ व्याकुल होकर राक्षसोंकी स्त्रियाँ, बालक, वृद्ध आदि भाग गये । जनकोलाहलसे लंका नगरी भर गयी और रोती हुई वह नगरी, अटारी, चहारदिवारी और तोरणके साथ जल गयी; पर, सीता नहीं जली । यह कितने विस्मयकी बात है । कितना अद्भुत है ॥ ३१-३२ ॥ यह अमृतके समान वचन हनुमानने सुना और उसी समय उनके मनमें हर्ष उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ शुभ शकुनों और दृढ़ कारणों और गुणवान् ऋषिवाक्योंसे हनुमानका मन प्रसन्न हुआ ॥ ३४ ॥ अनन्तर कपिने सफलमनोरथ होकर, राजपुत्री सीताको अक्षत जानकर तथा उनको प्रत्यक्ष देखकर लौट आनेका विचार किया ॥ ३५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥५५॥

षट्पञ्चाशः सर्गः ५६

ततस्तु शिंशपामूले जानकीं पर्यवस्थिताम् । अभिवाद्याब्रवीद्दिष्ट्या पश्यामि त्वामिहाक्षताम् ॥ १ ॥
ततस्तं प्रस्थितं सीता वीक्षमाणा पुनः पुनः । भर्तुः स्नेहान्विता वाक्यं हनूमन्तमभाषत ॥ २ ॥
यदि त्वं मन्यसे तात वसैकाहमिहानघ । कचित्सुसंवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥ ३ ॥
मम चैवाल्पभाग्यायाः सांनिध्यात्तव वानर । शोकस्यास्याप्रमेयस्य मुहूर्तं स्यादपि क्षयः ॥ ४ ॥
गते हि हरिशार्दूल पुनः संप्राप्तये त्वयि । प्राणेष्वपि न विश्वासो मम वानरपुंगव ॥ ५ ॥
अदर्शनं च ते वीर भूयो मां दारयिष्यति । दुःखाद्दुःखतरं प्राप्तां दुर्मनः शोककर्शिताम् ॥ ६ ॥
अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः । सुमहत्सु सहायेषु हर्यृक्षेषु महाबलः ॥ ७ ॥
कथं नु खलु दुष्पारं संतरिष्यन्ति सागरम् । तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥ ८ ॥
त्रयाणामेव भूतानां सागरस्यास्ति लङ्घने । शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य तव वा मारुतस्य वा ॥ ९ ॥
तदत्र कार्यनिर्बन्धे समुत्पन्ने दुरासदे । किं पश्यसि समाधानं त्वं हि कार्यविशारदः ॥१०॥
काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने । पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ॥११॥
बलैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः । मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥१२॥
तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः । भवत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥१३॥
तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् । निशम्य हनुमान्वीरो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥१४॥

अनन्तर शिंशपाकी छायामें बैठी जानकीको प्रणाम कर हनुमान बोले—खुशीकी बात है कि आपको मैं अक्षतशरीर देख रहा हूँ ॥ १ ॥ प्रस्थान करते हुए हनुमानको बार बार देखकर पति-स्नेहपरायणा सीता हनुमानसे बोलीं ॥ २ ॥ यदि तुम्हारी इच्छा हो, हे निष्पाप, एक दिन और किसी गुप्त स्थानमें यहीं रहो । विश्राम करके कल जाना ॥ ३ ॥ हे वानर, तुम्हारे रहनेसे अभागिनी मेरे इस विशाल शोकमें थोड़ी देरके लिए कमी होगी ॥ ४ ॥ वानरश्रेष्ठ, तुम्हारे जाने पर और तुम्हारे आनेतक मुझे अपने प्राणोंपरभी विश्वास नहीं है । ये रहेंगे या जायँगे ॥ ५ ॥ मैंने कठिनसे कठिन दुःख पाया है और मैं शोकसे कृश हूँ । तुम्हारा न रहना, मुझे पुनः दुःखी बनावेगा ॥ ६ ॥ वीर, यह सन्देह अभी भी बनाही हुआ है कि बड़े-बड़े वानर भालुओंके सहायक होने परभी, वानरभालुओंकी सेना तथा राजपुत्र राम और लक्ष्मण, पार करनेके अयोग्य इस समुद्रको कैसे पार करेंगे ॥ ७-८ ॥ तीनही प्राणीको समुद्र पार करनेकी सामर्थ्य है, गरुड़की, तुम्हारी और वायुकी ॥ ९ ॥ इस कठिन कार्यसंबन्धी विघ्नके उत्पन्न होने पर, हे कार्यविशारद, तुम कौनसा उपाय सोचते हो ॥ १० ॥ हे शत्रुघोरहन्ता, तुम्हीं एक इस कार्यके साधन करनेमें समर्थ हो । तुम्हाराही बल यशस्वी होगा ॥ ११ ॥ शत्रुसेनाको पीड़ित करनेवाले रामचंद्र यदि लंकाको अपने सैनिकोंसे घेरकर हमको यहाँसे ले आयँ तो यह उनके योग्य होगा ॥ १२ ॥ युद्ध-वीर, महात्मा रामचंद्रका उनके अनुरूप पराक्रम जिस प्रकार प्रकाशित हो, वैसा तुम करो ॥१३॥

देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः। सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नस्तवार्थे कृतनिश्चयः ॥१५॥
स वानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंवृतः। क्षिप्रमेष्यति वैदेहि सुग्रीवः प्लवगाधिपः ॥१६॥
तौ च वीरौ नरवरौ सहितौ रामलक्ष्मणौ। आगम्य नगरीं लङ्कां सायकैर्विधमिष्यतः ॥१७॥
सगणं राक्षसं हत्वा न चिराद्रघुनन्दनः। त्वामादाय वरारोहे स्वां पुरीं प्रति यास्यति ॥१८॥
समाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकांक्षिणी। क्षिप्रं द्रक्ष्यसि रामेण निहतं रावणं रणे ॥१९॥
निहते राक्षसेन्द्रे च सपुत्रामात्यबान्धवे। त्वं समेष्यसि रामेण शशाङ्केनेव रोहिणी ॥२०॥
क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्युतः। यस्ते युधि विनिर्जित्य शोकं व्यपनयिष्यति ॥२१॥
एवमाश्वास्य वैदेहीं हनूमान्मारुतात्मजः। गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीमभ्यवादयत् ॥२२॥
राक्षसान्प्रवरान्हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः। समाश्वास्य च वैदेहीं दर्शयित्वा परं बलम् ॥२३॥
नगरीमाकुलां कृत्वा वञ्चयित्वा च रावणम्। दर्शयित्वा बलं घोरं वैदेहीमभिवाद्य च ॥२४॥
प्रतिगन्तुं मनश्चक्रे पुनर्मध्येन सागरम्। ततः स कपिशार्दूलः स्वामिसंदर्शनोत्सुकः ॥२५॥
आरुरोह गिरिश्रेष्ठमरिष्टमरिमर्दनः। तुङ्गपद्मकजुष्टाभिर्नीलाभिर्वनराजिभिः ॥२६॥
सोत्तरीयमिवाम्भोदैः शृङ्गान्तरविलम्बिभिः। बोध्यमानमिव प्रीत्या दिवाकरकरैः शुभैः ॥२७॥
उन्मिषन्तमिवोद्धूतैर्लोचनैरिव धातुभिः। तोयौघनिःस्वनैर्मन्द्रैः प्राधीतमिव सर्वतः ॥२८॥

अर्थयुक्त, नम्र तथा हेतुयुक्त सीताके वचन सुनकर धीर हनुमानने उत्तर दिया ॥१४। देवि, वानर-भालुओंकी सेनाके स्वामी, वानरश्रेष्ठ, वीर सुग्रीवने तुम्हारे लिए निश्चय कर लिया है ॥ १५ ॥ असंख्य वानरोंसे युक्त होकर वानराधिपति सुग्रीव शीघ्रही आवेंगे ॥ १६ ॥ वे नरश्रेष्ठ राम और लक्ष्मण साथही बाणोंसे लंका नगरीको व्यथित करेंगे ॥ १७ ॥ सबके साथ रावणको मारकर और तुमको लेकर, हे सुन्दरि, रामचंद्र शीघ्रही अपने नगरमें जायँगे ॥ १८ ॥ धैर्य धरो, तुम्हारा कल्याण हो। थोड़े समयकी प्रतीक्षा करो। तुम शीघ्रही रामके द्वारा युद्धमें रावणको मरा हुआ देखोगी ॥ १९ ॥ पुत्र, सचिव और बन्धुओंके साथ रावणके मारे जाने पर तुम रामचंद्रसे मिलोगी जिस प्रकार रोहिणी चन्द्रमासे मिलती है ॥ २० ॥ वानरभालुओंके सेनापतियोंके साथ रामचंद्र शीघ्रही आवेंगे, जो युद्धमें शत्रुको जीतकर तुम्हारा शोक दूर करेंगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार जानकी-को समझाकर हनुमान चलनेके लिए तयार हुए ॥२२॥ और सीताको प्रणाम किया। वीर राक्षसों-को मारकर, अपने नामको प्रसिद्ध कर, जानकीको समझाकर, अपना पराक्रम दिखाकर, लंकाको उजाड़कर, रावणको धोखा देकर, अपना घोर बल दिखाकर, सीताको प्रणाम कर स्वामीको देखनेके लिए उत्सुक वे वानरश्रेष्ठ समुद्रके बीचसे पुनः जानेके लिए तयार हुए ॥२३-२५॥ शत्रुमर्दन हनुमान ऊँचे पद्मक वृक्षोंसे युक्त तथा नील, वनश्रेणिसहित अरिष्ट नामक श्रेष्ठ पर्वत पर चढ़े ॥२६॥ उसके शिखरोंपर लटकनेवाले मेघ चादरके समान मालूम होते थे और सूर्य किरणोंसे वह पर्वत ऐसा मालूम होता था मानो जगाया जा रहा हो ॥ २७ ॥ उत्पन्न हुई आँखोंके समान वर्तमान धातुओंसे मानो वह देख रहा हो। नदियोंके गंभीर शब्दसे वह मानो पढ़नेमें प्रवृत्त हुआ हो ॥ २८ ॥

प्रगीतमिव विस्पष्टं नानाप्रस्रवणस्वनैः । देवदारुभिरुद्भूतैरूर्ध्वबाहुमिव स्थितम् ॥२९॥
प्रपातजलनिर्घोषैः प्राक्रुष्टमिव सर्वतः । वेपमानामिव श्यामैः कम्पमानैः शरद्वनैः ॥३०॥
वेणुभिर्मारुतोद्धूतैः कूजन्तमिव कीचकैः । निःश्वसन्तमिवामर्षाद्घोरैराशीविषोत्तमैः ॥३१॥
नीहारकृतगम्भीरैर्ध्यायन्तमिव गह्वरैः । मेघपादनिभैः पादैः प्रक्रान्तमिव सर्वतः ॥३२॥
जृम्भमाणमिवाकाशे शिखरैरभ्रमालिभिः । कूटैश्च बहुधा कीर्णं शोभितं बहुकंदरैः ॥३३॥
सालतालैश्च कर्णैश्च वंशैश्च बहुभिर्वृतम् । लतावितानैर्विततैः पुष्पवद्भिरलंकृतम् ॥३४॥
नानामृगगणैः कीर्णं धातुनिष्यन्दभूषितम् । बहुप्रस्रवणोपेतं शिलासंचयसंकटम् ॥३५॥
महर्षियक्षगन्धर्वकिंनरोरगसेवितम् । लतापादपसंबाधं सिंहाधिष्ठितकंदरम् ॥३६॥
व्याघ्रादिभिः समाकीर्णं स्वादुमूलफलद्रुमम् । आरुरोहानिलसुतः पर्वतं प्लवगोत्तमः ॥३७॥
रामदर्शनशीघ्रेण प्रहर्षेणाभिचोदितः । तेन पादतलक्रान्ता रम्येषु गिरिसानुषु ॥३८॥
सघोषाः समशीर्यन्त शिलाश्चूर्णीकृतास्ततः । स तमारुह्य शैलेन्द्रं व्यवर्धत महाकपिः ॥३९॥
दक्षिणादुत्तरं पारं प्रार्थयँल्लवणाम्भसः । अधिरुह्य ततो वीरः पर्वतं पवनात्मजः ॥४०॥
ददर्श सागरं भीमं भीमोरगनिषेवितम् । स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसंभवः ॥४१॥
प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणादुत्तरां दिशम् । स तदा पीडितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः ॥४२॥

अनेक झरनोंके स्पष्ट शब्दके द्वारा मानो वह गा रहा हो । ऊपर उठे हुए देवदारु वृक्षोंके द्वारा वह ऊर्ध्वबाहुके समान खड़ा मालूम पड़ता था ॥ २९ ॥ झरनोंके गिरनेके शब्दसे मानो वह चिल्ला रहा था। काँपते हुए, शरत्‌के काले वनोंसे मानो वह काँप रहा था ॥३०॥ वायुके द्वारा कँपाये पुराने, फटे बाँसके वृक्षोंके द्वारा मानो वह पक्षियोंका सा शब्द कर रहा था। भयानक सर्पोंके द्वारा मानो क्रोधसे निःश्वास ले रहा था ॥३१॥ बर्फके कारण निश्चलसी बनी हुई गुफाओंके द्वारा मानो वह ध्यान कर रहा था । मेघोंके समूहके समान पासके छोटे छोटे पर्वतोंके द्वारा मानो वह चलनेके लिए तयार हुआ था ॥ ३२ ॥ आकाशमें मेघोंसे घिरे हुए शिखरोंके कारण मानो वह अंगड़ाई ले रहा था । अनेक शिखरों और गुहाओंसे व्याप्त होनेके कारण, वह पर्वत, शोभित हो रहा था ॥ ३३ ॥ शाल, ताल, कर्ण और वंस आदिके अनेक वृक्षोंसे वह युक्त था । फूली हुई लताओंसे वह शोभित था ॥ ३४ ॥ अनेक पशुओंसे वह युक्त था । धातुओंके पिघलनेसे वह शोभित हो रहा था । उस पर अनेक झरने थे और सघन पत्थरकी पटियोंसे वह सुशोभित था ॥ ३५ ॥ महर्षि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और नागसे वह अलंकृत था । लता और वृक्षोंसे घिरा हुआ था । उसकी कन्दराओंमें सिंह निवास करते थे ॥ ३६ ॥ बाघ आदिकी वहाँ अधिकता थी । स्वादिष्ट फल मूलके वृक्ष वहाँ थे । वानरश्रेष्ठ वायुपुत्र उस पर्वत पर चढ़े ॥ ३७ ॥ रामके दर्शनके लिए वेगवान् और हर्षसे प्रेरित हनुमानके पैरोंसे आक्रान्त रमणीय पर्वतशिखरके पत्थर शब्द करके चूर हो गये । उस पर्वतपर चढ़कर हनुमान बढ़ने लगे ॥ ३८,३९ ॥ वायुपुत्र वीर हनुमानने पर्वतपर चढ़कर समुद्रके दक्षिण तीरसे उत्तर तीर आनेकी इच्छा की ॥ ४० ॥ वायुके पुत्र हनुमानने भयानक सर्पोंसे युक्त भयानक समुद्रको देखा । जिस प्रकार वायु आकाशके

ररास विविधैर्भूतैः प्राविशद्वसुधातलम् । कम्पमानैश्च शिखरैः पतद्भिरपि च द्रुमैः ॥४३॥
तस्योरुवेगोन्मथिता पादपाः पुष्पशालिनः । निपेतुर्भूतले भग्नाः शक्रायुधहता इव ॥४४॥
कंदरोदरसंस्थानां पीडितानां महौजसाम् । सिंहानां निनदो भीमो नभो भिन्दन्हि शुश्रुवे ॥४५॥
त्रस्तव्याविद्धवसना व्याकुलीकृतभूषणाः । विद्याधर्यः समुत्पेतुः सहसा धरणीधरात् ॥४६॥
अतिप्रमाणा बलिनो दीप्तजिह्वा महाविषाः । निपीडितशिरोग्रीवा व्यवेष्टन्त महाहयः ॥४७॥
किंनरोरगगन्धर्वयक्षविद्याधरास्तथा । पीडितं तं नगवरं त्यक्त्वा गगनमास्थिताः ॥४८॥
स च भूमिधरः श्रीमान्बलिना तेन पीडितः । सवृक्षशिखरोदग्रः प्रविवेश रसातलम् ॥४९॥
दशयोजनविस्तारस्त्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः । धरण्यां समतां यातः स बभूव धराधरः ॥५०॥
स लिलङ्घयिषुर्भीमं सलीलं लवणार्णवम् । कल्लोलास्फालवेलान्तमुत्पपात नभो हरिः ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः ५७

आप्लुत्य च महावेगः पक्षवानिव पर्वतः । भुजंगयक्षगन्धर्वप्रबुद्धकमलोत्पलम् ॥ १ ॥
सचन्द्रकुमुदं रम्यं सार्ककारण्डवं शुभम् । तिष्यश्रवणकादम्बमभ्रशैवलशाद्वलम् ॥ २ ॥

इस भागसे उस भागमें चला जाता है, उसी प्रकार वायुपुत्र हनुमान समुद्रके दक्षिण तीरसे उत्तर तीर पर चले आये । हनुमानके द्वारा दबाये जानेसे वह पर्वत बड़े ज़ोरसे बोला और काँपते हुए शिखरों और गिरते हुए वृक्षोंके साथ पृथ्वीमें धँस गया ॥४१-४३॥ उनके जांघोंके प्रखर वेगसे कँपाये फूलवाले वृक्ष इन्द्रके वज्रसे मारे हुएके समान, पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४४ ॥ कन्दरामें रहनेवाले महाबली सिंह, हनुमानके भारसे पीड़ित होकर, गर्जन करने लगे । वह गर्जन आकाशको प्रतिध्वनित करता हुआ, चारो ओर फैल गया ॥ ४५ ॥ विद्याधर-स्त्रियोंने डरनेके कारण उलटा वस्त्र पहन लिया । उनके गहने ढीले हो गये और वे उस पर्वतसे उड़कर चली गयीं ॥ ४६ ॥ लम्बे, बली, दीप्त जीभवाले, विषैले साँप मस्तक और गलेके पीड़ित होनेसे गोलाकार हो गये ॥ ४७ ॥ किन्नर, नाग, गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर, पीड़ित उस पर्वतको छोड़कर आकाशमें चले गये ॥४८॥ बली हनुमानके द्वारा पीड़ित होनेसे वृक्ष और शिखरोंके कारण ऊँचा वह पर्वत पृथ्वीमें घुस गया ॥४९॥ दस योजन लम्बा और तीस योजन ऊँचा, वह पर्वत पृथ्वीके बराबर हो गया ॥५०॥ बड़ी लहरियाँ जिसके तीरको स्पर्श करती हैं, उस खारे समुद्रको लाँघनेकी इच्छासे हनुमान आकाशमें उड़े ॥ ५१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥५६॥

महावेग हनुमान पक्षधारी पर्वतके समान आकाशरूपी समुद्रमें उड़े । नाग, यक्ष और

पुनर्वसुमहामीनं लोहिताङ्गमहाग्रहम् । ऐरावतमहाद्वीपं स्वातीहंसविलासितम् ॥ ३ ॥
वातसंघातजालोर्मिचन्द्रांशुशिशिराम्बुमत् । हनूमानपरिश्रान्तः पुप्लुवे गगनार्णवम् ॥ ४ ॥
ग्रसमान इवाकाशं ताराधिपमिवोल्लिखन् । हरन्निव सनक्षत्रं गगनं सार्कमण्डलम् ॥ ५ ॥
अपारमपरिश्रान्तश्चाम्बुधिं समगाहत । हनूमान्मेघजालानि विकर्षन्निव गच्छति ॥ ६ ॥
पाण्डुरारुणवर्णानि नीलमाञ्जिष्ठकानि च । हरितारुणवर्णानि महाभ्राणि चकाशिरे ॥ ७ ॥
प्रविशन्नभ्रजालानि निष्क्रमंश्च पुनः पुनः । प्रकाशश्चाप्रकाशश्च चन्द्रमा इव दृश्यते ॥ ८ ॥
विविधाभ्रघनापन्नगोचरो धवलाम्बरः । दृश्यादृश्यतनुर्वीरस्तथा चन्द्रायतेऽम्बरे ॥ ९ ॥
तार्क्ष्यायमाणो गगने स बभौ वायुनन्दनः । दारयन्मेघवृन्दानि निष्पतंश्च पुनः पुनः ॥१०॥
नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः । प्रवरान्राक्षसान्हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ॥११॥
आकुलां नगरीं कृत्वा व्यथयित्वा च रावणम् । अर्दयित्वा महावीरान्वैदेहीमभिवाद्य च ॥१२॥
आजगाम महातेजाः पुनर्मध्येन सागरम् । पर्वतेन्द्रं सुनाभं च समुपस्पृश्य वीर्यवान् ॥१३॥
ज्यामुक्त इव नाराचो महावेगोऽभ्युपागमत् । स किंचिदारात्संप्राप्तः समालोक्य महागिरिम् ॥१४॥
महेन्द्रमेघसंकाशो ननाद स महाकपिः । स पूरयामास कपिर्दिशो दश समन्ततः ॥१५॥

गन्धर्व खिले कमलके समान थे। चन्द्रमा रमणीय श्वेत कमलके समान था, सूर्य कारण्डव पक्षीके समान थे। तिष्य, श्रवण आदि नक्षत्र कलहंस थे तथा मेघ, सेवार और घासके समान थे। पुनर्वसु नक्षत्र बड़ी मछलीके समान था। मंगल ग्रह बड़े भारी ग्राहके समान था। ऐरावत एक महाद्वीप जैसा था। स्वाति रूपी हंससे वह सुशोभित था। बवण्डरोंके समूह लहरियोंके समान थे। चन्द्रकी किरणें शीतल जलके समान थीं। उस आकाशसमुद्रमें हनुमान बिना थकावटके उड़े ॥ १—४ ॥ हनुमान मानो आकाशको ग्रास करते, चन्द्रमाको छेदते, नक्षत्र तथा सूर्यमण्डलके साथ आकाशको खींचते और मेघसमूहोंको भी खींचते हुए बिना परिश्रमसे अपार समुद्रको पार करने लगे ॥ ५—६ ॥ धूसर और लाल रंगके, काले और लाल रंगके, हरे और लाल रंगके बड़े-बड़े मेघ आकाशमें शोभित होते थे ॥ ७ ॥ हनुमान कभी मेघोंमें घुस जाते और कभी निकलते। इस प्रकार चन्द्रमाके समान कभी प्रकाशित और कभी अप्रकाशित वे दिखाई पड़े ॥ ८ ॥ अनेक मेघ-मार्गोंमें जानेके कारण तथा श्वेत वस्त्र होनेके कारण कभी दिखाई पड़नेवाले और कभी दिखाई न पड़नेवाले हनुमान आकाशमें चन्द्रमाके समान मालूम पड़े ॥ ९ ॥ हनुमान बार-बार मेघोंको फाड़कर निकल जाते थे, इस कारण वे वायुपुत्र आकाशमें गरुड़के समान मालूम हुए ॥ १० ॥ मेघगर्जनके समान जोरसे गर्जते हुए और वीर राक्षसोंको मारकर, अपना नाम प्रसिद्ध कर, लंका नगरीको उजाड़कर, रावणको दुःखी बनाकर, बड़े बड़े वीरोंको पीड़ित कर, जानकीको प्रणाम कर, महातेजस्वी हनुमान समुद्रके बीचमें आये। पर्वतश्रेष्ठ मैनाकको छूकर वीर्यवान् और वेगवान् हनुमान, धनुषसे छूटे वाणके समान आये। कुछ पास आकर उन्होंने उस महापर्वतको देखा ॥ ११—१४ ॥ महेन्द्र पर्वतके समान महाकपि हनुमानने गर्जन किया,

नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः । स तं देशमनुप्राप्तः सुहृद्दर्शनलालसः ॥१६॥
ननाद सुमहानादं लाङ्गूलं चाप्यकम्पयत् । तस्य नानद्यमानस्य सुपर्णाचरिते पथि ॥१७॥
फलतीवास्य घोषेण गगनं सार्कमण्डलम् । ये तु तत्रोत्तरे कूले समुद्रस्य महाबलाः ॥१८॥
पूर्वं संविष्ठिताः शूरा वायुपुत्रदिदृक्षवः । महतो वायुनुन्नस्य तोयदस्येव निःस्वनम् ॥
शुश्रुवुस्ते तदा घोषमूरुवेगं हनूमतः । ॥१९॥
ते दीनमनसः सर्वे शुश्रुवुः काननौकसः । वानरेन्द्रस्य निर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥२०॥
निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः । बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः ॥२१॥
जाम्बवान्स हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः । उपामन्त्र्य हरीन्सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥२२॥
सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनूमान्नात्र संशयः । न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत् ॥२३॥
तस्य बाहूरुवेगं च निनादं च महात्मनः । निशम्य हरयो हृष्टाः समुत्पेतुर्यतस्ततः ॥२४॥
ते नगाग्रान्नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च । प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनूमन्तं दिदृक्षवः ॥२५॥
ते प्रीताः पादपाग्रेषु गृह्य शाखामवस्थिताः । वासांसि च प्रकाशानि समाविध्यन्त वानराः ॥२६॥
गिरिगह्वरसंलीनो यथा गर्जति मारुतः । एवं जगर्ज बलवान्हनूमान्मारुतात्मजः ॥२७॥
तमभ्रघनसंकाशमापतन्तं महाकपिम् । दृष्ट्वा ते वानराः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ॥२८॥
ततस्तु वेगवान्वीरो गिरेर्गिरिनिभः कपिः । निपपात गिरेस्तस्य शिखरे पादपाकुले ॥२९॥

जिससे दसो दिशाएँ प्रतिध्वनित हुई ॥ १५ ॥ मेघ-गर्जनके समान जोरसे गर्जते हुए अपने मित्रोंको देखनेके लिए उत्कण्ठित हनुमान मित्रोंके निवासस्थानके पास पहुँचे ॥ १६ ॥ हनुमान गर्जन करने लगे तथा पूँछ पटकने लगे। बार-बार आकाश मार्गमें गर्जन करनेसे सूर्यमण्डलके साथ आकाश मानो फटने लगा। समुद्रके उत्तर तीर पर महाबली वानर, हनुमानको देखनेके लिए जो पहलेसे स्थित थे, उन्होंने मेघके गर्जनके समान, वायुके द्वारा पहुँचाये हनुमानके महान-वेगके शब्द सुने ॥ १७-१९ ॥ उन दुखी समस्त वानरोंने मेघके गर्जनके समान हनुमानके सिंहनाद सुने ॥ २० ॥ गर्जन करते हुए हनुमानके गर्जनकी ध्वनि सुनकर मित्रको देखनेके लिए उत्कंठित वानर उत्सुक हुए ॥ २१ ॥ वानरश्रेष्ठ जाम्बवान नितान्त प्रसन्न होकर सब वानरोंको एकत्रकर इस प्रकार बोले ॥ २२ ॥ कार्य सिद्ध करके ये हनुमानही आ रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं। कार्य बिना सिद्ध किये उनका गर्जन इस प्रकारका न होता ॥ २३ ॥ उनके हाथ चलानेका घोर शब्द तथा गर्जन सुनकर वानर बहुत प्रसन्न हुए और इधर-उधर कूदने लगे ॥ २४ ॥ वे वानर एक पर्वतसे दूसरे पर्वत पर, एक शिखरसे दूसरे शिखर पर, हनुमानको देखनेके लिए गये ॥ २५ ॥ वे वानर प्रसन्न होकर वृक्षोंकी शाखाओंके सिरेपर चले गये और साफ दिखाई पड़नेवाले अपने वस्त्रोंको हिलाने लगे ॥ २६ ॥ पर्वतकी गुहाओंमें लीन वायु जिस तरह गर्जता है, उसी प्रकार वायुपुत्र बली हनुमानने गर्जन किया ॥ २७ ॥ निविड़ मेघके समान उन महाकपिको आते देखकर वे सब वानर हाथ जोड़कर खड़े होगये ॥ २८ ॥ वेगवान्, वीर और पर्वतके समान

हर्षेणापूर्यमाणोऽसौ रम्ये पर्वतनिर्झरे । छिन्नपक्ष इवाकाशात्पपात धरणीधरः ॥३०॥
ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुंगवाः । हनूमन्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥३१॥
परिवार्य च ते सर्वे परां प्रीतिमुपागताः । प्रहृष्टवदनाः सर्वे तमागतमुपागमन् ॥३२॥
उपायनानि चादाय मूलानि च फलानि च । प्रत्यर्चयन्हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम् ॥३३॥
विनेदुर्मुदिताः केचित्केचित्किलकिलां तथा । हृष्टाः पादपशाखाश्च आनिन्युर्वानरर्षभाः ॥३४॥
हनूमांस्तु गुरून्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा । कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ॥३५॥
स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः । दृष्टा देवीति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत् ॥३६॥
निषसाद च हस्तेन गृहीत्वा वालिनः सुतम् । रमणीये वनोद्देशे महेन्द्रस्य गिरेस्तदा ॥३७॥
हनूमानब्रवीत्पृष्टस्तदा तान्वानरर्षभान् । अशोकवनिकासंस्था दृष्टा सा जनकात्मजा ॥३८॥
रक्ष्यमाणा सुघोराभी राक्षसीभिरनिन्दिता । एकवेणीधरा बाला रामदर्शनलालसा ॥३९॥
उपवासपरिश्रान्ता मलिना जटिला कृशा । ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम् ॥४०॥
निशम्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानराभवन् । क्ष्वेडन्त्यन्ये नदन्त्यन्ये गर्जन्त्यन्ये महाबलाः ॥४१॥
चक्रुः किलकिलामन्ये प्रतिगर्जन्ति चापरे । केचिदुच्छ्रितलाङ्गूलाः प्रहृष्टाः कपिकुञ्जराः ॥४२॥
आयताञ्चितदीर्घाणि लाङ्गूलानि प्रविव्यधुः । अपरे तु हनूमन्तं श्रीमन्तं वानरोत्तमम् ॥४३॥

हनुमान अरिष्ट पर्वतसे कूदकर महेन्द्र पर्वतके वृक्षोंवाले शिखर पर गिरे ॥२९॥ आनन्दसे परिपूर्ण हनुमान रमणीय झरनोंवाले पर्वत पर छिन्नपक्ष पर्वतके समान आकाशसे गिरे ॥३०॥ प्रसन्नचित्त सभी श्रेष्ठ वानर महात्मा हनुमानको घेरकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३१ ॥ सभी प्रसन्न तथा प्रसन्नतासे खिले चेहरेवाले वे सब वानर आये हुए हनुमानको घेरकर बहुत प्रसन्न हुए और उनके पास आये ॥३२॥ वे वानर फल मूल आदि भेंट लेकर वायुपुत्र हनुमानकी पूजा करने लगे ॥३३॥ प्रसन्न होकर कोई गर्जने लगा, कोई किलकिल शब्द करने लगा। कोई वानर प्रसन्न होकर वृक्षकी डाल ले आया ॥३४॥ महाकपि हनुमानने बड़े, श्रेष्ठ जाम्बवान् आदिको तथा कुमार अंगदको प्रणाम किया ॥३५॥ उनके द्वारा सत्कृत होकर सत्कारयोग्य वीर हनुमानने संक्षेप में कहा कि मैंने सीता देवीको देखा ॥ ३६ ॥ कुमार अंगदका हाथ पकड़कर महेन्द्र पर्वतके रमणीय स्थानपर हनुमान बैठे ॥ ३७ ॥ वानरोंके द्वारा पूछे जाने पर हनुमान उनसे बोले—मैंने जनकपुत्री सीताको अशोक-वाटिकामें देखा है ॥ ३८ ॥ उन अनिन्दिता सीताकी रक्षा भयानक राक्षसियाँ करती हैं। वे रामचन्द्रको देखनेके लिए उत्कण्ठित हैं, तथा एक चोटी बाँधती हैं अर्थात् अपना शृङ्गार नहीं करतीं ॥३९॥ वे उपवाससे दुःखी, दुर्बल और मलिन हैं और उनके केशोंकी जटा बन गई है। वानर "मैंने देखी" यह अमृतके समान महान् अर्थवाला मारुतिका शब्द सुनकर प्रसन्न हुए। कई महाबली वानरसिंह गर्जन करने लगे । कई कुछ अव्यक्त बोलने लगे। कई गर्जने लगे। कई किलकिल करने लगे। कई किसीके गर्जनका उसी प्रकार गर्जकर उत्तर देने लगे। कई प्रसन्न श्रेष्ठ वानरोंने अपनी पूँछ ऊपर उठाली। लम्बी और बड़ी पूँछ कई वानर हिलाने लगे। दूसरे वानर, वानर-

आप्लुत्य गिरिशृङ्गेषु संस्पृशन्ति स्म हर्षिताः । उक्तवाक्यं हनूमन्तमङ्गदस्तु तदा ब्रवीत् ॥४४॥
सर्वेषां हरिवीराणां मध्ये वाचमनुत्तमाम् । सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित्समो वानर विद्यते ॥४५॥
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागतः । जीवितस्य प्रदाता नस्त्वमेको वानरोत्तम ॥४६॥
त्वत्प्रसादात्समेष्यामः सिद्धार्था राघवेण ह । अहो स्वामिनि ते भक्तिरहो वीर्यमहो धृतिः ॥४७॥
दिष्ट्या दृष्टा त्वया देवी रामपत्नी यशस्विनी ।दिष्ट्यात्यक्ष्यतिकाकुत्स्थःशोकंसीतावियोगजम्॥४८॥
ततोऽङ्गदं हनूमन्तं जाम्बवन्तं च वानराः । परिवार्य प्रमुदिता भेजिरे विपुलाः शिलाः ॥४९॥
उपविष्टा गिरेस्तस्य शिलासु विपुलासु ते । श्रोतुकामाः समुद्रस्य लङ्घनं वानरोत्तमाः ॥५०॥
दर्शनं चापि लङ्कायाः सीताया रावणस्य च । तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे हनुमद्वदनोन्मुखाः ॥५१॥
तस्थौ तत्राङ्गदः श्रीमान्वानरैर्बहुभिर्वृतः । उपास्यमानो विबुधैर्दिवि देवपतिर्यथा ॥५२॥

हनूमता कीर्तिमता यशस्विना तथाङ्गदेनाङ्गदनद्धबाहुना ।
मुदा तदाध्यासितमुन्नतं महन्महीधराग्रं ज्वलितं श्रियाऽभवत् ॥५३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः ५८

ततस्तस्य गिरेः शृङ्गे महेन्द्रस्य महाबलाः । हनुमत्प्रमुखाः प्रीतिं हरयो जग्मुरुत्तमाम् ॥ १ ॥

श्रेष्ठ श्रीमान् हनुमानको पर्वत शिखरपर कूदकर छूने लगे । हनुमानके कहने पर अंगद बोले ॥ ४०—४४ ॥ समस्त वानर वीरोंके सामने अंगद श्रेष्ठ वचन बोले—बल और पराक्रममें तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है, ॥ ४५ ॥ क्योंकि विशाल समुद्रको कूदकर पुनः तुम लौट आये । हे वानरश्रेष्ठ, तुम्हीं हमलोगोंके जीवनदाता हो ॥ ४६ ॥ तुम्हरी ही कृपासे सफलमनोरथ होकर हमलोग रामचन्द्रके पास आयँगे। तुम्हारी स्वामिभक्ति, तुम्हारा पराक्रम और धैर्य धन्य है ॥ ४७ ॥ प्रसन्नताको बात है कि रामपत्नी यशस्विनी सीताको तुमने देखा । यह भी प्रसन्नता-की बात है कि रामचन्द्र अब सीताके वियोगका दुःख छोड़ेंगे ॥ ४८ ॥ अंगद, हनुमान और जाम्बवानको घेरकर सब वानर प्रसन्न होकर एक बड़ी शिला पर बैठ गये ॥ ४९ ॥ समुद्रका लाँघना सुननेके लिए वे श्रेष्ठ वानर बड़ी शिलापर बैठे ॥ ५० ॥ लंका, सीता और रावणके देखनेकी बात सुननेके लिये हाथ जोड़कर हनुमानके मुँहकी ओर देखते हुए वे सब वानर बैठे ॥ ५१ ॥ अनेक वानरोंके साथ अंगद भी वहीं बैठे, मानो, स्वर्गमें देवताओंके द्वारा पूजित इन्द्र बैठे हों ॥ ५२ ॥ कुलीन, यशस्वी हनुमान तथा अंगद (एक आभूषण) धारण किये हुए कुमार अंगदके बैठनेसे वह पर्वतका शिखर शोभासे जगमगाने लगा ॥ ५३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५७ ॥

अनन्तर महेन्द्र पर्वतके शिखर पर बैठे हनुमान आदि वानर बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

प्रीतिमत्सूपविष्टेषु वानरेषु महात्मसु । तं ततः प्रतिसंहृष्टः प्रीतियुक्तं महाकपिम् ॥ २ ॥
जाम्बवान्कार्यवृत्तान्तमपृच्छदनिलात्मजम् । कथं दृष्टा त्वया देवी कथं वा तत्र वर्तते ॥ ३ ॥
तस्यां चापि कथं वृत्तः क्रूरकर्मा दशाननः । तत्त्वतः सर्वमेतन्नः प्रब्रूहि त्वं महाकपे ॥ ४ ॥
संमार्गिता कथं देवी किं च सा प्रत्यभाषत । श्रुतार्थाश्चिन्तयिष्यामो भूयः कार्यविनिश्चयम् ॥ ५ ॥
यश्चार्थस्तत्र वक्तव्यो गतैरस्माभिरात्मवान् । रक्षितव्यं च यत्तत्र तद्भवान्व्याकरोतु नः ॥ ६ ॥
स नियुक्तस्ततस्तेन संप्रहृष्टतनूरुहः । नमस्यञ्शिरसा देव्यै सीतायै प्रत्यभाषत ॥ ७ ॥
प्रत्यक्षमेव भवतां महेन्द्राग्रात्खमाप्लुतः । उदधेर्दक्षिणं पारं काङ्क्षमाणः समाहितः ॥ ८ ॥
गच्छतश्च हि मे घोरं विघ्नरूपमिवाभवत् । काञ्चनं शिखरं दिव्यं पश्यामि सुमनोहरम् ॥ ९ ॥
स्थितं पन्थानमावृत्य मेने विघ्नं च तं नगम् । उपसंगम्य तं दिव्यं काञ्चनं नगमुत्तमम् ॥१०॥
कृता मे मनसा बुद्धिर्भेत्तव्योऽयं मयेति च । प्रहतस्य मया तस्य लाङ्गूलेन महागिरेः ॥११॥
शिखरं सूर्यसंकाशं व्यशीर्यत सहस्रधा । व्यवसायं च तं बुद्ध्वा स होवाच महागिरिः ॥१२॥
पुत्रेति मधुरां वाणीं मनः प्रह्लादयन्निव । पितृव्यं चापि मां विद्धि सखायं मातरिश्वनः ॥१३॥
मैनाकमिति विख्यातं निवसन्तं महोदधौ । पक्षवन्तः पुरा तत्र बभूवुः पर्वतोत्तमाः ॥१४॥
छन्दतः पृथिवीं चेरुर्बाधमानाः समन्ततः । श्रुत्वा नगानां चरितं महेन्द्रः पाकशासनः ॥१५॥
वज्रेण भगवान्पक्षौ चिच्छेदैषां सहस्रशः । अहं तु मोचितस्तस्मात्तव पित्रा महात्मना ॥१६॥

प्रेमपूर्वक महात्मा वानरोंके बैठने पर, प्रसन्न महाकपि हनुमानसे प्रसन्नतासे खिले जाम्बवानने कामकी बातें पूछीं। तुमने देवी सीताको लंकामें कैसे देखा ? वे वहाँ किस प्रकार हैं ? उनके प्रति क्रूर रावणका कैसा व्यवहार है ? महाकपे, यह सब ठीक-ठीक मुझसे कहो ॥२॥ ३ ॥४॥ कैसे तुमने सीताको ढूँढ़ा ? उन्होंने क्या उत्तर दिया, यह सब सुन लेने पर हमलोग आगेके कार्यका विचार करेंगे ॥ ५ ॥ रामचन्द्रके समीप जाने पर कौन बात हमलोगोंको कहनी होगी और कौन बात न कहनी होगी, इस बातका आप निश्चय करें ॥ ६ ॥ जाम्बवानके कहने पर हनुमानके शरीरमें रोमाञ्च होगया। सीता देवीको प्रणाम करते हुए उन्होंने उत्तर दिया ॥ ७ ॥ समुद्रके दक्षिण पार जानेकी इच्छासे आपलोगोंके सामने ही महेन्द्र पर्वतके शिखर परसे सावधान होकर मैं आकाशमें उड़ा था ॥ ८ ॥ मेरे जानेमें विघ्नके समान, सोनेके शिखरवाला, मनोहर, दिव्य, एक पर्वतको मैंने देखा ॥ ९ ॥ वह पर्वत रास्ता रोककर खड़ा हुआ। मैंने उसे दुश्मन ही समझा। दिव्य, उस सुवर्ण पर्वतके पास जाकर मैंने उस पर्वतको पूँछके प्रहारसे तोड़ देनेका मनही मन निश्चय किया ॥ १० ११ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान उसके शिखर, हजारों टुकड़े होकर टूटने लगे। मेरे उद्योगको समझकर वह पर्वत बोला ॥ १२ ॥ "पुत्र" उसकी इस वाणीसे मेरा मन प्रसन्न होगया। उसने कहा—मुझे अपना चाचा समझो। मैं वायुका मित्र हूँ॥१३॥मेरा नाम मैनाक है, मैं समुद्रमें रहता हूँ। पहले बड़े बड़े पर्वत पाँखवाले होते थे। वे अपनी इच्छासे पृथ्वीमें घूमा करते थे और नगरोंको कुचल देते थे। पाकशासन इन्द्रने पर्वतोंका चरित सुनकर वज्रके द्वारा हजारों पर्वतोंके पाँख काट डाले। मुझको तुम्हारे पिताने इन्द्रसे छुड़वा दिया ॥ १४-१६ ॥

मारुतेन तदा वत्स प्रक्षिप्तो वरुणालये । राघवस्य मया साह्ये वर्तितव्यमरिंदम ॥१७॥
रामो धर्मभृतां श्रेष्ठो महेन्द्रसमविक्रमः । एतच्छ्रुत्वा मया तस्य मैनाकस्य महात्मनः ॥१८॥
कार्यमावेद्य च गिरेरुद्धतं वै मनो मम । तेन चाहमनुज्ञातो मैनाकेन महात्मना ॥१९॥
स चाप्यन्तर्हितः शैलो मानुषेण वपुष्मता । शरीरेण महाशैलः शैलेन च महोदधौ ॥२०॥
उत्तमं जवमास्थाय शेषमध्वानमास्थितः । ततोऽहं सुचिरं कालं जवेनाभ्यगमं पथि ॥२१॥
ततः पश्याम्यहं देवीं सुरसां नागमातरम् । समुद्रमध्ये सा देवी वचनं चेदमब्रवीत् ॥२२॥
मम भक्ष्यः प्रदिष्टस्त्वममरैर्हरिसत्तम । ततस्त्वां भक्षयिष्यामि विहितस्त्वं हि मे सुरैः ॥२३॥
एवमुक्तः सुरसया प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः । विवर्णवदनो भूत्वा वाक्यं चेदमुदीरयन् ॥२४॥
रामो दाशरथिः श्रीमान्प्रविष्टो दण्डकावनम् । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च परंतपः ॥२५॥
तस्य सीता हृता भार्या रावणेन दुरात्मना । तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् ॥२६॥
कर्तुमर्हसि रामस्य साहाय्यं विषये सति । अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा रामं चाक्लिष्टकारिणम् ॥२७॥
आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिशृणोमि ते । एवमुक्ता मया सा तु सुरसा कामरूपिणी ॥२८॥
अब्रवीन्नातिवर्तेत कश्चिदेष वरो मम । एवमुक्तः सुरसया दशयोजनमायतः ॥२९॥
ततोऽर्धगुणविस्तारो बभूवाहं क्षणेन तु । मत्प्रमाणाधिकं चैव व्यादितं तु मुखं तया ॥३०॥
तद्दृष्ट्वा व्यादितं त्वास्यं ह्रस्वं ह्यकरवं पुनः । तस्मिन्मुहूर्ते च पुनर्बभूवाङ्गुष्ठसंमितः ॥३१॥

उससमय वायुने मुझे समुद्रमें फेंक दिया । अतएव मुझे रामचंद्रकी सहायताके लिए तयार रहना चाहिए ॥ १७ ॥ रामचंद्र इन्द्रके समान विक्रमी और धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं । महात्मा मैनाककी यह बात सुनकर मैंने उन्हें काम बतलाया और मेरा मन जानेके लिए उत्साहित हुआ । महात्मा मैनाकसे आज्ञा पाकर मैं चला ॥ १८ ॥ १९ ॥ वह पर्वत भी मनुष्यशरीरसे लुप्त हो गया, परन्तु पर्वतके शरीरसे समुद्रतलपर वर्तमानही रहा ॥ २० ॥ बड़े वेगसे मैं बचे मार्गको तै करने लगा । उस मार्गमें बहुत देरतक वेगसे चलता रहा ॥ २१ ॥ तब मैंने नागोंकी माता सुरसा नामकी देवीको समुद्रमें देखा । वे मुझसे बोलीं ॥ २२ ॥ वानरश्रेष्ठ, तुमतो मेरे भोजनके लिए आये हो, इसलिए मैं तुमको खाऊँगी । देवताओंने ऐसाही निश्चय किया है ॥ २३ ॥ सुरसाके ऐसा कहने पर हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक मैं खड़ा हो गया । मेरा मुँह सूख गया । मैं उनसे बोला ॥ २४ ॥ दसरथके पुत्र राम, दंडक वनमें, भाई लक्ष्मण और सीताके साथ आये हैं ॥ २५ ॥ उनकी स्त्री सीताको दुरात्मा रावणने हर लिया है । रामकी आज्ञासे उन्हींके पास दूत होकर मैं जा रहा हूँ ॥ २६ ॥ अतएव देवि, रामचन्द्रके देशमें रहनेवाली तुम, उनकी सहायता करो । अथवा, सीताको तथा उत्तम कर्म करनेवाले रामचंद्रको देखकर मैं तुम्हारे मुँहमें आऊँगा, यह तुमसे मैं सच्ची प्रतिज्ञा कर रहा हूँ । मेरे ऐसा कहने पर कामरूपिणी सुरसा बोली—मेरा यह वर टल नहीं सकता । सुरसाके ऐसा कहनेके समय मेरा प्रमाण दस योजन था ॥ २७-२९ ॥ मैं उसी क्षण पाँच योजनका हो गया । सुरसाने मेरे प्रमाणसे अधिक मुँह फैलाया ॥३०॥ उसके फैले मुँहको देखकर मैंने अपना शरीर बहुतही छोटा कर लिया । उस समय मैं अँगूठे-

अभिपत्याशु तद्वक्त्रं निर्गतोऽहं ततः क्षणात्। अब्रवीत्सुरसा देवी स्वेन रूपेण मां पुनः ॥३२॥
अर्थसिद्धौ हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम्। समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ॥३३॥
सुखी भव महाबाहो प्रीतास्मि तव वानर। ततोऽहं साधुसाध्वीति सर्वभूतैः प्रशंसितः ॥३४॥
ततोऽन्तरिक्षं विपुलं प्लुतोऽहं गरुडो यथा। छाया मे निगृहीता च न च पश्यामि किंचन ॥३५॥
सोऽहं विगतवेगस्तु दिशो दश विलोकयन्। न किंचित्तत्र पश्यामि येन मे विहिता गतिः ॥३६॥
अथ मे बुद्धिरुत्पन्ना किंनाम गमने मम। ईदृशो विघ्न उत्पन्नो रूपमत्र न दृश्यते ॥३७॥
अधोभागे तु मे दृष्टिः शोचतः पातिता तदा। तत्राद्राक्षमहं भीमां राक्षसीं सलिलेशयाम् ॥३८॥
प्रहस्य च महानादमुक्तोऽहं भीमया तया। अवस्थितमसंभ्रान्तमिदं वाक्यमशोभनम् ॥३९॥
क्वासि गन्ता महाकाय क्षुधिताया ममेप्सितः। भक्षः प्रीणय मे देहं चिरमाहारवर्जितम् ॥४०॥
बाढमित्येव तां वाणीं प्रत्यगृह्णामहं ततः। आस्यप्रमाणादधिकं तस्याः कायमपूरयम् ॥४१॥
तस्याश्चास्यं महद्भीमं वर्धते मम भक्षणे। न तु मां सा नु बुबुधे मम वा विकृतं कृतम् ॥४२॥
ततोऽहं विपुलं रूपं संक्षिप्य निमिषान्तरात्। तस्या हृदयमादाय प्रपतामि नभस्थलम् ॥४३॥
सा विसृष्टभुजा भीमा पपात लवणाम्भसि। मया पर्वतसंकाशा निकृत्तहृदया सती ॥४४॥
शृणोमि खगतानां च वाचः सौम्या महात्मनाम्। राक्षसी सिंहिका भीमा क्षिप्रं हनुमता हता ॥४५॥

के बराबर हो गया ॥ ३१ ॥ मैं उसके मुँहमें घुसकर उसी समय बाहर निकल आया। देवी सुरसा अपने रूपसे पुनः मुझसे बोली ॥ ३२ ॥ कार्य सिद्ध करनेके लिए, सौम्य वानर, सुखपूर्वक जाओ। महात्मा रामचंद्रके साथ सीताको मिलाओ ॥ ३३ ॥ महाबाहो, सुखी होओ। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। उस समय सब प्राणियोंने साधु-साधु कहकर प्रशंसा की ॥ ३४ ॥ फिर विशाल अन्तरिक्षको गरुड़के समान मैं पार कर गया। उस समय मेरी छाया पकड़ गयी। पकड़नेवालेको मैंने नहीं देखा ॥ ३५ ॥ मेरा वेग रुक गया। मैं दसों दिशाओंमें देखने लगा; पर ऐसा किसीको नहीं देखा, जिसके कारण मेरी गति रुक गयी हो ॥ ३६ ॥ उस समय मैंने सोचा कि मेरे जानेमें ऐसा विघ्न क्यों उत्पन्न हुआ ? यहाँ कोई रूप भी तो नहीं दीख पड़ता ॥ ३७ ॥ सोचते समय मेरी दृष्टि नीचेकी ओर गयी। मैंने वहाँ जलमें पड़ी एक भयानक राक्षसी देखी ॥ ३८ ॥ हँसकर उस भयंकर राक्षसीने बड़ा गर्जन किया और निर्भय खड़े मुझसे ऐसा बोली ॥ ३९ ॥ हे महाशरीर, कहाँ जा रहे हो ? मैं भूखी हूँ। तुम मेरा प्रिय भोजन हो। बहुत दिनोंसे भूखी मेरी देहको प्रसन्न करो ॥ ४० ॥ मैंने 'हाँ' कहकर उसकी बात स्वीकार की और उसके मुँहसे बड़ा अपना शरीर बना दिया ॥ ४१ ॥ उसका भयानक मुँह मुझे खानेके लिए बढ़ने लगा। और उसने मेरा सामर्थ्य नहीं समझा। मेरे विशाल रूपको नहीं समझा ॥ ४२ ॥ अनन्तर निमेषमात्रमें अपने विशाल रूपको छोटा बनाकर और उसका कलेजा काटकर मैं आकाशमें उड़ गया ॥ ४३ ॥ वह भयंकर राक्षसी मेरे द्वारा बाहुके उखड़ जानेसे और हृदयके निकल जानेसे समुद्रके जलमें गिर पड़ी ॥ ४४ ॥ उस समय आकाशमें चलनेवाले महात्माओंकी यह मनोहर वाणी मैंने सुनी कि भयानक सिंहिका

तां हत्वा पुनरेवाहं कृत्यमात्ययिकं स्मरन्। गत्वा च महदध्वानं पश्यामि नगमण्डितम् ॥४६॥
दक्षिणं तीरमुदधेर्लङ्का यत्र गता पुरी। अस्तं दिनकरे याते रक्षसां निलयं पुरीम् ॥४७॥
प्रविष्टोऽहमविज्ञातो रक्षोभिर्भीमविक्रमैः। तत्र प्रविशतश्चापि कल्पान्तघनसमप्रभा ॥४८॥
अट्टहासं विमुञ्चन्ती नारी काप्युत्थिता पुरः। जिघांसन्तीं ततस्तां तु ज्वलदग्निशिरोरुहाम् ॥४९॥
सव्यमुष्टिप्रहारेण पराजित्य सुभैरवाम्। प्रदोषकाले प्रविशन्भीतयाहं तयोदितः ॥५०॥
अहं लंकापुरी वीर निर्जिता विक्रमेण ते। यस्मात्तस्माद्विजेतासि सर्वरक्षांस्यशेषतः ॥५१॥
तत्राहं सर्वरात्रं तु विचरञ्जनकात्मजाम्। रावणान्तःपुरगतो न चापश्यं सुमध्यमाम् ॥५२॥
ततः सीतामपश्यंस्तु रावणस्य निवेशने। शोकसागरमासाद्य न पारमुपलक्षये ॥५३॥
शोचता च मया दृष्टं प्राकारेणाभिसंवृतम्। काञ्चनेन विकृष्टेन गृहोपवनमुत्तमम् ॥५४॥
सप्राकारमवप्लुत्य पश्यामि बहुपादपम्। अशोकवनिकामध्ये शिंशपापादपो महान् ॥५५॥
तमारुह्य च पश्यामि काञ्चनं कदलीवनम्। अदूराच्छिंशपावृक्षात्पश्यामि वरवर्णिनीम् ॥५६॥
श्यामां कमलपत्राक्षीमुपवासकृशाननाम्। तदेकवासःसंवीतां रजोध्वस्तशिरोरुहाम् ॥५७॥
शोकसंतापदीनाङ्गीं सीतां भर्तृहिते स्थिताम्। राक्षसीभिर्विरूपाभिः क्रूराभिरभिसंवृताम् ॥५८॥
मांसशोणितभक्ष्याभिर्व्याघ्रीभिर्हरिणीं यथा। सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥५९॥

राक्षसीको हनुमानने शीघ्रही मार डाला ॥ ४५ ॥ उसको मारकर और अपने कार्यको—जिसमें विलंब हो गया—स्मरण करता हुआ, बहुत दूर चलकर, पर्वतोंसे युक्त समुद्रका दक्षिण तीर मैंने देखा, जहाँ लंका नगरी थी। सूर्यके अस्त होने पर राक्षसोंकी नगरीमें मैंने भीमपराक्रमी राक्षसोंसे छिपकर प्रवेश किया। प्रवेश करनेके समय प्रलयके मेघके समान कोई स्त्री, अट्टहास करती हुई, सामने खड़ी हुई। वह मारना चाहती थी। उसके माथेके बाल जलती आगके समान थे। उस भयानक राक्षसीको बायें मुक्केसे परास्त कर संध्याके समय उस नगरीमें मैंने प्रवेश किया। डरी हुई उस राक्षसीने कहा ॥ ४६-५० ॥ वीर, मैं लंकापुरी हूँ। मैं तुम्हारे पराक्रमसे परास्त हुई हूँ, अतएव तुम समस्त राक्षसोंको जीत सकते हो ॥ ५१ ॥ उस लंका पुरीमें समस्त रात रावणके महलमें जाकर मैं घूमता रहा पर सीताको नहीं देखा ॥ ५२ ॥ सीताको न देखनेसे मैं शोकसमुद्रमें डूब गया। पार पानेका कोई उपायही न दीख पड़ा ॥ ५३ ॥ विचार करते हुए मैंने चहारदीवारी से घिरा हुआ, जिस चहारदीवारीके ऊपरका भाग सोनेका बना हुआ था, एक उत्तम घरका बाग देखा ॥ ५४ ॥ चहारदीवारी पार करके मैंने अनेक वृक्षोंवाले उस बागमें एक बड़ा शिंशपा वृक्ष देखा ॥ ५५ ॥ उसपर चढ़कर मैंने सोनेका कदलीवन देखा और शिंशपा वृक्षके पासही सुन्दरी सीताको देखा ॥ ५६ ॥ वे कमलनयनी उपवासके कारण दुर्बल हो गयी थीं। एक वस्त्र पहने हुई थीं। सिरके बाल धूलसे भरे हुए थे ॥ ५७ ॥ वे शोकतापके कारण दीन हो गयी थीं। पतिके हितकी चिन्ता कर रही थीं और क्रूर तथा विरूप राक्षसियोंसे घिरी हुई थीं ॥ ५८ ॥ खून और मांस, खानेवाली राक्षसियोंसे वे घिरी थीं, जैसे बाघिनीसे हरिणी घिरी हो।

एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा । भूमिशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ॥६०॥
रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्ये कृतनिश्चया । कथंचिन्मृगशावाक्षी तूर्णमासादिता मया ॥६१॥
तां दृष्ट्वा तादृशीं नारीं रामपत्नीं यशस्विनीम् । तत्रैव शिंशपावृक्षे पश्यन्नहमवस्थितः ॥६२॥
ततो हलहलाशब्दं काञ्चीनूपुरमिश्रितम् । शृणोम्यधिकगम्भीरं रावणस्य निवेशने ॥६३॥
ततोऽहं परमोद्विग्नः स्वरूपं प्रत्यसंहरम् । अहं च शिंशपावृक्षे पक्षीव गहने स्थितः ॥६४॥
ततो रावणदाराश्च रावणश्च महाबलः । तं देशमनुसंप्राप्तो यत्र सीता व्यवस्थिता ॥६५॥
तं दृष्ट्वाथ वरारोहा सीता रक्षोगणेश्वरम् । संकुच्योरू स्तनौ पीनौ बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥६६॥
वित्रस्तां परमोद्विग्नां वीक्ष्यमाणामितस्ततः । त्राणं कंचिदपश्यन्तीं वेपमानां तपस्विनीम् ॥६७॥
तामुवाच दशग्रीवः सीतां परमदुःखिताम् । अवाक्शिराः प्रपतितो बहुमन्यस्व मामिति ॥६८॥
यदि चेत्त्वं तु मां दर्पान्नाभिनन्दसि गर्विते । द्विमासानन्तरं सीते पास्यामि रुधिरं तव ॥६९॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्य दुरात्मनः । उवाच परमक्रुद्धा सीता वचनमुत्तमम् ॥७०॥
राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः । इक्ष्वाकुवंशनाथस्य स्नुषां दशरथस्य च ॥७१॥
अवाच्यं वदतो जिह्वा कथं न पतिता तव । किंस्विद्वीर्यं तवानार्य यो मां भर्तुरसंनिधौ ॥७२॥
अपहृत्यागतः पाप तेनादृष्टो महात्मना । न त्वं रामस्य सदृशो दास्येऽप्यस्य न युज्यसे ॥७३॥

सीताको राक्षसियोंके बीचमें मैंने देखा । वे धमकायी जाती थीं ॥ ५६ ॥ पतिकी चिन्तामें पड़ी हुई सीता मस्तकपर एक वेणी धारण किये हुई, दीन, भूमिपर सोनेवाली और सूखे अंगवाली हो गयी थीं, जिस प्रकार जाड़ेके दिनमें कमलिनी ॥ ६० ॥ रावणके द्वारा जिसका मनोरथ कुचल दिया गया है; अतएव, जिसने मरनेका निश्चय कर लिया है, उस मृगशावाक्षी सीताको मैंने किसी प्रकार पाया ॥ ६१ ॥ यशस्विनी रामपत्नीको उस अवस्थामें देखकर मैं वहीं शिंशपावृक्ष पर बैठा उन्हें देखने लगा ॥ ६२ ॥ अनन्तर करधनी और नूपुरके शब्दोंसे युक्त, अधिक गंभीर, रावणके घरमें, हलहला शब्द मैंने सुना ॥ ६३ ॥ उससे मैं बहुत उद्विग्न हुआ और अपना रूप छोटा बना लिया। मैं शिंशपा वृक्ष पर पक्षीके समान पत्तोंसे छिपे स्थानमें बैठ गया ॥६४॥ अनन्तर रावणकी स्त्रियाँ और महाबली रावण, जहाँ सीता थीं उस स्थान पर, आये ॥६५॥ सुन्दरी सीता उस राक्षसोंके स्वामीको देखकर दोनों जंघे और बड़े स्तनोंको समेट कर और हाथोंसे छिपाकर बैठ गयीं ॥६६॥ डरी हुई, घबड़ाई हुई, इधर उधर देखती हुई, काँपती हुई और किसीको रक्षक नहीं पाती हुई, बेचारी परम दुःखिता सीतासे दशग्रीव पृथ्वीपर सिर झुकाकर बोला कि तुम मेरा अधिक आदर करो ॥ ६७-६८ ॥ यदि अहंकारसे तुम मेरा अभिनन्दन न करोगी अर्थात् मेरी बातें न मानोगी तो दो महीनेके बाद तुम्हारा रुधिर मैं पी लूँगा ॥ ६६ ॥ दुरात्मा रावणके ये वचन सुनकर सीता बहुत क्रुद्ध होकर उत्तम वचन बोलीं ॥७०॥ राक्षसाधम, अतुल तेजस्वी रामचंद्रकी भार्या, इक्ष्वाकु-वंशनाथ राजा दशरथकी पुत्रवधूको न कहने योग्य बातें कहते हुए तुम्हारी जीभ गिर न गयी! अनार्य, तुम्हारा क्या पराक्रम है जो तुमने उस महात्मासे छिपकर मेरा हरण किया है? तुम

अजेयः सत्यवाक्शूरो रणश्लाघी च राघवः । जानक्या परुषं वाक्यमेवमुक्तो दशाननः ॥७४॥
जज्वाल सहसा कोपाच्चितास्थ इव पावकः । विवृत्य नयने क्रूरे मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम् ॥७५॥
मैथिलीं हन्तुमारब्धः स्त्रीभिर्हाहाकृतं तदा । स्त्रीणां मध्यात्समुत्पत्य तस्य भार्या दुरात्मनः ॥७६॥
वरा मन्दोदरी नाम तया स प्रतिषेधितः । उक्तश्च मधुरां वाणीं तया स मदनार्दितः ॥७७॥
सीतया तव किं कार्यं महेन्द्रसमविक्रम । मया सह रमस्वाद्य मद्विशिष्टा न जानकी ॥७८॥
देवगन्धर्वकन्याभिर्यक्षकन्याभिरेव च । सार्धं प्रभो रमस्वेति सीतया किं करिष्यसि ॥७९॥
ततस्ताभिः समेताभिर्नारीभिः स महाबलः । उत्थाप्य सहसा नीतो भवनं स्वं निशाचरः ॥८०॥
याते तस्मिन्दशग्रीवे राक्षस्यो विकृताननाः । सीतां निर्भर्त्सयामासुर्वाक्यैः क्रूरैः सुदारुणैः ॥८१॥
तृणवद्भाषितं तासां गणयामास जानकी । गर्जितं च तथा तासां सीतां प्राप्य निरर्थकम् ॥८२॥
वृथा गर्जितनिश्चेष्टा राक्षस्यः पिशिताशनाः । रावणाय शशंसुस्ताः सीताध्यवसितं महत् ॥८३॥
ततस्ताः सहिताः सर्वा विहताशा निरुद्यमाः । परिक्लिश्य समस्तास्ता निद्रावशमुपागताः ॥८४॥
तासु चैव प्रसुप्तासु सीता भर्तृहिते रता । विलप्य करुणं दीना प्रशुशोच सुदुःखिता ॥८५॥
तासां मध्यात्समुत्थाय त्रिजटा वाक्यमब्रवीत् । आत्मानं खादत क्षिप्रं न सीतामसितेक्षणाम् ॥८६॥
जनकस्यात्मजां साध्वीं स्नुषां दशरथस्य च । स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः ॥८७॥

रामके योग्य नहीं हो। तुम उनके दास होने योग्यभी नहीं हो ॥ ७१-७३ ॥ अजेय, सत्यवादी, शूर, युद्ध चाहनेवाले रामचंद्र हैं। जानकीके ऐसा कठोर कहनेपर दशानन सहसा क्रोधसे जल गया, जैसे चिताकी आग जलती है। क्रूर आँखें तरेर कर दाहिनी मुट्ठी उठाकर वह सीताको मारनेके लिए चला। उस समय स्त्रियोंने हा हा किया। उन स्त्रियोंके बीचसे उठकर दुरात्मा रावणकी स्त्री मन्दोदरीने उसे रोका और कामपीड़ित रावणसे वह यह मधुर वाणी बोली ॥ ७४-७७ ॥ हे इन्द्रतुल्यपराक्रम, सीतासे तुम्हें क्या काम है ? तुम मेरे साथ रमण करो। सीता मुझसे अच्छी नहीं है ॥ ७८ ॥ देव, गन्धर्व, यक्षकी कन्याओंके साथ, प्रभो, आप रमण करें। सीतासे आपको क्या काम है ? ॥ ७९ ॥ वे सब स्त्रियाँ मिलकर महाबली राक्षस रावणको उठाकर घरमें ले गयीं ॥ ८० ॥ दशाननके चले जाने पर विकृत मुँहवाली राक्षसियाँ क्रूर और कठोर वचनोंके द्वारा सीताको डाँटने डपटने लगीं ॥ ८१ ॥ सीता उनके वचनोंको तृणके समान समझती थी और उनके गर्जन सीताके सामने निरर्थक हो जाते थे ॥ ८२ ॥ गर्जन करनेसे कोई फल न देख कर माँस खानेवाली राक्षसियाँ रावणके पास गयीं और सीताका निश्चय कि भलेही मैं मर जाऊँ, पर रावणको स्वीकार न करूँगी, उन्होंने कह सुनाया ॥ ८३ ॥ अनन्तर, आशा भंग होनेके कारण निरुद्यम वे सब राक्षसियाँ सो गयीं ॥ ८४ ॥ उनके सो जाने पर पतिपरायणा सीता दयनीय विलाप करके और दुःखित होकर शोक करने लगीं ॥ ८५ ॥ उन राक्षसियोंके बीचसे उठकर त्रिजटा नामकी राक्षसी बोली—तुमलोग अपनेको खाओ, असिताक्षी सीताको नहीं ॥ ८६ ॥ यह साध्वी, जनककी कन्या और दशरथकी पुत्रवधू है। आज मैंने भयानक, रोंगटे खड़े करनेवाला

रक्षसां च विनाशाय भर्तुरस्या जयाय च । अलमस्मान्परित्रातुं राघवाद्राक्षसीगणम् ॥८८॥
अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते । यदि ह्येवंविधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते ॥८९॥
सा दुःखैर्विविधैर्मुक्ता सुखमाप्नोत्यनुत्तमम् । प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ॥९०॥
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् । ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता ॥९१॥
अवोचद्यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः । तां चाहं तादृशीं दृष्ट्वा सीताया दारुणां दशाम् ॥९२॥
चिन्तयामास विश्रान्तो न च मे निर्वृतं मनः । संभाषणार्थे च मया जानक्याश्चिन्तितो विधिः ॥९३॥
इक्ष्वाकुकुलवंशस्तु स्तुतो मम पुरस्कृतः । श्रुत्वा तु गदितां वाचं राजर्षिगणभूषिताम् ॥९४॥
प्रत्यभाषत मां देवी बाष्पैः पिहितलोचना । कस्त्वं केन कथं चेह प्राप्तो वानरपुंगव ॥९५॥
का च रामेण ते प्रीतिस्तन्मे शंसितुमर्हसि । तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा अहमप्यब्रुवं वचः ॥९६॥
देवि रामस्य भर्तुस्ते सहायो भीमविक्रमः । सुग्रीवो नाम विक्रान्तो वानरेन्द्रो महाबलः ॥९७॥
तस्य मां विद्धि भृत्यं त्वं हनूमन्तमिहागतम् । भर्त्रा संप्रहितस्तुभ्यं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥९८॥
इदं तु पुरुषव्याघ्रः श्रीमान्दाशरथिः स्वयम् । अङ्गुलीयमभिज्ञानमदात्तुभ्यं यशस्विनि ॥९९॥
तदिच्छामि त्वयाज्ञप्तं देवि किं करवाण्यहम् । रामलक्ष्मणयोः पार्श्वं नयामि त्वां किमुत्तरम् ॥१००॥
एतच्छ्रुत्वा विदित्वा च सीता जनकनन्दिनी । आह रावणमुत्पाट्य राघवो मां नयत्विति ॥१०१॥
प्रणम्य शिरसा देवीमहमार्यामनिन्दिताम् । राघवस्य मनोह्लादमभिज्ञानमयाचिषम् ॥१०२॥

स्वप्न देखा है ॥ ८७ ॥ राक्षसोंके नाश और इसके पतिकी विजयका वह स्वप्न है । रामचंद्रसे राक्षसियोंकी रक्षा करनेके लिए यह समर्थ है ॥ ८८ ॥ हम सब लोग सीताकी प्रार्थना करें, यह हमको अच्छा मालूम होता है । यदि किसी दुःखिनीके संबन्धमें ऐसा स्वप्न दिखाई पड़े तो उसके दुःखोंका शीघ्र अन्त होता है और वह सुख पाती है । जनकपुत्री सीता प्रणाम करनेसे ही प्रसन्न हो जाती है ॥ ८९-९० ॥ यह राक्षसियोंकी बड़े भारी भयसे रक्षा कर सकती है । पतिकी विजयकी बात सुनकर सीता प्रसन्न और लज्जित हुई । उन्होंने कहा कि यदि तुम्हारी बात सच हुई तो मैं तुमलोगोंकी रक्षा करूँगी । सीताकी वैसी दुःखमयी अवस्था देखकर मैं बैठकर विचार करने लगा, पर, मेरा मन तृप्त न हुआ । जानकीसे बातें करनेका उपाय मैंने निकाल लिया ॥ ९१-९३ ॥ प्रारंभमें मैंने इक्ष्वाकुवंशकी स्तुति की । राजर्षियोंके संबन्धकी मेरी बात सुनकर देवी सीता आँखोंमें आँसू भरकर बोलीं—तुम कौन हो ? वानरश्रेष्ठ, किसके भेजे हुए हो और कैसे यहाँ आये हो ? ॥ ९४-९५ ॥ रामचंद्रके साथ तुम्हारा कैसे प्रेम हुआ, यह मुझसे कहो । सीताके वचन सुनकर मैं भी कहने लगा ॥ ९६ ॥ देवि, तुम्हारे पतिके सहायक, पराक्रमी, महाबली, वानरेन्द्र सुग्रीव हैं ॥ ९७ ॥ उनका भृत्य हनुमान मैं, अक्लिष्टकर्मा रामके भेजनेसे, यहाँ आया हूँ ॥ ९८ ॥ पुरुषश्रेष्ठ दाशरथि रामचन्द्रने तुम्हारे लिए चिन्ह यह अँगूठी दी है ॥ ९९ ॥ देवि, मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारी आज्ञासे क्या करूँ ? राम और लक्ष्मणके पास तुम्हारी ओरसे क्या उत्तर ले जाऊँ ? ॥ १०० ॥ जनकपुत्री सीता यह सुनकर और समझकर बोलीं—रावणको उखाड़कर रामचन्द्र मुझे ले जावें ॥ १०१ ॥ अनिन्दिता सीताको प्रणाम कर

अथ मामब्रवीत्सीता गृह्यतामयमुत्तमः । मणिर्येन महाबाहू रामस्त्वां बहु मन्यते ॥१०३॥
इत्युक्त्वा तु वरारोहा मणिप्रवरमुत्तमम् । प्रायच्छत्परमोद्विग्ना वाचा मां संदिदेश ह ॥१०४॥
ततस्तस्यै प्रणम्याहं राजपुत्र्यै समाहितः । प्रदक्षिणं परिक्रामामिहाभ्युद्गतमानसः ॥१०५॥
उत्तरं पुनरेवाह निश्चित्य मनसा तदा । हनूमन्मम वृत्तान्तं वक्तुमर्हसि राघवे ॥१०६॥
यथा श्रुत्वैव नचिरात्तावुभौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवसहितौ वीरावुपेयातां तथा कुरु ॥१०७॥
यदन्यथा भवेदेतद्द्वौ मासौ जीवितं मम । न मां द्रक्ष्यति काकुत्स्थो म्रिये साहमनाथवत् ॥१०८॥
तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं क्रोधो मामभ्यवर्तत । उत्तरं च मया दृष्टं कार्यशेषमनन्तरम् ॥१०९॥
ततोऽवर्धत मे कायस्तदा पर्वतसंनिभः । युद्धाकाङ्क्षी वनं तस्य विनाशयितुमारभे ॥११०॥
तद्भग्नं वनखण्डं तु भ्रान्तस्तत्रमृगद्विजम् । प्रतिबुद्ध्य निरीक्षन्ते राक्षस्यो विकृताननाः॥१११॥
मां च दृष्ट्वा वने तस्मिन्समागम्य ततस्ततः । ताः समभ्यागताः क्षिप्रं रावणायाचचक्षिरे॥११२॥
राजन्वनमिदं दुर्गं तव भग्नं दुरात्मना । वानरेण ह्यविज्ञाय तव वीर्यं महाबल ॥११३॥
तस्य दुर्बुद्धिता राजंस्तव विप्रियकारिणः । वधमाज्ञापय क्षिप्रं यथासौ न पुनर्व्रजेत् ॥११४॥
तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रेण विसृष्टा बहुदुर्जयाः । राक्षसाः किंकरा नाम रावणस्य मनोऽनुगाः॥११५॥
तेषामशीतिसाहस्रं शूलमुद्गरपाणिनाम् । मया तस्मिन्वनोद्देशे परिघेण निषूदितम् ॥११६॥

रामचन्द्रको प्रसन्न करनेके लिये मैंने कोई चिन्ह माँगा ॥ १०२ ॥ सीताने मुझसे कहा कि यह उत्तम मणि लो, जिससे रामचन्द्रका तुमपर विश्वास हो । ऐसा कहकर सुन्दरी सीताने वह श्रेष्ठ मणि मुझे दिया और उन्होंने कहनेके लिए शीघ्रतापूर्वक मुझसे सन्देश कहा ॥१०३-१०४॥ सावधान होकर राजपुत्री सीताको प्रणाम कर, मैंने उनकी प्रदक्षिणा की, यहाँ आनेके लिए मेरा मन उत्सुक था ॥ १०५ ॥ इसके बाद मनमें सोचकर सीताने पुनः कहा—हनुमान, मेरी बातें रामचन्द्रसे कहना ॥ १०६ ॥ जिसको सुनते ही, शीघ्रही सुग्रीवके साथ वीर राम और लक्ष्मण यहाँ आ जायँ वैसा करो ॥ १०७ ॥ यदि इसके विपरीत हुआ तो इन दो महीनों ही तक मैं जीवित रह सकती हूँ । उसके बाद रामचन्द्र मुझे न देख पावेंगे । मैं अनाथाके समान मर जाऊँगी ॥ १०८ ॥ सीताके ये दयनीय वचन सुनकर मुझे बहुत क्रोध आया और मैं आगेके बचे कार्यका विचार करने लगा ॥ १०९ ॥ उस समय मेरा शरीर बढ़कर पर्वतके समान होगया । मैं युद्धकी इच्छासे उस वनका नाश करने लगा ॥११०॥ वह वन-समूह मैंने नष्ट कर दिया । पशु पक्षी व्याकुल हुए, विकृतमुखी राक्षसियाँ जागकर देखने लगीं ॥१११॥ उस वनमें मुझको देखकर वे राक्षसियाँ इधर-उधरसे आकर शीघ्रही एकत्र होकर रावणसे कहने गयीं ॥ ११२ ॥ राजन्, यह आपका वन, आपका किला, दुरात्मा वानरने, आपके पराक्रमको न जानकर, उजाड़ डाला है ॥११३॥ आपका अप्रिय करनेवाला वह वानर दुर्बुद्धि है । उसके वधकी आप शीघ्र आज्ञा दें, जिससे वह पुनः जीता लौट न जाय ॥ ११४ ॥ यह सुनकर रावणने दुर्जय अनेक किंकर नामके राक्षस भेजे, जो रावणके आज्ञानुवर्ती थे ॥ ११५ ॥ अस्सी हजार वे शूल,

तेषां तु हतशिष्टा ये ते गता लघुविक्रमाः । निहतं च मया सैन्यं रावणायाचचक्षिरे ॥११७॥
ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना चैत्यप्रासादमुत्तमम् । तत्रस्थान्राक्षसान्हत्वा शतं स्तम्भेन वै पुनः ॥११८॥
ललामभूतो लङ्काया मया विध्वंसितो रुषा । ततः प्रहस्तस्य सुतं जम्बुमालिनमादिशत् ॥११९॥
राक्षसैर्बहुभिः सार्धं घोररूपैर्भयानकैः । तमहं बलसंपन्नं राक्षसं रणकोविदम् ॥१२०॥
परिघेणातिघोरेण सूदयामि सहानुगम् । तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्तु मन्त्रिपुत्रान्महाबलान् ॥१२१॥
पदातिबलसंपन्नान्प्रेषयामास रावणः । परिघेणैव तान्सर्वान्नयामि यमसादनम् ॥१२२॥
मन्त्रिपुत्रान्हताञ्श्रुत्वा समरे लघुविक्रमान् । पञ्च सेनाग्रगाञ्शूरान्प्रेषयामास रावणः ॥१२३॥
तानहं सहसैन्यान्वै सर्वानेवाभ्यसूदयम् । ततः पुनर्दशग्रीवः पुत्रमक्षं महाबलम् ॥१२४॥
बहुभी राक्षसैः सार्धं प्रेषयामास संयुगे । तं तु मन्दोदरीपुत्रं कुमारं रणपण्डितम् ॥१२५॥
सहसा खं समुद्यन्तं पादयोश्च गृहीतवान् । तमासीनं शतगुणं भ्रामयित्वा व्यपेषयम् ॥१२६॥
तमक्षमागतं भग्नं निशम्य स दशाननः । ततश्चेन्द्रजितं नाम द्वितीयं रावणः सुतम् ॥१२७॥
व्यादिदेश सुसंक्रुद्धो बलिनं युद्धदुर्मदम् । तच्चाप्यहं बलं सर्वं तं च राक्षसपुंगवम् ॥१२८॥
नष्टौजसं रणे कृत्वा परं हर्षमुपागतः । महतापि महाबाहुः प्रत्ययेन महाबलः ॥१२९॥
प्रहितो रावणेनैष सह वीरैर्मदोद्धतैः । सोऽविषह्यं हि मां बुद्ध्वा स्वसैन्यं चावमर्दितम् ॥१३०॥
ब्रह्मणोऽस्त्रेण स तु मां प्रबद्ध्वा चातिवेगितः । रज्जुभिश्चापि बध्नन्ति ततो मां तत्र राक्षसाः ॥१३१॥

मुद्गर आदि लेकर उस वनमें आये । मैंने परिघसे उन सबको मार डाला ॥ ११६ ॥ जो दुर्बल बच गये थे, वे रावणके यहाँ गये और मेरे द्वारा राक्षसोंके मरनेकी बात उन्होंने कही ॥ ११७ ॥ फिर मैंने निश्चिय करके वहाँके देवमंदिरको, जिसमें सौ खंभे लगे थे और जो लंकामें सर्वश्रेष्ठ भवन था, तोड़ डाला । तब रावणने प्रहस्तपुत्र जम्बुमालीको आज्ञा दी ॥ ११८–११९ ॥ भयानक रूपवाले अनेक भयंकर राक्षसोंके साथ वह आया । रण-दक्ष, बली, उस राक्षसको मैंने भयानक परिघके द्वारा मार डाला और उसकी सेनाको भी । यह सुनकर रावणने महाबली मंत्रिपुत्रोंको बड़ी सेनाके साथ भेजा । उन सबको भी मैंने परिघसे ही यमलोक भेज दिया ॥ १२०—१२२ ॥ मन्त्रिपुत्रोंके मरनेकी खबर सुनकर शीघ्र चढ़ाई करनेवाले पाँच सेनापतियोंको रावणने उस समय भेजा ॥ १२३ ॥ उन सबको मैंने शीघ्रही मार डाला । फिर रावणने अपने पुत्र महाबली अक्षकुमारको भेजा । यह मन्दोदरीका पुत्र, रणविशारद, कुमार अनेक राक्षसोंके साथ आया ॥ १२४—१२५ ॥ आकाशमें उठते हुए उसके पैर मैंने पकड़ लिये और उसको सैकड़ों बार घुमाकर मार डाला ॥ १२६ ॥ अक्षकुमारके मरनेकी खबर सुनकर दशानन रावणने अपने दूसरे पुत्र इन्द्रजित्‌को भेजा । क्रोध करके, युद्ध-दुर्मद, बली इन्द्रजित्‌को रावणने जानेकी आज्ञा दी । उसकी सेनाको और उस राक्षसप्रवरको मैंने युद्धमें हरा दिया और मैं बहुत प्रसन्न हुआ । बड़े विश्वाससे महाबाहु, महाबली इस इन्द्रजित्‌को मदोद्धत वीरोंके साथ रावणने भेजा था । उसने मुझको असहनीय समझकर तथा अपनी सेनाको परास्त देखकर ब्रह्मास्त्रसे शीघ्रतापूर्वक मुझे बाँध लिया । अनन्तर अन्य राक्षस मुझे रस्सियोंसे बाँधने लगे ॥ १२७—१३१ ॥ वे मुझे लेकर

रावणस्य समीपं च गृहीत्वा मामुपागमन् । दृष्ट्वा संभाषितश्चाहं रावणेन दुरात्मना ॥१३२॥
पृष्टश्च लङ्कागमनं राक्षसानां च तं वधम् । तत्सर्वं च रणे तत्र सीतार्थमुपजल्पितम् ॥१३३॥
तस्यास्तु दर्शनाकाङ्क्षी प्राप्तस्त्वद्भवनं विभो । मारुतस्यौरसः पुत्रो वानरो हनुमानहम् ॥१३४॥
रामदूतं च मां विद्धि सुग्रीवसचिवं कपिम् । सोऽहं दौत्येन रामस्य त्वत्सकाशमिहागतः ॥१३५॥
शृणु चापि समादेशं यदहं प्रब्रवीमि ते । राक्षसेश हरीशस्त्वां वाक्यमाह समाहितम् ॥१३६॥
सुग्रीवश्च महाभाग स त्वां कौशलमब्रवीत् । धर्मार्थकामसहितं हितं पथ्यमुवाच ह ॥१३७॥
वसतो ऋष्यमूके मे पर्वते विपुलद्रुमे । राघवो रणविक्रान्तो मित्रत्वं समुपागतः ॥१३८॥
तेन मे कथितं राजन्भार्या मे रक्षसा हृता । तत्र साहाय्यहेतोर्मे समयं कर्तुमर्हसि ॥१३९॥
वालिना हृतराज्येन सुग्रीवेण सह प्रभुः । चक्रेऽग्निसाक्षिकं सख्यं राघवः सहलक्ष्मणः ॥१४०॥
तेन वालिनमाहत्य शरेणैकेन संयुगे । वानराणां महाराजः कृतः संप्लवतां प्रभुः ॥१४१॥
तस्य साहाय्यमस्माभिः कार्यं सर्वात्मना त्विह । तेन प्रस्थापितस्तुभ्यं समीपमिह धर्मतः ॥१४२॥
क्षिप्रमानीयतां सीता दीयतां राघवस्य च । यावन्न हरयो वीरा विधमन्ति बलं तव ॥१४३॥
वानराणां प्रभावोऽयं न केन विदितः पुरा । देवतानां सकाशं च ये गच्छन्ति निमन्त्रिताः ॥१४४॥
इति वानरराजस्त्वामाहेत्यभिहितो मया । मामैक्षत ततो रुष्टश्चक्षुषा प्रदहन्निव ॥१४५॥
तेन वध्योऽहमाज्ञप्तो रक्षसा रौद्रकर्मणा । मत्प्रभावमविज्ञाय रावणेन दुरात्मना ॥१४६॥

रावणके पास गये । मुझे देखकर दुरात्मा रावण बोला ॥१३२॥ लंकामें आनेका कारण, राक्षसोंके मारनेका कारण, उसने पूछा। मैंने उन सबोंका कारण सीताको बतलाया (सीताही कारण है) ॥१३३॥ उसी सीताके दर्शनके लिए मैं आपके यहाँ आया हूँ । मैं वायुका पुत्र हूँ । मेरा नाम हनुमान है ॥ १३४ ॥ मैं सुग्रीवका सचिव, रामका दूत, वानर हूँ । और रामचन्द्रका दूत बनकर तुम्हारे यहाँ आया हूँ ॥ १३५ ॥ हे राक्षसेश, जो मैं कहता हूँ वह सन्देश सुनो, वानरेन्द्रने जो तुम्हारे लिए हितकारी वचन कहे हैं ॥ १३६ ॥ महाभाग रावण, सुग्रीवने तुम्हारी कुशल पूछकर धर्म, अर्थ और काम युक्त हितकारी वचन कहे हैं ॥ १३७ ॥ अनेक वृक्षोंवाले ऋष्यमूकमें रहते समय, रामचन्द्र मेरे मित्र बन गये हैं ॥ १३८ ॥ उन्होंने मुझसे कहा कि राजन्, मेरी स्त्रीको राक्षसने हर लिया है । इस काममें मेरी सहायता करनेकी आप मुझसे प्रतिज्ञा करें ॥ १३९ ॥ राम और लक्ष्मणने अग्निको साक्षी बनाकर उस सुग्रीवसे मैत्री की, जिनका राज्य वालिने ले लिया था ॥१४०॥ युद्धमें रामचन्द्रने एक ही बाणसे वालिको मारकर वानरोंका अधिपति सुग्रीवको बनाया ॥१४१॥ इससे रामचन्द्रके कार्यमें भी सब प्रकारसे सहायता करनी चाहिए, यह समझकर सुग्रीवने तुम्हारे पास मुझको दूत बनाकर भेजा है ॥ १४२ ॥ सीताको शीघ्र ले आओ और रामचन्द्रको दे दो, जब तक वीर वानर तुम्हारी सेनाको नाश न करें ॥ ४३ ॥ वानरोंका यह प्रभाव पहले किसीको मालूम नहीं था । ये वानर देवताओंके द्वारा निमंत्रित होकर उनके पास जाते हैं ॥१४४॥ यह वानरराजने तुमसे कहनेके लिए कहा है—मैंने रावणसे ऐसा कहा । उसने मुझे क्रोध करके आँखोंसे जलाते हुएके समान देखा ॥ १४५ ॥ उस क्रूर राक्षसने मेरे वधकी आज्ञा दी । दुरात्मा

ततो विभीषणो नाम तस्य भ्राता महामतिः । तेन राक्षसराजश्च याचितो मम कारणात् ॥१४७॥
नैवं राक्षसशार्दूल त्यज्यतामेष निश्चयः । राजशास्त्रव्यपेतो हि मार्गः संलक्ष्यते त्वया ॥१४८॥
दूतवध्या न दृष्टा हि राजशास्त्रेषु राक्षस । दूतेन वेदितव्यं च यथाभिहितवादिना ॥१४९॥
सुमहत्यपराधेऽपि दूतस्यातुलविक्रम । विरूपकरणं दृष्टं न वधोऽस्ति हि शास्त्रतः ॥१५०॥
विभीषणेनैवमुक्तो रावणः संदिदेश तान । राक्षसानेतदेवास्य लाङ्गूलं दह्यतामिति ॥१५१॥
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मम पुच्छं समन्ततः । वेष्टितं शणवल्कैश्च पट्टैः कार्पासकैस्तथा ॥१५२॥
राक्षसाः सिद्धसंनाहास्ततस्ते चण्डविक्रमाः । तदादीप्यन्त मे पुच्छं हनन्तः काष्ठमुष्टिभिः ॥१५३॥
बद्धस्य बहुभिः पाशैर्यन्त्रितस्य च राक्षसैः । न मे पीडा भवेत्काचिद्दिदृक्षोर्नगरीं दिवा ॥१५४॥
ततस्ते राक्षसाः शूरा बद्धं मामग्निसंवृतम । अघोषयन्राजमार्गे नगरद्वारमागताः ॥१५५॥
ततोऽहं सुमहद्रूपं संक्षिप्य पुनरात्मनः । विमोचयित्वा तं बन्धं प्रकृतिस्थः स्थितः पुनः ॥१५६॥
आयसं परिघं गृह्य तानि रक्षांस्यसूदयम । ततस्तन्नगरद्वारं वेगेन प्लुतवानहम ॥१५७॥
पुच्छेन च प्रदीप्तेन तां पुरीं साट्टगोपुराम । दहाम्यहमसंभ्रान्तो युगान्ताग्निरिव प्रजाः ॥१५८॥
विनष्टा जानकी व्यक्तं न ह्यदग्धः प्रदृश्यते । लङ्कायाःकश्चिदुद्देशः सर्वा भस्मीकृता पुरी ॥१५९॥
दहता च मया लङ्कां दग्धा सीता न संशयः । रामस्य च महत्कार्यं मयेदं विफलीकृतम ॥१६०॥

रावणको मेरा प्रभाव मालूम नहीं था ॥ १४६ ॥ तब उसके भाई बुद्धिमान विभीषणने मेरे लिए रावणसे प्रार्थना की ॥ १४७ ॥ यह ठीक नहीं है । राक्षसश्रेष्ठ, आप अपना यह निश्चय छोड़ दें । आपका यह निश्चय राजनीतिशास्त्रके विरुद्ध है ॥ १४८ ॥ राजनीतिशास्त्रोंमें दूतका वध नहीं लिखा है । दूतको अपने स्वामीका सन्देश सुनानेका अधिकार है ॥ १४९ ॥ हे अतुलविक्रम, बड़े अपराधोंमें भी अंगभंग कर देनाही इनके लिए शास्त्रोंने दंड कहा है ॥ १५० ॥ विभीषणके ऐसा कहने पर रावणने उन राक्षसोंको आज्ञा दी कि इसकी पूँछ जला दो ॥ १५१ ॥ रावणकी आज्ञा सुनकर राक्षसोंने मेरी पूँछ सन, वृक्षोंकी छाल, रेशमी और सूती वस्त्रोंसे खूब लपेटी ॥१५२॥ प्रचण्डविक्रम राक्षसोंने कसकर मुझे बाँधा और काठके समान कठोर मुक्कोंसे मुझे मारते हुए उनलोगोंने मेरी पूँछमें आग लगादी । मैं दिनमें लंकानगरी देखना चाहता था । अतएव राक्षसोंके द्वारा बाँधे जाने पर तथा पाशोंके द्वारा जकड़े जाने पर भी मुझे कुछ पीड़ा न हुई । इस प्रकार मुझे बांधकर और पूँछमें आग लगाकर सड़कों पर घुमाते हुए वे नगर-द्वारपर आये ॥१५३-१५५॥ मैंने उस समय अपना रूप छोटा बना लिया और उन बन्धनोंको हटा लिया । स्वस्थ होकर मैं बैठ गया ॥ १५६ ॥ पुनः उस नगरद्वारपर मैं चढ़ गया और लोहेका परिघ लेकर उन राक्षसोंको मैंने मार गिराया ॥ १५७ ॥ पूँछमें आग लगायी जाने पर अटारियों, और नगरद्वारके साथ उस नगरीको, बिना किसी घबराहटके मैंने जला दिया, जिस प्रकार प्रलयकालकी आग प्रजाको जलाती है ॥ १५८ ॥ मैंने निश्चय जानकीको जला दिया, लंकाका ऐसा कोई स्थान नहीं है, जो जलनेसे बच गया हो, मैंने समूची नगरी जलादी, ॥ १५९ ॥ लंका जलाते हुए मैंने सीताको भी जला दिया और इस प्रकार मैंने रामचन्द्रका बड़ाभारी कार्य नष्ट कर डाला ॥१६०॥—इस प्रकारका

इति शोकसमाविष्टश्चिन्तामहमुपागतः। ततोऽहं वाचमश्रौषं चारणानां शुभाक्षराम् ॥१६१॥
जानकी न च दग्धेति विस्मयोदन्तभाषिणाम्। ततो मे बुद्धिरुत्पन्ना श्रुत्वा तामद्भुतां गिरम् ॥१६२॥
अदग्धा जानकीत्येव निमित्तैश्चोपलक्षितम्। दीप्यमाने तु लाङ्गूले न मां दहति पावकः ॥१६३॥
हृदयं च प्रहृष्टं मे वाताः सुरभिगन्धिनः। तैर्निमित्तैश्च दृष्टार्थैः कारणैश्च महागुणैः ॥१६४॥
ऋषिवाक्यैश्च दृष्टार्थैरभवं हृष्टमानसः। पुनर्दृष्ट्वा च वैदेहीं विसृष्टश्च तया पुनः ॥१६५॥
ततः पर्वतमासाद्य तत्रारिष्टमहं पुनः। प्रतिप्लवनमारेभे युष्मद्दर्शनकाङ्क्षया ॥१६६॥
ततः श्वसनचन्द्रार्कसिद्धगन्धर्वसेवितम्। पन्थानमहमाक्रम्य भवतो दृष्टवानिह ॥१६७॥
राघवस्य प्रसादेन भवतां चैव तेजसा। सुग्रीवस्य च कार्यार्थं मया सर्वमनुष्ठितम् ॥१६८॥
एतत्सर्वं मया तत्र यथावदुपपादितम्। तत्र यन्न कृतं शेषं तत्सर्वं क्रियतामिति ॥१६९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे ऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥५८॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९

एतदाख्याय तत्सर्वं हनूमान्मारुतात्मजः। भूयः समुपचक्राम वचनं वक्तुमुत्तरम् ॥ १ ॥
सफलो राघवोद्योगः सुग्रीवस्य च संभ्रमः। शीलमासाद्य सीताया मम च प्रीणितं मनः ॥ २ ॥

विचार आनेसे मुझे बड़ा शोक हुआ। उसी समय चारणोंके शुभ वचन मैंने सुने, जो विस्मित होकर कह रहे थे कि जानकी नहीं जली। उनके इस अद्भुत वचनके सुननेसे मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ ॥ १६१-१६२ ॥ लक्षणोंसे भी मालूम होता है कि जानकी नहीं जली हैं, क्योंकि मेरी पूँछमें आग लगने पर भी मैं नहीं जला। मेरा हृदय प्रसन्न है। हवा भी सुगन्धि-युक्त बह रही है। इन निमित्तोंसे, सफल और गुणवान् कारणोंसे, ऋषियोंके अनुभूत वाक्योंसे मैं प्रसन्न होगया। पुनः मैंने सीताको देखा और उनसे विदा हुआ ॥ १६३-१६५ ॥ अनन्तर, अरिष्ट पर्वत पर चढ़कर आप लोगोंको देखनेके लिए मैं लौटा। वायु, चन्द्रमा, सूर्य, सिद्ध और गन्धर्वोंके मार्गसे होकर मैंने यहाँ आपलोगोंको देखा ॥ १६७ ॥ रामचन्द्रकी कृपा और आप-लोगोंके तेजसे सुग्रीवका समस्त कार्य मैंने इस प्रकार किया ॥ १६८ ॥ यहाँ जो कुछ मैंने किया, वह सब ठीक-ठीक मैंने आपको बतला दिया। और जो काम बाकी रह गया हो, वह सब आप लोग करें ॥ १६९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका अठावनवाँ सर्ग समाप्त ॥५८॥

वायुपुत्र हनुमान यह सब कहकर पुनः आगेकी बात कहने लगे ॥ १ ॥ रामचन्द्रका उद्योग सफल हुआ। सुग्रीवका उत्साह सफल हुआ और सीताका शील देखकर मेरा मन प्रसन्न हुआ॥२॥

आर्यायाः सदृशं शीलं सीतायाः प्लवगर्षभाः । तपसा धारयेल्लोकान्क्रुद्धा वा निर्दहेदपि ॥ ३ ॥
सर्वथातिप्रकृष्टोऽसौ रावणो राक्षसेश्वरः । यस्य तां स्पृशतो गात्रं तपसा न विनाशितम् ॥ ४ ॥
न तदग्निशिखा कुर्यात्संस्पृष्टा पाणिना सती । जनकस्य सुता कुर्याद्यत्क्रोधकलुषीकृता ॥ ५ ॥
जाम्बवत्प्रमुखान्सर्वाननुज्ञाप्य महाकपीन् । अस्मिन्नेवंगते कार्ये भवतां च निवेदिते ॥
न्याय्यं स्म सह वैदेह्या द्रष्टुं तौ पार्थिवात्मजौ। ॥ ६ ॥
अहमेकोऽपि पर्याप्तः सराक्षसगणां पुरीम् । तां लङ्कां तरसा हन्तुं रावणं च सराक्षसम् ॥ ७ ॥
किं पुनः सहितो वीरैर्बलवद्भिः कृतात्मभिः । कृतास्त्रैः प्लवगैः शक्तैर्भवद्भिर्विजयैषिभिः ॥ ८ ॥
अहं तु रावणं युद्धे ससैन्यं सपुरःसरम् । सहपुत्रं वधिष्यामि सहोदरयुतं युधि ॥
ब्राह्ममस्त्रं च रौद्रं च वायव्यं वारुणं तथा । ॥ ९ ॥
यदि शक्रजितोऽस्त्राणि दुर्निरीक्ष्याणि संयुगे । तान्यहं निहनिष्यामि विधमिष्यामि राक्षसान् ॥१०॥
भवतामभ्यनुज्ञातो विक्रमो मे रुणद्धि तम् । मयातुला विसृष्टा हि शैलवृष्टिर्निरन्तरा ॥११॥
देवानपि रणे हन्यात्किं पुनस्तान्निशाचरान् । भवतामननुज्ञातो विक्रमो मे रुणद्धि माम् ॥१२॥
सागरोऽप्यतियाद्वेलां मन्दरः प्रचलेदपि । न जाम्बवन्तं समरे कम्पयेदरिवाहिनी ॥१३॥
सर्वराक्षससङ्घानां राक्षसा ये च पूर्वजाः । अलमेकोऽपि नाशाय वीरो वालिसुतः कपिः ॥१४॥

आर्या सीताके समान जिस स्त्रीका शील होगा वह अपने तपोबलसे समस्त लोकोंको धारण कर सकती है, अथवा, क्रोध करके जला सकती है ॥ ३ ॥ रावण तो बड़ाही भाग्यवान है, अपनी तपस्याके द्वारा बहुत बड़ा है, जिससे वह सीताके अंग छूने पर भी बचा हुआ है, नष्ट नहीं हुआ ॥ ४ ॥ हाथसे छूनेपर अग्निशिखा वह काम नहीं कर सकती, जो क्रोध करके जनकराज-की कन्या कर सकती है ॥ ५ ॥ इस प्रकार यह कार्य सिद्ध हुआ और आपलोगोंसे भी मैंने कह दिया। अब जाम्बवान आदि प्रधान वानरोंकी सम्मतिसे हम लोगोंको उचित है कि जानकीको लेकर राम-लक्ष्मणका दर्शन करें ॥ ६ ॥ मैं अकेला ही इसके लिए पर्याप्त हूँ कि राक्षसोंके साथ लंका नगरीको उजाड़ डालूँ तथा रावणको मार डालूँ ॥ ७ ॥ फिर यदि अपने पर अधिकार रखनेवाले, अस्त्रवेत्ता, समर्थ, विजय चाहनेवाले, वीर और बली आपलोगोंकी सहायता मिले तो क्या बात है ॥ ८ ॥ मैं युद्धमें आगे चलनेवाली सेना सहित, पुत्र और भाईके साथ रावणको मारूँगा ॥ ९ ॥ ब्रह्मास्त्र, रुद्रास्त्र, वायव्यास्त्र, वरुणास्त्र आदि इन्द्रजितके अस्त्र देखनेमें भी भयंकर हैं, फिर भी उन अस्त्रोंको मैं व्यर्थ बनाऊँगा और राक्षसोंको मारूँगा ॥ १० ॥ आप-लोगोंकी आज्ञासे मेरा पराक्रम रावणको पीड़ित कर देगा। मैंने उसपर अविरत पत्थरोंका वृष्टि की है ॥ ११ ॥ मैं देवताओंको भी युद्धमें मार सकता हूँ। उन राक्षसोंको मारना कौन बड़ी बात है! आप लोगोंकी आज्ञा न होनेके कारण मेरे पराक्रमने मुझे रोका। अर्थात् रावण आदि-को मैं नहीं मार सका ॥ १२ ॥ सागर अपनी मर्यादा छोड़ सकता है, मन्दर पर्वत उखड़ सकता है, पर जाम्बवानको युद्धमें शत्रुसेना विचलित नहीं कर सकती ॥१३॥ राक्षसोंमें जो सबसे बली हैं,

प्लवगस्योरुवेगेन नीलस्य च महात्मनः । मन्दरोऽप्यवशीर्येत किं पुनर्युधि राक्षसाः ॥१५॥
सदेवासुरयक्षेषु गन्धर्वोरगपक्षिषु । मैन्दस्य प्रतियोद्धारं शंसत द्विविदस्य वा ॥१६॥
अश्विपुत्रौ महावेगावेतौ प्लवगसत्तमौ । एतयोः प्रतियोद्धारं न पश्यामि रणाजिरे ॥१७॥
मयैव निहता लङ्का दग्धा भस्मीकृता पुरी । राजमार्गेषु सर्वेषु नाम निश्रावितं मया ॥१८॥
जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः । राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥१९॥
अहं कोशलराजस्य दासः पवनसंभवः । हनुमानिति सर्वत्र नाम विश्रावितं मया ॥२०॥
अशोकवनिकामध्ये रावणस्य दुरात्मनः । अधस्ताच्छिंशपामूले साध्वी करुणमास्थिता ॥२१॥
राक्षसीभिः परिवृता शोकसंतापकर्शिता । मेघरेखापरिवृता चन्द्ररेखेव निष्प्रभा ॥२२॥
अचिन्तयन्ती वैदेही रावणं बलदर्पितम् । पतिव्रता च सुश्रोणी अवष्टब्धा च जानकी ॥२३॥
अनुरक्ता हि वैदेही रामे सर्वात्मना शुभा । अनन्यचित्ता रामेण पौलोमीव पुरंदरे ॥२४॥
तदेकवासःसंवीता रजोध्वस्ता तथैव च । सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥२५॥
राक्षसीभिर्विरूपाभिर्दृष्टा हि प्रमदावने । एकवेणीधरा दीना भर्तृचिन्तापरायणा ॥२६॥
अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमोदये । रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ॥२७॥
कथंचिन्मृगशावाक्षी विश्वासमुपपादिता । ततः संभाषिता चैव सर्वमर्थं प्रकाशिता ॥२८॥

उनके नाशके लिए अकेले एक वालिपुत्र अंगदही काफी हैं ॥ १४ ॥ महात्मा वानर नीलके प्रबल वेगसे मन्दराचल भी फट सकता है, फिर युद्धमें राक्षसोंकी कौन गिनती ! ॥१५॥ देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व, उरग, पक्षी, इनमें कौन ऐसा है, जो मैन्द तथा द्विविदका सामना कर सके ? बतलाओ ? ॥ १६ ॥ अश्विनके पुत्र महावेगवान इन दो वानरोंसे युद्ध करनेवाला मैं तो किसीको नहीं देखता ॥ १७ ॥ मैंने ही लंका राक्षसीको मारा और नगरी जलायी । सब सड़कोंपर अपने नामकी घोषणा की ॥ १८ ॥ अतिबली राम, महाबली लक्ष्मण, रामके द्वारा रक्षित राजा सुग्रीवकी जय हो ॥ १६ ॥ मैं पवनका पुत्र और रामचन्द्रका दास हूँ । मेरा हनुमान नाम है, यह मैंने सबको सुनाया ॥ २० ॥ दुरात्मा रावणकी अशोकवाटिकामें शिंशपाकी छायामें साध्वी सीता दुःखसे बैठी हुई हैं ॥ २१ ॥ मेघरेखासे घिरी हुई निष्प्रभ चन्द्ररेखाके समान राक्षसियोंसे घिरी हुई और शोकसे पीड़ित हैं ॥ २२ ॥ बलका अहंकार रखनेवाले रावणको वह पतिव्रता और राक्षसियोंके द्वारा सतायी सीता कुछभी नहीं गिनती ॥ २३ ॥ सीता सब प्रकारसे रामचंद्रमें अनुरक्त है, जिस प्रकार शची इन्द्रमें । सीताको रामचंद्रके अतिरिक्त दूसरी चिन्ता नहीं है ॥ २४ ॥ एक वस्त्र पहने हुई है । धूलमें लिपटी हुई है । उस सीताको मैंने राक्षसियोंके बीचमें देखा है, जिसे राक्षसी डरा-धमका रही थीं ॥ २५ ॥ विरूप राक्षसियोंके द्वारा सतायी सीता एक चोटी धारण किये हुई, दीनतापूर्वक, पतिकी चिन्ता कर रही थीं ॥ २६ ॥ पृथ्वीपर बैठी हुई, जाड़ेमें कमलिनीके समान शुष्काङ्गी, रावणके द्वारा रामसेवासे विरत अतएव मरनेके लिए दृढ़निश्चय सीताको मैंने देखा ॥ २७ ॥ मृगशावाक्षी सीताको किसी प्रकार मैंने विश्वास दिलाया । उनसे

रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा प्रीतिमुपागता। नियतः समुदाचारो भक्तिर्भर्तरि चोत्तमा ॥२९॥
यन्न हन्ति दशग्रीवं स महात्मा दशाननः। निमित्तमात्रं रामस्तु वधे तस्य भविष्यति ॥३०॥
सा प्रकृत्यैव तन्वङ्गी तद्वियोगाच्च कर्षिता। प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता ॥३१॥
एवमास्ते महाभागा सीता शोकपरायणा। यदत्र प्रतिकर्तव्यं तत्सर्वमुपकल्प्यताम् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वालिसूनुरभाषत। अश्विपुत्रौ महावेगौ बलवन्तौ प्लवंगमौ ॥ १ ॥
पितामहवरोत्सेकात्परमं दर्पमास्थितौ। अश्विनोर्माननार्थं हि सर्वलोकपितामहः ॥ २ ॥
सर्वावध्यत्वमतुलमनयोर्दत्तवान्पुरा। वरोत्सेकेन मत्तौ च प्रमथ्य महतीं चमूम् ॥ ३ ॥
सुराणाममृतं वीरौ पीतवन्तौ महाबलौ। एतावेव हि संक्रुद्धौ सवाजिरथकुञ्जराम् ॥ ४ ॥
लङ्कां नाशयितुं शक्तौ सर्वे तिष्ठन्तु वानराः। अहमेकोऽपि पर्याप्तः सराक्षसगणां पुरीम् ॥ ५ ॥
तां लङ्कां तरसा हन्तुं रावणं च महाबलम्। किं पुनः सहितो वीरैर्बलवद्भिः कृतात्मभिः ॥ ६ ॥
कृतास्त्रैः प्लवगैः शक्तैर्भवद्भिर्विजयैषिभिः। वायुसूनोर्बलेनैव दग्धा लङ्केति नः श्रुतम् ॥ ७ ॥

बातें कीं और सब बातें उनसे बतलायीं ॥ २८ ॥ राम और सुग्रीवकी मैत्रीकी बात सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुईं। सीता आज भी उसी प्रकारकी सदाचारिणी हैं और रामचन्द्रमें उनकी वैसीही भक्ति है ॥ २९ ॥ फिर भी जो वे सीता रावणका वध नहीं कर रही हैं, उसका कारण रावणकी तपस्या है; क्योंकि रामहीके द्वारा उसका वध निश्चित है ॥३०॥ सीता एक तो स्वभावसे ही दुबली-पतली हैं, पुनः पतिवियोगसे कृश हो गयी हैं। प्रतिपद तिथिको पढ़नेवाले विद्यार्थीकी विद्याके समान वे पतली होगयी हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सीता दुःखिनी हैं। इस संबन्धमें जो आपलोग करना चाहें, वह करें ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुंदरकाण्डका उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५९ ॥

हनुमानके वचन सुनकर बालिपुत्र अंगद बोले। अश्विनके पुत्र बलवान्, वेगवान् दोनों वानर पितामहके वरके अहंकारसे बड़े अहंकारी हो गये हैं। दोनों अश्वियोंको प्रसन्न करनेके लिए लोकपितामह ब्रह्माने पहले इन दोनोंको सबसे अवध्य होनेका वर दिया था। वरके अहंकारसे प्रमत्त होकर समस्त सेनाको मथित करके इन महाबली वीरोंने देवताओंका अमृत पी लिया था। ये ही दोनों क्रोध करके हाथी, घोड़े, रथके साथ समस्त लंकाका नाश कर सकते हैं; और वानर भलेही यहाँ रहें। मैं भी राक्षसोंके साथ समस्त लंकापुरीको और रावणको शीघ्रही मार सकता हूँ। फिर वीर, बली और अपने मन पर अधिकार रखनेवाले, अस्त्रज्ञाता, समर्थ, विजयेच्छु आपलोगोंका

दृष्टा देवी न चानीता इति तत्र निवेदितुम् । न युक्तमिव पश्यामि भवद्भिः ख्यातपौरुषैः ॥ ८ ॥
नहि वः प्लवने कश्चिन्नापि कश्चित्पराक्रमे । तुल्यः सामरदैत्येषु लोकेषु हरिसत्तमाः ॥ ९ ॥
जित्वा लङ्कां सरक्षौघां हत्वा तं रावणं रणे । सीतामादाय गच्छामः सिद्धार्था हृष्टमानसाः ॥१०॥
तेष्वेवं हतशेषेषु राक्षसेषु हनूमता । किमन्यदत्र कर्तव्यं गृहीत्वा याम जानकीम् ॥११॥
रामलक्ष्मणयोर्मध्ये न्यस्याम जनकात्मजाम् । किं व्यलीकैस्तु तान्सर्वान्वानरान्वानरर्षभान् ॥१२॥
वयमेव हि गत्वा तान्हत्वा राक्षसपुंगवान् । राघवं द्रष्टुमर्हामः सुग्रीवं सहलक्ष्मणम् ॥१३॥
तमेवं कृतसंकल्पं जाम्बवान्हरिसत्तमः । उवाच परमप्रीतो वाक्यमर्थवदर्थवित् ॥१४॥
नैषा बुद्धिर्महाबुद्धे यद्ब्रवीषि महाकपे । विचेतुं वयमाज्ञप्ता दक्षिणां दिशमुत्तमाम् ॥१५॥
नानेतुं कपिराजेन नैव रामेण धीमता । कथंचिन्निर्जितां सीतामस्माभिर्नाभिरोचयेत् ॥१६॥
राघवो नृपशार्दूलः कुलं व्यपदिशन्स्वकम् । प्रतिज्ञाय स्वयं राजा सीताविजयमग्रतः ॥१७॥
सर्वेषां कपिमुख्यानां कथं मिथ्या करिष्यति । विफलं कर्म च कृतं भवेत्तुष्टिर्न तस्य च ॥१८॥
वृथा च दर्शितं वीर्यं भवेद्वानरपुंगवाः । तस्माद्गच्छाम वै सर्वे यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥
सुग्रीवश्च महातेजः कार्यस्यास्य निवेदने । ॥१९॥

साथ मिले तो कहनाही क्या ! अकेले वायुपुत्रने ही लंका जला दी है । यह हमलोगोंने सुनाही है ॥ १-७ ॥ सीताको देखा, पर उन्हें ले न आये—रामचन्द्रके सामने ऐसा कहना आप जैसे पराक्रमी पुरुषोंके लिए अच्छा नहीं है ॥ ८ ॥ कूदनेमें या पराक्रममें, देवता दानवोंमें, हे वानरो, आपके तुल्य कोई नहीं है ॥ ९ ॥ राक्षसोंके साथ लंकाको जीतकर, युद्धमें उस रावणको मारकर और सीताको लेकर सफलमनोरथ अतएव प्रसन्न होकर हमलोग रामचंद्रके पास चलें ॥ १० ॥ हनुमानके द्वारा मारे जानेसे बचे हुए थोड़ेही तो राक्षस वहाँ होंगे । अब वहाँ करना ही क्या है ! जानकीको लेकर लौट आना है ॥ ११ ॥ राम और लक्ष्मण इन दोनोंके बीचमें, सीताको हम लोग बैठा देंगे । इन समस्त वानरश्रेष्ठोंका रामके पास जाकर अप्रिय वचन (सीता देखी, पर ले नहीं आये) कहना उचित नहीं ॥ १२ ॥ हमहीं लोग लंका जाकर, वीर राक्षसोंको मारकर, सुग्रीव और लक्ष्मण साथके रामचंद्रका दर्शन करें ॥ १३ ॥ इस प्रकार अंगदके निश्चय करने पर अत्यन्त प्रसन्न वानरश्रेष्ठ, अर्थ जाननेवाले जाम्बवान बोले ॥ १४ ॥ बुद्धिमान महाकपे, जो तुम कह रहे हो, यह बात मुझे पसन्द न आयी । हमलोगोंको दक्षिण दिशामें सीताको ढूँढ़नेकी आज्ञा मिली है ॥ १५ ॥ सीताको लानेकी आज्ञा सुग्रीव या रामचंद्रने नहीं दी है । यदि हमलोग रावण-को जीतकर सीताको लावें भी और रामचंद्र इसको पसन्द न करें तो ? ॥ १६ ॥ नृपश्रेष्ठ रामचंद्रने अपने कुलका उल्लेख करके सब प्रधान कपियोंके सामने सीताके कारण रावणको स्वयं जीतनेकी प्रतिज्ञा की है । उसे वे असत्य कैसे बनावेंगे? अतएव हमलोगोंका किया हुआ भी कार्य विफल ही होगा । रामचंद्र उससे प्रसन्न न होंगे ॥ १७-१८ ॥ हे वानरश्रेष्ठ, हमलोगोंका पराक्रम दिखाना भी व्यर्थ होगा। अतएव जहाँ राम, लक्ष्मण और तेजस्वी सुग्रीव हैं, वहीं हमलोग चलें

न तावदेषा मतिरक्षमा नो यथा भवान्पश्यति राजपुत्र।
यथा तु रामस्य मतिर्निविष्टा तथा भवान्पश्यतु कार्यसिद्धिम् ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१

ततो जाम्बवतो वाक्यमगृह्णन्त वनौकसः। अङ्गदप्रमुखा वीरा हनूमांश्च महाकपिः ॥ १ ॥
प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः। महेन्द्राग्रात्समुत्पत्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः ॥ २ ॥
मेरुमन्दरसंकाशा मत्ता इव महागजाः। छादयन्त इवाकाशं महाकाया महाबलाः ॥ ३ ॥
सभाज्यमानं भूतैस्तमात्मवन्तं महाबलम्। हनूमन्तं महावेगं वहन्त इव दृष्टिभिः ॥ ४ ॥
राघवे चार्थनिर्वृत्तिं कर्तुं च परमं यशः। समाधाय समृद्धार्थाः कर्मसिद्धिभिरुन्नताः ॥ ५ ॥
प्रियाख्यानोन्मुखाः सर्वे सर्वे युद्धाभिनन्दिनः। सर्वे रामप्रतीकारे निश्चितार्था मनस्विनः ॥ ६ ॥
प्लवमानाः खमाप्लुत्य ततस्ते काननौकसः। नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमशतायुतम् ॥ ७ ॥
यत्तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम्। अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम् ॥ ८ ॥
यद्रक्षति महावीरः सदा दधिमुखः कपिः। मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥ ९ ॥

और यह बात उनसे कहें ॥ १९ ॥ राजपुत्र, आपने जो सोचा है, वह हमलोगोंके लिए अशक्य नहीं है। अर्थात् हमलोग उसका साधन कर सकते हैं, परन्तु आपको चाहिए कि रामचन्द्रके निश्चयके अनुसार कार्य करें ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकांडका साठवाँ सर्ग समाप्त ॥६०॥

अनन्तर जाम्बवानके वचनको अंगद आदि वीर, महाकपि हनुमान आदि सब वानरोंने स्वीकार किया ॥ १ ॥ प्रसन्नचित्त होकर वायुपुत्र आदि महेन्द्रपर्वतसे उतरकर चले ॥ २ ॥ मेरु मन्दर पर्वतके समान विशाल, मतवाले हाथीके समान विशालशरीर और महाबली वे वानर आकाशको छिपाते हुए चले ॥ ३ ॥ सिद्ध आदिके द्वारा पूजित, ब्रह्मचारी, महाबली, महावेगवान् हनुमानको मानो आँखो पर उछालते हुए (अर्थात् प्रेमपूर्वक सबलोग देखते हुए) चले ॥४॥ कार्यकी सिद्धिका यश लेकर सफल और कार्य सिद्धिसे प्रसन्न वानर रामचन्द्रके यहाँ चले ॥ ५ ॥ सभी रामचन्द्रको प्रिय सम्वाद सुनाना चाहते थे, सभी युद्ध करनेके इच्छुक थे और सभी रामचन्द्रके उपकारके लिए तत्पर थे ॥ ६ ॥ आकाशमें उड़कर चलते हुए वनवासी वे वानर नन्दनवनके समान, सैकड़ों तरहके वृक्षोंसे युक्त वनमें गए ॥ ७ ॥ वह सुग्रीवका मधुवन था और सुग्रीवही उसकी रक्षा करते थे। उसमें कोई प्राणी नहीं जा सकता था और सबके लिए मनोहर था ॥ ८ ॥ महावीर दधिमुख नामका वानर जो महात्मा सुग्रीवका मामा था, उस वनको

ते तद्वनमुपागम्य बभुवुः परमोत्कटाः। वानरा वानरेन्द्रस्य मनःकान्तं महावनम् ॥१०॥
ततस्ते वानरा हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत्। कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥११॥
ततः कुमारस्तान्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान्कपीन्। अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे ॥१२॥
ते निसृष्टाः कुमारेण धीमता वालिसूनुना। हरयः समपद्यन्त द्रुमान्मधुकराकुलान् ॥१३॥
भक्षयन्तः सुगन्धीनि मूलानि च फलानि च। जग्मुः प्रहर्षं ते सर्वे बभूवुश्च मदोत्कटाः ॥१४॥
ततश्चानुमताः सर्वे सुसंहृष्टा वनौकसः। मुदिताश्च ततस्ते च प्रनृत्यन्ति ततस्ततः ॥१५॥

गायन्ति केचित्प्रहसन्ति केचिन्नृत्यन्ति केचित्प्रणमन्ति केचित्।
पठन्ति केचित्प्रचरन्ति केचित्प्लवन्ति केचित्प्रलपन्ति केचित् ॥१६॥
परस्परं केचिदुपाश्रयन्ति परस्परं केचिदतिब्रुवन्ति।
द्रुमाद्द्रुमं केचिदभिद्रवन्ति क्षितौ नगाग्रान्निपतन्ति केचित् ॥१७॥
महीतलात्केचिदुदीर्णवेगा महाद्रुमाग्राण्यभिसंपतन्ति।
गायन्तमन्यः प्रहसन्नुपैति रुदन्तमन्यः प्ररुदन्नुपैति ॥१८॥
तुदन्तमन्यः प्रणुदन्नुपैति समाकुलं तत्कपिसैन्यमासीत्।
न चात्र कश्चिन्न बभूव मत्तो न चात्र कश्चिन्न बभूव दृप्तः ॥१९॥
ततो वनं तत्परिभक्ष्यमाणं द्रुमांश्च विध्वंसितपत्रपुष्पान्।
समीक्ष्य कोपाद्दधिवक्त्रनामा निवारयामास कपिः कपींस्तान् ॥२०॥

रक्षा करता था ॥ ६ ॥ वे वानर उस वनमें जाकर बड़े उद्धत हो गये। मनोहर सुग्रीवके बागमें जाकर मनमाना करने लगे ॥ १० ॥ उस वनको देखकर वानर बड़े प्रसन्न हुए और कुमार अंगद-से मधु पीनेकी आज्ञा उन लोगोंने मांगी ॥ ११ ॥ तब कुमार अंगदने जाम्बवान आदि प्रधान वानरोंसे आज्ञा लेकर उनको मधु पीनेकी आज्ञा दी ॥ १२ ॥ वालिपुत्र बुद्धिमान कुमार अंगदके यहाँसे चलकर वे वानर उन वृक्षोंपर गए जहाँ बहुतसे भँवरे थे ॥१३॥ सुगंधित फल मूल आदि खाकर वे बड़े प्रसन्न हुए और सबके सब मतवाले हो गये ॥ १४ ॥ पुनः वे प्रसन्न वानर अंगद-की आज्ञा पाकर औरभी मुदित हुए तथा उनके पास नाचने लगे ॥ १५ ॥ कोई गाने लगे, कोई हंसने लगे, कोई नाचने लगे और कोई प्रणाम करने लगे। कोई पढ़ने लगे, कोई चलने लगे, कोई कूदने लगे, कोई प्रलाप करने लगे ॥ १६ ॥ कोईआपसमें मिलते हैं। कोई आपसमें बहस करते हैं, कोई इस पेड़से उस पेड़ पर जाते हैं और कोई पर्वतशिखरसे जमीनपर कूदते हैं ॥ १७ ॥ प्रखर वेगवाले कोई वानर पृथिवीसे ऊँचे वृक्षों पर चढ़ जाते हैं। गाते हुएके पास कोई हंसता हुआ जाता है और रोते हुएके पास कोई रोता हुआ जाता है ॥१८॥ किसीको व्यथा पहुँचाते हुएके पास कोई गर्जन करता हुआ पहुँचता है। इस प्रकार वह समस्त वानरी सेना अव्यवस्थित हो गयी थी। वहाँ कोई नहीं था जो मतवाला और अहंकारमें चूर न हो गया हो ॥१९॥ उस वनको खाते हुए तथा वृक्षोंको पत्रपुष्पहीन देखकर दधिवमुख नामक वानरने उन वानरोंको रोका ॥२०॥

स तैः प्रवृद्धैः परिभर्त्स्यमानो वनस्य गोप्ता हरिवृद्धवीरः।
चकार भूयो मतिमुग्रतेजा वनस्य रक्षां प्रति वानरेभ्यः ॥२१॥
उवाच कांश्चित्परुषाण्यभीतमसक्तमन्यांश्च तलैर्जघान।
समेत्य कैश्चित्कलहं चकार तथैव साम्नोपजगाम कांश्चित् ॥२२॥
स तैर्मदादप्रतिवार्यवेगैर्बलाच्च तेन प्रतिवार्यमाणैः।
प्रधर्षणे त्यक्तभयैः समेत्य प्रकृष्यते चाप्यनवेक्ष्य दोषम् ॥२३॥
नखैस्तुदन्तो दशनैर्दशन्तस्तलैश्च पादैश्च समापयन्तः।
मदात्कपिं ते कपयः समन्तान्महावनं निर्विषयं च चक्रुः ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२

तानुवाच हरिश्रेष्ठो हनुमान्वानरर्षभः। अव्यग्रमनसो यूयं मधु सेवत वानराः ॥ १ ॥
अहमावर्जयिष्यामि युष्माकं परिपन्थिनः। श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं हरीणां प्रवरोऽङ्गदः ॥ २ ॥
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पिबन्तु हरयो मधु। अवश्यं कृतकार्यस्य वाक्यं हनूमतो मया ॥ ३ ॥
अकार्यमपि कर्तव्यं किमङ्ग पुनरीदृशम्। अङ्गदस्य मुखाच्छ्रुत्वा वचनं वानरर्षभाः ॥ ४ ॥

उमड़े हुए वानरोंसे वनरक्षक बूढ़ा वीर वानर डराया धमकाया गया, उग्रतेजस्वी उसने पुनः वनकी रक्षा करनेका उपाय किया ॥ २१ ॥ किसीको निर्भय होकर कठोर वचन कहे और तथा दूसरोंको थप्पड़ोंसे मारा, किसीके पास आकर उससे कलह किया और किसीको समझाया ॥२२॥ मतवाले होनेके कारण उन वानरोंका वेग रोका नहीं जा सकता था और दधिमुखके द्वारा बलपूर्वक रोके जानेपर वे निर्भय होकर उसे तंग करने लगे और राजदण्डका भय छोड़कर उसे घसीटने लगे ॥ २३ ॥ उस वानरको नखोंसे छेदते हुए, दाँतोंसे काटते हुए, पैरोंसे मृतकके समान बनाते हुए उन वानरोंने उस समस्त वनको फल मूलसे रहित बना दिया ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६१ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान उन वानरोंसे बोले। निश्चिन्त होकर सब वानर मधुपान करें ॥ १ ॥ आपलोगोंके विरोधियोंको मैं रोकूंगा। हनुमानके वचन सुनकर वानरोंमें श्रेष्ठ अंगद प्रसन्न होकर बोले कि वानर मधुपान करें। सफलमनोरथ हनुमानके अनुचित वचनोंका भी मैं समर्थन करता हूँ। फिर इस बातका समर्थन क्यों न करूँ! अंगदके मुँहसे ऐसा वचन सुनकर सभी प्रधान वानर "साधु साधु" कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे। वानरश्रेष्ठ अंगदकी पूजा करके

साधु साध्विति संहृष्टा वानराः प्रत्यपूजयन् । पूजयित्वाङ्गदं सर्वे वानरा वानरर्षभम् ॥ ५ ॥
जग्मुर्मधुवनं यत्र नदीवेग इव द्रुमम् । ते प्रविष्टा मधुवनं पालानाक्रम्य शक्तितः ॥ ६ ॥
अतिसर्गाच्च पटवो दृष्ट्वा श्रुत्वा च मैथिलीं । पपुः सर्वे मधु तदा रसवत्फलमाददुः ॥ ७ ॥
उत्पत्य च ततः सर्वे वनपालान्समागतान् । ते ताडयन्तः शतशः सक्ता मधुवने तदा ॥ ८ ॥
मधूनि द्रोणमात्राणि बाहुभिः परिगृह्य ते । पिबन्ति कपयः केचित्सङ्घशस्तत्र हृष्टवत् ॥ ९ ॥
घ्नन्ति स्म सहिताः सर्वे भक्षयन्ति तथापरे । केचित्पीत्वापविध्यन्ति मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥१०॥
मधूच्छिष्टेन केचिच्च जघ्नुरन्योन्यमुत्कटाः । अपरे वृक्षमूलेषु शाखा गृह्य व्यवस्थिताः ॥११॥
अत्यर्थं च मदग्लानाः पर्णान्यास्तीर्य शेरते । उन्मत्तवेगाः प्लवगा मधुमत्ताश्च हृष्टवत् ॥१२॥
क्षिपन्त्यपि तथान्योन्यं स्खलन्ति च तथापरे । केचित्क्ष्वेडान्प्रकुर्वन्ति केचित्कूजन्ति हृष्टवत् ॥१३॥
हरयो मधुना मत्ताः केचित्सुप्ता महीतले । धृष्टाः केचिद्धसन्त्यन्ये केचित्कुर्वन्ति चेतरत् ॥१४॥
कृत्वा केचिद्वदन्त्यन्ये केचिदबुध्यन्ति चेतरत् । येऽप्यत्र मधुपालाः स्युः प्रेष्या दधिमुखस्य तु ॥१५॥
तेऽपि तैर्वानरैर्भीमैः प्रतिषिद्धा दिशो गताः । जानुभिश्च प्रधृष्टाश्च देवमार्गं च दर्शिताः ॥१६॥
अब्रुवन्परमोद्विग्ना गत्वा दधिमुखं वचः । हनूमता दत्तवरैर्हतं मधुवनं बलात् ॥
वयं च जानुभिर्घृष्टा देवमार्गं च दर्शिताः । ॥१७॥
तदा दधिमुखः क्रुद्धो वनपस्तत्र वानरः । हतं मधुवनं दृष्ट्वा सान्त्वयामास तान्हरीन् ॥१८॥

सभी वानर मधुवनमें आये, जिस प्रकार नदीकी धारा वृक्षोंके पास पहुँचती है। वे मधुवनमें जाकर और रक्षकोंको बलसे दबाकर मधुपान करने लगे और फल खाने लगे। जानकीको देख कर तथा उनका वृत्तान्त सुनकर वे धृष्ट हो गये थे और अंगदकी आज्ञाकी भी उन्हें बल था ॥२-७॥ मधुवनमें भोजनमें लगे हुए वानरों को रोकनेके लिए रक्षक आये। रक्षकोंको वे उछल-उछल कर मारने लगे ॥ ८ ॥ दलबद्ध कई वानर एक द्रोण (तौल विशेष) मधु बाहुसे इकट्ठा कर बड़े सन्तोषसे पीने लगे ॥ ९ ॥ सब लोग मिलकर रक्षकोंको मारते हैं, कुछ लोग खाते हैं, कई मधुपान करके मधु फेंकते हैं ॥ १० ॥ कोई उन्मत्त होकर मोमसे आपसमें एक दूसरेको मारते हैं, दूसरे वृक्षकी जड़में शाखा पकड़कर बैठे हैं ॥ ११ ॥ वे वानर मधुपानसे मत्त हो गये और नशाके कारण उनका उत्साह जाता रहा। वे उन्मत्त होकर पत्ते बिछाकर सो गये ॥१२॥ कोई आपसमें एक दूसरेको उठाकर फेंकने लगे, कोई गिरने लगे, कोई उन्मत्तोंकी क्रीड़ा करने लगे और कोई प्रसन्नतापूर्वक शब्द करने लगे ॥ १३ ॥ कई वानर मधुपानसे मत्त होकर पृथिवीपर सो गये, कई धृष्ट वानर हंसने लगे और कई रोने लगे ॥ १४ ॥ कोई कुछ काम करके बोलने लगे और दूसरोंने उस कामको कुछ दूसराही समझ लिया। दधिमुखके प्रधान जो वनकी रक्षा करनेवाले वहां थे, ॥ १५ ॥ वे भी भयानक वानरोंसे रोके जानेके कारण वहाँसे भाग गये थे और कई पकड़कर ऊपर फेंके जा चुके थे ॥ १६ ॥ वे व्याकुल होकर दधिमुखके पास गये और कहने लगे, हनुमानके कहनेसे वानरोंने समस्त मधुवनका नाश कर दिया और पैर पकड़कर हम लोगोंको आकाशमें उछाल दिया ॥१७॥ तब वनरक्षक दधिमुख वानर मधुवनको नष्ट देखकर क्रुद्ध हुआ।

एतागच्छत गच्छामो वानरानतिदर्पितान्। बलेनावारयिष्यामि प्रभुञ्जानान्मधूत्तमम् ॥१९॥
श्रुत्वा दधिमुखस्येदं वचनं वानरर्षभाः। पुनर्वीरा मधुवनं तेनैव सहिता ययुः ॥२०॥
मध्ये चैषां दधिमुखः सुप्रगृह्य महातरुम्। समभ्यधावन्वेगेन सर्वे ते च प्लवंगमाः ॥२१॥
ते शिलाः पादपांश्चैव पाषाणानपि वानराः। गृहीत्वाभ्यागमन्क्रुद्धा यत्र ते कपिकुञ्जराः ॥२२॥
बलान्निवारयन्तश्च आसेदुर्हरयो हरीन्। संदष्टोष्ठपुटाः क्रुद्धा भर्त्सयन्तो मुहुर्मुहुः ॥२३॥
अथ दृष्ट्वा दधिमुखं क्रुद्धं वानरपुंगवाः। अभ्यधावन्त वेगेन हनुमत्प्रमुखास्तदा ॥२४॥
सवृक्षं तं महाबाहुमापतन्तं महाबलम्। वेगवन्तं विजग्राह बाहुभ्यां कुपितोऽङ्गदः ॥२५॥
मदान्धो न कृपां चक्रे आर्यकोऽयं ममेति सः। अथैनं निष्पिपेषाशु वेगेन वसुधातले ॥२६॥
स भग्नबाहूरुमुखो विह्वलः शोणितोक्षितः। प्रमुमोह महावीरो मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ॥२७॥
स कथंचिद्विमुक्तस्तैर्वानरैर्वानरर्षभः। उवाचैकान्तमागत्य स्वान्भृत्यान्समुपागतान् ॥२८॥
एतागच्छत गच्छामो भर्ता नो यत्र वानरः। सुग्रीवो विपुलग्रीवः सह रामेण तिष्ठति ॥२९॥
सर्वं चैवाङ्गदे दोषं श्रावयिष्याम पार्थिवे। अमर्षी वचनं श्रुत्वा घातयिष्यति वानरान् ॥३०॥
इष्टं मधुवनं ह्येतत्सुग्रीवस्य महात्मनः। पितृपैतामहं दिव्यं देवैरपि दुरासदम् ॥३१॥
स वानरानिमान्सर्वान्मधुलुब्धान्गतायुषः। घातयिष्यति दण्डेन सुग्रीवः ससुहृज्जनान् ॥३२॥
वध्या ह्येते दुरात्मानो नृपाज्ञापरिपन्थिनः। अमर्षप्रभवो रोषः सफलो मे भविष्यति ॥३३॥

और उन वानरोंको उसने धैर्य धराया ॥१८॥ चलो, हम लोग चलें, इन घमण्डी वानरोंको जो मधुपान कर रहे हैं, बलसे रोकें ॥ १९ ॥ दधिमुखके वचन सुनकर वे वीर वानर उसके साथ पुनः मधुवनमें गये ॥ २० ॥ उनके बीचमें दधिमुख बड़ा भारी पेड़ लेकर चला। वे वानर भी पत्थर, वृक्ष तथा पत्थरके टुकड़े लेकर क्रोधसे चले ॥ २१-२२ ॥ वे वानर बलपूर्वक हनुमान आदि वानरोंको रोकने लगे। क्रोधसे ओंठ काटते हुए, बारबार उन वानरोंको धमकाते हुए उनके पास आए ॥२३॥ दधिमुखको क्रुद्ध देखकर हनुमान आदि प्रधान वानर उनकी ओर दौड़े ॥ २४ ॥ महाबली दधिमुखको वृक्ष लेकर आते देख अंगदने क्रोध करके उन्हें पकड़ लिया ॥ २५ ॥ दधिमुख मदान्ध था। इस कारण अपने बड़े पर उन्होंने कृपा न की, अनन्तर अंगद उसको जमीनमें घसीटने लगे ॥२६॥ बाहु, मुखके अधिक छिल जानेसे तथा रुधिर निकलनेसे वह व्याकुल हो गया। वह वानरश्रेष्ठ महावीर थोड़ी देरके लिए बेहोश हो गया ॥ २७ ॥ वानरश्रेष्ठ दधिमुख, उन वानरोंसे किसी प्रकार छूट कर एकान्तमें आया और अपने सेवकोंसे बोला ॥ २८ ॥ आओ, चलो हम लोग अपने स्वामी सुग्रीवके पास चलें। वे रामके साथ बैठे होंगे ॥ २९ ॥ सब दोष अंगद पर हम लोग राजाके सामने डालेंगे। क्रोधी राजा हमलोगोंकी बातें सुनकर सब वानरोंको मार डालेंगे ॥३०॥ महात्मा सुग्रीवका यह मधुवन प्रिय है, पिता पितामहके समय का है। यहां देवताभी नहीं आने पाते ॥ ३१ ॥ मधुलोभी और गतायु, इन वानरोंको मित्रोंके साथ सुग्रीव दण्ड देकर मारेंगे ॥ ३२ ॥ राजाकी आज्ञा न माननेवाले इन दुरात्माओंको बांधकर वे मारेंगे, तब हमारा क्रोध

एवमुक्त्वा दधिमुखो वनपालान्महाबलः । जगाम सहसोत्पत्य वनपालैः समन्वितः ॥३४॥
निमेषान्तरमात्रेण स हि प्राप्तो वनालयः । सहस्रांशुसुतो धीमान्सुग्रीवो यत्र वानरः ॥३५॥
रामं च लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च । समप्रतिष्ठां जगतीमाकाशान्निपपात ह ॥३६॥
स निपत्य महावीरः सर्वैस्तैः परिवारितः । हरिर्दधिमुखः पालैः पालानां परमेश्वरः ॥३७॥
सदीनवदनो भूत्वा कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम् । सुग्रीवस्याशु तौ मूर्ध्ना चरणौ प्रत्यपीडयत् ॥३८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

ततो मूर्ध्ना निपतितं वानरं वानरर्षभः । दृष्ट्वैवोद्विग्नहृदयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कस्मात्त्वं पादयोः पतितो मम । अभयं ते भवास्यामि सत्यमेवाभिधीयताम् ॥ २ ॥
किं संभ्रमाद्धितं कृत्स्नं ब्रूहि यद्वक्तुमर्हसि । कच्चिन्मधुवने स्वस्ति श्रोतुमिच्छामि वानर ॥ ३ ॥
स समाश्वासितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना । उत्थाय स महाप्राज्ञो वाक्यं दधिमुखोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥
नैवर्क्षरजसा राजन्न त्वया न च वालिना । वनं निसृष्टपूर्वं ते नाशितं तत्तु वानरैः ॥ ५ ॥
न्यवारयमहं सर्वान्सहैभिर्वनचारिभिः । अचिन्तयित्वा मां हृष्टा भक्षयन्ति पिबन्ति च ॥ ६ ॥
एभिः प्रधर्षणायां च वारितं वनपालकैः । मामप्यचिन्तयन्देव भक्षयन्ति वनौकसः ॥ ७ ॥
शिष्टमत्रापविद्ध्यन्ति भक्षयन्ति तथापरे । निवार्यमाणास्ते सर्वे भ्रुकुटिं दर्शयन्ति हि ॥ ८ ॥

सफल होगा ॥ ३३ ॥ वनरक्षकोंसे महाबली दधिमुख ऐसा कहकर उनके साथ वेगसे चला ॥ ३४ ॥ थोड़ीही देरमें वनमें रहनेवाले, बुद्धिमान सूर्यपुत्र सुग्रीवके पास आये ॥ ३५ ॥ राम, लक्ष्मण और सुग्रीवको देखकर समतल भूमिपर वे आकाशसे उतरे ॥ ३६ ॥ अपने सेवकोंसे घिरा हुआ, और उन सबका स्वामी, दधिमुख उतरकर दीनवदन होकर तथा हाथ जोड़कर सुग्रीवके चरणोंपर सिर झुकाकर उसने प्रणाम किया ॥ ३७-३८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका बासठवां सर्ग समाप्त ॥६२॥

दधिमुख वानरको सिर झुकाए देखकर ही वानरश्रेष्ठ सुग्रीव व्याकुल हुए और वे बोले ॥ १ ॥ उठो, उठो, क्यों तुम मेरे पैरों पर पड़े हो। मैं तुम्हें अभय देता हूँ। सच सच बतालाओ ॥ २ ॥ क्या किसी डरसे तुम यहाँ आये हो ? जो कुछ हो तुम कहो। जो तुम कहना चाहते हो, कह सकते हो। वानर, मधुवनमें तो कुशल है ॥ ३ ॥ महात्मा सुग्रीवके द्वारा आश्वासन पाकर और उठकर बुद्धिमान दधिमुख बोला ॥ ४ ॥ ऋक्षराज आदिने जो मधुवन आपके लिए दिया था और जिसका नाश न आपने और न बालिने किया था उसीको वानरोंने नष्ट कर दिया ॥ ५ ॥ इन वानरोंके साथ मैंने वानरोंको रोका पर वे मेरी बातोंपर कुछ भी ध्यान न देकर बड़ी प्रसन्नतासे खाने पीने लगे ॥ ६ ॥ इन वानरोंने भी डराया, पर वे मुझे भी कुछ न समझ कर खाने लगे ॥ ७ ॥ वे खाते थे और बाकी फेंकते थे। रोके जानेपर आँखें मटकाते

इमे हि संरब्धतरास्तदा तैः संप्रधर्षिताः । निवार्यन्ते वनात्तस्मात्क्रुद्धैर्वानरपुंगवैः ॥ ९ ॥
ततस्तैर्बहुभिर्वीरैर्वानरैर्वानरर्षभाः । संरक्तनयनैः क्रोधाद्धरयः संप्रधर्षिताः ॥१०॥
पाणिभिर्निहताः केचित्केचिज्जानुभिराहताः । प्रकृष्टाश्च तदा कामं देवमार्गं च दर्शिताः ॥११॥
एवमेते हताः शूरास्त्वयि तिष्ठति भर्तरि । कृत्स्नं मधुवनं चैव प्रकामं तैश्च भक्ष्यते ॥१२॥
एवं विज्ञाप्यमानं तं सुग्रीवं वानरर्षभम् । अपृच्छत्तं महाप्राज्ञो लक्ष्मणः परवीरहा ॥१३॥
किमयं वानरो राजन्वनपः प्रत्युपस्थितः । किं चार्थमभिनिर्दिश्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत्॥१४॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना । लक्ष्मणं प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥१५॥
आर्य लक्ष्मण संप्राह वीरो दधिमुखः कपिः । अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्भक्षितं मधु वानरैः ॥१६॥
नैषामकृतकार्याणामीदृशः स्याद्व्यतिक्रमः । वनं यदभिपन्नास्ते साधितं कर्म तद्ध्रुवम् ॥१७॥
वारयन्तो भृशं प्राप्ताः पाल्या जानुभिराहताः । तथा न गणितश्चायं कपिर्दधिमुखो बली ॥१८॥
पतिर्मम वनस्यायमस्माभिः स्थापितः स्वयम् । दृष्टा देवी न संदेहो न चान्येन हनूमता ॥१९॥
नह्यन्यः साधने हेतुः कर्मणोऽस्य हनूमतः । कार्यसिद्धिर्हनूमति मतिश्च हरिपुंगव ॥२०॥
व्यवसायश्च वीर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम् । जाम्बवान्यत्र नेता स्यादङ्गदश्च महाबलः ॥२१॥
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तत्र गतिरन्यथा । अङ्गदप्रमुखैर्वीरैर्हतं मधुवनं किल ॥२२॥

थे ॥ ८ ॥ हमारे वानर रोकनेके लिये प्रयत्नशील होकर उन्हें धमकाने लगे, तब क्रोध करके उनलोगोंने इनको उस वनसे निकाल दिया ॥ ९ ॥ अनेक वीर लाल आँखोंवाले वानरोंके द्वारा मेरे ये वानर धमकाये गये ॥ १० ॥ कई हाथोंसे पीटे गये, कई जंघोंसे मारे गये, कई घसीटे गये और कई आकाशमें फेंक दिये गये ॥ ११ ॥ आपके समान स्वामीके रहने पर ये वीर इस प्रकार मारे गये और समस्त मधुवनको उन लोगोंने खूब खा लिया ॥ १२ ॥ उसके द्वारा ऐसा निवेदन करने पर शत्रुहन्ता महाप्राज्ञ लक्ष्मणने वानरराज सुग्रीवसे पूछा ॥ १३ ॥ राजन्, यह वनपाल क्यों आया है और किस कार्यके लिए दुःखित होकर आपसे निवेदन कर रहा है ? ॥ १४ ॥ महात्मा लक्ष्मणके ऐसा कहने पर वाक्यविशारद सुग्रीव लक्ष्मणसे बोले, ॥ १५ ॥ आर्य लक्ष्मण, यह वीर दधिमुख वानर कहता है कि अंगद आदि वीर वानरोंने मधु पी लिया ॥ १६ ॥ बिना कार्य किये इन सबोंमें ऐसा साहस नहीं हो सकता है कि मेरे वनको उजाड़ दें । अतएव अवश्य ही इनलोगोंने कार्य सिद्ध किया है ॥ १७ ॥ रोकनेके लिए बार-बार आए हुए वनपालोंको उनलोगोंने जानुसे मारा और बली दधिमुख वानरको भी कुछ नहीं समझा ॥ १८ ॥ यह मेरे वनका दरोगा है, हम ही ने इसे रखा है । निस्सन्देह हनुमानने ही देवी सीताका पता लगाया होगा, और किसीने नहीं ॥ १९ ॥ हनुमानके अतिरिक्त और कोई इस कार्यको सिद्ध नहीं कर सकता; क्योंकि उनमें कार्य सिद्ध करनेकी शक्ति तथा बुद्धि है । उद्योग, पराक्रम और ज्ञान भी हनुमानमें हैं । जिस दलका जाम्बवान संचालक हो और महाबली अंगद नियामक हो और हनुमान सम्मतिदाता हो, वह दल अन्याय कभी नहीं कर सकता, अंगद आदि वीरोंने मधुवनको

विचित्य दक्षिणामाशागतैर्हरिपुंगवैः । आगतैश्च प्रहृष्टं तद्यथा मधुवनं हि तैः ॥२३॥
धर्षितं च वनं कृत्स्नमुपयुक्तं तु वानरैः । पातिता वनपालास्ते तदा जानुभिराहताः ॥२४॥
एतदर्थमयं प्राप्तो वक्तुं मधुरवागिह । नाम्ना दधिमुखो नाम हरिः प्रख्यातविक्रमः ॥२५॥
दृष्टा सीता महाबाहो सौमित्रे पश्य तत्त्वतः । अभिगम्य यथा सर्वे पिबन्ति मधु वानराः ॥२६॥
न चाप्यदृष्ट्वा वैदेहीं विश्रुताः पुरुषर्षभ । वनं दत्तवरं दिव्यं धर्षयेयुर्वनौकसः ॥२७॥
ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा लक्ष्मणः सहराघवः । श्रुत्वाकर्णसुखां वाणीं सुग्रीववदनाच्च्युताम् ॥२८॥
प्राहृष्यत भृशं रामो लक्ष्मणश्च महायशाः । श्रुत्वा दधिमुखस्यैवं सुग्रीवस्तु प्रहृष्य च ॥२९॥
वनपालं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत । प्रीतोऽस्मि सोऽहं यद्भुक्तं वनं तैः कृतकर्मभिः ॥३०॥
धर्षितं मर्षणीयं च चेष्टितं कृतकर्मणाम् । गच्छ शीघ्रं मधुवनं संरक्षस्व त्वमेव हि ॥
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तान्हनूमत्प्रमुखान्कपीन् । ॥३१॥

इच्छामि शीघ्रं हनुमत्प्रधानाञ्शाखामृगांस्तान्मृगराजदर्पान् ।
प्रष्टुं कृतार्थान्सह राघवाभ्यां श्रोतुं च सीताधिगमे प्रयत्नम् ॥३२॥
प्रीतिस्फीताक्षौ संप्रहृष्टौ कुमारौ दृष्ट्वा सिद्धार्थौ वानराणां च राजा ।
अङ्गैः प्रहृष्टैः कार्यसिद्धिं विदित्वा बाह्वोरासन्नामतिमात्रं ननन्द ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥

उजाड़ डाला। आकर प्रसन्न उन वानरोंने समस्त मधुवनको उजाड़ डाला जो कि हमारे उपभोगके लिए था और रक्षकोंको लात मारकर गिरा दिया ॥ २०—२४ ॥ प्रख्यातपराक्रम दधिमुख नामका यह वानर यही कहने आया है ॥ २५ ॥ महाबाहो लक्ष्मण निश्चित है कि उन लोगोंने सीताका पता पाया है; क्योंकि वे सब मधुवनमें जाकर मधुपान कर रहे हैं, ॥ २६ ॥ वे प्रसिद्ध वानर, सीताको विना देखे, हमारे द्वारा रक्षित उस वनका विनाश कभी न करते ॥ २७ ॥ सुग्रीवके मुखसे निकली, कानोंको सुख देनेवाली, इस वाणीको सुनकर धर्मात्मा लक्ष्मण रामचन्द्रके साथ प्रसन्न हुए ॥ २८ ॥ महायशस्वी लक्ष्मण और राम दधिमुखसे यह बात सुनकर अधिक प्रसन्न हुए ॥ २९ ॥ सुग्रीवने प्रसन्न होकर उस वनपालसे पुनः कहा कि मैं प्रसन्न हूँ कि उन लोगोंने कार्य सिद्ध करके हमारे वनको खा डाला ॥३०॥ कार्य सिद्ध करनेवाले उन वानरोंकी धृष्टता और इस अनुचित व्यवहारको हमने क्षमा किया। तुम शीघ्र मधुवन लौट जाओ और तुम्हीं उसकी रक्षा करो, तथा हनुमान आदि वानरोंको शीघ्र भेज दो ॥ ३१ ॥ सिंहके समान अहंकारी हनुमान आदि प्रधान वानरोंको मैं शीघ्र देखना चाहता हूँ। राम और लक्ष्मणके साथ, सीताको प्राप्त करनेके उद्योग आदि के विषयमें जाननेके लिए, ॥ ३२ ॥ राजा सुग्रीव दोनों कुमारोंको, प्रेमसे विकसितनेत्र प्रसन्न तथा सिद्ध मनोरथके समान, देखकर, रोमांचित अंगोंसे कार्यसिद्धिको हाथ में आयी हुई जानकर प्रसन्न हुए ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका तिरसठवां सर्ग समाप्त ।

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु हृष्टो दधिमुखः कपिः। राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं चाभ्यवादयत् ॥ १ ॥
स प्रणम्य च सुग्रीवं राघवौ च महाबलौ। वानरैः सहितः शूरैर्दिवमेवोत्पपात ह ॥ २ ॥
स यथैवागतः पूर्वं तथैव त्वरितं गतः। निपत्य गगनाद्भूमौ तद्वनं प्रविवेश ह ॥ ३ ॥
स प्रविष्टो मधुवनं ददर्श हरियूथपान्। विमदानुद्धतान्सर्वान्मेहमानान्मधूदकम् ॥ ४ ॥
स तानुपागमद्वीरो बद्ध्वा करपुटाञ्जलिम्। उवाच वचनं श्लक्ष्णमिदं हृष्टवदङ्गदम् ॥ ५ ॥
सौम्य रोषो न कर्तव्यो यदेभिः परिवारणम्। अज्ञानाद्रक्षिभिः क्रोधाद्भवन्तः प्रतिषेधिताः ॥ ६ ॥
श्रान्तो दूरादनुप्राप्तो भक्षयस्व स्वकं मधु। युवराजस्त्वमीशश्च वनस्यास्य महाबल ॥ ७ ॥
मौर्ख्यात्पूर्वं कृतो रोषस्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति। यथैव हि पिता तेऽभूत्पूर्वं हरिगणेश्वरः ॥ ८ ॥
तथा त्वमपि सुग्रीवो नान्यस्तु हरिसत्तम। आख्यातं हि मया गत्वा पितृव्यस्य तवानघ ॥ ९ ॥
इहोपयानं सर्वेषामेतेषां वनचारिणाम्। भवदागमनं श्रुत्वा सहैभिर्वनचारिभिः ॥ १० ॥
प्रहृष्टो न तु रुष्टोऽसौ वनं श्रुत्वा प्रधर्षितम्। प्रहृष्टो मां पितृव्यस्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ ११ ॥
शीघ्रं प्रेषय सर्वांस्तानिति होवाच पार्थिवः। श्रुत्वा दधिमुखस्यैतद्वचनं श्लक्ष्णमङ्गदः ॥ १२ ॥
अब्रवीत्तान्हरिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः। शङ्के श्रुतोऽयं वृत्तान्तो रामेण हरियूथपाः ॥ १३ ॥
अयं च हर्षादाख्याति तेन जानामि हेतुना। तत्क्षमं नेह नः स्थातुं कृते कार्ये परंतपाः ॥ १४ ॥

सुग्रीवके ऐसा कहने पर प्रसन्न होकर वानर दधिमुखने राम, लक्ष्मण और सुग्रीवको प्रणाम किया ॥ १ ॥ सुग्रीव तथा उन दोनों महाबली राघवोंको प्रणाम करके वीर वानरोंके साथ वह आकाशमें कूदा ॥ २ ॥ जैसी शीघ्रतासे वह आया था, वैसीही शीघ्रतासे उड़कर उसने वनमें प्रवेश किया ॥ ३ ॥ वनमें जाकर उसने वानरोंको देखा, उनका नशा उतर गया था और वे मधुके पच जानेके बाद पेशाब कर रहे थे ॥ ४ ॥ हाथ जोड़कर वह उन वीरोंके पास गया और प्रसन्न करनेवाला कोमल वचन अंगदसे वह बोला ॥ ५ ॥ सौम्य, इन लोगोंने अज्ञानसे आप लोगोंको फल खानेसे जो रोका है, उसके कारण आप क्रोध न करें ॥ ६ ॥ आप थके हैं, दूरसे आये हैं, यह मधु आपका है। आप खायँ। युवराज, आप इस वनके स्वामी हैं ॥ मूर्खतासे जो हमलोगोंने पहले क्रोध किया था, उसे आप क्षमा करें। जैसे, पहले आपके पिता वानरोंकेराजा थे, वैसे ही आज आप और सुग्रीव वानरोंके राजा हैं। मैंने जाकर आप सब वानरोंका यहाँ आना आपके चाचासे कहा है। वानरोंके साथ आपको यहाँ आना और वनका उजाड़ना सुनकर वे प्रसन्न ही हुए, क्रुद्ध नहीं। प्रसन्न होकर आपके चाचा वानरेश्वर सुग्रीवने कहा कि उन सबको शीघ्र यहाँ भेज दो। दधिमुखके ये कोमल वचन सुनकर अंगद बोले कि वानरो, मालूम होता है कि रामचन्द्रने ये सब बातें सुन लीं ॥ ८—१३ ॥ क्योंकि यह प्रसन्न होकर कह रहा है। अतएव शत्रुतापी वीरो, कार्य सिद्ध कर लेने पर अब हम लोगोंका यहाँ ठहरना उचित नहीं है ॥ १४ ॥

पीत्वा मधु यथाकामं विक्रान्ता वनचारिणः। किं शेषं गमनं तत्र सुग्रीवो यत्र वानरः ॥१५॥
सर्वे यथा मां वक्ष्यन्ति समेत्य हरिपुंगवाः। तथास्मि कर्ता कर्तव्ये भवद्भिः परवानहम् ॥१६॥
नाज्ञापयितुमीशोऽहं युवराजोऽस्मि यद्यपि। अयुक्तं कृतकर्माणो यूयं धर्षयितुं बलात् ॥१७॥
ब्रुवतश्चाङ्गदस्यैवं श्रुत्वा वचनमुत्तमम्। प्रहृष्टमनसो वाक्यमिदमूचुर्वनौकसः ॥१८॥
एवं वक्ष्यति को राजन्प्रभुः सन्वानरर्षभ। ऐश्वर्यमदमत्तो हि सर्वोऽहमिति मन्यते ॥१९॥
तव चेदं सुसदृशं वाक्यं नान्यस्य कस्यचित्। सन्नतिर्हि तवाख्याति भविष्यच्छुभयोग्यताम् ॥२०॥
सर्वे वयमपि प्राप्तास्तत्र गन्तुं कृतक्षणाः। स यत्र हरिवीराणां सुग्रीवः पतिरव्ययः ॥२१॥
त्वया ह्यनुक्तैर्हरिभिर्नैव शक्यं पदात्पदम्। क्वचिद्गन्तुं हरिश्रेष्ठ ब्रूमः सत्यमिदं तु ते ॥२२॥
एवं तु वदतां तेषामङ्गदः प्रत्यभाषत। साधु गच्छाम इत्युक्त्वा खमुत्पेतुर्महाबलाः ॥२३॥
उत्पतन्तमनूत्पेतुः सर्वे ते हरियूथपाः। कृत्वाकाशं निराकाशं यन्त्रोत्क्षिप्ता इवोपलाः ॥२४॥
अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम्। तेऽम्बरं सहसोत्पत्य वेगवन्तः प्लवंगमाः ॥२५॥
विनदन्तो महानादं घना वातेरिता यथा। अङ्गदे समनुप्राप्ते सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥२६॥
उवाच शोकसंतप्तं रामं कमललोचनम्। समाश्वसिहि भद्रं ते दृष्टा देवी न संशयः ॥२७॥
नागन्तुमिह शक्यं तैरतीतसमयैरिह। अङ्गदस्य प्रहर्षाच्च जानामि शुभदर्शन ॥२८॥

पराक्रमी वानरोंने खूब मधु पी लिया। अब यहाँ कौन काम बाकी है। अब हम लोग वहाँ चलें, जहाँ सुग्रीव हैं ॥ १५ ॥ सब वानर जो मुझसे कहेंगे वही मैं करूँगा, क्योंकि कर्तव्यके विषयमें मैं पराधीन हूँ ॥ १६ ॥ यद्यपि मैं युवराज हूँ, फिर भी मैं आज्ञा नहीं दे सकता; क्योंकि कार्य सिद्ध करनेवाले आप लोगोंका अनादर करना अनुचित है ॥ १७ ॥ इस प्रकार प्रसन्नचित्त अंगदके वचन सुनकर सभी वानर प्रसन्न होकर बोले ॥ १८ ॥ राजन्, वानरश्रेष्ठ, ऐसा कौन स्वामी कहता है। सभीलोग ऐश्वर्यमदमत्त होकर अहंकारी हो जाते हैं। आपके वचनके समान दूसरे किसीका भी वचन नहीं होता। आपकी यह नम्रता, आपकी भावी योग्यताकी सूचना देती है ॥ १९—२० ॥ वानरोंके स्वामी सुग्रीव जहाँ हैं, वहाँ जानेके लिए उत्साहित होकर हमलोग आये हैं ॥ २१ ॥ आपके बिना कहे, कोई भी वानर कहीं भी जानेके लिए एक पैर भी नहीं उठा सकता। हे वानरश्रेष्ठ, यह बात हमलोग आपसे सत्य कहते हैं ॥ २२ ॥ उनके ऐसा कहने पर अंगदने कहा—अच्छी बात है, चलो चलें। ऐसा कहकर वे महाबली वानर आकाशमें कूदे ॥ २३ ॥ उनके पीछे अन्य वानर भी समस्त आकाशको भर कर कूदे, मानो यन्त्रसे फेंके पत्थरोंसे आकाश भर गया हो ॥ २४ ॥ अंगद और हनुमानको आगे करके वे वेगवान् सब वानर आकाशमें शीघ्रतापूर्वक चलकर खूब गर्जन करते हुए गये, मानो वायुप्रेरित मेघ हों। अंगद-के पहुँचनेपर वानरराज सुग्रीव शोक-सन्तप्त कमलनयन रामचन्द्रसे बोले—आप धैर्य धरें। आपका कल्याण हो। निस्सन्देह देवी सीताका पता लग गया ॥ २५—२७ ॥ नहीं तो समय बीत जाने पर ये वानर कभी लौटकर न आते। हे शुभदर्शन राम, अंगदकी प्रसन्नतासे भी

न मत्सकाशमागच्छेत्कृत्ये हि विनिपातिते । युवराजो महाबाहुः प्लवतामङ्गदो वरः ॥२९॥
यद्यप्यकृतकृत्यानामीदृशः स्यादुपक्रमः । भवेत्तु दीनवदनो भ्रान्तविप्लुतमानसः ॥३०॥
पितृपैतामहं चैतत्पूर्वकैरभिरक्षितम् । न मे मधुवनं हन्यादहृष्ट्वा जनकात्मजाम् ॥३१॥
कौसल्या सुप्रजा राम समाश्वसिहि सुव्रत । दृष्टा देवी न संदेहो न चान्येन हनूमता ॥३२॥
नह्यस्य कर्मणो हेतुः साधने तद्विधो भवेत् । हनूमतीह सिद्धिश्च मतिश्च मतिसत्तम ॥३३॥
व्यवसायश्च शौर्यं च श्रुतं चापि प्रतिष्ठितम् । जाम्बवान्यत्र नेता स्यादङ्गदश्च हरीश्वरः ॥३४॥
हनूमांश्चाप्यधिष्ठाता न तत्र गतिरन्यथा । मा भूश्चिन्तासमायुक्तः संप्रत्यमितविक्रम ॥३५॥
यदा हि दर्पितोदग्राः संगताः काननौकसः । नैषामकृतकार्याणामीदृशः स्यादुपक्रमः ॥३६॥
वनभङ्गेन जानामि मधूनां भक्षणेन च । ततः किलकिलाशब्दं शुश्रावासन्नमम्बरे ॥३७॥
हनूमत्कर्मदृप्तानां नदतां काननौकसाम् । किष्किन्धामुपयातानां सिद्धिं कथयतामिव ॥३८॥
ततः श्रुत्वा निनादं तं कपीनां कपिसत्तमः । आयताञ्चितलाङ्गूलः सोऽभवद्धृष्टमानसः॥३९॥
आजग्मुस्तेऽपि हरयो रामदर्शनकाङ्क्षिणः । अङ्गदं पुरतः कृत्वा हनूमन्तं च वानरम् ॥४०॥
तेऽङ्गदप्रमुखा वीराः प्रहृष्टाश्च मदान्विताः । निपेतुर्हरिराजस्य समीपे राघवस्य च ॥४१॥
हनूमांश्च महाबाहुः प्रणम्य शिरसा ततः । नियतामक्षतां देवीं राघवाय न्यवेदयत् ॥४२॥
दृष्टा देवीति हनुमद्वदनादमृतोपमम् । आकर्ण्य वचनं रामो हर्षमाप सलक्ष्मणः ॥४३॥

यही बात मालूम पड़ती है ॥ २८ ॥ कार्यके बिना सिद्ध किये, महाबाहु वानरश्रेष्ठ युवराज अंगद कभी लौटकर न आते ॥ २९ ॥ यदि कृतकार्य न होकर भी अंगद मेरे पास लौट आता तो उसका मुँह सूखा होता, वह घबराया हुआ होता तथा उसका मन चंचल होता ॥३०॥ पिता-पितामहोंका यह वन जो मेरे पूर्वजोंके द्वारा रक्षित है, उसे सीताको बिना देखे ये न उजाड़ते ॥ ३१ ॥ रामचन्द्र, कौशल्याने उत्तम पुत्र उत्पन्न किया है । हे सुव्रत, देवी सीताको हनुमानने ही देखा है, दूसरेने नहीं ॥ ३२ ॥ इस कार्यको सिद्ध करनेके लिए हनुमानके अतिरिक्त दूसरेके पास साधन नहीं है । हनुमानमें कार्य सिद्ध करनेकी शक्ति है, बुद्धि है, शूरता है और ज्ञान है । जहाँ जाम्बवान संचालक हों, वानरराज अंगद नेता हों और हनुमान अधिष्ठाता हों, वहाँ मर्यादाका भंग नहीं हो सकता । हे अतुलपराक्रम, अब आप चिन्ता न करें ॥ ३३-३५ ॥ ये वानर मिलकर अहंकारके कारण मर्यादाके आगे बढ़ गये हैं । इनका ऐसा व्यवहार बिना कार्यसिद्धिके न होता । वनके उजाड़नेसे, मधु खानेसे मैं ऐसा समझता हूँ । इसी समय सुग्रीवने हनुमानके कार्यसे प्रमत्त, किष्किधामें आनेवाले, मानो वानरोंके गर्जनका शब्द तथा किलकिला शब्द सिद्धि की बात कहते हुए आकाशमें सुना ॥३७-३८॥ कपिश्रेष्ठ सुग्रीव वानरोंके गर्जन सुनकर प्रसन्न हुए और उनकी सुन्दर पूँछ बढ़ी ॥ ३९ ॥ वे वानर भी रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिए हनुमान और अंगदको आगे करके आये ॥ ४० ॥ वे अंगद-प्रमुख वीर प्रसन्न और मदयुक्त होकर सुग्रीव तथा रामचन्द्रके समीप आकाशसे उतरे ॥ ४१ ॥ महाबाहु हनुमानने सिर झुकाकर प्रणाम करके रामचन्द्रसे कहा कि देवी सीता जीवित हैं और पातिव्रत्यका अनुष्ठान कर रही हैं ॥ ४२ ॥ " मैंने देवीको देखा है "

निश्चितार्थं ततस्तस्मिन्सुग्रीवं पवनात्मजे । लक्ष्मणः प्रीतिमान्प्रीतो बहुमानादवैक्षत ॥४४॥
प्रीत्या च परमोपेतो राघवः परवीरहा । बहुमानेन महता हनूमन्तमवैक्षत ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५

ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम् । प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ १ ॥
युवराजं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च । प्रवृत्तिमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २ ॥
रावणान्तःपुरे रोधं राक्षसीभिश्च तर्जनम् । रामे समनुरागं च यथा च नियमः कृतः ॥ ३ ॥
एतदाख्याय ते सर्वं हरयो रामसंनिधौ । वैदेहीमक्षतां श्रुत्वा रामस्तूत्तरमब्रवीत ॥ ४ ॥
क्व सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तते । एतन्मे सर्वमाख्यात वैदेहीं प्रति वानराः ॥ ५ ॥
रामस्य गदितं श्रुत्वा हरयो रामसंनिधौ । चोदयन्ति हनूमन्तं सीतावृत्तान्तकोविदम् ॥ ६ ॥
श्रुत्वा तु वचनं तेषां हनूमान्मारुतात्मजः । प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै तां दिशं प्रति ॥ ७ ॥
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सीताया दर्शनं यथा । तं मणिं काञ्चनं दिव्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ८ ॥
दत्त्वा रामाय हनुमांस्ततः प्राञ्जलिरब्रवीत । समुद्रं लङ्घयित्वाहं शतयोजनमायतम् ॥ ९ ॥
अगच्छं जानकीं सीतां मार्गमाणो दिदृक्षया । तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः ॥१०॥

हनुमानके मुँहसे अमृतके समान इस वचनको सुनकर राम और लक्ष्मण प्रसन्न हुए ॥ ४३ ॥ हनुमानकी सफलताका निश्चय रखनेवाले सुग्रीवको प्रसन्न लक्ष्मणने बड़े आदरसे देखा ॥ ४४ ॥ शत्रुहन्ता, बड़े प्रेमसे युक्त रामचन्द्रने बड़े आदरसे हनुमानको देखा ॥ ४५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका चौंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६४ ॥

सुन्दर वनवाले प्रश्रवण पर्वत पर जाकर और युवराजको आगे करके, महाबली राम लक्ष्मणको प्रणाम कर तथा सुग्रीवका अभिवादन कर, वे सीताका वृत्तान्त कहने लगे ॥ १—२ ॥ रावणके अन्तःपुरमें रोका जाना, राक्षसियोंके द्वारा धमकाया जाना और रामचन्द्रमें उनका अनुराग तथा नियत अवधिके अनन्तर सीताके प्राण-त्यागका निश्चय आदि बातें वानरोंने रामचन्द्रके समीप कहीं। सीता जीवित हैं यह जानकर रामचन्द्र बोले ॥ ३ ॥ देवी सीता कहां हैं। वे मेरे संबन्धमें कैसा भाव रखती हैं, वानरों, वह सब हमसे कहो ॥ ४ ॥ रामके वचन सुनकर वानरोंने सीताका वृत्तान्त जाननेवाले हनुमानको रामचन्द्रके पास भेज दिया ॥ ६ ॥ वानरोंकी बात सुनकर वायुपुत्र हनुमानने पहले देवी सीताके लिए तथा उस दिशाकी ओर प्रणाम किया ॥ ७ ॥ वाक्य बोलनेमें निपुण हनुमानने सीताको जैसा देखा था, कहा। अनन्तर अपने तेजसे प्रकाशित वे, सोनेका मणि देकर और हाथ जोड़कर, रामचन्द्रसे बोले—मैं सौ योजन लम्बा समुद्र लांघकर सीताको ढूंढनेके लिए तथा दुरात्मा रावणकी नगरी लंकाको देखनेके

दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे । तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती ॥११॥
त्वयि संन्यस्य जीवन्ती रामा राम मनोरथम् । दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥१२॥
राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्षिता प्रमदावने । दुःखमापद्यते देवी त्वया वीर सुखोचिता ॥१३॥
रावणान्तः पुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता । एकवेणीधरा दीना त्वयि चिन्तापरायणा ॥१४॥
अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे । रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ॥१५॥
देवी कथंचित्काकुत्स्थ त्वन्मना मार्गिता मया । इक्ष्वाकुवंशविख्यातिं शनैः कीर्तयतानघ ॥१६॥
सा मया नरशार्दूल शनैर्विश्वासिता तदा । ततः संभाषिता देवी सर्वमर्थं च दर्शिता ॥१७॥
रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा हर्षमुपागता । नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्याःसदा त्वयि ॥१८॥
एवं मया महाभाग दृष्टा जनकनन्दिनी । उग्रेण तपसा युक्ता त्वद्भक्त्या पुरुषर्षभ ॥१९॥
अभिज्ञानं च मे दत्तं यथावृत्तं तवान्तिके । चित्रकूटे महाप्राज्ञ वायसं प्रति राघव ॥२०॥
विज्ञाप्यः पुनरप्येष रामो वायुसुत त्वया । अखिलेन यथा दृष्टमिति मामाह जानकी ॥२१॥
अयं चास्मै प्रदातव्यो यत्नात्सुपरिरक्षितः । ब्रुवता वचनान्येवं सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥२२॥
एष चूडामणिः श्रीमान्मया ते यत्नरक्षितः । मनःशिलायास्तिलकं तत्स्मरस्वेति चाब्रवीत् ॥२३॥
एष निर्यातितः श्रीमान्मया ते वारिसंभवः । एनं दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवानघ ॥२४॥

लिए गया ॥ ८, ९, १० ॥ समुद्रके दक्षिण तीरपर लंका नगरी है। वहीं रावणके अन्तःपुरमें सती सीताको मैंने देखा ॥ ११ ॥ रामचन्द्र, वे अपने मनोरथोंको आपको अर्पित करके जी रही हैं। विरूप राक्षसियोंके बीचमें वे रहती हैं। उनके द्वारा डाटी डपटी जाती हैं तथा उन्हींके द्वारा उनकी रखवाली होती है। हे वीर, आपके साथ सुख भोगनेके योग्य सीता इस समय दुख उठा रही हैं ॥ १२, १३ ॥ रावणके अन्तःपुरमें वे रोकी गयीं हैं। राक्षसियाँ उनकी रखवाली करती हैं। एक वेणी धारण करके दीना सीता आपकी चिन्तामें समय बिता रही हैं ॥ १३, १४ ॥ जमीन पर सोती हैं, सरदीसे कमलनीके समान उनके अंग सूख गये हैं। रावणके कारण उनके सब मनोरथ नष्ट होगये हैं, अतएव मरनेका निश्चय कर लिया है ॥ १५ ॥ काकुत्स्थ, आपका ध्यान करनेवाली उस देवीको मैंने किसी प्रकार ढूंढ़ा। इक्ष्वाकुवंशको प्रसिद्धिका कीर्त्तन करके मैंने धीरे-धीरे विश्वास उत्पन्न किया—उनसे बातें कीं तथा सब बातें बतलायीं ॥ १६, १७ ॥ राम और सुग्रीवकी मैत्री सुनके वे प्रसन्न होगयीं। वे सदाचारिणी, पतिव्रता और आपकी भक्ता बनी हुई हैं ॥ १८ ॥ महाभाग, पुरुषश्रेष्ठ, आपकी भक्तिसे युक्त जनकनन्दनीको कठोर तपस्या करते हुए मैंने देखा। आपके साथ चित्रकूट पर्वतमें वायसके सम्बन्धमें जो बातें हुई थीं, उनका वर्णन करके उन्होंने अपना चिन्ह देनेको कहा ॥ १९, २० ॥ पुनः उन्होंने कहा, हे वायुपुत्र, रामचन्द्रसे तुम वह सब कहना जो यहाँ देख रहे हो और यत्नसे रक्षित यह मणि उनको देना। सुग्रीवके सामने ये बातें कहते हुए हनुमानने कहा—यह मणि मैं यत्नसे सुरक्षित रखकर लाया हूँ। मैनसिलके तिलककी बात आप स्मरण करें, यह सीताने कहा है ॥ २१, २२, २३ ॥ समुद्रसे उत्पन्न यह साक्षी मैंने तुमको दिया, जिसको देखकर मैं इस दुखमें वैसीही प्रसन्न होती थी,

जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज । ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता ॥२५॥
इति मामब्रवीत्सीता कृशाङ्गी धर्मचारिणी । रावणान्तःपुरे रुद्धा मृगीवोत्फुल्ललोचना ॥२६॥
एतदेव मयाख्यातं सर्वं राघव यद्यथा । सर्वथा सागरजले संतारः प्रविधीयताम् ॥२७॥
तौ जाताश्वासौ राजपुत्रौ विदित्वा तच्चाभिज्ञानं राघवाय प्रदाय ।
देव्या चाख्यातं सर्वमेवानुपूर्व्याद्वाचा संपूर्णं वायुपुत्रः शशंस ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६

एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः । तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सहलक्ष्मणः ॥ १ ॥
तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्शितः । नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
यथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद्वत्सस्य वत्सला । तथा ममापि हृदयं मणिश्रेष्ठस्य दर्शनात् ॥ ३ ॥
मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे । वधूकाले यथा बद्धमधिकं मूर्ध्नि शोभते ॥ ४ ॥
अयं हि जलसंभूतो मणिः प्रवरपूजितः । यज्ञे परमतुष्टेन दत्तः शक्रेण धीमता ॥ ५ ॥
इमं दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं तथा तातस्य दर्शनम् । अद्यास्म्यवगतः सौम्य वैदेहस्य तथा विभोः ॥ ६ ॥
अयं हि शोभते तस्याः प्रियाया मूर्ध्नि मे मणिः । अद्यास्य दर्शनेनाहं प्राप्तां तामिव चिन्तये ॥ ७ ॥
किमाह सीता वैदेही ब्रूहि सौम्य पुनःपुनः । परासुमिव तोयेन सिञ्चन्ती वाक्यवारिणा ॥ ८ ॥

जैसी तुमको देखकर हुई हूँ ॥२४॥ रामचन्द्र, एक महीने तक और जीऊँगी । एक महीनेके पश्चात् राक्षसोंके वशमें आयी मैं प्राणत्याग कर दूँगी ॥ २५ ॥ दुर्बलशरीर, रावणके घरमें अवरुद्ध, मृगीके समान, विशालनेत्रा सीताने मुझसे ये बातें कही हैं ॥ २६ ॥ रामचन्द्र जो जैसा था, वह सब मैंने आपसे कहा, अब आप शीघ्रही समुद्र पार करनेका प्रयत्न करें ॥२७॥ उन राजपुत्रोंको विश्वासित जानकर, रामचन्द्रको चिन्ह देकर, वायुपुत्र हनुमानने सीताकी कही सब बातें क्रमपूर्वक कहीं ॥२८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका पैंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६५ ॥

दशरथपुत्र रामचन्द्र, हनुमानके ऐसा कहनेपर, उस मणिको हृदयमें लगाकर, लक्ष्मणके साथ रोने लगे ॥ १ ॥ शोकसे दुखी रामचंद्र उस मणिश्रेष्ठको देखकर दोनों आँखोंमें आँसू भर कर सुग्रीवसे बोले, ॥ २ ॥ जिस प्रकार स्नेहवती गौके स्तनोंसे बछड़ेको देखनेसे दूध गिरता है, उसी प्रकार इस मणिको देखकर मेरा हृदयभी द्रवीभूत हो गया ॥ ३ ॥ मेरे श्वसुरने यह मणि विवाहकालमें सीताको दिया था । उसके मस्तकपर बाँधनेसे यह बहुत शोभित होता था ॥ ४ ॥ यह समुद्रसे उत्पन्न, देवताओंके द्वारा प्रशंसित मणि, यज्ञमें प्रसन्न होकर बुद्धिमान इन्द्रने दिया था ॥ ५ ॥ इस मणिको देखकर मैंने अपने पिता तथा राजा जनकका दर्शन पाया है ॥ ६ ॥ यह मणि मेरी प्रियाके मस्तकपर शोभता है । आज इसको देखनेसे मैं उसीको आयी हुई समझता हूँ ॥ ७ ॥ सौम्य, वैदेही सीताने जो कहा है, वह बार-बार कहो । मरते हुए मनुष्यको जल देनेके

इतस्तु किं दुखतरं यमिमं वारिसंभवम् । मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतं विना ॥ ९ ॥
चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति । क्षणं वीर न जीवेयं विना तामसितेक्षणाम् ॥१०॥
नय मामपि तं देशं यत्र दृष्टा मम प्रिया । न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च ॥११॥
कथं सा मम सुश्रोणी भीरुभीरुः सती तदा । भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् ॥१२॥
शारदस्तिमिरोन्मुक्तो नूनं चन्द्र इवाम्बुदैः । आवृतो वदनं तस्या न विराजति सांप्रतम् ॥१३॥
किमाह सीता हनुमंस्तत्त्वतः कथयस्व मे । एतेन खलु जीविष्ये भेषजेनातुरो यथा ॥१४॥
मधुरा मधुरालापा किमाह मम भामिनी । मद्विहीना वरारोहा हनुमन्कथयस्व मे ॥
दुःखाद्दुःखतरं प्राप्य कथं जीवति जानकी । ॥१५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

एवमुक्तस्तु हनुमान्राघवेण महात्मना । सीताया भाषितं सर्वं न्यवेदयत राघवे ॥ १ ॥
इदमुक्तवती देवी जानकी पुरुषर्षभ । पूर्ववृत्तमभिज्ञानं चित्रकूटे यथातथम् ॥ २ ॥
सुखसुप्ता त्वया सार्धं जानकी पूर्वमुत्थिता । वायसः सहसोत्पत्य विददार स्तनान्तरम् ॥ ३ ॥
पर्यायेण च सुप्तस्त्वं देव्यङ्के भरताग्रजः । पुनश्च किल पक्षी स देव्या जनयति व्यथाम् ॥ ४ ॥

समान, अपने वचन-रूपी जलसे मुझे जीवन दान करती हुई उसने क्या कहा है ? ॥ ८ ॥ लक्ष्मण, वैदेहीके बिना आये इस जलोत्पन्न मणिको मैं देख रहा हूँ, इससे बढ़कर दुःखकी और क्या बात होगी ॥ ९ ॥ वैदेही एक महीने तक जीती रहेगी तो वह बहुत जीयेगी । मैं तो उस असितेक्षणाके बिना एक क्षणभी नहीं जी सकता ॥ १० ॥ मुझकोभी वहाँ ले चलो, जहाँ मेरी प्रियाको तुमने देखा है । उनका समाचार सुनकर मैं एक क्षणभी यहाँ नहीं रह सकता ॥ ११ ॥ डरनेवाली, मेरी सती सीता घोर भयानक राक्षसोंके बीचमें कैसे रहती है ॥ १२ ॥ अन्धकारसे मुक्त, पर मेघोंसे ढंके हुए शरद्के चन्द्रमाके समान उसका मुख शोभित न होता होगा ॥ १३ ॥ हनुमन्, सीताने मेरे लिए और क्या कहा है ? जिस प्रकार रोगी दवासे जीता है, मैं भी इससे जीऊँगा ॥ १४ ॥ सुन्दर आकारवाली, सुन्दर बोलनेवाली, सुन्दरी, मुझसे विहीन सीताने क्या कहा है, हनुमन्, कहो । बहुत अधिक दुःख पाकर जानकी कैसे जी रही है ॥ १५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥६६॥

महात्मा रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर हनुमानने सीताकी सब बातें कहीं ॥ १ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, देवी जानकीने अपना चिन्ह पहले चित्रकूटमें जैसा हुआ था, वह इस प्रकार कहा है ॥ २ ॥ आपके साथ मैं सुखपूर्वक सो रही थी और आपके पहले उठ गयी । अकस्मात् एक कौआ आकर मेरे स्तनोंपर चोंच मारने लगा ॥ ३ ॥ पर्यायसे रामचन्द्र, मेरे अंकमें सो रहे थे । वह पक्षी बार-

ततः पुनरुपागम्य विददार भृशं किल । ततस्त्वं बोधितस्तस्याः शोणितेन समुक्षितः ॥ ५ ॥
वायसेन च तेनैवं सततं बाध्यमानया । बोधितः किल देव्या त्वंः सुखसुप्तः परंतप ॥ ६ ॥
तां च दृष्ट्वा महाबाहो दारितां च स्तनान्तरे । आशीविष इव क्रुद्धस्ततो वाक्यं त्वमूचिवान् ॥ ७ ॥
नखाग्रैः केन ते भीरु दारितं वै स्तनान्तरम् । कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ॥ ८ ॥
निरीक्षमाणः सहसा वायसं समुदैक्षथाः । नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैस्तामेवाभिमुखं स्थितम् ॥ ९ ॥
सुतः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः । धरान्तरगतः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः ॥१०॥
ततस्तस्मिन्महाबाहो कोपसंवर्तितेक्षणः । वायसे त्वं व्यधाः क्रूरां मतिं मतिमतां वर ॥११॥
स दर्भं संस्तराद्गृह्य ब्रह्मास्त्रेण न्ययोजयः । स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखं खगम् ॥१२॥
स त्वं प्रदीप्तं चिक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति । ततस्तु वायसं दीप्तः स दर्भोऽनुजगाम ह ॥१३॥
भीतैश्च संपरित्यक्तः सुरैः सर्वैश्च वायसः । त्रींल्लोकान्संपरिक्रम्य त्रातारं नाधिगच्छति ॥१४॥
पुनरप्यागतस्तत्र त्वत्सकाशमरिंदम । त्वं तं निपतितं भूमौ धरण्यां शरणागतम् ॥१५॥
वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालयः । मोघमस्त्रं न शक्यं तु कर्तुमित्येव राघव ॥१६॥
ततस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम् । वायसस्त्वां नमस्कृत्य राज्ञो दशरथस्य च ॥१७॥
विसृष्टस्तु तदा काकः प्रतिपेदे स्वमालयम् । एवमस्त्रविदां श्रेष्ठः सत्त्ववाञ्छीलवानपि ॥१८॥
किमर्थमस्त्रं रक्षःसु न योजयसि राघव । न दानवा न गन्धर्वा नासुरा न मरुद्गणाः ॥१९॥

बार देवीको पीड़ा देने लगा। पुनः-पुनः आकर चोंच मारने लगा। रुधिरसे भीगनेके कारण आपभी उठ गये ॥ ४-५ ॥ हे परन्तप, सुखसे सोये हुए आपको उस कौएके द्वारा बार-बार पीड़ित होनेपर देवीने जगाया ॥ ६ ॥ महाबाहु रामचंद्र, सीताके स्तनोंमें बड़ा घाव देखकर सर्पके समान क्रुद्ध होकर आपने कहा ॥ ७ ॥ भीरु, नखोंसे किसने तुम्हारे स्तनोंपर यह घाव किये हैं ? बड़े मुँहवाले क्रुद्ध सर्पसे कौन खेल रहा है ? ॥ ८ ॥ देखते हुए अकस्मात् सहसा आपने कौएको, जो तीखे रुधिरयुक्त नखोंसे मेरीही ओर मुँह किये बैठा था, देखा ॥ ९ ॥ वह शक्रका बेटा पृथ्वीमें आकर कौआ बन गया था और वायुके समान शीघ्र चलता था। आपने, हे महाबाहो, उस कौवेपर बड़ा क्रोध किया ॥ १०-११ ॥ अपने आसनसे कुश निकालकर, ब्रह्मास्त्र मन्त्रसे उसे अभिमंत्रित किया। कालाग्निके समान प्रदीप्त होकर, कौएकी ओर, जलते हुए उसे आपने फेंका ॥ १२ ॥ उस जलते हुए कुशको कौएकी ओर आपने चलाया। वह प्रदीप्त कुश उस कौएका पीछा करने लगा ॥ १३ ॥ सब देवताओंने डरकर उस कौएका परित्याग कर दिया। तीनों लोक वह घूम आया, पर उसे कोई रक्षक न मिला ॥ १४ ॥ शत्रुनाशन, वह पुनः आपके पास आया और शरणागत, पृथ्वीमें पड़े उसको देखकर वधके योग्य भी उसकी आपने रक्षा की। आपका अस्त्र व्यर्थ नहीं हो सकता था, इस कारण कौएकी दाहिनी आँख आपने फोड़दी। वह, आपको, राजा दशरथको, प्रणाम करके तथा आपसे बिदा होकर अपने घर चला गया। इस प्रकार आप अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, बलवान् हैं, शीलवान् हैं। रामचन्द्र, फिर आप राक्षसोंके लिए, अस्त्रोंका प्रयोग क्यों नहीं करते ? दानव, गन्धर्व, असुर, तथा देवगण, हे

तव राम रणे शक्तास्तथा प्रतिसमासितुम् । तव वीर्यवतः कच्चिन्मयि यद्यस्ति संभ्रमः ॥२०॥
क्षिप्रं सुनियतैर्बाणैर्हन्यतां युधि रावणः । भ्रातुरादेशमाज्ञाय लक्ष्मणो वा परंतपः ॥२१॥
स किमर्थं नरवरो न मां रक्षति राघवः । शक्तौ तौ पुरुषव्याघ्रौ वाय्वग्निसमतेजसौ ॥२२॥
सुराणामपि दुर्धर्षौ किमर्थं मामुपेक्षतः । ममैव दुष्कृतं किंचिन्महदस्ति न संशयः ॥२३॥
समर्थौ सहितौ यन्मां न रक्षेते परंतपौ । वैदेह्या वचनं श्रुत्वा करुणं साधुभाषितम् ॥२४॥
पुनरप्यहमार्यां तामिदं वचनमब्रुवम् । त्वच्छोकविमुखो रामो देवि सत्येन ते शपे ॥२५॥
रामे दुःखाभिभूते च लक्ष्मणः परितप्यते । कथंचिद्भवती दृष्टा न कालः परिशोचितुम् ॥२६॥
इदं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि । तावुभौ नरशार्दूलौ राजपुत्रौ परंतपौ ॥२७॥
त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लङ्कां भस्मीकरिष्यतः । हत्वा च समरे रौद्रं रावणं सहबान्धवम् ॥२८॥
राघवस्त्वां वरारोहे स्वपुरीं नयिता ध्रुवम् । यत्तु रामो विजानीयादभिज्ञानमनिन्दिते ॥२९॥
प्रीतिसंजननं तस्य प्रदातुं तत्त्वमर्हसि । साभिवीक्ष्य दिशः सर्वा वेण्युद्ग्रथनमुत्तमम् ॥३०॥
मुक्त्वा वस्त्राद्ददौ मह्यं मणिमेतं महाबल । प्रतिगृह्य मणिं दोर्भ्यां तव हेतो रघुप्रिय ॥३१॥
शिरसा संप्रणम्यैनामहमागमने त्वरे । गमने च कृतोत्साहमवेक्ष्य वरवर्णिनी ॥३२॥
विवर्धमानं च हि मामुवाच जनकात्मजा । अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पगद्गदभाषिणी ॥३३॥
ममोत्पतनसंभ्रान्ता शोकवेगसमाहता । मामुवाच ततः सीता सभाग्योऽसि महाकपे ॥३४॥

राम, कोई भी युद्धमें आपके सामने नहीं ठहर सकता । पराक्रमी आपका मुझमें थोड़ा भी आदर हो, तो शीघ्रही अपने नियमित बाणोंसे युद्धमें रावणको मारें अथवा परन्तप नरश्रेष्ठ लक्ष्मण ही भ्राताकी आज्ञा लेकर मेरी रक्षा क्यों नहीं करते ? वायु और अग्निके समान तेजस्वी वे दोनों पुरुष-सिंह समर्थ हैं ॥ १५—२२ ॥ देवताओंके द्वारा भी परास्त न होनेके योग्य वे दोनों मेरी उपेक्षा क्यों करते हैं ? अथवा, मेरा ही यह कोई बड़ा भारी पाप है, इसमें सन्देह नहीं, जिससे, वे दोनों भाई समर्थ होनेपर भी मेरी रक्षा नहीं करते । वैदेहीके दयनीय और अच्छे ढंगसे कहे वचन सुनकर मैंने पुनः आर्या सीतासे कहा—रामचन्द्र, तुम्हारे शोकके कारण सब कार्योंसे विमुख हो गये हैं । देवि, यह मैं सत्यकी शपथ करके कहता हूँ ॥ २३—२५ ॥ रामचन्द्रके दुखी होनेसे लक्ष्मण दुखी हो रहे हैं । भाग्यसे आपको मैंने देख पाया । अब आपके दुख करनेका यह समय नहीं है ॥ २६ ॥ शीघ्रही आप अपने दुःखोंका अन्त देखेंगी । वे दोनों नरश्रेष्ठ, शत्रुतापी दोनों राजपुत्र आपको देखनेके उत्साहसे लंकाको जला देंगे और क्रूर रावणको बान्धवोंके साथ रणमें मारकर वे शीघ्रही, सुन्दरी, आपको अपने नगरमें ले जायँगे । अनिन्दिते, जिससे रामचन्द्रको आपके यहाँ मेरे पहुँचनेका विश्वासहो और जिससे रामचन्द्र प्रसन्न हों ऐसा कोई चिह्न दीजिए । सब दिशाओंकी ओर देखकर चोटीमें पहननेका यह मणि कपड़ेमेंसे दोनों हाथोंसे निकालकर आपके लिए उन्होंने दिया ॥ २७ ॥ ३१ ॥ मस्तक झुकाकर उनको प्रणाम कर मैं चलनेके लिए शीघ्र तय्यार हुआ । जानेके लिए उद्यत मुझको देखकर, तथा मुझको बढ़ते देखकर सुन्दरी, जनकपुत्री, दीना सीता आँखोंमें आँसू भरकर बाष्प-गद्गद-स्वरसे मुझसे बोलीं ॥३२॥३३॥ मेरे ऊपर उछलनेके वेगसे घबरायी हुई, शोकसे पीड़ित सीता मुझसे बोलीं—वानर, तुम भाग्य-

यद्द्रक्ष्यसि महाबाहुं रामं कमललोचनम् । लक्ष्मणं च महाबाहुं देवरं मे यशस्विनम् ॥३५॥
सीतयाप्येवमुक्तोऽहमब्रुवं मैथिलीं तदा । पृष्ठमारोह मे देवि क्षिप्रं जनकनन्दिनि ॥३६॥
यावत्ते दर्शयाम्यद्य ससुग्रीवं सलक्ष्मणम् । राघवं च महाभागे भर्तारमसितेक्षणे ॥३७॥
साब्रवीन्मां ततो देवी नैष धर्मो महाकपे । यत्ते पृष्ठं सिषेवेऽहं स्ववशा हरिपुंगव ॥३८॥
पुरा च यदहं वीर स्पृष्टा गात्रेषु रक्षसा । तत्राहं किं करिष्यामि कालेनोपनिपीडिता ॥३९॥
गच्छ त्वं कपिशार्दूल यत्र तौ नृपतेः सुतौ । इत्येवं सा समाभाष्य भूयः संदेष्टुमास्थिता ॥४०॥
हनूमन्सिंहसंकाशौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया अनामयम् ॥४१॥
यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः । अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥४२॥

इदं च तीव्रं मम शोकवेगं रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥४३॥
एतत्तवार्या नृप संयता सा सीता वचः प्राह विषादपूर्वम् ।
एतच्च बुद्ध्वा गदितो यथात्वं श्रद्धस्व सीतां कुशलां समग्राम् ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६७॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

अथाहमुत्तरं देव्या पुनरुक्तः ससंभ्रमम् । तव स्नेहान्नरव्याघ्र सौहार्दादनुमान्य च ॥ १ ॥
एवं बहुविधं वाच्यो रामो दाशरथिस्त्वया । यथा मां प्राप्नुयाच्छीघ्रं हत्वा रावणमाहवे ॥ २ ॥

वानर हो कि महाबाहु कमलनयन रामचन्द्रको तथा महाबाहु यशस्वी मेरे देवर लक्ष्मणको देखते हो ॥ ३४-३५ ॥ सीताके ऐसा कहने पर मैंने उनसे कहा—जनकपुत्रि, देवि, शीघ्रही आप मेरी पीठ पर चढ़ें और मैं लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ आपके पति रामचन्द्रका दर्शन करा देता हूँ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तब उन्होंने कहा—महाकपि, यह धर्म नहीं है कि अपनी इच्छासे मैं तुम्हारी पीठपर बैठूं ॥ ३८ ॥ वीर, पहले जो मैंने राक्षसके अंग छुए, उस समय मैं परवश थी, कालके द्वारा पीड़ित थी, क्या करती ॥३९॥ जहाँ वे दोनों राजपुत्र हैं, वहाँ तुम लौट जाओ । ऐसा कहकर वे मुझसे पुनः संदेश कहने लगीं ॥ ४० ॥ हनुमान, सिंहतुल्य उन दोनों राम और लक्ष्मणसे, सचिवोंके साथ सुग्रीवसे कुशल कहना ॥ ४१ ॥ महाबाहु रामचन्द्र इस दुःखसमुद्रसे शीघ्र मेरा उद्धार करें, ऐसा उनसे कहना ॥४२॥ यह मेरा तीव्र दुःख, इन राक्षसोंके द्वारा धमकाया जाना रामके पास जाकर तुम कहना । वानरश्रेष्ठ, तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो, खेदपूर्वक ये बातें मुझसे कही हैं । आपसे वे बातें मैंने कहीं । आप पतिव्रता, श्रेष्ठ सीताको सकुशल समझें ॥ ४४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका सड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६७ ॥

हे नरव्याघ्र, तुम्हारे प्रति स्नेह और सौहार्दके कारण उन्होंने मेरा सत्कार करके पुनः उत्तम वचन कहे ॥ १ ॥ दशरथपुत्र रामचन्द्रसे बहुत तरहसे तुम ये बातें कहना, जिससे वे

यदि वा मन्यसे वीर वसैकाहमरिंदम । कस्मिंश्चित्संवृते देशे विश्रान्तः श्वो गमिष्यसि ॥ ३ ॥
मम चाप्यल्पभाग्यायाः सांनिध्यात्तव वानर । अस्य शोकविपाकस्य मुहूर्तं स्याद्विमोक्षणम् ॥ ४ ॥
गते हि त्वयि विक्रान्त पुनरागमनाय वै । प्राणानामपि संदेहो मम स्यान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥
तवादर्शनजं चापि भयं मां परितापयेत् । दुःखाद्दुःखपराभूतां दुर्गतां दुःखभागिनीम् ॥ ६ ॥
अयं च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः । सुमहांस्त्वत्सहायेन हर्यृक्षेषु असंशयः ॥ ७ ॥
कथं नु खलु दुष्पारं तरिष्यन्ति महोदधिम् । तानि हर्यृक्षसैन्यानि तौ वा नरवरात्मजौ ॥ ८ ॥
त्रयाणामेव भूतानां सागरस्येह लङ्घने । शक्तिः स्याद्वैनतेयस्य वायोर्वा तव चानघ ॥ ९ ॥
तदस्मिन्कार्यनिर्योगे वीरैवं दुरतिक्रमे । किं पश्यसि समाधानं ब्रूहि वाक्यविदां वर ॥१०॥
काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने । पर्याप्तः परवीरघ्न यशस्यस्ते बलोदयः ॥११॥
बलैः समग्रैर्यदि मां हत्वा रावणमाहवे । विजयी स्वपुरीं रामो नयेत्तत्स्याद्यशस्करम् ॥१२॥
यथाहं तस्य वीरस्य वनादुपधिना हृता । रक्षसा तद्भयादेव तथा नार्हति राघवः ॥१३॥
बलैस्तु संकुलां कृत्वा लङ्कां परबलार्दनः । मां नयेद्यदि काकुत्स्थस्तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥१४॥
तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः । भवत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥१५॥
तदर्थोपहितं वाक्यं प्रश्रितं हेतुसंहितम् । निशम्याहं ततः शेषं वाक्यमुत्तरमब्रुवम् ॥१६॥
देवि हर्यृक्षसैन्यानामीश्वरः प्लवतां वरः । सुग्रीवः सत्त्वसंपन्नस्त्वदर्थे कृतनिश्चयः ॥१७॥

शीघ्र युद्धमें रावणको मारकर मुझसे मिलें ॥ २ ॥ वीर, यदि तुम चाहो तो एक दिन यहीं किसी छिपे स्थानमें निवास करो । विश्राम करके पुनः यहाँसे जाना ॥ ३ ॥ वानर, तुम्हारे समीप रहनेसे, अभागिनी मुझको इस शोक-परिणामसे थोड़ी देरके लिए छुटकारा मिलेगा ॥ ४ ॥ हे पराक्रमी, पुनः लौटनेके लिए तुम्हारे जानेपर मेरे प्राण रहेंगे कि नहीं, इसमें भी सन्देह है ॥ ५ ॥ बड़े दुःखोंसे घिरी हुई, बुरी अवस्थामें पड़ी हुई, दुखभागिनी मुझको तुम्हारे दर्शन न होंगे, यह भय मुझे दुःखी बनावेगा ॥ ६ ॥ वीर, यह बहुत बड़ा सन्देह तो मेरे मनमें बना ही हुआ है कि तुम्हारे और वानर भालुओंके सहायक होनेपर भी, वे सब वानर-भालु तथा वे दोनों राजपुत्र, न पार होने योग्य इस समुद्रको कैसे पार करेंगे ? ॥ ७ ॥ ८ ॥ तीन ही प्राणियोंकी समुद्र पार करनेकी शक्ति है, गरुड़की, वायुकी और हे निष्पाप, तीसरी तुम्हारी ॥९॥ कार्यकी इस कठिनाई और उसके ऐसे स्वरूपका, हे वक्तृश्रेष्ठ, तुम क्या उत्तर समझते हो ? ॥१०॥ यद्यपि इस कार्यको सिद्ध करनेके लिए तुम्हीं अकेले समर्थ हो, तथापि, हे शत्रुसेना नाशक, ऐसा करनेसे केवल तुम्हारे ही बलकी प्रशंसा होगी, अर्थात् रामचन्द्रके बलकी नहीं ॥११॥ यदि समस्त सेनाके साथ रावणको युद्धमें मारकर विजयी रामचन्द्र मुझको यहाँसे अपने नगरमें ले आयँ तो इससे उनका यश बढ़ेगा ॥ १२ ॥ जिस प्रकार वीर रामचन्द्रके भयसे कपटसे राक्षसने वनमें मेरा हरण किया है, उसी प्रकार रामचन्द्रको नहीं करना चाहिए ॥१३॥ सेनासे समस्त लंकाको भरकर, शत्रु-पीड़क काकुत्स्थ रामचन्द्र यदि मुझको ले जायँ तो यह उनके योग्य होगा ॥ १४ ॥ युद्धवीर महात्मा रामचन्द्रका पराक्रम, जिस प्रकार उनके अनुरूप हो वैसा तुम करो ॥ १५ ॥ अर्थयुक्त, नम्र तथा हेतुयुक्त, सीताके वचन सुनकर मैंने पुनः उत्तर दिया ॥ १६ ॥ देवि, वानर भालुओंके

तस्य विक्रमसंपन्नाः सत्त्ववन्तो महाबलाः । मनःसंकल्पसदृशा निदेशे हरयः स्थिताः ॥१८॥
येषां नोपरि नाधस्तान्न तिर्यक्सज्जते गतिः । न च कर्मसु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसः ॥१९॥
असकृत्तैर्महाभागैर्वानरैर्बलसंयुतैः । प्रदक्षिणीकृता भूमिर्वायुमार्गानुसारिभिः ॥२०॥
मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तत्र वनौकसः । मत्तः प्रत्यवरः कश्चिन्नास्ति सुग्रीवसंनिधौ ॥२१॥
अहं तावदिह प्राप्तः किं पुनस्ते महाबलाः । नहि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः ॥२२॥
तदलं परितापेन देवि मन्युरपैतु ते । एकोत्पातेन ते लङ्कामेष्यन्ति हरियूथपाः ॥२३॥
मम पृष्ठगतौ तौ च चन्द्रसूर्याविवोदितौ । त्वत्सकाशं महाभागे नृसिंहावागमिष्यतः ॥२४॥
अरिघ्नं सिंहसंकाशं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् । लक्ष्मणं च धनुष्मन्तं लङ्काद्वारमुपागतम् ॥२५॥
नखदंष्ट्रायुधान्वीरान्सिंहशार्दूलविक्रमान् । वानरान्वारणेन्द्राभान्क्षिप्रं द्रक्ष्यसि संगतान् ॥२६॥
शैलाम्बुदनिकाशानां लङ्कामलयसानुषु । नर्दतां कपिमुख्यानां नचिराच्छ्रोष्यसे स्वनम् ॥२७॥
निवृत्तवनवासं च त्वया सार्धमरिंदमम् । अभिषिक्तमयोध्यायां क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ॥२८॥

ततो मया वाग्भिरदीनभाषिणी शिवाभिरिष्टाभिरभिप्रसादिता ।
उवाह शान्तिं मम मैथिलात्मजा तवातिशोकेन तथातिपीडिता ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८॥

स्वामी वानरश्रेष्ठ बली सुग्रीवने तुम्हारे उद्धारका निश्चय किया है ॥ १७ ॥ पराक्रमी, महाबली, मानसिक इच्छाके सदृश, वानर उनकी आज्ञाके अधीन हैं ॥१८॥ जो ऊपर, नीचे तथा सामने जा सकते हैं । बड़े कार्योंमें भी वे अतुलपराक्रमी नहीं घबड़ाते ॥ १९ ॥ उन बली, महाभाग, वायुमार्गमें चलनेवाले वानरोंने कई बार समस्त पृथ्वीकी प्रदक्षिणा की ॥ २० ॥ मेरे समान तथा मुझसे बढ़कर वानर सुग्रीवके पास हैं । मुझसे छोटा कोई भी वानर वहाँ नहीं है ॥ २१ ॥ अब मैं यहाँ चला आया हूँ, तब उन महाबलियोंके लिए क्या कहना है । बड़े, दूत बनाकर नहीं भेजे जाते । आप अपना दुःख दूर करें । वानर सेनापति एक छलांगमें लंका पहुँचेंगे ॥२२॥ २३॥ मेरे पृष्ठपर चन्द्रसूर्यके समान प्रकाशित वे नरश्रेष्ठ दोनों भाई आपके पास आवेंगे ॥ २४ ॥ शत्रुको मारनेवाले, सिंहके समान रामचन्द्रको तथा धनुर्धारी लक्ष्मणको लंका द्वारपर उपस्थित आप शीघ्रही देखेंगी ॥२५॥ नख तथा दाँतके अस्त्रवाले, वीर, सिंह व्याघ्रके समान पराक्रमी, हाथियोंके समान विशाल वानरोंको आप शीघ्रही एकत्र देखेंगी ॥ २६ ॥ पर्वत और मेघके समान विशाल प्रधान वानरोंके गर्जनका शब्द शीघ्रही आप लंकाके मलयपर्वतके शिखरोंपर सुनेंगी ॥ २७ ॥ बनवासको समाप्त करके अपने साथ, शत्रुहन्ता रामचन्द्रको अयोध्यामें राजपदपर अभिषिक्त शीघ्रही आप देखेंगी ॥ २८ ॥ आपके शोकसे अतिपीड़ित, दीनतापूर्वक न बोलनेवाली सीताने मंगलमय तथा प्रिय मेरे वचनोंके द्वारा शान्ति धारण की, उनका दुःख निवृत्त हुआ ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डका अड़सठवां सर्ग समाप्त ॥ ६८ ॥

सुन्दरकाण्ड समाप्त ।

वाल्मीकीय रामायणकी विषयसूची

अरण्यकाण्ड

किष्किन्धाकाण्ड

सुन्दरकाण्ड

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

बंकिम-ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड)—बंकिमबाबूके 'आनन्दमठ', 'लोकरहस्य' तथा 'देवी चौधरानी, का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ५१२। मूल्य १), सजिल्द १।-)॥, द्वितीय संशोधित संस्करण शीघ्र छपेगा।

गोरा—जगद्विख्यात रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत 'गोरा' नामक पुस्तकका अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ६८८। मूल्य १।-)॥, सजिल्द १॥≈)। द्वितीयावृत्ति शीघ्र छपेगी।

बंकिम-ग्रन्थावली (द्वितीय खण्ड)—बंकिमबाबूके 'सीताराम' तथा 'दुर्गेशनन्दिनी' का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ४३२, मूल्य ॥।-)॥, सजिल्द १≡)।

चंडीचरण-ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) अर्थात टामकाकाकी कुटिया Uncle Tom's Cabin के आधारपर स्वर्गीय चण्डीचरणसेन लिखित 'टामकाकार कुटीर' का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ५६२। मूल्य १=)॥, सजिल्द १॥)।

बंकिम-ग्रन्थावली (तृतीय खण्ड)—बंकिमबाबूके 'कृष्णकान्तेर विल' 'कपाल-कुण्डला' तथा 'रजनी' का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या ४३२। मूल्य ॥।-)॥, सजिल्द १≈)।

चण्डीचरण-ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड)—चण्डीचरणसेन लिखित 'दीवान गंगागोविंदसिंह' का अविकल अनुवाद। पृष्ठ-संख्या २६०। मूल्य ॥)।

वाल्मीकीय रामायण (बालकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइज़के १६२, अर्थात् साधारण साइज़के ३८४। मूल्य ॥।)।

वाल्मीकीय रामायण (अयोध्याकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइज़के ३८४, अर्थात् साधारण साइज के ७६८। मूल्य १॥)।

वाल्मीकीय रामायण (अरण्यकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइज़के २०८, अर्थात् साधारण साइज़के ४१६। मूल्य ॥।-)

वाल्मीकीय रामायण (किष्किन्धाकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइज़के २०८, अर्थात् साधारण साइज़के ४१६। मूल्य ॥।-)

वाल्मीकीय रामायण (सुन्दरकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइज़ के २०२, अर्थात् साधारण साइज़के ४८४। मूल्य ॥।≠)

वाल्मीकीय रामायण (युद्धकाण्ड)—छप रहा है।

वाल्मीकीय रामायण (उत्तरकाण्ड)—शीघ्र छपेगा।

भारत में अभी तक इतनी सस्ती तथा उपयोगी कोई भी ग्रन्थमाला नहीं है। हमारा विचार इससे भी सस्ते मूल्यमें इस मालामें वेद, वेदान्त (उपनिषद् आदि), दर्शन (सांख्य, योग, न्याय आदि), पुराण, धर्मशास्त्र, इतिहास, विज्ञान, वैद्यक, कलाकौशल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, जीवनचरित्र, उपन्यास, नाटक, काव्य, भूगर्भशास्त्र आदि सभी विषयोंकी पुस्तकें निकालनेका है।

रहीम-रत्नावली

मुसलमान होकर भी 'रहीम' ने जितनी सुन्दर तथा नीतिपूर्ण हिन्दी-कविता की है उसे देखकर दंग रह जाना पड़ता है, इनकी रचना कितने ही स्थानोंसे प्रकाशित हो चुकी है। पर, हमें अभी हालहीमें उनके कई नये ग्रंथ मिले हैं। वे सब इसमें सम्मिलित कर दिये गये हैं। अब इतना बड़ा और इतना अच्छा संस्करण कहीं का भी नहीं है। इसमें ३०० के लगभग दोहे, नगर शोभावर्णन, नायिकाभेदके एवं नवीन प्राप्त सवासौ बरवै, मदनाष्टक, शृंगारसोरठ, रहीम काव्य, पाठान्तर, Parallel Quotations तथा दो चित्र दिये गये हैं। इन सबके अतिरिक्त प्रारम्भमें गवेषणापूर्ण बृहद्काय भूमिका भी इसमें जोड़ दी गयी है, जिसमें रहीमके काव्यकी आलोचनाके साथ-ही साथ उनके सम्बन्धकी किम्वदंतियाँ, जीवनी आदि दी गयी हैं। इसके कारण पुस्तकका महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। पुस्तकान्तमें टिप्पणियाँ भी भरपूर दे दी गयी हैं। सुपरिचित साहित्यसेवी पं० मयाशंकरजी याज्ञिकने इस संस्कारणका सम्पादन किया है। पृष्ठ-संख्या २५० के ऊपर मूल्य १)

गो० तुलसीदासजी कृत

विनय-पत्रिका

(टीकाकार—श्रीवियोगीहरि)

सर्वमान्य 'रामायण' के प्रणेता महात्मा तुलसीदासजीका नाम भला कौन नहीं जानता? गोस्वामीजीकी सर्वश्रेष्ठ रचना यही विनयपत्रिका है। विनयपत्रिकासा भक्ति-ज्ञानका दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। इसमें शिव, हनुमान, भरत, लक्ष्मण आदि पार्षदों-सहित जगदीश श्रीरामचन्द्र-की स्तुतिके बहाने वेदान्तके गूढ़ तत्वोंका समावेश किया गया है। वेद, पुराण, उपनिषद्, गीतादिमें वर्णित ज्ञानकी सभी बातें इसमें गागरमें सागरकी भाँति भर दी गयी हैं। इसकी टीका उच्चकोटिके विद्वान एवं लब्ध-प्रतिष्ठ वियोगीहरिजीने की है। इस टीकामें शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, प्रसंग, पदच्छेद आदि सब ही कुछ दिये गये हैं। भावार्थके नीचे टिप्पणीमें अन्तर्कथायें, अलंकार, शंकासमाधान आदिके साथ-ही-साथ समानार्थी हिन्दी तथा संस्कृत कवियोंके अवतरण भी दिये गये हैं। अर्थ तथा प्रसंग-पुष्टिके लिए गीता, वाल्मीकि रामायण तथा भागवत आदि पुराणोंके श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं। दार्शनिक भाव तो खूब ही समझाये गये हैं। इन सब बातोंके कारण टीका अद्वितीय हुई है। नवीन संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण। पृष्ठ-संख्या लगभग ५०० । मूल्य २॥), सजिल्द २॥।), बढ़िया कपड़ेकी जिल्द ३)।

This book is sanctioned as a reference book for Hindi Teachers in High Schools of Central Provinces and Berar.

— Vide Order No. 6811, Dated 28-9-26

अनुराग-वाटिका

(प्रणेता—श्रीवियोगीहरिजी)

वियोगीहरिजीसे हिन्दी-साहित्य-प्रेमीगण भलीभाँति परिचित हैं। साहित्य-विहार, अन्तर्नाद, ब्रजमाधुरीसार, कविकीर्तन, भावना आदि ग्रंथोंके देखनेसे उनकी असाधारण प्रतिभाका परिचय

मिल जाता है। इस पुस्तिकामें इन्हीं वियोगीहरिजी-प्रणीत ब्रजभाषाकी कविताओंका संग्रह है। इतनी सजीव भावपूर्ण कविता आपने बहुत कम देखी होगी। छपाई-सफाई सुन्दर। मूल्य ।-)।

गुलदस्तए-बिहारी

(लेखक—देवीप्रसाद 'प्रीतम')

बिहारी-सतसईका परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं: सभी साहित्य-प्रेमी उसके नामसे परिचित हैं। यह 'गुलदस्तए बिहारी' उसी बिहारी-सतसईके दोहोंपर रचेहुए उर्दू शैरोंका संग्रह है, अथवा यों कहिए कि बिहारी-सतसईकी उर्दू-पद्यमय टीका है। ये शैर सुननेमें जैसे मधुर और चित्ताकर्षक हैं, वैसे ही भाव-भंगीके ख्यालसे भी अनुपम हैं। इनमें दोहोंके अनुवादमें, मूलके एक भी भाव छूटने नहीं पाये हैं, बल्कि कहीं-कहीं उनसे भी अधिक भाव शैरोंमें आगये हैं। ये शैर इतने सरल हैं कि मामूली हिंदी जाननेवाला उन्हें अच्छी तरह समझ सकता है। इन शैरोंकी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० पद्मसिंह शर्म्मा, मिश्रबन्धु, लाला भगवानदीन, वियोगीहरि आदि उद्भट विद्वानोंने मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। इसमें ऊपर बिहारीका मूल दोहा देकर, नीचे प्रीतमजी-रचित उसी दोहे का शैर हिंदी लिपिमें दिया गया है। मूल्य ।॥=), सचित्र राजसंस्करणका १॥)

महात्मा सूरदासजी प्रणीत

भ्रमरगीत—सार

(संपादक—पं० रामचन्द्र शुक्ल)

महात्मा सूरदासजीके नामसे विरले ही हिंदी-प्रेमी अपरिचित होंगे। सूरदासजी हिंदी-साहित्य की विभूति हैं, जीवन-सर्वस्व हैं। कहा भी है—" सूर सूर तुलसी ससि, उडुगण केसवदास "। यथार्थमें हिन्दीमें इनका सर्वोच्च स्थान है। इन्हीं महात्माके उत्कृष्ट पदोंका यह संग्रह है। 'सूर-सागर' का सर्वोत्कृष्ट अंश 'भ्रमरगीत' माना जाता है। उसी भ्रमरगीतके चुने हुए पदोंका यह संग्रह है। इसमें चार सौसे भी ऊपर पद आ गये हैं। इसका सम्पादन हिन्दी-साहित्य-संसारके चिर-परिचित एवं दिग्गज विद्वान पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रो० हिन्दूविश्वविद्यालय, काशी, ने किया है। एक तो सूरदासकी कविता, दूसरे हिन्दीके विशिष्ट विद्वान् द्वारा उसका संपादन 'सोनेमें सुगन्ध' हो गया है। सम्पादकजीकी ८० अस्सी पृष्ठकी दीर्घकाय भूमिका ही पुस्तककी महत्ताको सूचित कर रही है। पदोंमें आये हुए कठिन शब्दोंके सरलार्थ भी पादटिप्पणीमें दे दिये गये हैं। यह पुस्तक कई यूनिवर्सिटियोंमें पाठ्यपुस्तक है। पृष्ठ-संख्या करीब २५०। मूल्य १)।

तुलसी-सूक्ति-सुधा

(सम्पादक—श्रीवियोगीहरिजी)

इसमें जगन्मान्य गोस्वामी तुलसीदासजी-प्रणीत समस्त ग्रन्थोंकी चुनी हुई अनूठी उक्तियोंका संग्रह किया गया है। जो लोग अवकाश न मिलनेसे गोस्वामीजीके सभी ग्रन्थोंका अवलोकन नहीं कर पाते, उनको इस एक ही पुस्तकके पढ़नेसे गोस्वामीजीके समस्त ग्रन्थोंके पढ़नेका आनन्द आ जायगा। इस पुस्तकमें ग्यारह अध्याय हैं—१ चरित-बिन्दु, २ ध्यान-बिन्दु, ३ विनय-बिन्दु, ४ तीर्थ-बिन्दु, ५ अध्यात्म-बिन्दु, ६ साधन-बिन्दु, ७ पुरुष-परीक्षा-बिन्दु, ८ बहुबोध-बिन्दु, ९ व्यवहार-बिन्दु, १० निज-निवेदन-बिन्दु, ११ विविध-सूक्ति-बिन्दु। इसमें आपको राजनीति,

समाज-नीति, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि सभी विषयोंपर अच्छी-से-अच्छी उक्तियाँ बिना प्रयास एक ही जगह मिल जायँगी। साहित्यके अध्येता तथा जनसाधारण दोनों ही इसके पाठसे लाभ उठा सकते हैं। इसमें प्रारम्भमें आलोचनात्मक विशद भूमिका भी संपादकजीने अध्येताओंके लिए जोड़ दी है। पाद-टिप्पणीमें कठिन स्थलोंकी पूर्णरूपसे व्याख्या भी कर दी गयी है। भगवद्भक्तों-को इसे अवश्य देखना चाहिए। पृष्ठ-संख्या ५०० के लगभग। मूल्य २)।

झरना

(प्रणेता—जयशङ्करप्रसाद)

हिन्दीके अर्वाचीन लेखकोंमें बाबू 'जयशंकरप्रसादजी' का आसन बहुत ऊँचा है। उच्चकोटिका साहित्यिक नाटक लिखनेमें एवं नवीन शैलीकी चुहलचुहाती भावपूर्ण कविताएँ करनेमें आप अपना सानी नहीं रखते। आपकी पुस्तकें आधुनिक समाजमें काफी ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं और विश्वविद्यालयमें पाठ्यग्रन्थोंमें स्वीकृत हो चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक आपही की रची हुई छायावादी कविताओंका संग्रह है। कविता बड़ी ही सरल और भावपूर्ण है। इसकी एकएक लाइन हृदयग्राही है। जिनलोगोंका कहना है कि छायावादी कविताएँ बड़ी नीरस होती हैं, उनके सिर पैरका कहीं पता ही नहीं चलता, उनसे मेरा अनुरोध है कि छः आने पैसेमें इस पुस्तकको खरीदकर अपना भ्रम मिटा डालें।

भावना

(लेखक—वियोगीहरि)

यह एक आध्यात्मिक गद्यकाव्य है। इसकी रचना साहित्य-मर्मज्ञ, काव्य-कला-कुशल एवं मंगलाप्रसाद-पारितोषिक-प्राप्त वियोगीहरिजीने की है। इसमें मानव-हृदयमें नित्य उठनेवाली नाना प्रकारकी भावनाओंका सजीव चित्रण है। विश्वप्रेमका विमल स्रोत है। जिस प्रकार कबीर और सूरने समस्त संसारको प्रेममय देखा, उन्हें उसीमें परमात्माकी झलक दिखाई दी, उसीको उन्होंने मुक्तिका मार्ग समझा, उसी प्रकार हरिजीने मनुष्यकी प्रत्येक दैनिक क्रियाको विश्वप्रेमका रूप दिया है। सचमुचमें यह काव्य बड़ा सुन्दर हुआ है। इसकी भाषा इतनी परिमार्जित, ललित और भावपूर्ण है कि देखते ही बनता है। जिस समय सांसारिक झंझटोंसे आपका मन ऊब जाय, आपको सारा संसार नीरस दिखाई पड़े, आप इस पुस्तकको उठा लीजिए। फिर देखिए, आपमें एक नई स्फूर्ति आ जायगी, मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठेगा। इसमें सब मिलाकर ५० निबन्ध हैं। प्रत्येक निबन्ध मुर्देको जिलानेके लिए अमृत है। भगवद्भक्तोंके लिए इसमें बहुत काफी मसाला है। छपाई, सफाई भी पुस्तककी दर्शनीय है। मूल्य ॥=)

कुसुम-संग्रह

(लेखिका—बंगमहिला)

सम्पादक पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रो० हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी तथा लेखिका हिन्दी संसार-की चिरपरिचित श्रीमती बंगमहिला। इसमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर, देवेन्द्रकुमार राय, रामानन्द चट्टोपाध्याय आदि धुरन्धर विद्वानोंके छोटे-छोटे उपन्यासों तथा लेखोंका अनुवाद है। कुछ लेख लेखिकाके निजके हैं। पुस्तक बड़ी ही रोचक तथा शिक्षाप्रद है। इसको संयुक्तप्रान्तकी तथा

मध्यप्रदेशकी [Vide Order No. 9754, datd 12-12-26] **गवर्नमेण्टने पुरस्कार पुस्तकों तथा पुस्तकालयों** (Prize-Books and Libraries) **के लिए स्वीकृत किया है। कुछ स्कूलोंमें पढ़ाई भी जाती है। छपाई, सफाई सुन्दर। सात रंग-बिरंगे चित्रोंसे विभूषित पुस्तकका मूल्य** १॥) ।

The book will form an admirable Prize Book in Girl's School. We repeat that the book will form a nice and useful present to females. It is not less interesting to the general reader.

— *The Modern Review.*

मुद्राराक्षस सटीक

(सम्पादक—ब्रजरत्नदास बी० ए०)

भारत-भूषण भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्रजी, वर्तमान हिन्दी-साहित्यके जन्मदाता माने जाते हैं। आपने ही विशाखदत्तके उत्कृष्ट राजनीतिक संस्कृत नाटक मुद्राराक्षसका अनुवाद गद्य-पद्यमय हिन्दी भाषामें किया है। यह अनुवाद मूल ग्रन्थसे कितना ही आगे बढ़ गया है, इसमें मौलिकता आगयी है। यह नाटक इतना लोकप्रिय हुआ है कि भारतकी प्रायः सभी यूनिवर्सिटियों तथा साहित्यविद्यालयोंमें पाठ्यग्रन्थ रखा गया है। हमने विद्यार्थियोंके लाभार्थ इसी पुस्तकका शुद्ध तथा उपयोगी संस्करण निकाला है। इसमें अध्येताओंके लिए ८० अस्सी पृष्ठकी आलोचनात्मक भूमिका भी प्रारम्भमें दे दी गयी है, जिसमें कवि-प्रतिभा, नाटकका इतिहास, लेखनशैली आदिपर गवेषणापूर्ण आलोचना की गयी है। अन्तमें करीब १५० डेढ़ सौ पृष्ठोंमें भरपूर टिप्पणी दी गयी है, जिसमें नाटकमें आये हुए पद्यांशोंकी पूरी टीका तथा गद्यांशोंके कठिन शब्दोंके अर्थ दिये गये हैं, अलंकार आदि बतलाये गये हैं, स्थल-स्थलपर तुलनाके लिए संस्कृत मूल भी उद्धृत किये गये हैं, प्रमाण के लिए साहित्य-दर्पण, काव्य-प्रकाश आदि ग्रन्थोंके अवतरण भी दिये गये हैं। इसका संशोधन पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा बा० श्यामसुन्दरदासजी बी० ए० प्रो० हिंदू-विश्वविद्यालय, ने किया है। संपादन, नागरी-प्रचारिणी सभाके मन्त्री, बाबू ब्रजरत्नदासजी बी० ए० ने किया है। पृष्ठ-संख्या ३५० के लगभग, मूल्य १) मात्र।

पुस्तक-भवन, काशी, द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

राजारानी

इस नाटकके लेखक संसारके सर्वश्रेष्ठ कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं। अनुवादक बा० मुरारिदास अग्रवाल। भूमिका-लेखक हिन्दीके विद्वान् एवं सम्मेलन-पत्रिकाके भूतपूर्व सम्पादक तथा साहित्य-विहार अनुरागवाटिका, भावना आदिके लेखक श्रीवियोगीहरि लिखते हैं—

"यह नाटक अपने ढंगका एक है, इसमें सन्देह नहीं। नाटकमें सामयिकताके साथ ही स्थायित्व भी है। विचारलहरीकी आरोही अवरोही देखते ही बनता है।......एकका प्रेमकी—प्रेम क्या मोहकी—अतिसे पतन दिखाया गया है, तो दूसरेका लक्ष्य-हीन कर्मकी अतिसे सर्वनाश

कराया गया है......समाज और राष्ट्रके लिए कवीन्द्रकी यह उत्कृष्ट कल्पना कितनी उपयोगिनी है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं । अनुवाद सुन्दर, सरस और यथार्थ हुआ है ।"

सुन्दर मोटे कागज़ पर छपी पुस्तकका मूल्य ॥।) ।

विसर्जन

मूल लेखक—रवीन्द्रनाथ टाकुर । अनुवादक मुरारिदास अग्रवाल, संशोधक तथा भूमिका-लेखक पं० रामचन्द्र शुक्ल । जगन्मान्य रवीन्द्रबाबूकी पुस्तककी उत्तमताके सम्बन्धमें हमें कुछ कहना नहीं है । यह एक अहिंसात्मक करुणरस पूर्ण नाटक है । इसमें जीव-बलि निषेध किया गया है । पुस्तकके भाव बड़े ऊँचे दर्जेके हैं । मूल्य ॥)

सीताराम

लेखक रायबहादुर स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चटर्जी सी. आई. ई. । उच्चकोटिके उपन्यास-लेखकोंमें बंकिमबाबूका नम्बर पहला है । आपको लोग दूसरा स्काट समझते हैं । आपका-सा रोचक, शिक्षाप्रद उपन्यास-लेखक अभी तक भारतमें कोई भी पैदा नहीं हुआ । यही कारण है कि आपके उपन्यासोंका अनुवाद मराठी, गुजराती, पंजाबी, उर्दू, तेलगू आदि भारतीय भाषाओंको कौन कहे, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं तकमें हो चुका है । आपके उपन्यासोंमें सबसे बड़ी एक विशेषता यह होती है कि ये स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभीके हाथोंमें निस्संकोच भावसे दिये जा सकते हैं । यही कारण है कि सभी पढ़े-लिखे लोग बंकिमकी पुस्तकोंको पढ़नेके लिए उपदेश दिया करते हैं । बंकिमकी पुस्तकें Prize-books and Libraries के लिए भी डाइरेक्टरों द्वारा स्वीकृत हो चुकी हैं । अस्तु, यह 'सीताराम' श्रीमद्भगवद्गीता के आधारपर लिखा गया ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें राजनैतिक चालोंका दिग्दर्शन कराया गया है । सीतारामकी वीरता, उनकी प्रथमत्यक्ता स्त्री श्रीका अद्भुत साहस, श्रीकी सखी जयन्ती नामक संन्यासिनीकी अद्भुत करामात, द्वितीय स्त्री नन्दाका अपूर्व स्वार्थत्याग, रमाका आदर्श प्रेम, चन्द्रचूड़ तर्कालंकारकी स्वामिभक्ति, गंगाराम का अपने रक्षकके साथ विश्वासघात, एक शाहजी नामक फकीरकी बदमाशी, मुसलमानोंका अत्याचार, भयंकर मार-काट आदि घटनाओंसे यह पुस्तक भरी पड़ी है । खूब मोटे ऐंटिक पेपर पर मनोमोहक छपाई । मूल्य १॥)

सफाई और स्वास्थ्य

दुनियामें स्वास्थ्य बड़ी चीज़ है । इसके बिना मनुष्य, जीता हुआ भी, मुर्देसे बदतर है । इस छोटी सी पुस्तिकामें स्वास्थ्य-लाभ-सम्बन्धी सभी आवश्यकीय बातें बतलायी गयी हैं । स्वास्थ्य-की पहली सीढ़ी सफाई है । अधिकतर बीमारियाँ गन्दगीकी वजहसे ही पैदा होती हैं । गन्दगीसेही नाना प्रकारके हानिकारक विषैले कीड़े, जोकि रोगके घर होते हैं, उत्पन्न होते हैं, वायु दूषित हो जाती है । इन्हीं सब रोगोंके घर मूल कारणोंसे बचानेके लिए प्रस्तुत पुस्तिका लिखी गयी है । स्वस्थ तथा बलवान् बननेके लिए इस पुस्तकको अवश्य पढ़िए । सी० पी० के शिक्षा-विभागने इसे अपने यहाँ बालक-बालिकाओंके पुस्तकालयके लिए भी स्वीकृत कर लिया है (*Vide Order No. 8918 Dated 25-12-15*) पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य ।) ।

हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस सिटी : ७१८९. ४